भावी शिक्षकों के लिए आधारभूत कार्यक्रम

(Core Programme for Prospective Teachers)

लेखक

जगदीश नारायण पुरोहित

हरिश्चन्द्र व्यास

डा. मुरली मनोहर शर्मा



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर

प्रथम संस्करण 1989

मूल्य 50.00

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर-302 004

मुद्रक
चन्द्रोदय प्रिन्टर्स
जयपुर 302 003

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशकीय भूमिका

राजस्थान- हिन्दी ग्र थ अकादमी अपनी स्थापना के 19 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 1988 को 20वें वष मे प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि मे विश्व साहित्य के विभिन्न विषया के उत्कृष्ट ग्रन्था के हिन्दी अनुवाद तथा विश्व-विद्यालय के शैक्षणिक स्तर के मौलिक ग्र था को हिन्दी मे प्रकाशित कर अकादमी ने हि दी जगत् के शिक्षको, छात्रो एव अ य पाठको की सेवा करने का महत्वपूर्ण काय किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हि दी म शिक्षण के माग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हि दी मे ऐसे ग्र थो का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो के अनुकूल हा। विश्व-विद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्र थ जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड मे अपना समुचित स्थान नही पा सकते हो, और ऐसे ग्र थ भी जो अग्रेजी की प्रतियोगिता के सामन टिक नही पाते हो, अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान विज्ञान के हर विषय मे उन दुलभ मानक ग्र थो को प्रकाशित करती रही है और करेगी जिनको पाकर हि दी के पाठक लाभा वित ही नही, गौरवा वित भी हो सकें। हमे यह कहते हुए हप होता ह कि अकादमी ने 330 से भी अधिक ऐसे दुलभ और महत्वपूर्ण ग्र थो का प्रकाशन किया है जिनम से एकाधिक के द्र, राज्या के बार्डो एव अ य सस्थाग्रा द्वारा पुरस्कृत किये गये ह तथा अनेक विभिन्न विश्वविद्यालया द्वारा अनुशसित।

राजस्थान हि दी ग्र थ अकादमी को अपन स्थापना-काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय से प्रेरणा और सहयाग प्राप्त हाता रहा ह तथा राजस्थान सरकार न इसके पल्लवन म महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ह, अत अकादमी अपा लक्ष्यों की प्राप्ति म उक्त सरकारा की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'भावी शिक्षकों के लिए आधारभूत कार्यक्रम' में विद्वान् लेखकों ने शिक्षा संकाय के स्नातक स्तरीय शिक्षक छात्रों की आवश्यकता पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। शिक्षक अपने कार्य और दायित्व को सफलता से निभा पाये, इस दिशा में इस पुस्तक का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें शिक्षा, शिक्षण और मापन विषय के मुद्दों का सविस्तार विवेचन हुआ है।

हम इसके लेखक श्री जगदीश नारायण पुरोहित, श्री हरिश्चन्द्र व्यास एवं डा मुरली मनोहर शर्मा व विषय सम्पादक डॉ. जे. के. सूद, अजमेर एवं भाषा सम्पादक श्री हरीश भादानी, जयपुर, के प्रति प्रदत्त सहयोग हेतु आभारी हैं।

पी. बी. माथुर
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी एवं
शिक्षा आयुक्त, राजस्थान सरकार,
जयपुर

डॉ. राघव प्रकाश
निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
जयपुर

प्राक्कथन

एक कुशल शिल्पी की भांति शिक्षक को अपने कार्य की सभी सूक्ष्म विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, इसी दृष्टि से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के द्वारा परम्परागत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम मे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन करने हेतु "शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या" की रूपरेखा प्रकाशित कर एक नई दिशा प्रदान की गई थी। भारतवर्ष के प्राय सभी विश्वविद्यालयों ने इस पाठ्यचर्या के अनुकूल अपने बी एड के पाठ्यक्रम का पुनर्निर्माण किया है। राजस्थान के सभी प्रशिक्षण महाविद्यालयों ने शिक्षा सत्र 1984 से बी एड के सभी अनिवार्य एवं 1985 से विषय शिक्षण के नवीन पाठ्यक्रम को प्रभावी कर दिया है। क्योंकि यह निर्विवाद सत्य है कि शिक्षक के लिए शिक्षण के साथ-साथ अधिगम के उद्देश्य एवं अपेक्षित परिवर्तनों का, विविधरूपेण योजना निर्माण का, विविध शिक्षण विधियों का, मूल्यांकन एवं सांख्यिकी का तथा शिक्षण नवाचारों का ज्ञान उसके लक्ष्य सिद्धि हेतु अनिवार्य है। प्रस्तुत पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद की आकांक्षा के अनुरूप ही तैयार की गई है ताकि पुस्तक न केवल राजस्थान एवं अजमेर विश्वविद्यालयों के नियमित एवं पत्राचार द्वारा तथा कोटा विश्वविद्यालय के पत्राचार बी एड के पाठ्यक्रम के अनुसार वरन् यहाँ के शिक्षा शास्त्री तथा भारतवर्ष के सभी राज्यों के बी एड, बी टी, एल टी आदि के पाठ्यक्रम की भी पूर्ति करे।

"भावी शिक्षकों के आधारभूत कार्यक्रम" पुस्तक मे कुल 20 अध्याय है जिनमे से सर्वाधिक दस अध्याय शिक्षण-व्यूह रचना से सम्बन्धित है जो एक भावी शिक्षक मे सफल अध्यापन कला विकसित करने के लिए नितान्त आवश्यक है। इन अध्यायों मे फ्लण्डर के अन्तःक्रिया विश्लेषण को स्पष्ट करने के पश्चात नौ महत्त्वपूर्ण कौशलों की अवधारणा, घटक तथा विविध विषयों के उदाहरण देते हुए पृथक् पृथक् अध्याय प्रस्तुत किए गये है।

कौशलोपरान्त चार विशिष्ट विधियां अर्थात प्रायोजना, पर्यवेक्षित अध्ययन, दल शिक्षण तथा अन्वेषण विधियों के सदर्भ मे चार अध्याय है जिनमे व्याख्या के साथ साथ उपयुक्त उदाहरण भी है।

प्रत्येक अध्यापक जानना चाहता है कि उसका शिक्षण कितना सफल रहा ? शिक्षार्थी कितना अधिगम कर पाए ? यह मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव है। मूल्यांकन की विविध विधियां, परख पत्र रचना आदि पक्षों को भलीभांति समझाया गया है। मूल्यांकन में वैज्ञानिकता लाने हेतु सांख्यिकी का प्रयोग अपरिहार्य है। इसी दृष्टि से पुस्तक के छः अध्यायों में शिक्षा में सांख्यिकी का महत्त्व, उपयोग, केन्द्रीय प्रवृत्ति विचलन, सहसम्बन्धों का माप तथा निष्कर्षों का रेखाओं, चित्रों द्वारा प्रदर्शन की व्याख्या की गई है।

युगानुरूप प्रगति के लिए आवश्यक है कि शिक्षा के क्षेत्र में विश्व में होने वाले नवाचारों से परिचित होकर उसका यथावसर उपयोग किया जा सके। अतः प्रस्तुत पुस्तक में अभिक्रमित अनुदेशन, संगोष्ठी, कार्यशाला प्रविधि, शैक्षिक पर्यटन पैनल चर्चा तथा सूक्ष्म शिक्षण के सन्दर्भ में छः अध्याय भी सम्मिलित किए गए हैं।

अभी तक हमने कंगूरों की चर्चा की है। जो नींव के पत्थरों के बिना चमक नहीं सकते। पुस्तक के प्रथम दस अध्यायों में "अधिगम एवं अध्यापन", "उद्देश्य एवं अपेक्षित परिवर्तन" तथा "योजना निर्माण" पक्षों पर क्रमशः पांच, दो तथा तीन अध्याय सम्मिलित किए गए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक को विभिन्न रेखाचित्रों, लेखाचित्रों, सारणियों, उदाहरणों, सूक्तियों, योजनाओं, उद्धरणों, पाद टिप्पणियों, तुलनाओं तथा सन्दर्भ पुस्तक सूचियों से अति-रोचक, बोधगम्य एवं उपयोगी बनाने का भरपूर प्रयत्न किया गया है। एन सी ई आर टी द्वारा प्रदत्त दिशा निर्देश के अनुरूप परिवर्तित सभी विश्वविद्यालयों के बी एड पाठ्यक्रमों को दृष्टिगत रख कर चतुर्थ प्रश्न पत्र (अनिवार्य) हेतु इसे तैयार किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि शिक्षक, प्रशिक्षणार्थी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रवक्ता एवं 'भावी शिक्षकों के लिए आधारभूत कार्यक्रम' में रुचि रखने वाले पाठकों हेतु यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। सृजनात्मक सुझावों के लिए हृदय से स्वागत किया जायगा।

एक बात का हार्दिक खेद है कि लिपिकीय आमुख लिखते वक्त तक हमारे सह लेखक डॉ एस एस शर्मा, उप कुलसचिव, अजमेर विश्वविद्यालय, अजमेर हमारे बीच नहीं रहे, परन्तु उनका पुस्तक लेखन में सक्रिय सहयोग सदा अमर रहेगा।

जगदीश नारायण पुरोहित
हरिश्चन्द्र व्यास

अनुक्रमणिका

अध्याय 1

अधिगम
(Learning)

महत्त्व

व्यक्ति का विकास अधिगम पर आधारित है। वह जीवन के प्रारम्भ से ही सीखना प्रारम्भ कर देता है तथा सीखने की यह प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है। बालक जन्म के समय बिल्कुल असहाय होता है। पराश्रित होने के कारण उसका पालन पोषण दूसरे व्यक्ति करते है परन्तु ज्यो-ज्यो वह बडा होता है, स्वावलम्बी बनता जाता है। बालक मे इस प्रकार का परिवर्तन उसमे सीखने एव अनुकरण करने के गुण के कारण होता है।

सीखने की प्रक्रिया मे दो तत्त्वो की प्रमुख भूमिका होती है। पहला है, बालक की परिपक्वता तथा दूसरा है, अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता। बालक की परिपक्वता का विकास उसकी आयु के साथ होता है। अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता सीखने की प्रक्रिया मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। उदाहरण के लिए एक बालक दीपक की लौ की चमक को देखकर उसकी ओर आकर्षित होता है। जब वह उसे स्पर्श करता है तो जलने की पीडा अनुभव करता है। इस प्रकार वह सीखता है तथा भविष्य मे इस व्यवहार की पुनरावृत्ति नही करता।

सीखना वातावरण से भी सम्बन्धित है। व्यक्ति के चारो तरफ सामाजिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक एव भौतिक वातावरण है जो कि उसे जन्म से ही मिलता है। उसके बडे होने पर इस वातावरण मे जटिलता बढ़ती है। वह अनुभवो का लाभ उठाते हुए इस वातावरण के उपयुक्त अपने व्यवहार एव प्रतिक्रियाओ को बनाता है। इस प्रकार वातावरण के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया को अपनाना ही अधिगम कहलाता है।

गाने[1] (Gagne) (1965) के अनुसार अधिगम के तीन प्रमुख तत्त्व हैं—

(1) सीखने वाला प्राणी या अधिगमकर्ता

[1] Gagne R M, The Conditions of Learning N Y Holt Rinehort and Winston 1965

(2) उत्तेजक परिस्थितियां या वातावरण
(3) अनुक्रिया।

अधिगम प्रक्रिया का एक सरल उदाहरण छात्र को अपरिचित जानवर का चित्र दिखाना है। रेगिस्तान में रह रहे छात्रों को हाथी देखने का अवसर नहीं मिलता। प्रथम बार जब उन्हें हाथी का चित्र दिखाकर पूछा गया "यह किस जानवर का चित्र है?" छात्र मौन थे, अब चित्र के बारे में यह बताकर कि यह हाथी का चित्र है, पूछा गया कि यह किस का चित्र है प्रत्येक बालक बोला हाथी—यह उत्तर बालकों में व्यवहारगत परिवर्तन की सूचना प्रदान करता है।

अधिगम की प्रकृति

शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक को "सिखाना" है। वह ज्ञान, अवबोध, कौशल इत्यादि को ग्रहण करता है इस प्रकार सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया बालक के अधिगम की ओर केन्द्रित है अतः अध्यापक को अधिगम की प्रकृति के बारे में जानना आवश्यक है। अधिगम की प्रकृति उसकी पृष्ठभूमि में प्रचलित मनोवैज्ञानिक विचार धारा को ध्यान में रखकर समझा जा सकता है। चूंकि अधिगम के बारे में समय-समय पर विभिन्न मत मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रकट किये गये, अतः ये विचारधाराएं भिन्न हैं। इस प्रकार अधिगम की प्रकृति को भी इनके अनुरूप भिन्न भिन्न प्रकार से आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

मानसिक मनोविज्ञान के अनुसार

यह एक अत्यन्त प्राचीन मनोविज्ञान है जिसके अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क अनेक सकायों में विभक्त रहता है जैसे स्मृति, प्रत्यक्षीकरण इत्यादि। इन्हें सुविधा के लिए तीन वर्ग अर्थात् जानना, इच्छा करना तथा अनुभव करने में बांटा गया है। इस मत के अनुसार सीखना इन वर्गों को अभ्यास द्वारा अनुशासित करना है। चूंकि अनुशासित करने की प्रमुख विधि अभ्यास मानी गई है अतः इसे सीखने की क्रिया में अधिक महत्त्व दिया गया है। अभ्यास से मस्तिष्क में तार्किक चिन्तन विकसित होगा, स्मृति का विकास होगा तथा इससे सीखना सुदृढ़ बनेगा।

व्यवहारवाद के आधार पर

— : व्यवहारवादी बालक के व्यवहार में परिवर्तन पर बल प्रदान करते हैं। इनके अनुसार, व्यवहार में परिवर्तन या रूपान्तर उत्तेजना और प्रतिक्रिया के मध्य सम्बन्ध स्थापित होने से होता है यह उत्तेजना प्रतिक्रिया बन्ध किस प्रकार स्थापित हो, इस पर व्यवहारवादी एक दूसरे से भिन्न मत रखते हैं। परन्तु इन सब ने अधिगम को उत्तेजना एवं प्रक्रिया के मध्य बन्ध को माना है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

इस समूह मे कोफ्का, कोहलर तथा वर्दीमर के नाम प्रमुख रूप से आते हैं। इस मनोविज्ञान म बालक की सूझ को अधिक महत्त्व दिया गया है। सूझ से तात्पर्य यह है कि किस प्रकार एक व्यक्ति एक परिस्थिति के अनुभवो से संवेदना प्राप्त करता है, तथा उसे देखता है। इन मनोवैज्ञानिको के अनुसार अधिगम सूझ मे विकास या परिवतन है।

ज्ञानात्मक क्षेत्रवाद

लेविन, ब्रूनर इत्यादि इस समूह के मनोवैज्ञानिको मे आते हैं। इन्होंने भी अधिगम प्रक्रिया में सूझ को महत्त्व दिया है जब किसी बालक के समक्ष समस्या आती है तो वह सूझ द्वारा समस्या सुलझाने के लिए ज्ञानात्मक सरचना मे कुछ परिवतन करता है। ये नवीन ज्ञानात्मक सरचनाए वह आवश्यकतानुसार करता है। इस प्रकार अधिगम एक सापक्षकीय प्रक्रिया है जिसके अ तगत बालक नवीन ज्ञानात्मक सरचनाओ को विकसित या परिवर्तित करता है।

अधिगम की प्रवृति स्पष्ट करने में ज्ञानात्मक क्षेत्र के मनोवैज्ञानिको द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण उत्तम माना जाता है, इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) ये अधिगम को एक सापक्षकीय प्रक्रिया मानते हैं।

(2) इनके द्वारा अधिगम का स्पष्ट करन में सूझ का उपयोग भी किया गया है।

(3) ये भौतिक वातावरण के स्थान पर मनोवैज्ञानिक वातावरण को महत्त्व देत हैं।

अधिगम की प्रवृति को उसकी विशेषताओं के आधार पर भी समझा जा सकता है। इनमे कुछ प्रमुख विशेषताए निम्न प्रकार से हैं—

(1) सीखना एक प्रक्रिया है—यह विशेषता इसके अ तगत होने वाली विभिन्न क्रियाओ जसे ज्ञानात्मक एव भावात्मक क्रियाओ की ओर सकेत देती है। इनके अनुसार सीखना स्वय मे उत्पादन या रचना नही है बल्कि इसके फलस्वरूप उत्पादन होता है जिसे व्यवहार कहते हैं। ज्ञान को विकसित करने म यह सहायक होती है।

(2) यह व्यक्तिगत क्रिया है—शिक्षण सामूहिक रूप से किया जाय या व्यक्तिगत परन्तु बालक अपन अनुभवो से स्वय ही सीखता है।

(3) अधिगम बहुविमतीय होता है। अधिगम प्रक्रिया मे अनेक आयाम जैसे प्रत्यक्षात्मक, अभिवृत्यात्मक, सवेगात्मक, गामक इत्यादि होते हैं। उदाहरण के लिए 'मोटर चलाना' सीखना एक गामक क्रिया है परन्तु वह कुछ प्रत्यय जसे मोटर के इजन की जानकारी तथा चलाने व यातायात नियत्रण के चित्र में सम्बन्ध स्थापित करना सीखता है जो प्रत्यक्षात्मक है।

इनको सीखने पर उसकी अभिवृत्ति भी बदल जाती है क्योंकि उसे यह ज्ञान हो जाता है कि 'मोटर चलाने का ज्ञान' उसे नौकरी भी दिलवा सकता है।

(4) सीखना एक प्रक्रिया है। सीखने में फलस्वरूप कोई नया उत्पादन हो यह आवश्यक नहीं है। साबुन बनाते समय वह केवल बनाने की प्रक्रिया के ज्ञान को अर्जित करता है यह आवश्यक नहीं कि उसके द्वारा बनाया हुआ साबुन सस्ता और उत्तम प्रकृति का हो। इस प्रकार सीखना एक प्रक्रिया है न कि उत्पादन अथवा रचना। इस प्रकार अधिगम एक सोद्देश्य प्रक्रिया है।

(5) अधिगम से व्यवहार परिवर्तन होता है। बालक की एक स्वाभाविक प्रकृति है कि वह नवीन ज्ञान अर्जित करने को उत्सुक रहता है। उसमें क्या, क्यों, तथा कैसे से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर को जानने की जिज्ञासा रहती है। वह क्रिया कर नवीन अनुभव प्राप्त करता है जिसके परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन आते हैं।

(6) अधिगम एक सतत् प्रक्रिया है। अधिगम का प्रारम्भ किसी समस्या अथवा बाधा उत्पन्न होने पर होता है तथा यह समस्या के समाधान तक चलता रहता है। चूँकि जीवन भर मनुष्य विभिन्न समस्याओं से संघर्ष करता है अतः अधिगम जीवनपर्यन्त चलता रहता है।

(7) अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक-बालिकाओं को एक योग्य नागरिक बनाना है अतः उसका अधिगम समाज केन्द्रित होना है।

(8) अधिगम में खोज क्रिया भी निहित है। बालक जन्म से ही जिज्ञासु होने के कारण नवीन तथ्य, घटना एवं प्रक्रियाओं को सीखने की चेष्टा करता है। इस परिस्थिति में वह एक खोज करने वाले व्यक्ति के रूप में होता है। नवीन बातों की जानकारी प्राप्त कर लेने पर उसकी यह खोज प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है तथा उसे आनन्द की अनुभूति होती है।

(9) अधिगम मानवीय आवश्यकताओं से जुड़ा है। व्यक्ति की आवश्यकता दो प्रकार की अर्थात् व्यक्तिगत तथा सामाजिक होती है। इनकी पूर्ति हेतु वह अधिगम करता है।

अधिगम : कुछ परिभाषाएँ

(1) गिल्फर्ड[1]

"व्यवहार के कारण, व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।

(2) स्किनर[2]

"व्यवहार के अर्जन में उन्नति की प्रक्रिया को अधिगम कहते हैं।'

---

1 Gilford J P General Psychology P 343

2 Skiner C E Educational Psychology New York Prentice Hall 1951

(3) मेकगाह[1]

"अधिगम, व्यवहार मे सापेक्षिक स्थायी परिवतन है, जो अभ्यास के फल-स्वरूप होता है। जिससे व्यक्ति म विद्यमान प्रेरक अवस्थाओ की सतुष्टि होनी है।"

(4) गेटस और उसके साथी[2]

"प्रशिक्षण एव अनुभव के द्वारा व्यवहार मे हाने वाले परिवतन को अधिगम कहते हैं।"

(5) कालविन[3]

'पहले से निर्मित व्यवहार मे अनुभवो द्वारा हुए परिवतन को अधिगम कहते हैं।

(6) क्रो और क्रो[4]

'ज्ञान एव अभिवृत्ति की प्राप्ति ही अधिगम है।

(7) बोअज

'अधिगम एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतो ज्ञान एव दृष्टिकोण, सामान्य जीवन की मागो की पूर्ति के लिए अर्जित करता है।

(8) प्रेसे

'अधिगम एक अनुभव है, जिसके द्वारा काय मे परिवतन या समायोजन होता है तथा व्यवहार की नयी विधि प्राप्त होता है।

(9) हिलगड[6]

'अधिगम वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या सामना की गई परिस्थिति द्वारा परिवर्तित की जाती है। इसके लिए आवश्यक है कि क्रिया के परिवतन की विशेषताओ, मूल प्रवृत्तियो की प्रक्रिया, परिपक्वता या प्राणी की अस्थायी अवस्थाओ के आधार पर उस प्रक्रिया को समझाया न जा सके।

1 Mc Geoch J A The Psychology of Human Learning New York Longman 1952
2 Gates A I et al Educational Psychology New York Macmillan 1963
3 Calvin A D Configurational Learning in Children Journal of Educational Psychology 46 117 120 1955
4 Crow L D and Crow Alice Child Psychology New York Mc Graw Hill 1951
5 Pressey Sidney L. Autoinstruction Perspective Problems Potentials in Theories of Learning and Instruction ed E.R Hilgard Part I 63rd Year Book N S S E Chicago University of Chicago Press 1964
6 Hillgard E Introduction to Psychology New York Harcourt Brace 1962

अधिगम-प्रक्रिया

सीखना एक सोद्देश्य क्रिया है। जब सीखने वाले के सम्मुख एक स्पष्ट उद्देश्य होता है तो वह तीव्रता से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जिससे अधिगम प्रभावी रूप से होता है, बिना उद्देश्य के अधिगम दिशाहीन होता है। शिक्षा में अधिगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिगम द्वारा शिक्षक शिक्षार्थी में व्यवहारगत परिवर्तन लाकर उसके व्यवहार को समाज सम्मत बनाता है। किसी भी क्रिया को सीखने से अभिप्राय कुछ क्रियाओं का एक साथ किया जाना है, इस संयुक्त क्रिया को अधिगम प्रक्रिया के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

अधिगम प्रक्रिया में निम्नांकित तथ्य निहित हैं—

(1) उद्देश्य
(2) अभिप्रेरणा
(3) उत्तेजना
(4) पुनर्बलन।

प्राणी के अधिगम में उक्त सभी महत्त्वपूर्ण हैं तथा इनके अभाव में अधिगम प्रक्रिया अपूर्ण रहती है।

उद्देश्य

शिक्षण का कोई कार्य उद्देश्य रहित नहीं होता है, अधिगम प्रक्रिया भी किसी न किसी उद्देश्य से जुड़ी होती है। थार्नडाइक ने अपने भूल एवं त्रुटि के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए एक भूखी बिल्ली को पिंजरे में बन्द किया तथा पिंजरे के बाहर रोटी का टुकड़ा रखा। यहाँ बिल्ली का उद्देश्य रोटी का टुकड़ा प्राप्त कर भूख को शांत करना था। इसी की प्राप्ति हेतु बिल्ली ने विभिन्न प्रतिक्रियाएँ की; यदि रोटी का टुकड़ा पिंजरे के बाहर न होता तो वह पिंजरे के दरवाजे को खोलने का प्रयास नहीं करती।

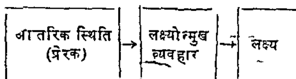
मानव व्यवहार भी किसी न किसी उद्देश्य प्राप्ति के लिए किया जाता है। शिक्षण के क्षेत्र में ज्ञान कौशल, अवबोधन इत्यादि प्राप्य उद्देश्य हैं जिनके लिए बालक से विभिन्न व्यवहार कराये जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य का किसी क्रिया को सीखने का कोई न कोई उद्देश्य होता है। बिना उद्देश्य के कोई भी मनुष्य अनुक्रिया नहीं करना चाहता।

अभिप्रेरणा

शिक्षार्थी अपने विद्यार्थी जीवन में अनेक प्रकार के व्यवहार जैसे खेलना, पढ़ना, लिखना, बोलना इत्यादि करता है, इनमें वह व्यवहार जो कि किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है उसे मनोविज्ञान की भाषा में लक्ष्योन्मुख

व्यवहार कहते हैं। उदाहरण के लिए एक बालक दिन-रात किताबों को पढ़ता-लिखता रहता है तथा अध्ययन में खोया रहता है उसका यह व्यवहार उसका कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने से जुड़ा है, अतः यह उसका लक्ष्योमुख व्यवहार कहलायेगा। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राणी की आन्तरिक एव मनोदैहिक दशाएं हैं जो एक काय को विशिष्ट ढंग से करने के लिए उसे बाध्य करती हैं।

प्रेरक व्यवहार किस प्रकार कराता है, निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है—



मनुष्य की आन्तरिक स्थिति उससे व्यवहार कराती है। यह व्यवहार इस प्रकार किया जाता है कि वह अपन लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इनम वे व्यवहार जो लक्ष्य प्राप्ति मे सहायक होते हैं, मनुष्य उन्हें करता रहता है परन्तु ऐसे व्यवहार जो कि लक्ष्य प्राप्ति मे सहायक नही होते, वह त्याग देता है। लक्ष्य प्राप्ति तक की मनुष्य की आन्तरिक स्थिति प्रेरणा कहलाती है। लक्ष्य प्राप्ति पर मनुष्य व्यवहार करना बन्द कर देता है।

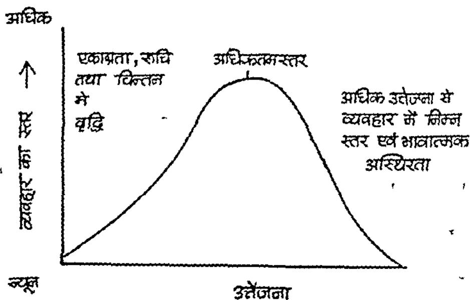
टारेन्स[1] (1963) न प्रेरणा पर एक प्रयोग कर यह जानना चाहा कि किस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था बालकों को अधिक प्रेरित करती है। उसने एक समूह के "ब्रेन स्टार्मिंग विधि से एक प्रकरण पर विभिन विचार आमत्रित किय। दूसरे समूह को बिना इस विधि के उपयोग के विचार उत्पन्न करने को कहा गया तथा उन्हें विचार उत्पन्न करने पर इनाम भी दिया गया। शोध परिणामस्वरूप उसने पाया कि "ब्रेन स्टार्मिंग म छात्र अधिक प्रेरित हुए तथा उन्होंने अनेक नए विचार प्रस्तुत किए। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि आतरिक प्रेरणा के लिए शिक्षण व्यवस्था बाहरी प्रेरक की तुलना म अधिक प्रभावी है। यदि बालक मे आतरिक प्रेरणा किसी माध्यम से उत्पन्न कर दी जाव तो उसमे अधिगम प्रक्रिया प्रभावी रूप मे एव शीघ्रता से होगी।

इस प्रकार अधिगम-प्रक्रिया मे अभिप्रेरणा एक प्रभावी घटक है। जितनी अधिक प्रेरणा होगी अधिगम प्रक्रिया उतनी ही तीव्र गति स होगी। परन्तु एक निश्चित सीमा से अधिक प्रेरित करना अधिगम प्रक्रिया को कुप्रभावित भी कर सकता है।

अभिप्रेरणा बालक म उत्तेजना को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप बालक शीघ्रता से काय पूण करना चाहता है। वह इस उत्तेजना को बाह्य वाता-

1 Torrance E Paul Creativity "What Research Says to the Teachers Washington D C National Education Association 1963

करण या आंतरिक मन स्थिति से प्राप्त करता है। डोनल्ड हेब[1] (1955) ने उत्तेजना को कार्य करने की ऊर्जा माना है उसके अनुसार यह ऊर्जा रेलगाड़ी में भाप शक्ति का कार्य करती है न कि चालक अथवा दिशा निर्धारण का। उसने उत्तेजना तथा व्यवहार कुशलता के मध्य एक आलेख निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है—



उपरोक्त वक्र यह प्रदर्शित करती है कि प्रारम्भ में उत्तेजना बालक में एकाग्रता व रुचि उत्पन्न कर उसके नव चिन्तन को गति प्रदान करती है इससे उसका अधिगम अधिक प्रभावी होता है। एक निश्चित उत्तेजना तक यह सम्बन्ध बढ़ता रहता है परन्तु सीमा से अधिक उत्तेजना अधिगम में सहायक नहीं होती क्योंकि बालक में इससे अस्थिरता जन्म लेता है जो कि उसके अधिगम व्यवहार को कुप्रभावित करती है।

उत्तेजना अधिगम में सहायक मानी गई है। जब उत्तेजना शून्य की स्थिति में होती है, प्राणी किसी प्रकार का व्यवहार नहीं करता - ज्यों ज्यों उसमें उत्तेजना किसी बाह्य वातावरण या आन्तरिक कारणों से बढ़ाई जाती है वह अधिगम व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है। अतः प्रभावी अधिगम के लिए यह आवश्यक है कि बालक में उत्तेजना उत्पन्न की जाये। शिक्षक यह उत्तेजना बाह्य वातावरण, साधन या तथ्यपूर्ण घटना बालक के सम्मुख प्रस्तुत कर उत्पन्न कर सकता है। यह उत्ते-

1 Hebb D O "Drives and the CNS (Conceptual Nervous System) Psychoe Review 62 243 254 1955

जना उसे प्रेरित कर व्यवहार कराती है तथा उसको लक्ष्य प्राप्ति की ओर ले जाती है। इस प्रकार उत्तेजना अधिगम प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

पुनर्बलन

किसी भी उत्तेजना मे बालक क्रिया करता है यदि किसी प्रकार बालक की प्रतिक्रिया शक्ति बढा दी जाय तो यह प्रक्रिया पुनर्बलन कहलाती है।

उदाहरण

एक बालक को "समुच्चय बनाना सिखाते हैं। ज्योही वह एक सी वस्तुओ का समुच्चय जसे 30 दिन वाले महीनो के नामो का समुच्चय (अप्रैल, जून, सितम्बर, नवम्बर) लिखता है और उस टाफी खाने को दी जाती है तो बालक की समुच्चय बनाने व लिखन की प्रतिक्रिया बलवती हो जायेगी—यहा पर—

समुच्चय बनाना — प्रतिक्रिया
उत्तेजना — टाफी
प्रभाव — प्रतिक्रिया शक्ति का बढना

इससे चार निष्कर्ष निकलते है—

(1) बालक की प्रतिक्रिया शक्ति पुनर्बलन स बढती है।
(2) पुनर्बलन बालक की सही प्रतिक्रिया के तुरन्त बाद होना आवश्यक है।
(3) पुनर्बलन स्थापित करने मे टाफी अर्थात उत्तेजक सहायक है।
(4) यह सही उत्तर के पुन प्रकट होने की सभावना को बढाता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुनर्बलन वह प्रक्रिया है जिसमे यदि कोई उत्तेजक प्रतिक्रिया के तुरन्त बाद उपस्थित किया जाय तो उससे प्रतिक्रिया शक्ति मे वृद्धि होती है।

हलसी, डीसी एव एडिथ[1] के अनुसार पुनर्बलन एक उत्तेजनापूर्ण घटना है जो कि यदि प्रतिक्रिया के तुरन्त बाद सम्पन्न की जाव तो प्रतिक्रिया शक्ति अथवा उत्तेजना प्रतिक्रिया के सम्बन्ध को स्थापित करता है या बढाता है।

पुनर्बलन के महत्त्व को सवप्रथम थार्नडाइक (अमेरिका का मनोवैज्ञानिक) ने इन शब्दो म 1911 मे स्पष्ट किया कि एक ही स्थिति के प्रतिक्रियास्वरूप कई क्रिया प्राणी करता है जिस क्रिया मे उसे सतोष का अनुभव होता है वह स्थिति से प्रबल रूप मे जुड जाता है तथा स्थिति के पुन प्रकट होने पर प्राणी इस क्रिया को पुन करने लगता है।

1 Hulse Deese and Egeth 'The Psychology of Learning New York Mc Graw Hill Book Company 1967

अधिगम प्रक्रिया पुनर्बलन से किस प्रकार प्रभावित होती है इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये गये हैं। शोध निष्कर्ष यह तथ्य उजागर करते हैं कि पुनर्बलन से अधिगम शीघ्रता से प्रभावी होता है। ट्रेवर्स[1] (1964) ने ऐसा ही एक प्रयोग किया। वह प्राथमिक स्तर के छात्रों को जर्मन शब्द के अंग्रेजी में तत्सम शब्द सिखाना चाहता था। उसने तीन समूहों का निर्माण कर प्रथम समूह के छात्रों को सही उत्तर देने पर तुरन्त, दूसरे समूह के छात्रों को सही उत्तर बताने पर 10 सैकण्ड की देरी से पुरस्कार व शाबाश कहा गया, तीसरे समूह के छात्रों को सही उत्तर देने पर किसी प्रकार का पुनर्बलन नहीं किया गया। दूसरे समूह के छात्रों का अधिगम सर्वश्रेष्ठ तथा तीसरे समूह का अधिगम स्तर निम्नतम पाया गया। उसके अनुसार पुनर्बलन अधिगम को प्रभावित करता है। छोटे बच्चों में पुनर्बलन एवं प्रतिक्रिया में समय बहुत कम तथा बड़े बच्चों में यह समय चन्द सैकण्ड तक हो सकता है।

कक्षा शिक्षण में बालक के अधिगम का शाब्दिक अथवा अशाब्दिक पुनर्बलन द्वारा प्रभावित किया जा सकता है।

अधिगम के नियम

शिक्षक के लिए अधिगम के नियमों का ज्ञान बड़ा उपयोगी रहता है क्योंकि उनका कक्षा कक्ष, बालक और अधिगम प्रक्रिया से सीधा सम्बन्ध रहता है। अधिगम किस प्रकार होता है? यह प्रश्न अधिगम सिद्धान्त से जुड़ा है चूँकि अधिगम के भिन्न भिन्न सिद्धान्त हैं अतः उनके द्वारा प्रतिपादित नियमों का अलग-अलग वर्णन करना उचित एवं उपयोगी रहेगा। मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित अधिगम सिद्धान्तों को प्रायः तीन वर्गों में बाँटा जाता है अतः अधिगम के नियम भी अलग अलग वर्णित किये गये हैं।

(1) अधिगम के साहचर्य सिद्धान्त के प्रमुख नियम

इस सिद्धान्त में प्रमुख रूप से यह माना गया है कि उद्दीपक एवं अनुक्रिया का निकट का सम्बन्ध है। अधिगम के साहचर्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्रमुख नियमों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

तत्परता का नियम

इस नियम में कार्य सम्पन्न करने या सीखने हेतु तैयार रहने को प्रधानता दी गई है। यदि कोई प्राणी कोई कार्य करने को तैयार है तो उस कार्य को पूर्ण करने में प्राणी आनन्द का अनुभव कर संतोष प्राप्त करता है इसके विपरीत तत्परता के अभाव में प्राणी को कार्य करने या सीखने हेतु बाध्य किया जाय तो वह असन्तुष्ट

1 Travers Robert M W et el Learning as a Consequence of the Learner s Task Involvement Under Different Conditions of Feedback" Journal of Educational Psychology 55 P 167 73 1964

हो खीज उठता है। इससे यह स्पष्ट है कि तत्परता का नियम सीखने वाले की इच्छा और ध्यान दोनों को केन्द्रित करने मे सहायक है।

थानडाइक (Thorndike) के अनुसार जब अधिगमकर्ता काय को करने को तैयार हो, तब उसकी काय करने की इच्छा का पूरा होना संतोषप्रद (Satisfying) तथा पूरा न होना असंतोषप्रद (Dissatisfying) सिद्ध हो सकता है।

इस नियम का लाभ अध्यापक शिक्षण को आकर्षक, रोचक एव प्रभावी बनाने मे उठा सकते हैं। शिक्षण से पूर्व शिक्षार्थी को अधिगम हेतु तत्पर किया जाना आवश्यक है। नवीन ज्ञान पढ़ाने से पूर्व विद्यार्थियों को पढ़ने हेतु मानसिक रूप से तैयार किया जाना चाहिए। पाठ प्रारम्भ करने से पूर्व बालक के दैनिक व्यवहार अथवा पूर्ण ज्ञान में सम्बन्धित पूछे गये प्रश्न या अध्यापक द्वारा किसी सार्थक घटना या कहानी को छात्र छात्राओं को सुनाना अथवा किसी दृश्य श्रव्य सामग्री के उपयोग से शिक्षार्थियों मे पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न की जा सकती है। इससे वे पढ़ने को तत्पर होंगे तथा शीघ्रता से विषयवस्तु का ग्रहण कर सकेंगे।

अधिगम का अभ्यास का नियम

थानडाइक ने अभ्यास के नियम की व्याख्या 1911 में की। इस नियम को उपयोग अनुपयोग का नियम भी कहते हैं। इस नियम के अनुसार उद्दीपन एव अनुक्रिया के बार-बार घटित होने पर इन दोनो के मध्य दृढ़ होने की सम्भावना बढ़ती है। थानडाइक इसे "सीखना" कहते हैं।

थानडाइक[1] ने अपने द्वारा प्रतिपादित नियम पर प्रयोग किये। 1932 मे उसने अपनी पुस्तक "दी फण्डामेण्टल्स ऑफ लर्निंग" मे इस नियम मे संशोधन किया। अभ्यास के नियम पर उसका एक प्रयोग बड़ा प्रसिद्ध है। उसने छात्रों से 3 इंच लम्बी रेखा बिना स्केल की सहायता से खींचने का अभ्यास हजारों बार कराया। परन्तु उन्हें उनके द्वारा खींची गई रेखाओं के सही या गलत होने का ज्ञान नहीं दिया गया। उसने यह पाया कि बिना परिणाम के ज्ञान के उनके लाइन खींचने के कौशल मे किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। उन्होंने देखा कि केवल पुनरावृत्ति मात्र से सीखने की प्रक्रिया मे वृद्धि सम्भव नहीं है। सीखने हेतु अभ्यास में परिणाम का ज्ञान भी दिया जाना चाहिए।

नियम इस प्रकार है

(1) जब स्थिति (Situation) तथा प्रतिक्रिया के मध्य परिवर्तनात्मक सम्बन्ध बना दिये जाते हैं और अन्य बातें समान रखी जाती हैं तो उनके मध्य सम्बन्ध की शक्ति बढ़ जाती है।

1 Thorndike E L The Fundamentals of Learning New York Appleton Century Crofts 1932

(2) यदि लम्बी अवधि तक स्थिति और प्रतिक्रिया में परिवर्तनात्मक सम्बन्ध नहीं बनाये जाते हैं तो इस सम्बन्ध की शक्ति क्षीण हो जाती है।

उक्त नियम अधिगम की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साधारण भाषा में भी इसे "करत करत अभ्यास के जड़मति होय सुजान, रसरी आवत जात से सिल पर परत निसान" नियम से यह स्पष्ट है कि यदि सीखी जाने वाली सामग्री सीखने वाले के लिए उपयोगी है तथा वह उसका अभ्यास बार-बार करता है तो उसके सीखने में वृद्धि होती है।

अभ्यास का नियम शिक्षण में अधिगम परिस्थितियाँ उत्पन्न करने हेतु उपयोगी नियम है। विशेषकर कौशल के विकास जैसे ग्राफ या चित्र के बार बार अभ्यास करने से बालक के कौशल में वृद्धि होती है। यदि एक बार सीखने के उपरान्त वह इसका अभ्यास न करे अथवा अभ्यास तथा पुनः अभ्यास में समयान्तराल अधिक हो तो वह विषय वस्तु को शीघ्र भूल जायेगा। परन्तु अध्यापक को यह ध्यान भी रखना चाहिए कि केवल अभ्यास ही अधिगम को स्थाई बनाने में मदद प्रदान नहीं कर सकता। अभ्यास के साथ साथ विषय-वस्तु रोचक तथा प्रेरणादायक भी बनाई जाना चाहिए। इससे अधिगम के त्वरित गति से होने की सम्भावना बढ़ेगी।

प्रभाव का नियम

अपने अध्ययन के प्रारम्भिक चरण में थार्नडाइक[1] ने प्रभाव का नियम प्रतिपादित किया। इस नियम की व्याख्या उसके द्वारा निम्न प्रकार से की गई है—

> "जब एक स्थिति और प्रतिक्रिया के मध्य बनने वाले सम्बन्ध के परिणाम सन्तोषप्रद होते हैं तो ऐसे सम्बन्धों की शक्ति बढ़ जाती है किन्तु जब इन सम्बन्धों के परिणाम कष्टदायक होते हैं, तो इन सम्बन्धों की शक्ति क्षीण हो जाती है।"

इस नियम से तात्पर्य यह है कि प्राणी उन क्रियाओं को शीघ्र सीख लेता है जिनके करने में उसे आनन्द का अनुभव होता है। इस प्रकार क्रियाएँ उसे सन्तोष प्रदान करती हैं तथा और अधिक क्रिया करने की प्रेरणा भी देती हैं। थार्नडाइक का यह भी मानना था कि कष्टकारी परिणाम वाली क्रियाओं से सीखने वाले को क्रोध अथवा झुंझलाहट होती है तथा वह इन कष्टकारी अनुभवों को पुनः प्राप्त करना नहीं चाहता अतः वह उन्हें त्याग देता है।

मनोवैज्ञानिकों ने प्रभाव के नियम पर अनेक प्रयोग किये हैं। एक प्रयोग में कुछ चूहों को एक पिंजरे में बन्द कर दिया। इस पिंजरे में से निकलने के दो रास्ते थे उनमें से एक अंधेरे वाला तथा दूसरा प्रकाश युक्त। प्रकाश-युक्त दरवाजे में

1 Thorndike E. Animal Intelligence. New York Macmillan 1911

बिजली या एक नंगा तार रखा गया। प्रकाश वाले मार्ग से चूहे के जाने पर उसे बिजली का झटका लगता था। चूहों ने पहले प्रकाश वाले रास्ते से जाने का प्रयत्न किया परन्तु झटका का कष्टकारी अनुभव होने से उन्होंने इस मार्ग को छोड दिया तथा अंधेरे वाले मार्ग को अपना लिया।

इस नियम का शिक्षा मे व्यापक रूप में उपयोग किया जाता है। अध्यापक शिक्षण के समय इस नियम का काम मे लाकर अपने अध्यापन का प्रभाव बना सकता है। कक्षा में वह ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर सकता है जिससे शिक्षार्थी आनन्द का अनुभव कर सन्ताप प्राप्त करें। यह आनन्द उनके मानसिक तनाव को कम कर अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बना देगा। उदाहरण के लिए यदि शिक्षण के दौरान वह छात्रों के उत्तर सही होने पर उन्हे "शाबास" कहता है तो उसका यह शब्द मात्र ही छात्र के लिए प्रेरणादायी हो सकता है। सीखने के प्रभाव का यह नियम इतना अधिक लोकप्रिय रहा है कि गत 75 वर्षों में लगभग सभी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी उपयोगिता को स्वीकारा है। लैंज (1967)[1] ने थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित प्रभाव के नियम की उपयोगिता को अभिक्रमित अनुदेशन जैसी प्रभावी शिक्षण सामग्री के निर्माण में प्रयुक्त किया।

दण्ड का प्रभाव-

प्रभाव के नियम में "दण्ड के प्रभाव" पर थार्नडाइक ने और अधिक शोध कार्य किये। प्रारम्भ में उसकी यह धारणा थी कि दण्ड एवं पुरस्कार विपरीत प्रभाव डालते हैं तथा दण्ड से गलत उत्तर देने की प्रक्रिया को कमजोर बनाया जा सकता है परन्तु बाद में उसने इसमें संशोधन किया।

स्किनर[2] ने एक प्रयोग किया। एक पिंजरे में इस प्रकार की व्यवस्था की गई कि यदि उसमें एक छड रोशनी होने के पूर्व दबा दी जाती है तो उसमें बैठे प्राणी को बिजली का झटका नहीं लगता है। प्रयोग के दौरान यह पाया गया कि प्राणी झटके से बचने के लिए रोशनी होने से पहिले ही दबा देता है तथा वह झटके के कष्टकारी प्रभाव से बचने के लिए छड को दबाना शीघ्र सीख लेता है। शिक्षण के समय यदि दण्ड का उपयोग इस रूप में कि बालक उसके कष्ट से बचने के लिए शीघ्र सीख ले, सीमित मात्रा में किया जा सकता है।

दण्ड के प्रभाव से किसी अनुक्रिया को समाप्त करने हेतु स्किनर ने 1938 में एक दूसरा प्रयोग किया। इस प्रयोग में दो चूहे लिए तथा उन्हे एक पिंजरे में रखा। भोजन प्राप्ति करने के लिए उन्हे एक लीवर को दबाना सिखाया गया। बाद में एक चूहे को प्रत्येक बार दबाते समय उसके पंजे पर हल्का सा प्रहार एक

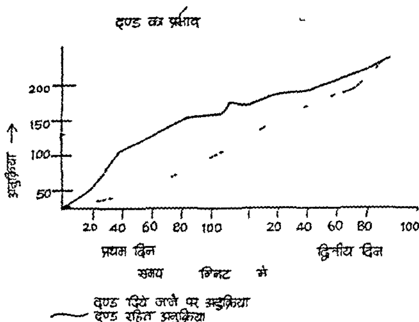
---

1 Lange P C Programmed Instruction Illinois Chicago University Press 1967 P 30

2 Skinner B F The Behaviour of Organism , New York Appleton Century Crofts 1938

छड द्वारा किया गया। दूसरे चूहे पर ऐसा प्रहार नहीं किया गया। उसने यह पाया कि जिस चूहे को छड से दण्डित किया गया उसके द्वारा छड दबाने की आवृत्ति घट गई। परन्तु जब दण्ड देना बन्द किया गया तो दोनों की अनुक्रिया पुनः समान हो गई।

दण्ड का प्रभाव



इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि दण्ड का किसी अनुक्रिया को समाप्त करने में कोई विशेष प्रभाव नहीं है। इसका प्रभाव कुछ समय तक रहता है। यदि दण्ड की स्थिति समाप्त कर दी जाती है या दण्ड के न होने की स्थिति में वह पूर्व की भांति ही व्यवहार करता है। यदि इसके स्थान पर पुनर्बलन समाप्त कर दिया जावे तो अनुक्रिया या व्यवहार को समाप्त किया जा सकता है। शैक्षिक स्थिति में यदि छात्र द्वारा त्रुटि करने पर अस्वीकृति प्रदान की जावे तो इससे उसमें त्रुटि करने की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है।

सूझ के सिद्धान्त पर आधारित नियम

यह सिद्धान्त गेस्टाल्टवादी विचारधारा पर आधारित है। इसके जन्मदाता जर्मनी के मनोवैज्ञानिक मैक्स वर्दीमर को माना जाता है। वर्दीमर के अनुसार "किसी भी समग्राकृति की विशेषताएँ केवल इसके तत्वों द्वारा नहीं अपितु इसके आन्तरिक संगठन या प्रकृति द्वारा निश्चित होती हैं।" इन्होंने सूझ को अधिगम में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सूझ से तात्पर्य समस्या के हल को एकायक प्राप्त कर लेने से है।

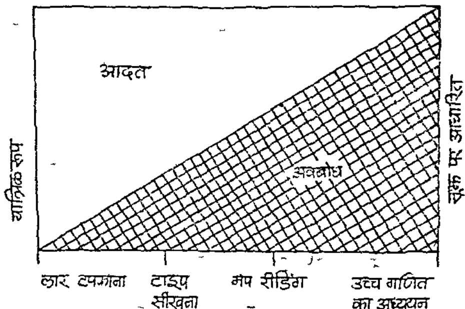
सूझ के सिद्धान्त पर आधारित अधिगम व्यवस्था मे निम्न सिद्धान्त निहित हैं—

(1) समस्या की पूर्णता—यदि किसी समस्या को टुकड़ों मे बालक के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना है तो वह सूझ द्वारा समस्या को हल नहीं कर पावेगा अत अध्यापक द्वारा समस्या को समग्ररूप मे प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(2) तत्परता का विकास—शिक्षार्थी की अधिगम प्रक्रिया तथा उसकी मानसिक रूप से सीखने की तत्परता मे प्रगाढ सम्बन्ध है। अत अध्यापक का अधिगम प्रेरणादायक बनाया जाना चाहिए एव अधिगम के उद्देश्य उनका स्पष्ट होने चाहिए।

प्रश्न उठता है कि कक्षा मे अधिगम कराते समय उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धात अपनाया जावे या सूझ का सिद्धान्त, इस सम्बन्ध मे हिलगड (1962) का शोध निष्कर्ष ध्यान देने योग्य है। उसने इस प्रकरण से सम्बन्धित शोध साहित्यो का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि साधारण स्तर के अधिगम मे यान्त्रिक अधिगम रूपों का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु ऐसे अधिगम मे जहा कि चिन्तन और तर्क की आवश्यकता हो सूझ द्वारा अधिगम उपयुक्त रहेगा।

अधिगम स्तर—साधारण से उच्च प्रकृति के अवबोध के सन्दर्भ मे



अधिगम के सिद्धान्त अभी इस निष्कर्ष पर नही पहुँच पाये हैं कि बालक का प्रभावी अधिगम किस प्रकार कराया जाये। परन्तु इनके द्वारा प्रतिपादित नियमो का

उपयोग अध्यापक अपने शिक्षण काम मे करके इसे अधिक अच्छे स्तर का बना सकता है।

अधिगम को सरल बनाने वाले कारक

उद्देश्यो का स्पष्टीकरण

अधिगम एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। अधिगम का सरल एव सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अधिगम के उद्देश्यो को पूर्व म निर्धारित करे। सीखने वाले व्यक्ति अर्थात् विद्यार्थी का भी यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह अमुक विषय वस्तु को क्यो सीख रहा है तथा इसके सीखने के उपरान्त इसका वह विभिन्न प्रकार मे उपयोग कैसे कर सकेगा? इस स्थिति म सीखने वाला लक्ष्य प्राप्ति म तल्लीनता स लग जाता है।

उचित वातावरण

अधिगम की प्रक्रिया वातावरण म अधिक प्रभावित होता है। यदि वातावरण प्रेरणादायक है तो शिक्षार्थी का अधिगम तीव्रता से होगा। वातावरण के प्रतिकूल होने पर अधिगम भली प्रकार से नही हो पायेगा। डगलस और हालेण्ड के अनुसार "वातावरण वह शब्द है जो समस्त बाह्य शक्तिया, प्रभावो और परिस्थितियो का सामूहिक रूप म वर्णन करता है जो प्राणी के जीवन, स्वभाव व्यवहार और अभिवृद्धि, विकास तथा प्रौढता पर प्रभाव डालता है।

बालक की कक्षा, घर तथा समुदाय का वातावरण उसके अधिगम को प्रभावित करता है। यदि विद्यालय शांत स्थान पर है तो बालक अपना ध्यान शीघ्रता से केन्द्रित कर सकेगा। इसी प्रकार कक्षा म अच्छा प्रकाश तथा वायु की व्यवस्था बालक को विषय के पढने व सीखने म सहायक होगी क्योकि ऐसी परिस्थिति मे उसम थकान जल्दी नही होगी।

कक्षा म मनोवैज्ञानिक वातावरण भी भौतिक वातावरण के समान महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार का वातावरण बालक का पढने के लिए प्रेरित करता है। यह वातावरण प्रकरण से सम्बन्धित चार्ट माडल या चित्र दिखाकर, अथवा इससे सम्बन्धित रोचक उदाहरण देकर अध्यापक कक्षा मे उत्पन्न कर सकता है।

अधिगम विधि

अधिगम विधिया कुछ विशेष नियमो स प्रभावित होता हैं, इनम से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(1) **तत्परता का नियम**—इसके अन्तर्गत शिक्षार्थी को विषय पढाने से पूर्व पढने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

(2) **क्रियाशीलता का नियम**—ऐसा पाया गया है कि यदि बालक कक्षा मे निष्क्रिय बैठे रहते हैं तो वे बैठे-बैठे ऊब जाते हैं। इसके स्थान पर यदि उनसे

अधिगम प्रक्रिया के दौरान विभिन्न क्रियाएँ कराई जावें तो वे कक्षा मे सक्रिय रहेंगे तथा शीघ्रता से सीखेंगे।

(3) पुनबलन का नियम—इसके अनुसार सीखने की क्रिया पुनबलन से प्रभावित होती है। यदि बालक के सही उत्तरो को कक्षा शिक्षण के समय अध्यापक द्वारा पुनबलित क्रिया जाव तो इससे उसमे उत्पन्न मानसिक तनाव कम होगा तथा वह और अधिक पढने को तत्पर होगा। पुनबलन से शिक्षार्थी को सतोष प्राप्त होता है तथा अधिगम स्थायी होता है।

छात्रो मे पुनबलन, उनके प्रगति के ज्ञान के माध्यम से अधिगम मे कितना प्रभावी होता है यह दर्शाने के लिए नाइट ने एक प्रयोग किया। उसने छात्रो के दो समूह बनाये। इन दोनो समूहो को 20 घण्टे तक गणित पढाया गया। एक समूह के छात्रो की प्रगति का उनका ज्ञान दिया गया जबकि दूसरे समूह मे ऐसा नही किया गया। इसका परिणाम यह रहा कि पहिले समूह ने दूसरे समूह की तुलना मे 12 प्रतिशत अधिक प्रगति की।

अधिगम का समय व थकान

अधिगम प्रक्रिया को काम का समय और थकान दोनो ही प्रभावित करते हैं। प्राय प्रातकाल जब बालक घर से विद्यालय आता है उस समय उसमे स्फूर्ति होती है तथा वह नवीन ज्ञान सीखने को तत्पर होता है। ज्यो ज्यो विद्यालय मे समय बीतता जाता है, उसमे थकान आती जाती है। बीच मे विश्राम देने से वह पुन ताजा हो जाता है। अध्यापक को चाहिए कि कठिन विषयो का अध्यापन प्रात काल के कालाश मे करे तथा सरल विषयो का अध्यापन बाद के कालाश मे।

विषय सामग्री की रचना

अधिगम प्रक्रिया मे विषय-वस्तु के प्रस्तुतिकरण के क्रम का प्रभाव भी पडता है। विषय वस्तु यदि सरल से कठिन के क्रम मे सुव्यवस्थित की जावे तो अधिगम प्रक्रिया सरल रहेगी। इसी प्रकार विषय वस्तु को दैनिक जीवन के उदाहरणो से युक्त कर छात्र के सम्मुख प्रस्तुत किया जावे तो वह अधिक प्रभावी रहेगी।

साराश—शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक को सिखाना है। सीखने से व्यवहार-गत परिवतन होते हैं। अधिगम प्रक्रिया पर उद्देश्य, अभिप्रेरणा, उत्तेजना एव पुनबलन का प्रभाव पडता है। सीखने के कुछ नियम जसे तत्परता का नियम, अभ्यास का नियम, प्रभाव का नियम सूत्र आदि सीखने की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं।

अधिगम की प्रकृति के बारे मे भिन्न भिन्न मान्यताएँ हैं। व्यवहारवादी अधिगम को व्यवहार मे अनुकूल परिवतन मानते हैं, जबकि गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिक इसे सूझ के उत्पन्न होने की सज्ञा प्रदान करते ह। ज्ञानात्मक क्षेत्रवाद

का यह मानना है कि अधिगम एक सापेक्षीय प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शिक्षार्थी में नवीन ज्ञानात्मक संरचनाओं का विकास होता है या उनमें परिवर्तन होता है। सभी सम्प्रदाय बालक के वातावरण को महत्त्व प्रदान करते हैं।

शैक्षिक दृष्टि से यह आवश्यक है कि बालक की अधिगम प्रक्रिया को सरल बनाया जावे। उद्देश्यों का स्पष्ट होना, बालक का उचित वातावरण, उचित शिक्षण विधियाँ, विषय वस्तु का तार्किक क्रम, अधिगम का समय एवं बालक की थकान आदि बातों को ध्यान में रखकर अधिगम को सरल व प्रभावी बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 S S Colvin, The Learning Process, Macmillan.
2 A Pinsent, The Principles of Teaching Method (Harrap)
3 R Strang, An Introduction to Child Study (Macmillan)
4 H Begtrup, H Dund P Manniche, The Folk High Schools of Denmark (Oxford University Press)
5 P R Cole, The Method and Techniques of Teaching (Oxford University Press)



अध्याय 2

शिक्षण, अनुदेशन एव प्रशिक्षण

(Teaching Instruction and Training)

शिक्षण शब्द शिक्षा से जुड़ा है जिसका प्रयोग सकुचित एव व्यापक दोनो रूप मे किया जाता है। सकुचित रूप मे शिक्षण का अभिप्राय केवल ज्ञान प्रदान करने की क्रिया से लिया जाता है। बालक को कुछ निश्चित तथ्यो एव सूचनाओ का ज्ञान कराया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया मे शिक्षक का स्थान प्रमुख माना जाता है। वह ज्ञान का स्रोत है, जिससे ज्ञान प्रस्फुटित होकर शिक्षार्थी तक पहुँचता है। इसमे बालक का स्थान एक निष्क्रिय श्रोता के अलावा और कुछ नही है। इस प्रकार की व्यवस्था को द्विध्रुवीय शिक्षण व्यवस्था (Bipolar Process) भी कहा जाता है। यहाँ शिक्षण के दो ध्रुव क्रमश शिक्षक और शिक्षार्थी हैं। इस प्रकार के शिक्षण के बारे मे मारसन लिखते हैं कि यह शिक्षण प्रक्रिया अधिक परिपक्व व्यक्ति (अध्यापक) तथा अपरिपक्व व्यक्ति (बालक) के मध्य प्रगाढ सम्बन्ध को दर्शाती है।

- परन्तु शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नही है वरन् इसका उद्देश्य बालक का सम्पूर्ण विकास करना है। योकम तथा सिम्पसन (Yoakam and Simpson) के अनुसार अधिक सभ्य समाज म शिक्षण का अर्थ बालक मे वतमान वातावरण मे समायोजन करने की क्षमता को ही उत्पन्न करने से नही है अपितु मानव जीवन की वतमान स्थितियो को उन्नत कर उसे अधिक समृद्धिशाली बनाये जाने हेतु बालको के चिन्तन और कर्म का प्रशिक्षण है।

शिक्षण को द्विध्रुवीय व्यवस्था न मानकर अब इसे त्रिध्रुवीय व्यवस्था के रूप मे स्वीकार किया गया है। शिक्षा के प्रमुख आधार शिक्षक, विद्यार्थी और पाठ्यक्रम हैं जिनमे परस्पर सम्बन्ध माना गया है। अधिक स्पष्ट रूप मे शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि शिक्षक के माध्यम से, विद्यार्थी को पाठ्यवस्तु को सीखने के लिए प्रेरित करती है।

शिक्षण एक साद्देश्य प्रक्रिया है। इसमे शिक्षक, शिक्षार्थी एव पाठ्यवस्तु के मध्य परस्पर अन्त क्रिया होती है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षण के उद्देश्यो की प्राप्ति की जाती है। शिक्षण एक जटिल क्रिया के रूप म मानी गई है जहा कि

एक अनुभवी मानव (अध्यापक) बिना अनुभव के प्राणी (विद्यार्थी) को परिपक्वता की ओर अग्रसर करने के लिए सतत प्रयास करता रहता है। शिक्षण के तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्व अध्यापक, विद्यार्थी तथा पाठ्यक्रम में से यदि एक को भी विलोपित कर दें तो यह अर्थहीन हो जायेगा। इन तीनों तत्त्वों में शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि वह अपने अनुभव के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया को समृद्ध एवं प्रभावी बना सकता है।

शिक्षण का अर्थ

शिक्षण का सीधा सम्बन्ध समाज से है इस प्रकार यह अधिगम से भिन्न है। अधिगम एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। व्यक्ति की अन्त दशा एवं व्यक्तित्व गुण उसके अधिगम को प्रभावित करते है जबकि शिक्षण का सम्बन्ध समाज में निहित दर्शन, मूल्यों, संस्कृति एवं विचारधारा से होता है। प्राचीन काल में जब राज्य धर्म पर आधारित थे, शिक्षण भी इसी के अनुरूप था। जैसे जैसे राज्य का स्वरूप बदला शिक्षण के अर्थ में उसी अनुरूप में परिवर्तन आता गया। इस प्रकार जितने शासन के रूप होते हैं उतने ही शिक्षण के अर्थ हो सकते हैं। इस रूप में शिक्षण का अर्थ निम्न प्रकार से हो सकता है—

एकतन्त्र शासन में शिक्षण का अर्थ

चूंकि इस प्रकार की शासन व्यवस्था में समाज के सदस्यों में कार्य करने की क्षमता होने के साथ साथ उसमें अपने से बड़े वर्गों की आज्ञा एवं निर्देशों का पालन करना एक आवश्यक गुण माना गया है अतः इस प्रकार के समाज में शिक्षण कराते समय शिक्षक बालक-बालिकाओं में इसी प्रकार के गुण विकसित करता है। एकतन्त्र शासन में शिक्षण कार्य करते समय विद्यार्थियों की आवश्यकता एवं रुचि का ध्यान नहीं रखा जाता।

एकतन्त्र शासन प्रणाली में शासक की विचारधारा को ही प्रधानता दी जाती है इस कारण इस प्रकार के समाज में शिक्षण कार्य करते समय विद्यार्थियों को तार्किक विवेचना अथवा आलोचना करने का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है। न ही छात्र छात्राओं की क्षमताओं के पूर्ण विकास के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। मुख्य ध्येय रहता है कि विद्यार्थी एक सच्चे स्वामिभक्त एवं आज्ञाकारी नागरिक बनें।

प्रजातन्त्र शासन में शिक्षण का अर्थ

इस प्रकार की शासन व्यवस्था मानवीय सम्बन्धों पर आधारित होती है। इस प्रकार की व्यवस्था में व्यक्ति की अभिव्यक्ति तथा सामाजिक मूल्य व नैतिक स्तर अधिक महत्त्वपूर्ण माने गये है। इस धारणा का अनुसरण शिक्षण में किया जाता है।

प्रजातन्त्र मे शिक्षण को छात्र एव अध्यापक के मध्य एक अन्त क्रिया माना गया है। जिसमे दोनो का क्रियाशील होना आवश्यक है। शिक्षण अन्त क्रिया से दोनो एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। शिक्षक विद्यार्थियो को विभिन्न अनुक्रियाए उनमे अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन लाये जाने हेतु करवाता है। एन एल गेज[1] (N L Gage) ने इन पारस्परिक सम्बन्धो को महत्त्वपूर्ण माना है। इनके अनुसार—"शिक्षण एक प्रकार से पारस्परिक अन्त क्रिया है जिसमे एक दूसरे की व्यावहारिक क्षमताओ के विकास करने का लक्ष्य प्रमुख रूप से होता है।" इस प्रकार छात्र एव अध्यापक दोनो ही एक दूसरे की क्षमताओ का विकास शिक्षण के समय करते हैं।

प्रजातान्त्रिक मूल्यो जैसे स्वतन्त्र चिन्तन, तर्क, सहकारिता, सहअस्तित्व इत्यादि पर इस प्रकार के शिक्षण मे अधिक बल दिया जाता है। शिक्षक एक पथ प्रदर्शक के रूप मे कार्य करता है। छात्र प्रश्न पूछने एव अपना तर्क प्रस्तुत करने के लिए स्वतन्त्र होते है। उन्हे अधिकाधिक क्रियाशील बनाया जाता है। अध्यापक का व्यवहार छात्रो के प्रति मित्रवत् तथा छात्रो को शिक्षक का सम्मान करने पर बल प्रदान किया जाता है।

हस्तक्षेप रहित शासन मे शिक्षण

इस प्रकार के शिक्षण मे छात्र अधिक क्रियाशील रहता है। शिक्षक छात्र के लिए कठिनाइया समस्या के रूप मे उत्पन्न करता है जिन्हे छात्र हल कर विषय-वस्तु को सीख लेता है। शिक्षण के इस रूप मे समस्या समाधान तथा चिन्तन पर अधिक बल दिया जाता है। जान ब्रूबेकर (John Brubacher) के अनुसार, "शिक्षण मे ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न की जाती हैं जिसमे कुछ रिक्त स्थान तथा कठिनाइया उत्पन्न हो जाती है, व्यक्ति इन कठिनाइयो पर विजय पाने का प्रयास करता है जिसके फलस्वरूप वह सीखता है।

शिक्षक का स्थान एक मित्र के समान होता है जबकि छात्र अनुक्रिया करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है वह समस्या कैसे सुलझाए, स्वय निश्चित करता है। इससे छात्र की सृजनात्मक क्षमताओ के विकास में सहायता मिलती है।

शिक्षण की परिभाषा

शिक्षण एक क्रमिक एव व्यवस्थित प्रक्रिया है। विभिन्न शिक्षाशास्त्रियो ने शिक्षण की भिन्न भिन्न परिभाषाए दी हैं जिनमे शिक्षण के अलग-अलग पक्षो पर बल प्रदान किया गया है। कुछ विशिष्ट शिक्षाविदो द्वारा दी गई परिभाषाए अग्रलिखित हैं—

1 Gage N L "The Theories of Teaching in Handbook Research in Teaching ed N L Gage Chicago Rav Mc Nally & Co 1964

एच सी मारीसन (H C. Morrison)

"शिक्षण एक प्रक्रिया है जिसमें अधिक विकसित व्यक्तित्व कम विकसित व्यक्तित्व के सम्पर्क में आता है और कम विकसित व्यक्तित्व की आगामी शिक्षा हेतु विकसित व्यक्तित्व व्यवस्था करता है।

बी ओ स्मिथ (B O Smith)

"शिक्षण क्रियाओं का वह समूह है जो कि अधिगम को उत्पन्न करने के लिए प्रेरित होता है।

एडमण्ड एमीडन (Edmund Amidon)

'शिक्षण एक अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया है जो मुख्य रूप से कक्षागत परिस्थितियों में कुछ वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य होती है।'

क्लार्क (Clarke)

"छात्रों में परिवर्तन लाने के लिए, प्रक्रिया के प्रारूप एवं परिचालन की व्यवस्था ही शिक्षण है।

योकम एवं सिम्पसन (Yoakam and Simpson)

"शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा छोटे बच्चों को समाज समायोजित जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

शिक्षण एक विज्ञान के रूप में

पूर्व में शिक्षण को कला माना जाता था तथा इसी रूप में इसे पढ़ाया था। परन्तु अब शिक्षण को विज्ञान माना जाने लगा है। इसे विज्ञान मानने के कारण निम्न हैं—

(1) विज्ञान की तरह अब शिक्षण का भी व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया सकता है।

(2) शिक्षण में कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। शि क्रियाओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठ प्रकार से किया जा सकता है तथा इस विद्यार्थियों की उपलब्धि पर प्रभाव को माना जा सकता है।

(3) शिक्षण के विभिन्न चरों का अध्ययन अलग अलग किया जा सकता है।

(4) शिक्षण के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं।

(5) शिक्षण के विभिन्न प्रतिमानों का विकास हुआ है।

(6) शिक्षण की क्रियाओं तथा शिक्षक व्यवहार का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया जा सकता है।

(7) शिक्षण तकनीकी का विकास किया जा रहा है।

(8) पृष्ठ पोषण की प्रविधियों से छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाया जा सकता है।

पूर्वोक्त बिन्दुओं से यह स्पष्ट होता है कि अब शिक्षण विज्ञान के रूप मे विकसित हो रहा है।

शिक्षण एव प्रशिक्षण

शिक्षण का अर्थ व्यापक है। यह एक सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसमे बालक के सर्वांगीण विकास पर बल प्रदान किया जाता है। कुछ व्यक्ति भ्रमवश शिक्षण और प्रशिक्षण को एक जैसा ही मानते हैं इनके अनुसार मनुष्य मूलरूप से पशु तुल्य है। पशुओं की प्रवृत्तियो के अतिरिक्त मनुष्य मे सामाजिकता एव नैतिकता की अवधारणा अतिरिक्त रूप से है। इन लोगो के अनुसार इन प्रत्ययो के विकास के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पडती है।

वास्तव मे प्रशिक्षण और शिक्षण समानार्थी प्रत्यय नहीं हो सकते। प्रशिक्षण एक सकुचित शब्द है। प्रशिक्षण एक विशिष्ट कौशल के विकास के लिए दिया जाता है जबकि शिक्षण का उद्देश्य सब गुणो को विकसित करना है। प्रशिक्षण शब्द का प्रयोग अधिकतर पशुओ के प्रशिक्षण के लिए किया जाता है जैसे कि सरकस इत्यादि के लिए घोडे, हाथी इत्यादि को एक विशिष्ट कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षण के उपरान्त ये जानवर केवल इन सिखाये हुए कार्यों को ही कर पाते हैं। शिक्षण का सम्बन्ध न केवल शारीरिक, अपितु मानसिक एव सवेगात्मक विकास से भी है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिक्षा मे प्रशिक्षण तो शामिल है, परन्तु प्रशिक्षण को शिक्षण के तुल्य नहीं माना जा सकता।

शिक्षण एव अनुदेशन

शिक्षण एव अनुदेशन को साधारणत एक ही अर्थ मे प्रयुक्त करते हैं। परन्तु इनमे पर्याप्त अन्तर है। शिक्षण पारस्परिक अन्तक्रिया का वह प्रयास है जो अध्यापक एव शिक्षार्थी के मध्य शिक्षण-उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इस प्रकार शिक्षण मे शिक्षक एव शिक्षार्थी दोनो ही क्रियाशील रहते हैं। शिक्षण का प्रमुख तथ्य पारस्परिक अन्तक्रिया है।

अनुदेशन वह प्रक्रिया है जो शिक्षार्थी को कुछ उद्देश्यो की ओर प्रभावित करती है। इसमे छात्र शिक्षक की पारस्परिक अन्तक्रिया नही होती। अनुदेशन मे छात्र को ज्ञानार्जन मे सहायता मिलती है। कक्षा मे अनुदेशन के कारण वह ज्ञान प्राप्त करता है। किन्तु अनुदेशन से सभी प्रकार के छात्र समान रूप से लाभान्वित नही हो सकते हैं।

अनुदेशन एक कृत्रिम एव सीमित क्रिया है जब कि शिक्षण एक व्यापक एव स्वाभाविक क्रिया है। शिक्षण मनुष्य को जीवनपर्यन्त प्राप्त होता रहता है। वह समाज अथवा अपने साथियो से शिक्षण प्राप्त करता है। राबटसन (Robertson)

ने तो यहा तक कहा है कि अनुदेशन कक्षा के अन्दर ही समाप्त हो जाता है जबकि शिक्षण का जीवन के साथ ही अन्त होता है।

अनुदेशन मे उदाहरण रेडियो अथवा टेलीविजन से बच्चा को किसी पाठ का पढ़ाया जाना है। बालक इस पाठ को देखता व सुनता है तथा समझने का पूर्ण प्रयत्न करता है परन्तु यदि वह उस पाठ की विषय-वस्तु को न समझ पाय तो इसके बारे मे रेडियो या टेलीविजन मे प्रश्न नही पूछ सकता। शिक्षण म इस प्रकार के प्रश्न पूछा जाना सम्भव है।

शिक्षण की प्रकृति
(Nature of Teaching)

शिक्षण का अर्थ पूर्ण रूप से समझने के लिए शिक्षण की प्रकृति से परिचित होना आवश्यक है। इसके निम्नलिखित पहलू हैं—

(1) शिक्षण सम्बन्ध स्थापित करता है

शिक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए यह स्पष्ट किया गया था कि इसका अर्थ शिक्षक, बालक और पाठ्य वस्तु मे सम्बन्ध स्थापित करना है। मोहन, सोहन को व्याकरण पढा रहा है। यहा मोहन एव सोहन के मध्य अन्तक्रिया चल रही है जिसका उद्देश्य व्याकरण सीखना है। रायबन के अनुसार शिक्षक मे निम्न गुण होने आवश्यक हैं जिससे कि उसका शिक्षण प्रभावी एव सफल हो सके—

(अ) विषय का ज्ञान—प्रत्येक अध्यापक को उस विषय का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है जिसे वह कक्षा मे पढाने जा रहा है जब तक उसे विषय का ज्ञान नही होगा वह विद्यार्थियो को सही ज्ञान नही दे पायेगा। इसके अतिरिक्त वह ज्ञान किस प्रकार प्रस्तुत करे अर्थात् शिक्षण के समय ज्ञान का सरलतम रूप प्रदान करते हुए बोधगम्य बनाने की कला शिक्षक मे होना आवश्यक है। विषय-वस्तु प्रस्तुत करते समय यदि वह बालक के दैनिक जीवन से ज्ञान को सम्बन्धित करे तो दिया जाने वाला ज्ञान अधिक प्रभावी हो सकता है।

(ब) शिक्षण विधियों का ज्ञान—सफल शिक्षण के लिए परिस्थिति के अनुकूल शिक्षण विधि का प्रयोग करने की कला एक शिक्षक मे होना आवश्यक है। छोटे उम्र के बालक एव किशोरो के मनोविज्ञान म अन्तर होता है अत इनके लिए भिन्न प्रकार की शिक्षण विधि काम में ली जानी चाहिए।

(स) बालक की प्रकृति का ज्ञान—शिक्षण का उद्देश्य बालक मे व्यवहारगत परिवर्तन लाना है। यदि शिक्षक को बालक की आवश्यकता- उसका पर्यावरण, सीखने की क्षमता, उसके व्यक्तित्व, गुण इत्यादि का ज्ञान पर्याप्त रूप में नही है तो वह इसका उपयोग शिक्षण मे नहीं कर पायेगा तथा शिक्षण बालक की आवश्यकता के अनुरूप नही होगा। इसीलिए रायबन ने कहा है कि शिक्षक को बाल-प्रकृति का सामान्य ज्ञान आवश्यक होना चाहिए। उसे यह निश्चित रूप से समझ लेना

चाहिए कि बालकों में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, बुद्धि, स्वभाव इत्यादि की भिन्नताएँ होती हैं। इन विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए उसे सभी बालकों का विकास शिक्षण के माध्यम से करना होता है।

(द) जीवन दर्शन का ज्ञान—शिक्षण की सफलता न केवल व्यवहार में परिवर्तन लाने से है अपितु बालक में मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने में भी है। शिक्षक का इन मानवीय मूल्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। उसे सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का मार्ग स्वयं अपना कर विद्यार्थियों को भी इस मार्ग की ओर प्रशस्त करना चाहिए।

(2) शिक्षण पर्यावरण से अनुकूलन करने में सहायक हो

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जान ड्यूवी के अनुसार समस्त शिक्षा मानव जाति की सामाजिक चेतना में व्यक्ति द्वारा भाग लेने से प्रारम्भ होती है। बालक को शिक्षित कर एक योग्य नागरिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे शिक्षण के समय अपने वातावरण के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया करना सिखाया जावे। इन अच्छी प्रतिक्रियाओं से उसका वातावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण बनेगा तथा उसमें सामाजिकता का विकास होगा।

सिम्पसन[1] ने कहा है कि शिक्षण वह साधन है जिसके द्वारा समाज अपने बालकों को चुने हुए वातावरण से, जिसमें कि उनको रहना है, शीघ्रातिशीघ्र अनुकूलन करने की क्रिया में प्रशिक्षित करता है। एक आदर्श नागरिक बनने के लिए बालक में अनुकूलन करने का गुण होना आवश्यक है।

(3) शिक्षण सूचना देना है

ज्ञान का भण्डार मानव सभ्यता का विकास होने के साथ साथ बढ़ता चला गया। शिक्षण के द्वारा इस ज्ञान की सूचना बालक को दी जाती है जिससे कि वह पुराने अनुभवों को सीख सके तथा उन्हें प्रयोग में ला सके। यदि बालक को यह प्रारम्भिक ज्ञान नहीं दिया जाता है तो उसके ज्ञान का आधार कमजोर पड़ जायेगा। बालक को दी जाने वाली सूचनाएं रोचक तरीकों से जैसे कहानी या कथा के माध्यम से, चित्रों की सहायता से दिया जाना प्रभावी पाया गया है। इसके अतिरिक्त यदि शिक्षक पूर्वज्ञान को आधार बनाकर सूचना प्रदान करता है तो बालक नवीन सूचना को सरलता से समझ लेता है।

(4) शिक्षण सीखना है

शिक्षण को सामान्यतः सीखने से भी जोड़ा जाता है। यदि बालक लिखना, पढ़ना या किसी कौशल को सीख जाता है तो ऐसा माना जाता है कि उसने शिक्षा प्राप्त कर ली है। शिक्षक को भी सामान्यतः तब ही सफल माना जाता है जब उसका सीखा हुआ ज्ञान बालक को स्वयं कुछ कार्य करने में सहायता प्रदान करे। इस

1 Simpson Robert G Fundamental of Educational Psychology

दृष्टि से शिक्षक केवल एक साधन है, वह बालक को सीखने के लिए साधन जुटा कर प्रेरित करता है।

(5) शिक्षण मार्ग दर्शन है

शिक्षण मे सूचना प्रदान करना एक प्राचीन प्रत्यय है। जब कागज एव छापेखाने का अभाव था उस समय शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य सूचना प्रदान करना समझा जाता था। परन्तु आज की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। अब विभिन्न प्रकार की सूचनाए उसे पुस्तक द्वारा मिल जाती हैं। उनका समुचित मागदशन देना शिक्षण माना जाता है। रिस्क[1] (Thomas M Risk) के अनुसार 'शिक्षण को सीखने के निर्देश या पथ प्रदशन के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है।"

बालको का मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। अत उन्ह पढन, लिखने, काय करने और विचार करन की उचित विधिया सिखा कर माग प्रदशन किया जाना आवश्यक है।

पिनसेन्ट[2] महोदय ने मागदशन के बारे मे कहा है— शिक्षण के अन्तगत दो आधारभूत प्रक्रियाए निहित हैं। प्रथम शिक्षण सामग्री को विद्यार्थी के लिए उपयोगी बना कर प्रस्तुत करनी चाहिए तथा दूसरा, विद्यार्थी का मानसिक झुकाव निदेशन के माध्यम से विषय वस्तु की ओर केन्द्रित करना चाहिए। इसस विषय वस्तु न केवल स्पष्ट होगी अपितु बालक म उच्च स्तर का मानसिक विकास सम्भव हो सकेगा। शिक्षण का दूसरा पक्ष अर्थात निदेशन परम्परागत शिक्षण तथा प्रभावी एव प्रेरणायुक्त शिक्षण म भेद स्थापित करता है।

(6) शिक्षण प्रेरणा है

बालक को किसी काय को करने के लिए रुचि उत्पन्न करना उसको प्रेरणा से सम्बधित है। प्रेरित करने पर बालक उस काय को सफलतापूवक कर सकेगा, ऐसी उमसे आशा की जाती है। इस प्रकार प्रेरणा शिक्षण से जुडी है।

उद्दीपन एव प्रोत्साहन भी शिक्षण के महत्वपूण पक्ष है। शिक्षण का तात्पय है—बालक को किसी काय को करने के लिए प्रेरित करना। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक को बालक की रुचियो, रुझान एव कुशलताओ का पूण ज्ञान होना चाहिए।

शिक्षण के स्वरूप के बारे मे विस्तृत चर्चा करने के उपरान्त यह साराशत कहा जा सकता है कि—

(अ) शिक्षण एक प्रक्रिया है।

(ब) इसका सीधा सम्बन्ध अधिगम और शिक्षार्थी के व्यवहार म परिवतन लाने स है।

1 Thomas M Risk Principles & Practice in Secondary Schools P 6

2 A Pinset 'The Principles of Teaching Method Harper 1941 P 267

(स) यह परिवर्तन वांछित होता है।

(द) यह परिवर्तन लाया जाता है, अपने आप नही होता।

(अ) शिक्षण एक प्रक्रिया है (Teaching is an activity)—शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थी मे अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तनो को लाना है इसके लिए शिक्षण में व्यवस्थित प्रयासो के किये जाने की आवश्यकता होती है। शिक्षण मे इस प्रक्रिया का क्रमिक एव व्यवस्थित होना आवश्यक है अगर प्रक्रिया क्रमिक नही है तो शिक्षण का परिणाम सन्तोषप्रद नही होगा। इस प्रक्रिया के प्रमुख अवयव शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, अध्ययन कक्ष, सहायक सामग्री आदि हैं। ये समस्त अवयव शिक्षण को प्रभावित करते है परन्तु इनका आपसी समन्वय आवश्यक है।

(ब) शिक्षण का सम्बन्ध शिक्षार्थी के व्यवहार मे परिवर्तन से है—शिक्षण का प्रगाढ सम्बन्ध अधिगम मे है। यदि कोइ विद्वान् शिक्षक शिक्षण कार्य करे तथा विद्यार्थी उसके ज्ञान को ग्रहण न कर पाय तो इस प्रकार का शिक्षण अच्छे स्तर का नहीं माना जाता है। शिक्षण तो तभी होता है जब शिक्षार्थी अधिगम अर्जित करते हैं। मर्सल ने ठीक लिखा है कि शिक्षण की सफलता का अन्तिम निर्धारक तत्त्व उसका परिणाम है। ड्यूवी ने शिक्षण एव अधिगम के मध्य सम्बन्ध का बडे अच्छे उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया है। इनके अनुसार शिक्षण एव अधिगम में ठीक वैसा ही समीकरण है जस बेचने और खरीदने मे है। बेचने वाले को वस्तु का उतना ही दाम प्राप्त होता है जितना खरीदने वाला देता है। यदि खरीदने वाला वस्तु का दाम नही देता तो बेचने वाले को कुछ भी प्राप्त नही होता।

अधिगम के फलस्वरूप शिक्षार्थी के व्यवहार म परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी विद्यार्थी ने टंकण करने का अधिगम अर्जित कर लिया है तो वह कुशलतापूर्वक टंकण कर सकेगा। इसी प्रकार यदि किसी विद्यार्थी ने गणित विषय मे ग्राफ पढ़ना व बनाना सीख लिया है तो वह मौसम सम्बन्धित ग्राफ को पढ कर इससे सम्बन्धित जानकारी दे सकेगा। परन्तु अधिगम के अभाव मे वह ऐसा करने मे असमर्थ रहेगा।

(स) शिक्षण द्वारा वांछित परिवर्तन (Desired Changes by Teaching)—शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व शिक्षक इस हेतु कुछ उद्देश्यो का निर्धारण करता है। ये उद्देश्य प्राप्य उद्देश्य कहलाते हैं तथा उन्हे व्यवहारगत परिवर्तन के रूप मे लिखा जाता है। शिक्षण के माध्यम से शिक्षक विद्यार्थी मे इन परिवर्तनो को लाने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए भूगोल विषय मे प्राप्य उद्देश्य यदि भारत के मानचित्र मे नदियां अंकित करने से सम्ब-

धित है तो शिक्षणोपरान्त विद्यार्थी में इतनी क्षमता उत्पन्न हो सकेगी कि वह मानचित्र पर प्रमुख नदियों को प्रदर्शित कर सके। इस प्रकार शिक्षण का सम्बन्ध उसी अधिगम से है जो शिक्षक द्वारा आयोजित परिस्थिति का परिणाम है।

(द) व्यवहारगत परिवर्तन स्वतः नहीं होता (Desired Behavioural Changes are not Automatic)—बालक अबोध एवं अपरिपक्व अवस्था में होता है अतः वह स्वयं अपने आप में व्यवहारगत परिवर्तन नहीं ला सकता। इसके लिए शिक्षक की आवश्यकता होती है जो कि शिक्षण के समय व्यवस्थित प्रयास करता है। चूँकि परिवर्तन सहज एवं सरल नहीं हैं, धीरे धीरे होते हैं, अतः शिक्षक धैर्य पूर्वक शिक्षण तकनीकों का प्रयोग कर विद्यार्थियों को अधिगम अर्जित करने हेतु क्रियाशील बनाता है। इस प्रकार शिक्षण में अध्यापक की भूमिका प्रमुख रहती है। फ्रीमेन[1] ने इस भाव को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है— विद्यार्थी को शिक्षण हेतु क्या प्रस्तुत किया जा रहा है यह महत्त्वपूर्ण नहीं अपितु महत्त्वपूर्ण यह है कि वह पाठ्यवस्तु से किस प्रकार अनुक्रिया करता है। इस प्रकार बालक को सूचना प्रदान करना मात्र ही शिक्षण नहीं है। शिक्षण वह है जिसमें शिक्षक बालक को प्रेरित करे। इसके लिए उसे विभिन्न शिक्षण स्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी।

वेल्टन[2] के अनुसार— जब अध्यापक शिक्षार्थी को स्वयं पठन के लिए प्रेरित कर दे तथा वह स्वयं समझने एवं कार्य करने योग्य बन जाय तो शिक्षण के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

सारांशतः शिक्षण की कार्यपरक परिभाषा देते हुए यह कहा गया है कि "विद्यालय में शिक्षण के तीन प्रमुख कार्य क्रमशः बालक के व्यक्तित्व एवं सामाजिक विकास के लिए पर्याप्त वातावरण प्रदान करना निरन्तर विकास के लिए निर्देशन एवं प्रेरणा प्रदान करना तथा स्वस्थ आदत, कौशल, ज्ञान रुचि अभिवृत्ति इत्यादि का विकास स्वस्थ एवं अच्छे स्तर के जीवनयापन हेतु उत्पन्न करना है।'[3]

शिक्षण की प्रकृति

शिक्षण के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा करने के उपरान्त शिक्षण की प्रकृति पर विचार करना आवश्यक है। शिक्षण की प्रकृति निम्न प्रकार से है—

(1) शिक्षण एक प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया है।

(2) शिक्षण एक सामाजिक तथा व्यावसायिक क्रिया है।

---

1 F N Freeman How Children Learn Harrap P 8

2 J Welton Principles and Methods of Teaching University of Tutorial Press P 21

3 Handbook of Suggestions for Teachers Board of Education London P 15

(3) चूँकि यह एक सोद्देश्य प्रक्रिया है, अत शिक्षण में उद्देश्यों को आधार माना जाता है।

(4) शिक्षण का केन्द्र बिन्दु बालक का विकास होने के कारण यह एक विकासात्मक प्रक्रिया है।

(5) शिक्षण शिक्षक, बालक एवं पाठ्यवस्तु के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया है।

(6) शिक्षण कला एवं विज्ञान दोनों है।

(7) शिक्षण उपचारात्मक प्रक्रिया भी है।

(8) शिक्षण का अध्ययन एवं मापन सम्भव है इसके लिए विभिन्न तकनीकें तैयार की गई हैं।

(9) शिक्षण द्वारा बालक का विकास एवं सुधार दोनों ही सम्भव हैं।

(10) शिक्षण औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की विधियों से सम्भव है।

(11) शिक्षण में अध्यापक बालकों का निर्देशन करता है।

(12) शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों को सुविधा प्रदान कर उनमें मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था जागृत करना है।

शिक्षण प्रक्रिया घटक की दृष्टि से उत्तम शिक्षण वह माना जाता है जिसमें शिक्षक छात्र की अन्तःप्रक्रिया अधिकतम हो ताकि विद्यार्थी की क्षमता का विकास अधिकतम हो सके। इसके अन्तर्गत छात्रों को अधिकतम क्रियाशील बनाना, उनको चिन्तन करने के अधिक अवसर प्रदान करना, विषय-वस्तु से अन्तःक्रिया कराना इत्यादि क्रियाएँ आती हैं।

उपलब्धि घटक उत्तम शिक्षण के लिए इसलिए आवश्यक है कि इससे शिक्षण की सफलता विफलता अथवा प्रभावी होना या अप्रभावी होने का पता चलता है। इसके अतिरिक्त निदानात्मक परख कर कमजोर विद्यार्थियों का उपचारात्मक शिक्षण भी इसी से सम्भव है। अत अच्छे स्तर के शिक्षण में उपलब्धि घटक पर बल दिया जाना आवश्यक है।

उत्तम शिक्षण की अधोलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) अधिगम के लिए ऐसा वातावरण उत्पन्न करना कि बालक की सृजनात्मक क्षमताओं का विकास सम्भव हो सके।

(2) उत्तम शिक्षण में अध्यापक का कक्षा व्यवहार अप्रत्यक्ष अधिक तथा प्रत्यक्ष व्यवहार कम होता है।

(3) उत्तम शिक्षण व्यवस्था में अध्यापक छात्रों के लिए एक दार्शनिक, मित्र एवं निर्देशक का काम करता है।

(4) पुनर्बलन का शिक्षण में अत्यधिक महत्त्व है। उत्तम शिक्षण में छात्र की क्रिया को समुचित पुनर्बलन प्रदान किया जाना आवश्यक है।

(5) शिक्षण पर अध्यापक व्यवहार का प्रभाव पड़ता है। अध्यापक का व्यवहार जितना अधिक अच्छा एवं प्रजातान्त्रिक होगा, शिक्षण उतना ही अधिक प्रभावी होगा।

(6) कक्षा व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमें शिक्षण क्रियाएँ भली भाँति सम्पन्न हो सकें।

(7) शिक्षक के व्यवहार में स्पष्टता होनी चाहिए।

(8) उत्तम शिक्षण में छात्रों की समस्याओं के समाधान में शिक्षक का पूर्ण सहयोग होना आवश्यक है।

(9) अध्यापक को बालक के पूर्व ज्ञान का उपयोग शिक्षण में करना चाहिए।

उत्तम शिक्षण की विशेषताएँ (Characteristics of Good Teaching)

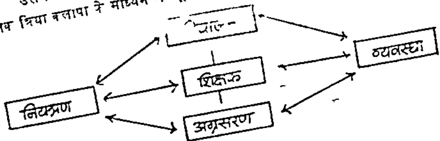
उत्तम शिक्षण क्या है? इस पर भिन्न भिन्न मत हैं। जान ड्यूवी ने इसे अधिगम से जाना है उनके अनुसार शिक्षण एवं अधिगम में ठीक उसी प्रकार का समीकरणीय सम्बन्ध है जैसाकि खरीदना एवं बेचना। यदि कोई व्यापारी अच्छी तादाद में सामान रखता हो परन्तु उसे दूसरों को बेचने में असमर्थ हो तो वह एक अच्छा व्यापारी नहीं हो सकता। उत्तम शिक्षण के संदर्भ में यदि एक प्रकार के शिक्षण से बालक का अधिगम अच्छे रूप से प्रभावित होता है तब इसे उत्तम शिक्षण कहा जाता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री किलपट्रिक ने तो यहाँ तक कहा है कि "जब तक बालक नहीं सीख लेता हम नहीं पढ़ा पाते (We haven't taught, till the child has learned) इस दृष्टि से शिक्षण में तीन प्रमुख विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं—

(1) शिक्षण पूर्व घटक (Presage Factor)

(2) शिक्षण प्रक्रिया घटक (Process Factor)

(3) शिक्षणोपरान्त उपलब्धि घटक (Product Factor)।

उत्तम शिक्षण में अध्यापक की भूमिका प्रमुख है। शिक्षक का ध्येय विभिन्न शैक्षिक क्रिया कलापों के माध्यम से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना है। इस



हेतु वह उपलब्ध पाठ्यक्रम एव ससाधनो का प्रभावशाली ढग से उपयोग करने का प्रयास करता है। शिक्षणोपरान्त वह मूल्यांकन कर अपने शिक्षण की सफलता का अनुमान लगाता है। इसके इस काय को निम्न रूप से प्रदर्शित कर सकते हैं—

उत्तम शिक्षण व्यवस्था के लिए शिक्षक निम्न काय करता है—

(1) नियोजन (Planning)
उद्देश्यो को निर्धारित करना तथा उनकी प्राप्ति के लिये समुचित व्यूह रचना।

(2) व्यवस्था (Organisation)
उपलब्ध साधनो को प्रभावी अधिगम हेतु सुव्यवस्थित करना।

(3) अग्रसरण (Leading)
छात्रो को शिक्षण के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु प्रेरित व उत्साहित कर रुचि जागत करना।

(4) नियन्त्रण (Controlling)
उद्देश्य प्राप्ति के सदभ मे मूल्यांकन।

शिक्षण को प्रभायित करने वाले कारक

(Factors Affecting Teaching)

शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है तथा इसको प्रभावित करने वाले अनेक घटक हैं, उनमे से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है—

(1) वैयक्तिक विभिन्नताएं (Individual Differences)

प्रत्यक विद्यार्थी का अपना व्यक्तित्व होता है जो कि अपने आप म अनूठापन लिए हुए होता है। यह अनूठापन शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक इत्यादि गुणो की विभिन्नताओ के कारण होना है। इन विभिन्नताओ का प्रभाव इनकी अन्त क्रिया करने पर पडता है। उदाहरण के लिए उच्च मानसिक क्षमता रखने वाले विद्यार्थियो म चिन्तन, सश्लेषण एव विश्लेषण, तर्क, इत्यादि करने की क्षमता अच्छे स्तर की होती है इस कारण य औसत या न्यून मानसिक क्षमता वाले विद्यार्थियो की तुलना म नवीन अनुभव शीघ्र प्राप्त कर लेते है। इसक विपरीत न्यून मानसिक क्षमता वाले विद्यार्थियो की सीखने की गति धीमी होती है। शिक्षण के दौरान अध्यापक क सामने दोना प्रकार के विद्यार्थी होते ह जिससे उसका शिक्षण काय जटिल हो जाता है।

शोध कार्यो के माध्यम से व्यक्तिगत विभिन्नताओ का शिक्षण पर पडने वाल प्रभाव को कम करन क लिए कई प्रयास किय गय हैं। इनम प्रमुख अभिक्रमित अनुदेश हैं। बी एफ स्किनर (B F Skinner) ने एक शोध पत्र 'The Science of Learning and the Art of Teaching' जो कि Harvard Educational Review, Vol 24, PP 86-97 (1954) मे प्रकाशित किया जिसम

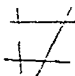
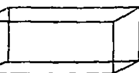
सम्भावना व्यक्त की कि प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सीखने की रफ्तार से सीख सकता है। शोध परिणामों ने, स्क्रैम (Schramm) के अनुसार, यह सिद्ध कर दिया कि अभिक्रमित अनुदेशन से सभी प्रकार के विद्यार्थी भली प्रकार से विषय-वस्तु को सीख सकते है।

(2) शिक्षण उद्देश्य (Lducatioral Objectives)

शिक्षण उद्देश्यों से तात्पर्य उन व्यवहारगत परिवर्तनों से है जो शिक्षण के फलस्वरूप शिक्षक अपने शिक्षार्थी में लाना चाहता है। ये उद्देश्य वे दिशा बिन्दु हैं, जिनकी ओर शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रवाहित होती है। शिक्षार्थी, विषयवस्तु, विधि, युक्ति, सहायक सामग्री मूल्यांकन आदि सभी इन उद्देश्यों से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं कि शिक्षण प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावित करने वाला कारक शिक्षण उद्देश्य है।

(3) नियोजित कार्य (Planned Work)

शिक्षण की सफलता इसके नियोजन पर आधारित है। यदि यह कार्य अनियोजित ढंग से किया जाय तो अपेक्षित उद्देश्य प्राप्त करना कठिन होगा। इसके विपरीत यदि शिक्षण प्रक्रिया एक निश्चित योजनानुसार आयोजित की जाती है तो इससे विद्यार्थी को अधिक लाभ पहुँचेगा। नियोजित कार्य एवं अनियोजित कार्य में क्या अन्तर होता है, यह निम्नांकित आकृतियों से स्पष्ट हो जाता है—

अव्यवस्थित रेखाएँ — व्यवस्थित रेखाएँ

उक्त आकृतियों में रेखाओं की संख्या समान है परन्तु पहले चित्र में रेखाएँ अव्यवस्थित हैं अतः इस प्रकार की आकृति से किसी वस्तु या विचार का बोध नहीं होता। दूसरी आकृति में रेखाएँ व्यवस्थित हैं अतः इससे कोई वस्तु या विचार स्पष्ट होता है। अनियोजित शिक्षण एवं नियोजित शिक्षण का भी ठीक ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। जब शिक्षण कार्य नियोजित ढंग से किया जाता है तो उसके परिणाम अधिक संतोषप्रद होंगे।

शिक्षण नियोजन सफल शिक्षण की आधारशिला मानी गया है इसके अन्तर्गत शिक्षक को कम से कम अग्रांकित तीन कार्य करने आवश्यक हैं—

(1) कार्य विश्लेषण करना (Task Analysis)

(2) शिक्षण उद्देश्यों का अभिज्ञान करना

(Identification of Teaching Objectives)

(3) अधिगम उद्देश्यों को लिखना

(Writing Teaching Objectives)।

(4) कक्षा में संवेगात्मक स्थिति
(Emotional State of the Class)

शिक्षण के समय कक्षा की संवेगात्मक स्थिति का प्रभाव शिक्षण प्रक्रिया पर पड़ता है। जो शिक्षक कक्षा में सुखद संवेगात्मक परिस्थिति का निर्माण करने में समर्थ होता है वह कक्षा में ऐसी अनुकूल परिस्थिति का निर्माण कर देता है कि विद्यार्थी अधिकाधिक अनुभवों की प्राप्ति में तल्लीन हो जाते हैं। इसके विपरीत दुखद मनोगात्मक परिस्थिति में शिक्षार्थियों का शिक्षण के प्रति विकर्षण हो जाता है और वे अधिगम अर्जित करने में पिछड़ जाते हैं।

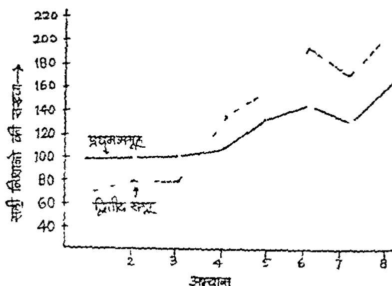
(5) शिक्षक का व्यक्तित्व तथा कुशलता
(Personality and Efficiency of the Teacher)

शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावित करने में शिक्षक के व्यक्तित्व तथा उसकी कुशलता का महत्व सभी कारकों में सर्वाधिक है। शिक्षक अपनी कुशलता से कक्षा में जैसा शिक्षण का पर्यावरण बनाता है, मूलतः उसी पर कक्षा का संवेगात्मक स्थिति तथा शिक्षार्थियों का व्यवहार, विकास और निष्पत्ति का रूप निर्धारित होता है। कक्षा के भावनात्मक वातावरण पर तो शिक्षक के व्यक्तित्व की छाप होती है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक का विषय वस्तु पर पर्याप्त अधिकार हो, वह शिक्षार्थियों के प्रति सहानुभूति रखता हो, वह विद्यार्थी की वैयक्तिक कठिनाइयों समझने तथा उन्हें हल करने में रुचि लेता हो, वह अपने विषय को रोचकता से पढ़ाने की कुशलता रखता हो, वह चरित्रवान विद्यार्थियों का मित्र एवं पथ प्रदर्शक हो। ऐसा शिक्षक ही अपने उत्तरदायित्व का भलीभांति निर्वाह कर सकता है।

(6) परिणाम की शीघ्र जानकारी
(Immediate Knowledge of results)

शोध परिणामों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि यदि शिक्षार्थियों को अपने प्रयासों के परिणाम की जानकारी शीघ्र मिल जाती है तो उनका पुनर्बलन हो जाता है तथा अधिगम प्रभावी रूप से होता है। अधिगम में परिणामों के ज्ञान का प्रभाव का अध्ययन हाम ने 1947 में किया। बन्दूक की गोली से हवा में उड़ते टुकड़ा पर निशाना लगाने का प्रशिक्षण देने के लिए दो समूह बनाये गये प्रथम समूह के व्यक्तियों को सही निशाना लगाने पर उनके कान में एक मधुर आवाज सुनाई

पडनी थी जबकि दूसरे समूह म निशाना सही लगने पर ऐसी आवाज नहीं सुनाई जाती थी। प्रशिक्षण मे कुछ समय बाद यह मधुर आवाज प्रथम समूह के व्यक्तियों को सही निशाना लगाने पर सुनाना बन्द कर दिया तथा दूसरे समूह के व्यक्तियों को सही निशाना लगाने पर सुनाना प्रारम्भ कर दिया। चित्र द्वारा यह ज्ञात होता है



कि जब तक प्रथम समूह को परिणाम की जानकारी मिली वह द्वितीय समूह से अच्छा रहा। जब द्वितीय समूह के व्यक्तियों का परिणाम की जानकारी मिलना प्रारम्भ हो गई और प्रथम समूह मे यह बन्द कर दी गई तो दूसरे समूह की प्रगति प्रथम से अच्छी हो गई।

उपरोक्त प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि परिणाम की जानकारी शिक्षण को प्रभावित करती है। परिणाम की जानकारी देने का ढग सुनिश्चित, रचनात्मक तथा उत्साहवर्धक होना चाहिए।

(7) भौतिक साधन तथा शैक्षिक सामग्री

(Teaching aids & resoures)

शिक्षण प्रक्रिया पर विद्यालय के भौतिक साधनों तथा सहायक शिक्षण सामग्री का भी प्रभाव पडता है। हवा तथा प्रकाश की मात्रा, श्यामपट्ट की अनुकूल स्थिति आदि मिलकर कक्षा मे उपयुक्त शैक्षिक पर्यावरण बनाने में सहायक होते हैं। इसी प्रकार सहायक शिक्षण सामग्री का यथावसर उपयोग करना शिक्षार्थियों की विषय के प्रति रुचि विकसित करने में सहायक होता है तथा विषयवस्तु अधिक ग्राह्य हो जाती है।

स्मिथ (Smith) ने शिक्षण को प्रभावित करने वाले चरो तथा उनके अन्तगत आने वाली क्रियाओ को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया है—

स्वतन्त्र चर (शिक्षक)	मध्यस्थ चर (छात्रगण)	परतन्त्र चर (छात्रगण)
(1) भाषागत व्यवहार (2) कायगत व्यवहार (3) अभिव्यक्ति ।	इन चरो म अन्तगत स्मरण, विश्वास, आवश्यकताएँ तथा मानसिक क्रियाएँ आती हैं।	(1) भाषागत व्यवहार (2) कायगत व्यवहार (3) अभिव्यक्ति ।

शिक्षण के स्तर

(Levels of teaching)

एक ही पाठ्य वस्तु को विद्यालयो मे विभिन्न शिक्षण स्तरो पर पढाया जाता है कारण कि पाठ्य वस्तु का अपना स्तर होता है । जिसमे शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यो की प्राप्ति की जाती है। एक ही पाठ्यवस्तु की शिक्षण अधिगम परिस्थितियाँ विचारहीन से विचारपूर्ण तक हो सकती हैं । इस प्रकार शिक्षण के तीन स्तर बनाये जा सकते है—

(1) स्मृति स्तर शिक्षण (Memory level teaching)

(2) बोध स्तर शिक्षण (Understanding level teaching)

(3) चिन्तन स्तर शिक्षण (Reflective level teaching) ।

स्मृति स्तर का शिक्षण, शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था है तथा यह विचारहीन होता है । बोध स्तर का शिक्षण स्मृति-स्तर के शिक्षण की आगे की अवस्था है इसमें स्मृति तथा अन्तदृष्टि दोनो सम्मिलित हैं । तीसरे स्तर के शिक्षण, अर्थात चिन्तन स्तर का शिक्षण अन्तिम स्तर है जिसमे स्मृति तथा बोध दोनो सम्मिलित है । इसका अर्थ यह हुआ कि विषय के ज्ञान और उसकी वास्तविक अनुभूति के लिए शिक्षण स्मृति, बोध तथा चिन्तन तीनो स्तरो पर होना चाहिए ।

(1) स्मृति स्तर का शिक्षण (Memory Level of teaching)

स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है । जब बालक किसी वस्तु या घटना को देखता है तो इसके चिन्ह या प्रतिमाए उसके मस्तिष्क म बन जाती है । इन्ही सचित अनुभवो की आवश्यकता पडने पर जब वह प्रत्यास्मरण द्वारा पुन चेतना म लाकर इन्हे पहिचान लेता है, यह उसकी स्मृति कहलाती है । इस प्रकार स्मृति सीखे हुए अनुभवो का सीधा उपयोग है ।

(4) मूल्यांकन प्रणाली (Support System)

चूँकि स्मृति स्तर के शिक्षा में रटन पर बल दिया जाता है इसके मूल्यांकन में भी स्मृति का ही परीक्षण किया जाता है। मूल्यांकन लिखित तथा मौखिक दोनों रूप से सम्भव है। इस स्तर के शिक्षण में निबंधात्मक परीक्षा को अधिक उपयोगी माना गया है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा के द्वारा प्रत्यास्मरण तथा पहचान के पदों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(2) बोध स्तर का शिक्षण (Understanding Level of Teaching)

इस प्रकार के शिक्षण में शिक्षक विद्यार्थियों को सामान्यीकरण तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बोध कराने पर बल देता है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में नियमों को पहचानने, समझने तथा उनको विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के शिक्षण से बालक में सूझ बूझ तथा समस्या हल करने की क्षमता भी विकसित होती है। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही शिक्षण के समय क्रियाशील रहें।

शिक्षण-प्रतिमान (Model of Teaching)

बोध स्तर के शिक्षण का प्रतिपादन मौरीस्न ने किया। इसका वर्णन निम्न प्रकार से है—

(1) उद्देश्य (Focus)

विद्यार्थी प्रत्यय को पूर्णतः ग्रहण कर ले या स्वामित्व स्थापित कर ले इस हेतु बोध स्तर पर शिक्षण में पाठ्यवस्तु में स्वामित्व पर बल प्रदान किया जाता है।

(2) संरचना (Syntax)

शिक्षण की व्यवस्था के निम्न पाँच सोपान हैं—

(अ) अन्वेषण (Exploration)

इसके अन्तर्गत अध्यापक प्रश्न पूछ कर विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का परीक्षण करता है। पढ़ाई जाने वाली पाठ्यवस्तु का विश्लेषण कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विषयवस्तु को क्रमबद्ध व्यवस्थित करता है तथा नवीन ज्ञान को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय इसके बारे में वह निर्णय लेता है।

(ब) प्रस्तुतिकरण (Presentation)

शिक्षण का यह सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। पाठ्यवस्तु को सीखने योग्य छोटी छोटी इकाइयों में विभाजित कर क्रमबद्ध रूप में विद्यार्थियों को प्रस्तुत करता है। समय-समय पर वह इस बात का मूल्यांकन करता रहता है कि कितने विद्यार्थियों को विषयवस्तु समझ में नहीं आई है। विषयवस्तु को बार बार दुहराता है जब तक अधिकांश विद्यार्थियों की समझ में न आ जाय।

शिक्षण का प्रतिमान (Model of teaching)

(1) उद्देश्य (Focus)

—— हरबार्ट (Herbart) ने स्मृति स्तर के शिक्षण के लिए—शिक्षण-उद्देश्य निम्न क्षमताओं का विकास करने पर बल देते हैं—

(अ) तथ्यों का ज्ञान

(ब) सीखे हुए तथ्यों को याद करना

(स) मानसिक पक्षों का प्रशिक्षण।

इस प्रकार इस स्तर के शिक्षण में विद्यार्थी को तथ्यों के रटने पर बल दिया गया है।

(2) संरचना (Syntax)

शिक्षण की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए पाँच पदों का अनुसरण किया जाता है जो कि निम्न हैं—

(अ) (i) प्रस्तावना (Preparation)

यह शिक्षण का प्रथम पद माना गया है इसके मुख्यतः दो उद्देश्य अर्थात् विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान की जाँच तथा नवीन ज्ञान ग्रहण करने के लिए प्रेरित करना है।

(ii) उद्देश्य कथन (Statement of Aim)

प्रस्तावना के तुरन्त बाद शिक्षक विद्यार्थियों को प्रकरण स्पष्ट कर श्याम पट्ट पर लिखता है।

(ब) विषय प्रस्तुतिकरण (Presentation)

यह पाठ का मूल भाग है जिसमें शिक्षार्थी द्वारा अधिकतम अनुक्रियाएँ कराई जाती हैं। अध्यापक भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछता है और उन्हें ज्ञान प्रदान करता है।

(स) तुलना तथा सम्बन्ध (Comparision and Association)

(द) सामान्यीकरण (Generalisation)

(य) प्रयोग (Application)।

(3) सामाजिक प्रणाली (Social System)

इस प्रणाली में शिक्षक का व्यवहार अधिक पूर्ण होता है। वह अधिक क्रियाशील रहते हुए विद्यार्थियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। विद्यार्थी एक निष्क्रिय श्रोता के रूप में होता है। शिक्षक के प्रमुख कार्य निम्न हैं—

(अ) पाठ्यवस्तु प्रस्तुत करना

(ब) विद्यार्थी की क्रियाओं को नियन्त्रित करना

(स) पठन हेतु प्रेरणा प्रदान करना।

इस प्रकार इसमें शिक्षक का स्थान प्रमुख है। विद्यार्थी उसका अनुसरण करते हैं।

(4) मूल्यांकन प्रणाली (Support System)

चूँकि स्मृति स्तर के शिक्षा में रटन पर बल दिया जाता है, इसके मूल्याकन में भी स्मृति का ही परीक्षण किया जाता है। मूल्यांकन लिखित तथा मौखिक दोनो रूप से सम्भव है। इस स्तर के शिक्षण मे निबन्धात्मक परीक्षा का अधिक उपयोगी माना गया है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा के द्वारा प्रत्यास्मरण तथा पहचान के पदो का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(2) बोध स्तर का शिक्षण (Understanding Level of Teaching)

इस प्रकार के शिक्षण मे शिक्षक विद्यार्थियो का सामान्यीकरण तथा सिद्धान्तो के सम्बन्ध में बोध कराने पर बल देता है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियो मे नियमों को पहचानने, समझने तथा उनका विभिन्न परिस्थितियो मे प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के शिक्षण से बालक मे सूझ-बूझ तथा समस्या हल करने की क्षमता भी विकसित होती है। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनो ही शिक्षण के समय क्रियाशील रहे।

शिक्षण-प्रतिमान (Model of Teaching)

बोध स्तर के शिक्षण का प्रतिपादन मौरीसन ने किया। इसका वर्णन निम्न प्रकार से है—

(1) उद्देश्य (Focus)

विद्यार्थी प्रत्यय को पूर्णत ग्रहण कर ले या स्वामित्व स्थापित कर ले इस हेतु बोध स्तर पर शिक्षण मे पाठ्यवस्तु मे स्वामित्व पर बल प्रदान किया जाता है।

(2) संरचना (Syntax)

शिक्षण की व्यवस्था के निम्न पाँच सोपान है—

(अ) अन्वेषण (Exploration)

इसके अन्तर्गत अध्यापक प्रश्न पूछ कर विद्यार्थियो के पूर्व ज्ञान का परीक्षण करता है। पढ़ाई जाने वाली पाठ्यवस्तु का विश्लेषण कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विषयवस्तु को क्रमबद्ध व्यवस्थित करता है तथा नवीन ज्ञान को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय इसके बारे मे वह निर्णय लेता है।

(ब) प्रस्तुतिकरण (Presentation)

शिक्षण का यह सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। पाठ्यवस्तु को सीखने योग्य छोटी छोटी इकाइयों मे विभाजित कर, क्रमबद्ध रूप मे विद्यार्थियो को प्रस्तुत करता है। समय-समय पर वह इस बात का मूल्यांकन करता रहता है कि कितने विद्यार्थियो को विषयवस्तु समझ मे नहीं आई है। विषयवस्तु को बार बार दुहराता है जब तक अधिकांश विद्यार्थियो की समझ मे न आ जाय।

(स) परिपाक (Assimilation)

परिपाक के अतगत विद्यार्थियो को सीखी गई विषयवस्तु पर स्वामित्व प्राप्त करने हेतु अवसर प्रदान किया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अध्ययन करता है, प्रयोगशाला या पुस्तकालय मे जाकर स्वय काय करता है। इनको गृह काय भी दिया जाता है। शिक्षक इन सब शैक्षिक क्रियाओं का पयवेक्षण होता है। वह इस बात का परीक्षण करता है कि विद्यार्थियो का विषय-वस्तु पर स्वामित्व हुआ या नही। नही होने की स्थिति मे पुन अवसर प्रदान करता है।

(द) व्यवस्था (Organisation)

परिपाक का कालाश समाप्त होने पर स्वामित्व परीक्षा (Mastery Test) का आयोजन किया जाता ह। इसम सफल होने क उपरात विद्यार्थी पाठ्यवस्तु की प्रकृति के अनुसार व्यवस्था कालाश म प्रवेश पात ह इस कालाश म विद्यार्थी स्वय के शब्दो मे बिना किसी की सहायता से सीखा हुई पाठयवस्तु का लिखने हैं। गणित, व्याकरण इत्यादि म इसकी आवश्यकता नही होनी है।

(य) वणन (Reciation)

व्यवस्था कालाश के बाद विद्यार्थी वणन कालाश मे प्रवेश पात हैं। इस कालाश मे विद्यार्थी सीखी हुई पाठयवस्तु का अपने शिक्षक तथा सहपाठियो के सम्मुख मौखिक रूप से व्यक्त करते हैं।

(3) सामाजिक व्यवस्था (Social System)

सामाजिक प्रणाली म स्थितिनुसार परिवतन होत हैं। प्रस्तुतिकरण सोपान मे शिक्षक विद्यार्थियो पर पूण नियत्रण रखता है तथा उन्हे पढन के लिए प्रेरित करता है। परिपाक कालाश म विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनो क्रियाशील रहते हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार विद्यार्थी को निदेशन देता है तथा विद्यार्थी लगन के साथ कार्य करते हैं।

(4) मूल्याकन प्रणाली (Support System)

विद्यार्थी को परिपाक स व्यवस्था तथा व्यवस्था स वणन मे प्रवश करन के लिए परीक्षा पास करनी पडता ह। व्यवस्था कालाश के बाद लिखित परीक्षा तथा वणन कालाश के बाद मौखिक परीक्षा आयोजित की जाती है।

(3) चिन्तन स्तर का शिक्षण

(Reflective Level of Teaching)

इस स्तर का शिक्षण "समस्या केन्द्रित" होता है। शिक्षक विद्यार्थियो के सामने ऐसी समस्या उत्पन्न करता है जिसस बालक प्रेरित होकर समस्या को सुलझाने हेतु उपकल्पनाए बनाकर उनका परीक्षण आरम्भ कर देता है। एक समय ऐसा आता है कि समस्या सुलझ जाती है। चूकि समस्या समाधान के लिए स्मृति तथा बोध दोनो की आवश्यकता है अत चिन्तन स्तर के शिक्षण स पूव स्मृति तथा बोध

स्तर का शिक्षण पूण किया जाना आवश्यक है। चिन्तन स्तर के शिक्षण से चिन्तन शक्ति एव सृजनात्मकता का विकास होता है। इससे वालक इस योग्य हो जाता है कि भावी जीवन मे आने वाली समस्या को चिन्तन, तक तथा कल्पना द्वारा सरलतापूवक सुलझा सके।

इस स्तर के शिक्षण प्रतिमान को हण्ट (Hunt) ने प्रतिपादित किया।

शिक्षण का प्रतिमान
(Model of Teaching)

(1) उद्देश्य (Focus)

चिन्तन स्तर के शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थी म समस्या समाधान की क्षमता विकसित करना, आलोचना एव समालोचना करना, स्वतन्त्र तथा मौलिक चिन्तन करने की शक्ति का विकसित करना है।

(2) सरचना (Syntax)

सवप्रथम शिक्षक विद्यार्थियो के सम्मुख समस्यात्मक परिस्थितिया उत्पन्न करता ह, विद्यार्थी समस्या समाधान हेतु उपकल्पना का निमाण करते हैं, उपकल्पनाओ के सत्यापन हेतु प्रदत्तो का सकलन किया जाता है तथा इन प्रदत्तो की सहायता से यह निणय लिया जाता ह कि उप-कल्पना समस्या के समाधान मे सहायता कर सकती है या नहीं। उपकल्पना के परीक्षण के उपरान्त विद्यार्थी निष्कर्षों को अपन शब्दो मे व्यक्त करता ह जो कि मौलिक हाते हैं।

(3) सामाजिक प्रणाली (Social System)

चिन्तन स्तर के शिक्षण म कक्षा का वातावरण पूण रूप से स्वतन्त्र तथा खुला होता है। एसे वातावरण म विद्यार्थी का स्थान मुख्य तथा शिक्षक का स्थान गौण होता है। परन्तु शिक्षक क्रियाशील रहता है वह विद्यार्थियो के सम्मुख समस्या उत्पन्न कर उनमे विचार विमश कराता है। विद्यार्थी इसमे रुचि स भाग लें इसके लिए उनकी आकाक्षा स्तर ऊँचा उठाय रखता है। इस स्तर पर विद्यार्थी की स्वन प्रेरणा तथा सामाजिक प्रेरणा दोनो ही महत्वपूण हैं।

(4) मूल्यांकन प्रणाली (Support System)

विद्यार्थियो की क्षमता का विकास ठीक प्रकार से हुआ या नहीं इसके लिए निबन्धात्मक परीक्षा उपयोगी रहती है। चिन्तन स्तर की परीक्षा लेते समय विद्यार्थियो की अभिवृत्तियो, सृजनात्मक क्षमताओ, अलोचना करने की शक्ति आदि के विकास का भी मूल्याकन किया जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 म चिन्तन स्तर के शिक्षण को विशेष महत्त्व दिया गया है इसम अध्यापको को प्रशिक्षित करन हेतु जिज्ञासा प्रशिक्षण (Enquiry Training) नामक पाठ तयार किए गये हैं जिसमे विभिन्न प्रकार की समस्याए सम्मिलित की गई हैं।

शिक्षण की अवस्थाएँ

(Teaching Phases)

शिक्षण एक प्रक्रिया है इस कारण उसकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ होना स्वाभाविक है। ये अवस्थाए आपस मे एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं। सामान्यत शिक्षण प्रक्रिया की निम्न तीन अवस्थाए होती हैं—

(1) पूर्व क्रिया अवस्था (Pre active Phase)
(2) अन्त क्रिया अवस्था (Interactive Phase)
(3) क्रिया पश्चात अवस्था (Post active Phase)।

(1) शिक्षण की पूर्व-क्रिया अवस्था

शिक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व शिक्षक जिन कार्यों को करता है वह सब इसके अन्तगत आती है। शिक्षक सर्वप्रथम शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षण-सामग्री, शिक्षण विधि इत्यादि का निर्णय करता है। पूर्व क्रिया अवस्था मे शिक्षण की निम्न प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया है—

(1) शैक्षिक लक्ष्यों का निर्धारण।
(2) छात्रों के पूर्व व्यवहार तथा अंतिम व्यवहारों की व्याख्या।
(3) शिक्षण सामग्री का विश्लेषण कर उसे व्यवस्थित करना।
(4) शिक्षण सामग्री का स्तर आकार, भाषा स्वरूप, चिन्ह इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय लेना।
(5) शिक्षण व्यूह रचना जिसके अन्तर्गत यह तय करना कि पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतिकरण किस विधि से तथा किस किस सहायक सामग्री की सहायता से करना है।

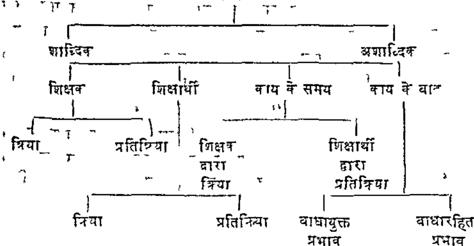
(2) शिक्षण की अन्त क्रिया अवस्था

इसमे वे सभी वस्तुएँ, व्यवहार तथा क्रियाएँ सम्मिलित हैं जिनका उपयोग शिक्षक द्वारा शिक्षण के समय किया जाता है। शिक्षण मे शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य अन्त क्रिया होती है जिन प्रभावी रूप से सम्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। इस अवस्था मे निम्नलिखित क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं—

(1) शिक्षक द्वारा छात्रों की क्षमताओं की अनुभूति करना।
(2) शिक्षार्थी के मानसिक स्तर अभिवृत्ति तथा पूर्वज्ञान के स्तर का अनुमान लगाना।
(3) शाब्दिक एवं अशाब्दिक अन्त क्रियाओं के लिए—
(अ) प्रेरकों का चयन एवं प्रस्तुतिकरण योजना बनाना।

(ब) पृष्ठ पोषण एवं पुनर्बलन।
(स) शिक्षण व्यूह-रचना का विकास।

निम्न रेखाचित्र अन्तःक्रिया विश्लेषण को बताता है—

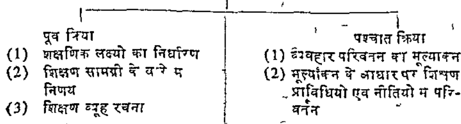


(3) शिक्षण क्रिया पश्चात अवस्था

इसके अन्तर्गत शिक्षक शिक्षण के समय दिये गये ज्ञान का मूल्यांकन करता है। इस आधार पर वह यह निर्णय लेता है कि विद्यार्थियों में वांछित व्यवहारगत परिवर्तन किस सीमा तक तथा किस दिशा में हुआ है। इसके अन्तर्गत निम्न क्रियाएँ आती हैं—

(1) व्यवहार परिवर्तन की जाँच हेतु प्राविधियों का चुनाव।
(2) वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के सन्दर्भ में निर्णय लेना।
(3) शिक्षण प्राविधियों में यथोचित परिवर्तन करना।

सारांश रूप में शिक्षण की अवस्थाएँ निम्न रूपरेखा द्वारा प्रस्तुत की जा सकती हैं—



शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त एवं सूत्र

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर समय-समय पर सीखने के नियम बताए तथा सीखने के आवश्यक तत्त्वों का ज्ञान कराया। शिक्षाशास्त्रियों ने इन तत्त्वों को अनुमानित कर एस सूत्रों की रचना की जिनकी सहायता से एक शिक्षक अपने शिक्षण को सफल बना सकता है। इन सूत्रों को ही शिक्षण सूत्र कहते हैं। जिन शिक्षाशास्त्रियों ने इन शिक्षण सूत्रों के निर्माण में सहयोग दिया उनमें कमेनियस तथा हरबर्ट स्पेन्सर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सफल शिक्षण के लिए शिक्षण सूत्रों का शिक्षण में उपयोग आवश्यक है। शिक्षण सूत्र इस बात का ज्ञान देते हैं कि पाठ्यवस्तु को कहाँ से आरम्भ किया जाय तथा किस दिशा में बढ़ाया जाय। शिक्षक प्रशिक्षण में शिक्षण कार्य करने के लिए ये विशेष सहायक हैं।

शिक्षण-सिद्धान्त

शिक्षण के प्रमुख सिद्धांत निम्नानुसार हैं—

(1) उद्देश्य निर्धारण का सिद्धांत
(Principle of Formulation of Objectives)

(2) जीवन की वास्तविकता से सम्बन्धित करने का सिद्धांत
(Principle of Linking with Real Life)

(3) क्रियाशीलता का सिद्धांत (Principle of Activity)

(4) रुचि का सिद्धान्त (Principle of Interest)

(5) अभिप्रेरणा का सिद्धांत (Principle of Motivation)

(6) चयन का सिद्धांत (Principle of Selection)

(7) वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धांत
(Principle of Individual Differences)

(8) आयोजन का सिद्धांत (Principle of Planning)

(9) जनतन्त्रीय प्रणाली का सिद्धान्त (Principle of Democracy)

(10) अभ्यास एवं आवृत्ति का सिद्धांत (Principle of Revision)

(11) मनोरंजन का सिद्धांत (Principle of Recreation)

(12) सहसम्बन्ध या समवाय का सिद्धान्त (Principle of Correlation)।

(1) उद्देश्य निर्धारण का सिद्धांत

(Principle of Formulation of Objectives)

शिक्षण-उद्देश्य शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को दिशा प्रदान करते हैं अत उद्देश्य निर्धारण करना शिक्षण का सब प्रमुख सिद्धात स्वीकार किया गया है। उद्देश्य के अभाव मे शिक्षक उस नाविक के समान है जिसे अपने गन्तव्य स्थान का ज्ञान नही है और शिक्षार्थी उस पतवारहीन नौका के समान है जो कि लहरो के थपडे खाती हुई कही भी किनारे लग जाती है। स्पष्ट है कि उद्देश्य निर्धारित किये बिना शिक्षण काय व्यवस्थित रूप से करना असम्भव सा ही है।

(2) जीवन की वास्तविकता से सम्बन्धित करने का सिद्धांत

(Principle of Linking with Real Life)

शिक्षार्थी विभिन्न विषयो का अध्ययन मूलत इसलिए करते हैं कि अर्जित ज्ञान जीवनोपयोगी हो सके। यह तभी सम्भव है जबकि विभिन्न विषयो का अध्ययन वास्तविकता पर आधारित हो। इस सिद्धात के अनुसार शिक्षण आयोजित करने पर निम्नांकित प्रयोजन सिद्ध होते है—

(अ) जब प्रत्येक विषय का अध्यापन जीवन की वास्तविकता से सम्बन्धित करके किया जाता है तो अधिगम के अन्तरण मे सुविधा होती है।

(ब) विषय वस्तु का जीवन की वास्तविकता से सम्बन्ध स्थापित करके शिक्षण आयोजित करने से शिक्षार्थियो को विषयवस्तु की जीवन मे सार्थकता स्पष्ट हो जाती है तथा वे स्वय विषय का अध्ययन करने की आवश्यकता अनुभव करने लगते है। इस प्रकार शिक्षार्थियो की विषय के प्रति रुचि विकसित हो जाती है।

(स) ड्यूवी के अनुसार जीवन अनुभवो की अनवरत पुनरचना है। हम मे से प्रत्येक सदैव नवीन अनुभव अर्जित करते रहते हैं और नवीन अनुभवो के अनुसार पूर्व अनुभवो की पुनरचना करते रहते हैं। यह क्रम अनवरत रूप से चलता रहता है। अत प्रत्येक नया अनुभव पुराने अनुभव से सम्बन्धित किया जाना चाहिए ताकि नवीन अनुभव प्रयोजनशील प्रतीत हो।

(द) विभिन्न विषयो का जीवन की वास्तविकता से सम्बद्ध करके अध्यापन करने से शिक्षण काय मे स्वाभाविकता आ जाती है और इस प्रकार शिक्षण की दृष्टि से अनुकूल पर्यावरण का निर्माण हो जाता है।

(3) क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principle of Activity)

यह शिक्षण का एक मूल्यवान सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के लिए शिक्षार्थी का क्रियाशील होना आवश्यक है। यदि शिक्षार्थी क्रियाशील न हो तो शिक्षक के प्रयास फलदायक नही होंगे। यह क्रियाशीलता का अतिसकुचित अर्थ होगा यदि इस शब्द का प्रयोग मासपेशियो तथा आंगिक गतियो तक ही सीमित

रखा जाय। वास्तव में जब शिक्षार्थी पुस्तकालय में बैठकर मौन अध्ययन करते हैं। कक्षा में ध्यानपूर्वक शिक्षक द्वारा प्रस्तुत विवरण को सुनते हैं और परस्पर किसी समस्या पर विचार विमर्श करते हैं तब भी वे क्रियाशील हैं। क्रियाशीलता के अभाव में कुछ भी सीख पाना सम्भव नहीं है। यह आवश्यक है कि शिक्षण की कुछ परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनमें शिक्षार्थी अधिक क्रियाशील रहते हैं और कुछ में कम। अतः शिक्षण की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करने के लिए यह उपयुक्त होता है कि ऐसी शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाय कि शिक्षार्थी अधिक क्रियाशील रह सकें।

(4) रुचि का सिद्धान्त (Principle of Interest)

यदि यह निर्णय करना पड़े कि विषय से सम्बन्धित सूचनाएं देना अधिक महत्त्वपूर्ण है या विषय के प्रति रुचि विकसित करना तो सभी शिक्षक इस सम्बन्ध में एक मत होंगे कि विषय के प्रति रुचि विकसित करना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि विषय के प्रति रुचि विकसित हो जाने पर शिक्षार्थी स्वयं ज्ञानार्जन में तल्लीन रहता है वह विषय से सम्बन्धित विभिन्न पुस्तकें पढ़ता है वह विषय से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार विमर्श करता है वह विषय के विभिन्न पक्षों पर लेख लिखता है आदि। अतः स्पष्ट है कि शिक्षक को विषय के प्रति रुचि विकसित करने की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिए।

इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्य वस्तु सरल से कठिन के क्रम में इस प्रकार प्रस्तुत की जानी चाहिए कि प्रत्येक शिक्षार्थी सफलतापूर्वक विषय को कुछ सीख सके। सफलता शिक्षार्थी को संतोष प्रदान करती है और फलस्वरूप शिक्षार्थी की रुचि विषय में विकसित होती है। इसी प्रकार विषय-वस्तु इस ढंग से प्रस्तुत की जानी चाहिए कि शिक्षार्थी को विषय वस्तु सीखने का प्रयोजन स्पष्ट हो जाय। वास्तव में निष्प्रयोजन विषय वस्तु में शिक्षार्थियों की रुचि विकसित करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त स्वयं शिक्षक की विषय के प्रति प्रगाढ़ रुचि का भी शिक्षार्थियों पर अनुकूल प्रभाव होता है क्योंकि यह निश्चित है कि जिस शिक्षक की विषय में गहरी रुचि होगी वह अध्याप्य विषय वस्तु को भली भांति स्पष्ट करने में समर्थ होगा है। अतः शिक्षकों को अध्याप्य विषय के प्रति रुचि विकसित करने के लिए पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

(5) अभिप्रेरणा का सिद्धान्त (Principle of Motivation)

शिक्षार्थियों को अधिगम अर्जित करने के लिए अभिप्रेरित करना शिक्षक की एक प्रमुख समस्या होती है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का यह निश्चित मत है कि कक्षागत शिक्षण की परिस्थिति में शिक्षार्थी प्रभावी अधिगम तभी अर्जित कर सकता है, जब वह अधिगम के लिए अभिप्रेरित हो। इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या दसवें अध्याय में की गई है। शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व का यथोचित आदर करके

उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का लाभ उठाकर, उनके प्रति समुचित व्यवहार प्रदर्शित करके, पुरस्कार एवं दण्ड का बुद्धिमतापूर्वक उपयोग करके तथा सहकारी प्रतियोगिताएं आयोजित करके उनको अधिगम के प्रति समुचित रूप से अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(6) चयन का सिद्धान्त (Principle of Selection)

प्रत्येक विषय में ज्ञान की मात्रा इतनी अधिक हो गई है कि वर्तमान में किसी व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह विषय के सभी पक्षों का समान विस्तार एवं गहराई में अध्ययन कर सके। अतः शिक्षार्थियों की मानसिक परिपक्वता, निर्धारित उद्देश्य, शिक्षक कुशलता, समयावधि तथा साधन सुविधाओं को ध्यान में रखकर विषय-वस्तु का चयन करना आवश्यक होता है। इस चुनाव की प्रक्रिया में थोड़े समय में अधिकतम लाभ शिक्षार्थियों को प्राप्त हो सके, ऐसा प्रयास किया जाता है। अतः प्रत्येक विषय में उन प्रकरणों को प्राथमिकता दी जाती है जो वास्तविक जीवन में उपयोगी हों तथा विषय की दृष्टि से आधारभूत हों।

(7) वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त
(Principle of Individual Differences)

यद्यपि यह सही है कि शिक्षक कक्षान्तर्गत शिक्षण सम्पूर्ण कक्षा के लिए आयोजित करता है, परन्तु प्रत्येक शिक्षार्थी अपनी रुचि, योग्यता एवं परिश्रम के अनुसार ही ज्ञान अर्जित कर पाता है। इसका मूल कारण उनकी वैयक्तिक भिन्नता ही है। यदि वैयक्तिक भिन्नता का तत्त्व विद्यमान नहीं होता तो शिक्षण का कार्य बहुत ही सरल हो जाता। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रत्येक शिक्षार्थी पूर्वज्ञान, मानसिक प्रतिभा, चारित्रिक गुण आदि में अपने आप में अनूठा होता है अतः शिक्षण कार्य भी इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी की वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

(8) आयोजन का सिद्धान्त (Principle of Planning)

जैसाकि तीसरे अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है, प्रभावी शिक्षण योजनाबद्ध ढंग से ही सम्भव है। वर्तमान में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि कोई शिक्षक बिना आयोजन के शिक्षण-कार्य सम्पन्न करे। योजनाबद्ध शिक्षण आयोजित करने से शिक्षक विषय वस्तु को किसी निश्चित क्रम में व्यवस्थित कर लेता है। व्यवहार के सभी पक्षों में सन्तुलित रूप से विकास करना सम्भव होता है, विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करने की दृष्टि से विचार किया जा सकता है, उपलब्ध समय एवं साधनों का पर्याप्त उपयोग किया जा सकता है, आत्मविश्वासपूर्वक शिक्षण कार्य किया जा सकता है तथा शिक्षार्थियों में भी अपना कार्य योजनाबद्ध ढंग से करने की अच्छी आदत का विकास किया जा सकता है। वास्तव में योजनाबद्ध शिक्षण प्रगतिशील शिक्षण का ही दूसरा नाम है।

(9) जनतन्त्रीय प्रणाली का सिद्धान्त (Principle of Democracy)

यह शोध द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है कि व्यक्तित्व का विकास जितना अच्छा जनतन्त्रीय पर्यावरण में होता है उतना अच्छा न तो तानाशाही पर्यावरण में होता है और न स्वच्छन्द पर्यावरण में। जनतन्त्रीय पर्यावरण में नियन्त्रण एवं स्वच्छन्दता का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण होता है कि व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास हो पाता है। जनतन्त्रीय प्रणाली में शिक्षक मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग दर्शक के रूप में व्यवहार करता है जिसके फलस्वरूप शिक्षार्थी स्वतन्त्र चिन्तन, मनन, तर्क तथा निर्णय करने की दिशा में प्रवृत्त होते हैं। इस पर्यावरण में शिक्षार्थियों में जहाँ एक ओर आज्ञाकारिता, सहनशीलता, सहकारिता, विनम्रता आदि गुणों का विकास होता है वहाँ दूसरी ओर पहल करने, नेतृत्व करने, निर्णय करने तथा समस्याओं को हल करने की योग्यताओं का भी विकास होता है। वास्तव में जनतन्त्रीय प्रणाली द्वारा ही शिक्षण के लिए समुचित पर्यावरण का निर्माण करना सम्भव होता है।

(10) अभ्यास एवं आवृत्ति का सिद्धान्त (Principle of Revision)

अभ्यास एवं आवृत्ति का क्रमशः क्रियामूलक अधिगम तथा ज्ञानमूलक अधिगम अर्जित करने में अत्यधिक महत्त्व है। क्रियामूलक अधिगम से तात्पर्य व्यवहार की ऐसी क्रियाओं से है जिनमें मांसपेशीय एवं आंगिक गतियों की प्रधानता होती है जैसे लिखना, टाइप करना, सिलाई करना, व्यायाम करना, वाद्य यन्त्र बजाना आदि। ज्ञानमूलक अधिगम से तात्पर्य व्यवहार की ऐसी प्रक्रियाओं से है जिनमें विचार पक्ष प्रबल होता है जैसे स्मरण करना, तथ्यों का विवेचना करना, तथ्यों का विश्लेषण करना आदि।

क्रियामूलक अधिगम अर्जित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी के मस्तिष्क में कौशल से सम्बन्धित सम्पूर्ण क्रिया का मानसिक बिम्ब स्पष्ट हो। इसके लिए सर्वप्रथम शिक्षक द्वारा सम्पूर्ण क्रिया का प्रदर्शन किया जाना चाहिए। इसके पश्चात् शिक्षार्थी द्वारा अनुकरण एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है। अभ्यास के समय शिक्षक का कार्य शिक्षार्थियों को वांछित निर्देशन देना तथा त्रुटि संशोधन करना होता है। इस प्रकार अभ्यास द्वारा शिक्षार्थी क्रियामूलक अधिगम अर्जित करते हैं।

क्रियामूलक अधिगम अर्जित करने में जो महत्त्व अभ्यास का है वही सज्ञान मूलक अधिगम अर्जित करने में आवृत्ति का है। आवृत्ति करना निम्नांकित बिन्दुओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

(1) शिक्षक को शिक्षण कार्य की प्रभावोत्पादकता का अनुमान लगाने में सहायता मिलती है।

(2) आवृत्ति करने से अर्जित ज्ञान के प्रबलीकरण में सहायता मिलती है।

(3) आवृत्ति करने से पाठ का सम्पूर्ण रूप एक बार पुनः शिक्षार्थी के मस्तिष्क में

उभर आता है जिसके फलस्वरूप उसे पाठ के विभिन्न तथ्यो को अपने सही परिप्रेक्ष्य मे समझने मे सहायता मिलती है।

(4) आवत्ति करने मे आगे का पाठ पढाने के लिए सुदृढ आधार बन जाता है।

अत अभ्यास एव आवृत्ति को शिक्षण काय म समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

(11) मनोरजन का सिद्धान्त (Principle of recreation)

इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण काय इस ढग से आयोजित किया जाना चाहिए कि शिक्षार्थी ज्ञानाजन की प्रक्रिया म स्वाभाविक प्रसन्नता अनुभव कर सकें। इसके लिए शिक्षण मेल विधि, वग विचार विमश विधि, भ्रमण विधि, प्रायोजना विधि तथा विभिन्न प्रवृत्तियो क माध्यम से आयोजित हो तो शिक्षार्थी प्रसन्नतापूवक ज्ञानाजन की प्रक्रिया मे तल्लीन हो जाते हैं। इन विधियो मे शिक्षार्थी स्वय क्रियाशील रहत हैं तथा उन्ह स्वतन्त्रतापूवक अपन आपका अभिव्यक्त करन का अवसर मिलता है। जब शिक्षार्थियो को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है तो उनको मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है और वे प्रसन्नता अनुभव करते है। परिणाम यह होता है कि वे व्यय की गई शक्ति को पुन प्राप्त कर लेत हैं। मनोरजन का यही प्रयोजन है।

(12) सहसम्बन्ध या समवाय का सिद्धान्त (Principle of Correlation)

यह सिद्धान्त ज्ञान की समग्रता को स्पष्ट करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक अपना विषय भली भाति स्पष्ट करने के लिए दूसरे विषय के ज्ञान का प्रासगिक रूप से उपयोग करता है ताकि शिक्षार्थियो को विषय वस्तु पूणत ग्राह्य हो सके। इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण आयोजित करने पर विषयो का अलग अलग कालाश मे पढाने से जो बनावटीपन उत्पन्न हो जाता है, वह समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए भूगोल शिक्षक धाराओ के उदगम के कारणो को स्पष्ट करना चाहता है। इसके लिए उसे भौतिक विज्ञान का यह प्रयोग प्रदर्शित करना होगा जो गर्मी पाकर पानी मे उत्पन्न होने वाली सवाहन धाराओ को प्रदर्शित कर सके। धाराओ के उद्गम का विचार तभी स्पष्ट होगा जबकि विज्ञान का यह प्रयोग प्रदर्शित किया जाय। परन्तु समवाय का यह आशय कदापि नही है कि अपना विषय छोडकर अन्य विषय पढाना प्रारम्भ कर दिया जाय। वास्तव म समवाय का मूल प्रयोजन तो अपने विषय को ही ठीक ढग से पढाना है। उक्त उदाहरण में विज्ञान के प्रयोग का प्रदशन तो प्रासगिक है। मूल प्रयोजन तो धाराओ का उद्गम ही स्पष्ट करना है। इसी प्रकार इतिहास का शिक्षक ऐतिहासिक घटनाओ को स्पष्ट करने के लिए यदि उसके भौगोलिक परिप्रेक्ष्य को भी प्रस्तुत करता है, जहा वे घटनाएँ घटी थी तो यह भी समवाय सिद्धान्त का उपयोग करना हुआ। निश्चित है कि ऐतिहासिक घटनाओं को उनके भौगोलिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने

स वस्तुस्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है। अत प्रत्येक विषयाध्यापक का अवसरानुकूल एव आवश्यकतानुसार समवाय व सिद्धान्त का पर्याप्त उपयोग करना चाहिए।

शिक्षण-सूत्र

शिक्षण के प्रमुख सूत्र निम्नानुसार है—

(1) ज्ञात से अज्ञात की ओर (From Known to Unknown)
(2) सरल से कठिन की ओर (From Simple to Complex)
(3) प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर (From Observed to Unobserved)
(4) सम्पूर्ण से अंश की ओर (From Whole to Part)
(5) स्थूल से सूक्ष्म की ओर (From Concrete to Abstract)
(6) विशिष्ट से सामान्य की ओर (From Particular to General)
(7) अनुभव से तर्क की ओर (From Emprical to Rational)
(8) मनोवैज्ञानिक क्रम से तार्किक क्रम की ओर (From Psychological to Logical)
(9) विश्लेषण से संश्लेषण की ओर (From Analysis to Synthesis)।

(1) ज्ञात से अज्ञात की ओर (From Known to Unknown)

यदि शिक्षक के प्रतिदिन के शिक्षण कार्य का विश्लेषण करें तो हम अनुभव करेंगे कि अधिकांश पाठों में वह शिक्षण उस बिन्दु से प्रारम्भ करता है जहाँ शिक्षार्थी पहले से ही होते हैं। इसको हम शिक्षार्थी का पूर्व ज्ञान कहते हैं। शिक्षक प्रतिदिन का नया पाठ इस पूर्वज्ञान पर ही आधारित करता है। यदि ऐसा न हो तो प्रत्येक नया पाठ अपने आप में अलग थलग प्रतीत होगा और ऐसी स्थिति में शिक्षण प्रभावी नहीं होगा। अत यह शिक्षण का एक मूल्यवान सूत्र है कि शिक्षार्थियों को ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाया जाय। उदाहरण के लिए हिन्दी का शिक्षक कठिन शब्द का अर्थ बताते समय शिक्षार्थियों की ज्ञात शब्दावली को आधार बनाता है जैसे प्रभाकर शब्द का अर्थ बताने के लिए कहेगा। सूरज या 'सूर्य'। यदि वह प्रभाकर शब्द का अर्थ "भास्कर" बतायेगा तो सम्भवत शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हो, क्योंकि हो सकता है शिक्षार्थियों के लिए दोनों शब्द नये हों। इसी प्रकार अन्य भाषा सिखाने के लिए मातृ भाषा के ज्ञान का जहाँ-तहाँ सहारा लेना पड़ता है। इस सूत्र को ध्यान में रखकर पाठ आयोजित करने पर शिक्षार्थियों की तन्मयता पाठ में बनी रहती है और वे ऊबते नहीं।

(2) सरल से कठिन की ओर (From Simple to Complex)

शिक्षार्थियों में अपनी क्षमताओं के प्रति आत्मविश्वास पैदा करने की दृष्टि

से शिक्षण का सरल स कठिन के सूत्र के अनुसार आयाजित करना आवश्यक है। ऐसा करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि मे भी उत्तम होता है। पाठ का प्रारम्भ सरल प्रश्नो से किया जाता है और शिक्षार्थियो का ज्ञान क्रमिक ढग से सरल से कठिन की ओर अग्रसर किया जाता है। गणित की पुस्तको म इसी प्रयाजन म प्रश्न सरल से कठिन के क्रम म जमाये जाते हैं ताकि सरल प्रश्नो का हल कर लेने के उत्साह म कमजोर से कमजोर शिक्षार्थी की भी पाठ म रुचि जाग्रत हो जाती है।

भाषा सिखाने वाले शिक्षक प्रारम्भिक कक्षाओ म सरल शब्दो का सिखाते हैं और धीरे धीरे कठिन शब्दो का ज्ञान कराते हैं। उनका ऐसा करना भी इसी सूत्र पर आधारित होता है।

(3) प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर (From Observed to Unobserved)

इस सूत्र के अनुसार जो वस्तुएँ, सस्थाएँ और घटनाएँ विद्यालय के परिवेश मे विद्यमान ह शिक्षण म पहले उनका उपयाग किया जाना चाहिए। भूगाल एव सामाजिक ज्ञान विषय मे इस सूत्र का भरपूर उपयोग किया जाता है। शिक्षक विद्यालय के समीप के पर्यावरण म विद्यमान पहाड नदी नाले वनस्पति पशु, खानें कृषि, सामाजिक सस्थाओ आदि का निरीक्षण कराते ह और स्थानीय पर्यावरण ज्ञान के आधार पर राज्य देश, महाद्वीप और ससार क विभिन्न देशो म विद्यमान वस्तुओ, सस्थाओ और घटनाओ का शिक्षण करते हैं। इसी क्रिया का प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर बढना कहते हैं। वह शिक्षण कितना हास्यास्पद होगा कि जिसम शिक्षार्थियो ने विद्यालय से कुछ मील दूर बहती हुई नदी का अवलोकन नही किया हो और उनको अमेजन और गगा नदियो का वर्णन सुनाया जा रहा हो पास मे स्थित किसी पहाडी का आरोहण नही किया हो उनको हिमालय पहाड के पर्वतारोहियो की कहानी सुनाई जा रही हो, और जिन्होने कपास का पौधा नही देखा हो और उनको ससार के प्रमुख कपास उत्पादक प्रदेशो का ज्ञान कराया जा रहा हो। अत प्रभावी शिक्षण के लिए "प्रत्यक्ष स परोक्ष की ओर" सूत्र को ध्यान मे रखकर शिक्षण आयाजित करना आवश्यक है।

(4) सम्पूर्ण से अश की ओर (From Whole to Part)

यह भी शिक्षण का एक प्रबल एव आधारभूत सूत्र है। इसके अनुसार शिक्षण सम्पूर्ण से अश की दिशा म आयोजित किया जाना चाहिए क्योकि अश सम्पूर्ण के परिप्रेक्ष्य म ही समझ म आ सकता है। उदाहरण के लिए, यदि मानव शरीर की विभिन्न हड्डियो का अध्ययन कराना हो तो पहले पूरा अस्थिपजर दिखाकर फिर उसके विभिन्न अवयव जैसे कपाल, धड और हाथ-पैर की हड्डियो का अध्ययन कराना चाहिए क्योकि वे विभिन्न अवयव अपने आप मे अलग नहीं हैं वे सम्पूर्ण अस्थिपजर के ही अश हैं। इसी प्रकार राजस्थान का भूगोल पढाने से पूर्व शिक्षार्थियो को पूरे देश के मानचित्र मे राजस्थान की स्थिति का अवलोकन करने का

अवसर मिलना चाहिए तभी राजस्थान का भूगोल भली भाँति समझ में आ सकेगा।

प्रारम्भिक कक्षाओं में अक्षर ज्ञान कराते समय शब्द का ज्ञान कराकर उस शब्द में निहित अक्षरों का ज्ञान कराना इसी सम्पूर्ण से अंश की ओर बढ़ने के सूत्र पर आधारित है। 'कागज' शब्द पढ़ना सिखाकर 'क' अक्षर का ज्ञान कराना अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि 'कागज' शब्द के परिप्रेक्ष्य में "क" अक्षर को सीखने का महत्त्व बालक को स्पष्ट होता है।

पूर्ण से अंश की ओर बढ़ना मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय गेस्टाल्ट मनोविज्ञान पर आधारित है। इस सम्प्रदाय के अनुसार प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया पूर्ण से अंश की ओर होती है, पहले सम्पूर्ण वस्तु का चित्र मस्तिष्क पर अंकित होता है फिर ध्यान उसके अंश की ओर जाता है। अतः शिक्षण के आयोजन में इस सूत्र का भली भाँति उपयोग किया जाना चाहिए।

(5) स्थूल से सूक्ष्म की ओर (From Concrete to Abstract)

इस सूत्र के अनुसार शिक्षण स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना चाहिए। स्थूल से अभिप्राय उन वस्तुओं से है, जिन्हें हम देख सकते हैं या छू सकते हैं। सूक्ष्म से अभिप्राय मस्तिष्क में वस्तु या विचार की कल्पना करके वांछित परिणाम पर पहुँचने से है। उदाहरण के लिए जोड़ना सिखाने के लिए प्रारम्भ में गोलियों के समूह बनाकर उनके माध्यम से जोड़ का विचार स्पष्ट करते हैं। दो और तीन का जोड़ सिखाने के लिए दो और तीन गोलियों के समूहों को मिलाकर कुछ गोलियाँ गिनाई जाती हैं और इस प्रकार जोड़ने का विचार स्पष्ट किया जाता है और शिक्षार्थियों को शनैः शनैः मानसिक स्तर पर ही जोड़ करने का अभ्यास कराया जाता है। इस सूत्र का उद्देश्य कदापि यह नहीं है कि शिक्षार्थियों में स्थूल रूप से ही चिन्तन करने की योग्यता का विकास किया जाय अपितु इसका तो उद्देश्य यह है कि शिक्षार्थियों में शनैः शनैः सूक्ष्म रूप से विचार करने की योग्यता का विकास हो सके।

शिक्षण स्थूल से प्रारम्भ करने पर शिक्षार्थियों को जो सजीव अनुभव प्राप्त होते हैं उनके आधार पर ही वे कालान्तर में सूक्ष्म रूप से विचार करने में समर्थ होते हैं। प्रारम्भ में शिक्षार्थियों को जितने अधिक स्थूल अनुभव कराए जाते हैं, उनकी सूक्ष्म रूप से विचार करने की शक्ति भी उतनी ही अधिक विकसित होती है।

(6) विशिष्ट से सामान्य की ओर (From Particular to General)

शिक्षण को प्रभावी बनाने की दिशा में इस सूत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब शिक्षार्थियों को विशिष्ट उदाहरणों के आधार पर सामान्यीकरण की ओर अग्रसर किया जाता है तो उनको ऐसा लगता है जैसे वे स्वयं ज्ञान का अन्वेषण कर रहे हों।

शिक्षण की ऐसी परिस्थिति म शिक्षार्थियो का आत्मविश्वास जाग्रत होता है और वे स्वय अन्वेषक की तरह विचार करना प्रारम्भ करते ह। उदाहरण के लिए यदि शिक्षक को यह सिखाना हो कि "त्रिभुज के तीनो कोणो का योग दो समकोण के तुल्य होता है" तो त्रिभुजा का यह सामान्य गुण वह अपनी ओर से नही बताएगा। शिक्षक पहले शिक्षार्थियो को विभिन प्रकार के त्रिभुज बनाने और उनम से प्रत्येक के तीनो कोणो को नापकर परिणाम अपनी अपनी पुस्तिका मे अकित करने को कहता है। जब शिक्षार्थी ऐसा करते है तो वे स्वय यह सामान्यीकरण करते है कि कैसा भी त्रिभुज हो, उसके तीनो कोणो का योग सदा दो समकोण के बराबर होता है। शिक्षण का यह सूत्र आगमन विधि पर आधारित है जिसका कि गणित, विज्ञान भूगाल आदि विषयो मे अधिकतर प्रयोग किया जाता है।

(7) अनुभव से तर्क की ओर (From Emprical to Rational)

विद्यालय मे आने से पूर्व ही शिक्षार्थियो को अनेक अनुभव हो चुके होते है। "उनको इस बात का अनुभव है कि गर्मी की ऋतु के पश्चात् वर्षा ऋतु आती है", "प्रतिदिन सूर्योदय एव सूर्यास्त होता है", "चन्द्रमा कभी आकाश म बडा दिखाई पडता है और कभी छोटा", "मिट्टी के बर्तन मे पानी ठण्डा रहता है" आदि आदि, परन्तु वे इन घटनाओ का कारण स्पष्ट नही कर पाते। अत शिक्षण की परिस्थिति म अनुभूत तथ्यो को आधार बनाकर उनके कारणो को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। इसे ही अनुभव से तर्क की ओर बढाना कहते ह।

(8) मनोवैज्ञानिक क्रम से तार्किक क्रम की ओर
(From Psychological to Logical)

मनोवैज्ञानिक क्रम का सम्बन्ध शिक्षार्थी की रुचियो, अभिवृत्तियो, आवश्यकताओ, प्रतिक्रियाओ आदि से है जबकि तार्किक क्रम का सम्बन्ध विषय वस्तु को व्यवस्थित क्रम मे प्रस्तुत करने से है। इन दोनो क्रमो मे से प्रारम्भ मे मनोवैज्ञानिक क्रम अपनाने से शिक्षार्थी की विषय वस्तु मे रुचि विकसित हो जाती है और विषय एव शिक्षक के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तिया विकसित कर लेता है। ऐसा हो जाने पर शिक्षार्थी के समक्ष विषय वस्तु को तार्किक क्रम म प्रस्तुत करना यथोचित रहता है क्योकि तार्किक क्रम अपनाए बिना विषय का सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अत मनोवैज्ञानिक क्रम तथा तार्किक क्रम दोनो का महत्त्व है। प्रारम्भ मे मनोवैज्ञानिक क्रम अपनाना विषय के प्रति रुचि विकसित करने तथा बाद म तार्किक क्रम अपनाना विषय के विशद् ज्ञान के लिए आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, शिक्षार्थियो को विज्ञान विषय म ऑक्सीजन गैस बनाने की विधि तथा प्रमुख गुणो का अध्ययन करना है। यदि प्रारम्भ म शिक्षार्थियो को यह स्पष्ट हो सके कि आक्सीजन किस प्रकार हमारे जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गैस है तो सम्भवत वे आक्सीजन गैस बनाने तथा उसके विभिन्न उपयोगो का अध्ययन करने मे विशेष रुचि लेंगे। इसी प्रकार गणित म आयत के क्षेत्रफल के प्रश्नो को हल करने से

पूव उसके महत्त्व के प्रति शिक्षार्थी स्पष्ट हो सकें और यह अनुभव कर सकें कि पुस्तका, मकानों, खिडकियों, दरवाजो, टेबुलो म स अधिकाश की आकृति आयताकार होती है और हम इनका प्रतिदिन उपयोग करते हैं तो इनसे सम्बन्धित प्रश्नो को हल करने के प्रति तत्पर हो जाते हैं। भाषा शिक्षण म भी सार्थक एव प्रयोजनशील शब्दों के माध्यम से अक्षर ज्ञान कराने के पीछे यह शिक्षण-सूत्र कार्य करता है। इस प्रकार यह शिक्षण-सूत्र विषय के प्रति रुचि विकसित करने की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी है।

(9) विश्लेषण से संश्लेषण की ओर

(From Analysis to Synthesis)

यह किसी भी समस्या को हल करने की स्वाभाविक मानसिक प्रक्रिया है। पहले व्यक्ति सम्पूर्ण समस्या को अनुभव करता है, इसके पश्चात विश्लेषण द्वारा उस समस्या का समाधान ढूँढता है और अन्त म संश्लेषण द्वारा उसका हल प्रस्तुत करता है। समस्याओं को हल करने का यही स्वाभाविक ढंग होता है।

उक्त विवेचन के आधार पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यह तो "सम्पूर्ण से अंश की ओर" शिक्षण सूत्र का विपरीत हुआ। वास्तव म ऐसा नहीं है। इस सूत्र मे भी पहले सम्पूर्ण समस्या से परिचित होना आवश्यक होता है। क्योंकि सम्पूर्ण समस्या का ज्ञान हुए बिना विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। साथ ही, मात्र विश्लेषण से समस्या का हल प्राप्त नहीं होता, यह कार्य संश्लेषण द्वारा ही पूरा होता है।

अनुदेशन एव प्रशिक्षण

(Instruction and Training)

प्राय अनुदेशन प्रशिक्षण तथा शिक्षण को एक ही शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप मे भ्रमवश ले लेते हैं। वास्तव म ऐसा नहीं है इन तीनो म पर्याप्त अन्तर है। अन्तर समझने म पूर्व इन शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है।

अनुदेशन

(Instruction)

अनुदेशन शब्द का साधारण भाषा म अर्थ है सूचना देना अथवा आज्ञा देना। अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आज्ञा देता है, उसे भी अनुदेश कहते है। शिक्षा के क्षेत्र मे अनुदेशन का अर्थ सूचना देने स अधिक लिया जाता है। किसी प्रयोग को करने से पूर्व अध्यापक छात्रों को कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। इन सूचनाओं का दिया जाना आवश्यक है। इनके अभाव म विद्यार्थी सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं कर सकेगा।

कक्षा शिक्षण के समय भी अनुदेशन शब्द का प्रयोग किया जाता है। कक्षा के अन्दर अध्यापक विषय को छात्रों तक पहुँचाने के लिए जो क्रिया करता है उसे

अनुदेशन कहते हैं। अनुदेशन शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य पाठ्यक्रमीय ज्ञान के आदान प्रदान की क्रिया है। यह औपचारिक रूप से कक्षा तक ही सीमित रहती है। इसलिए एक प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री ने कहा है कि "अनुदेशन कक्षा मे ही समाप्त हो जाता है जबकि शिक्षा जीवन के साथ साथ जीवनपर्यन्त चलती रहती है।[1]

कक्षा मे चल रहे अनुदेशन मे शिक्षक का वक्तव्य प्रश्नोत्तर चर्चा प्रयोग इत्यादि सभी आ जाते हैं। इसमे बालक की अपेक्षा पाठ्यक्रम पर अधिक ध्यान दिया जाता है क्योकि इसका लक्ष्य विशिष्ट अवधि मे पाठ्यक्रम पूरा कर शिक्षार्थी को परीक्षा के लिए तैयार करना है। अनुदेशन, इस प्रकार औपचारिक रूप मे कक्षा तक ही सीमित रहता है।

अनुदेशन मे अध्यापक का स्थान प्रमुख होता है क्योकि पाठ्यक्रम पूरा कराना उसका दायित्व समझा जाता है। कक्षा मे विभिन्न योग्यता रखने वाले विद्यार्थी होते हैं। अनुदेशन द्वारा इन विभिन्न योग्यता वाले विद्यार्थियो को समान रूप से लाभान्वित नही किया जा सकता है। कुछ विद्यार्थी, विशेष कर कमजोर विद्यार्थी अनुदेशन से बहुत कम लाभान्वित होते है।

चूँकि अनुदेशन का एकमात्र उद्देश्य पाठ्यक्रम को पूरा करना होता है इसलिए इसके द्वारा दिया गया ज्ञान अस्थाई तथा जीवन से असबद्ध होता है। अनुदेशन मुख्यत ज्ञान प्राप्ति अथवा कौशल प्राप्ति तक ही सीमित रहता है जबकि शिक्षा मे ज्ञान और कौशल के अतिरिक्त अन्य बातें भी आती हैं।

अनुदेशन की परिभाषा

(Definition of Instruction)

हैण्डरसन (Henderson)

"अनुदेशन को शिक्षा का एक भाग माना जाता है।

एस एम मुरिन (S M Mc Murin)

'अनुदेशन तकनीकी, शिक्षण और सीखने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को विशिष्ट उद्देश्यो के अनुसार डिजाइन करने, चलाने और उसका मूल्याकन करने का एक क्रमबद्ध तरीका है।

लुम्सडेन (Lumsdaine)

"अनुदेशन से तात्पर्य शक्षिक घटको को इस प्रकार व्यवस्थित करना है जो शिक्षार्थी मे व्यवहारगत परिवर्तन ला सकें।'

एस एम कोरे (S M Corey)

'अनुदेशन एक पूर्व नियोजित शक्षिक प्रक्रिया है जिसमे शिक्षार्थी के वातावरण को इस प्रकार नियत्रित किया जाता है कि विशिष्ट परिस्थितियो मे वह इच्छित व्यवहार को प्रदर्शित कर सके।'

1 Instruction ends in the classroom but education ends only with life

गेट्स (Gates)

"अनुदेशन वह प्रक्रिया है जो शिक्षार्थी को कुछ उद्देश्यों की-ओर प्रभावित करती है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा का क्षेत्र व्यापक है तथा यह जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है वहीं पर अनुदेशन का क्षेत्र सीमित है, यह केवल मानसिक विकास पर ही बल प्रदान करता है। अनुदेशन का उद्देश्य केवल परीक्षा की तैयारी कर विद्यार्थी को उसमें पास कराना है। अतः यह केवल स्मृति या रटने पर बल प्रदान करता है।

अनुदेशन प्रक्रिया

(Instructional Process)

यदि अनुदेशन को शिक्षक द्वारा विद्यार्थी के शैक्षिक वातावरण के सोद्देश्य निर्माण से लिया जावे तो इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम समय सीमा, उपलब्ध साधन और पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। उद्देश्यों को प्राय व्यवहारगत परिवर्तनों के रूप में लिखा जाता है। ये उद्देश्य यदि प्राप्त हो जाते हैं तो इसका अर्थ यह है कि अनुदेशन के पश्चात् शिक्षार्थी उन व्यवहारों को प्रदर्शित कर सकेगा।

अनुदेशन व्यवहारगत परिवर्तन पर आधारित है अतः इसमें दो प्रकार के व्यवहार परिभाषित किये जाते हैं प्रथम विषयवस्तु को सीखने के लिए आवश्यक पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित व्यवहार। इन्हें न्यूनतम आवश्यक व्यवहार (Entering Behaviour) कहते हैं तथा दूसरे प्रकार के व्यवहार वे हैं जिन्हें शिक्षार्थी विषयवस्तु को सीखने के प्रमाण स्वरूप प्रदर्शित करता है इन्हें अंतिम व्यवहार (Terminal Behaviour) कहते हैं। अनुदेशन न्यूनतम आवश्यक व्यवहार तथा अंतिम व्यवहार के मध्य शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बद्ध क्रियाएँ हैं।

शिक्षार्थी का ज्ञान

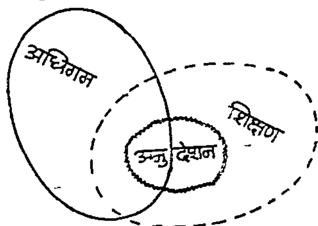
अनुदेशन एक विशिष्ट कक्षा के लिए नियोजित किया जाता है यदि इसे प्रभावी बनाना है तो जिन विद्यार्थियों को अनुदेशित किया जाना है उनकी पूर्ण जानकारी अध्यापक को होनी चाहिए। यह दो प्रकार की होती है। प्रथम उनके भौतिक वातावरण तथा द्वितीय उनके स्तर एवं क्षमता का ज्ञान।

अनुदेशन योजना का निर्माण

अनुदेशन योजना के प्रथम चरण में उन समस्त व्यवहारों को परिभाषित कर स्पष्ट किया जाता है जो कि अनुदेशन के उपरान्त शिक्षार्थी प्रदर्शित करेगा। इन व्यवहारों को मनोवैज्ञानिक आधार में इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उनमें एक तार्किक क्रम स्थापित हो जाय। अर्थात पहिले सीखे जाने वाला व्यवहार सर्वप्रथम तथा उसके बाद में सीखे जाने वाले व्यवहारों को बाद में रखा जाता है।

अनुदेशन को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षण सामग्री तथा शिक्षक शिक्षार्थी अनुक्रियाएँ पूर्व मे निश्चित कर ली जाती हैं। व्यवहार के प्रकट होने पर उसके पुनर्बलन की व्यवस्था भी की जाती है।

शिक्षण अनुदेशन तथा अधिगम मे निकट का सम्बन्ध है इसको लेन्ज (Lange)[1] द्वारा निम्न चित्र से दर्शाया गया है—



उपरोक्त चित्र से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षण अधिगम तथा अनुदेशन तीनों ही एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। परन्तु अनुदेशन अपने आप मे सकुचित क्षेत्र को लिए हुए है तथा यह शिक्षण का एक भाग है न कि सम्पूर्ण शिक्षण।

शिक्षण तथा अनुदेशन मे अन्तर

जैसा कि पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है कि अनुदेशन, शिक्षण का ही एक छोटा भाग है परन्तु फिर भी दोनो मे अन्तर है, शिक्षण मे शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य सदैव परस्पर अन्त क्रिया होती है। जबकि अनुदेशन मे शिक्षक की उपस्थिति अनिवार्य नही है यह बिना शिक्षक के भी सम्पन्न हो सकता है—जैसे रेडियो द्वारा शिक्षा देना, दूरदर्शन से पढाना इत्यादि। इस प्रकार के अनुदेशन मे शिक्षक प्रत्यक्ष रूप मे बालक के सम्मुख नही है परन्तु अनुदेशन चलता रहता है।

प्रशिक्षण

(Training)

प्रशिक्षण का अर्थ किसी विशिष्ट कौशल मे दक्षता प्रदान करने के लिए शिक्षित किये जाने से है। वसे कुछ मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण को केवल जानवरो तक ही सीमित रखना चाहते हैं। जैसे रीछ को नाचने का प्रशिक्षण देना। इसे गर्म टीन की चादर पर खडा कर मदारी डमरु बजाता है। चादर के गर्म होने के कारण रीछ पैरों को ऊपर बार-बार उठाता है, इसी समय डमरु की आवाज की जाती है जो कि

1 P C Lange Programmed Instruction NSSE Year Book University of Chicago Press 1967 P 4

गम चादर की अनुभूति मे जुड जाता है । यहा प्रशिक्षण मे तात्पर्य डमरु की आवाज पर रीछ का नाचना है जो कि अनुबन्धन के फलस्वरूप उसमे विकसित हुआ है। इसीलिए प्रसिद्ध अमेरिकन शिक्षा शास्त्री किलपट्रिक ने कहा है "जानवर तथा सर्कस के नट ट्रेण्ड होते हैं, शिक्षकगण शिक्षित होते हैं।

प्रशिक्षण का उद्देश्य किसी कार्य विशेष म व्यक्ति की दक्षता या कुशलता का विकास करना होता है । इसी कारण से इसे शिक्षण तथा अनुदेशन दोनो म भिन्न माना गया है । प्रशिक्षण का क्षेत्र सीमित है जबकि शिक्षण एक व्यापक प्रत्यय है। प्रशिक्षण द्वारा विद्यार्थी को बार बार अभ्यास करा कर एक विशिष्ट कार्य म कुशल बनाना है । चूँकि इसका लक्ष्य किसी क्रिया विशेष मे दक्षता अर्जित करने म है अत इसका उद्देश्य बौद्धिक की अपेक्षा शारीरिक कुशलता म अधिक सम्बन्धित है ।

प्रशिक्षण मे प्रशिक्षक का स्थान प्रमुख होता है वह प्रशिक्षणार्थियो म विभिन्न कौशलो के विकास के लिए प्रयत्न करता है । प्रशिक्षणार्थी को सैद्धान्तिक कार्य के साथ प्रायोगिक कार्य भी करने होते ह क्योंकि इनके बिना कौशल विकसित नही होगा ।

रूसो प्रशिक्षण को महत्त्व प्रदान करता है । उसके अनुसार मूलत मनुष्य पशु है अत उसे समाज म रहने लायक प्राणी बनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है । यह कार्य उसकी पाशविक प्रवृत्तियो के शोधन एव मार्गान्तरण से सम्भव ह ।

प्रशिक्षण और शिक्षा मे व्यापक अन्तर हैं । प्रशिक्षण का क्षेत्र सकुचित है जबकि शिक्षा एक व्यापक पद है । शिक्षण का कार्य कई बार अनेक रूपो म किया जाता है उदाहरण के लिए कार चलाना सिखाना केवल एक बार के सिखाने मात्र से व्यक्ति अच्छा चालक नही बन सकता । दक्षता प्राप्त करने के लिए उस कई बार अभ्यास करना होगा । कार चलाने की क्रिया को दो प्रकार स स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) कार के इंजिन इत्यादि का सैद्धान्तिक ज्ञान ।

(2) कार चलाने का कौशल अर्जित करना ।

उक्त दोनो बिन्दुओं मे प्रथम बिन्दु व्यक्ति के ज्ञान के क्षेत्र में जुडा है जबकि दूसरा बिन्दु उसके व्यवहार से । यदि दोनो उद्देश्यो को प्राप्त कर लिया जाता है तो यह सीखने सिखाने की क्रिया शिक्षण के अन्तर्गत आयेगी । यदि केवल द्वितीय बिन्दु अर्थात कार चलाने के कौशल म दक्षता प्रदान की जाती ह तो यह व्यक्ति का प्रशिक्षण होगा । इस प्रकार प्रशिक्षण शब्द का प्रयोग किसी व्यक्ति को एक विशिष्ट कौशल म दक्ष करने से लिया जाता है । उदाहरण के लिए नर्सिंग का प्रशिक्षण, हस्तकला प्रशिक्षण इत्यादि, मनुष्य की भाति पशियो म सम्बन्धित प्रशिक्षण जैसे पहलवाना कुत्ता, दौडना इत्यादि का प्रशिक्षण भी दिया जाता है ।

थामस ग्रीन ने प्रशिक्षण के बारे म कहा है कि वांछित व्यवहार के प्रशिक्षण मे बुद्धि का प्रकटीकरण बहुत कम होता है । प्रशिक्षण का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के व्यवहार स है जो कि वह गत्यात्मक कौशल के रूप म प्रशिक्षण के माध्यम स प्राप्त करता है ।

प्रशिक्षण में अभ्यास का विशेष महत्त्व है। यदि प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् व्यक्ति उसका अभ्यास छोड़ देता है तो वह अर्जित कौशल को भूल जाता है। उसे पुनः प्रशिक्षित करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि अर्जित कौशल का वह अभ्यास करता रहता है तो ये स्थायी बन रहते हैं। उदाहरण के लिए रोजाना कार चलाने वाले ड्राइवर के हाथ व पैर अपना कार्य आवश्यकतानुसार स्वतः ही करने रहते हैं।

शिक्षण, अनुदेशन तथा प्रशिक्षण में अन्तर

साधारणतः शिक्षण, अनुदेशन तथा प्रशिक्षण को एक अर्थ के लिए ही स्वीकार कर लिया जाता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। ये तीनों प्रत्यय आपस में भिन्नता लिए हुए हैं। अध्यापक तथा विद्यार्थी के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया जिसमें कि बालक का सर्वांगीण विकास हो सके, शिक्षण कहलाता है। अनुदेशन शिक्षण में भिन्नता रखता है। अनुदेशन में शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य पाठ्यक्रमीय ज्ञान का आदान प्रदान है। इस प्रकार यह आपचारिक व कक्षा तक ही सीमित है। प्रशिक्षण के अन्तर्गत शिक्षक शिक्षार्थी की क्रियाएं किसी विशिष्ट ज्ञान अथवा कौशल के विकास या दक्षता प्राप्त करने तक ही सीमित हैं। इस प्रकार उद्देश्य की दृष्टि से तीनों आपस में भिन्नताएं रखते हैं।

समय सीमा की दृष्टि से भी तीनों प्रत्ययों में विभिन्नताएं हैं। शिक्षण दीर्घ कालीन योजना है, यह व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास किये जाने हेतु निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जबकि अनुदेशन में एक निश्चित समय सीमा होती है। यह सीमा पाठ्यक्रम पूरा होते ही समाप्त हो जाती है। प्रशिक्षण भी एक निश्चित अवधि के लिए दिया जाता है। इसका समय सिखाये जाने वाले कौशल की जटिलता के अनुरूप अधिक या कम हो सकता है। अधिक जटिल कौशल युक्त कार्य के प्रशिक्षण का समय लम्बा होता है जबकि साधारण कौशल सिखाने हेतु प्रशिक्षण लघु अवधि के होते हैं।

शिक्षक अथवा शिक्षार्थी के महत्त्व की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि शिक्षण का केन्द्र बिन्दु बालक है। पाठ्यक्रम शैक्षिक एवं सहशैक्षिक क्रियाएं अध्यापन क्रियाएं इत्यादि बालक के सर्वांगीण विकास हेतु आयोजित या निर्मित की जाती हैं। अनुदेशन में बालक न पाठ्यक्रम पर विशेष बल दिया जाता है अतः यह ज्ञान केन्द्रित न होकर पाठ्यक्रम केन्द्रित बन जाता है क्योंकि पाठ्यक्रम एक निश्चित समयावधि में पूरा करना होता है। प्रशिक्षण में प्रशिक्षक का स्थान प्रमुख है। यहां कौशल के विकास करने में प्रशिक्षक की कुशलता महत्त्वपूर्ण है।

शिक्षण विधियों की दृष्टि से भी इन तीनों प्रत्ययों में व्यापक अन्तर है। शिक्षण हेतु विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियां हैं जिनका चयन बालकों के स्तर तथा शिक्षण सामग्री की प्रकृति पर निर्भर करता है। अनुदेशन में व्याख्यान तथा प्रश्नोत्तर विधि पर विशेष बल दिया जाता है। ऐसे भी अनुदेशन तैयार किये गये हैं जिनमें अध्यापक की आवश्यकता नहीं होती। प्रशिक्षण में विधि के बारे में निर्णय कुशलता के प्रकार को ध्यान में रखकर किया जाता है।

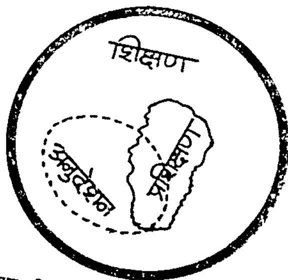
अनुदेशन, शिक्षण तथा प्रशिक्षण में अन्तर को स्पष्ट करने के लिए अग्रांकित तालिका दी जा रही है—

अनुदेशन, शिक्षण तथा प्रशिक्षण की तुलना

शिक्षण	अनुदेशन	प्रशिक्षण
(1) शिक्षण का स्वरूप व्यापक है।	यह केवल कक्षा तक ही सीमित है। शिक्षण का एक अंग है।	यह अत्यन्त सीमित है।
(2) शिक्षण एक दीर्घ अवधि प्रक्रिया है।	यह पाठ्यक्रमीय ज्ञान देने तक सीमित है।	कार्य की दक्षता प्राप्त होने तक यह बार बार दोहराया जाता है।
(3) शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास है।	इसका लक्ष्य पाठ्यक्रम पूरा करना है।	यह किसी विशिष्ट कार्य में दक्षता प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है।
(4) शिक्षण औपचारिक तथा अनौपचारिक अभिकरण द्वारा किया जा सकता है।	यह औपचारिक रूप में कक्षा में ही सम्पन्न होता है।	औपचारिक रूप में यह संस्थान तक सीमित है।
(5) यह बाल केन्द्रित होता है।	यह पाठ्यक्रम केन्द्रित है।	प्रशिक्षण का स्थान महत्त्वपूर्ण है।
(6) इसके अन्तर्गत विभिन्न शिक्षण दिया जा सकता है।	अनुदेशन में व्याख्या तथा प्रश्नोत्तर विधि पर विशेष बल प्रदान किया जाता है।	जैसी कुशलता विकसित करनी होती है उसके अनुरूप शिक्षण विधि निश्चित की जाती है।
(7) शिक्षण में दिया जाने वाला ज्ञान जीवन से सम्बन्धित उपयोगी तथा अनुभवाश्रित होता है। अतः स्थायी प्रकृति का होता है।	इसमें दिया जाने वाला ज्ञान पाठ्यक्रम की सीमा में सीमित होता है।	प्रशिक्षण में दिया जाने वाला ज्ञान कुशलता के विकास से सम्बन्धित होता है।

शिक्षण	अनुदेशन	प्रणिक्षण
(8) शिक्षण म मूल्याकन की अवधि लम्बी होती है। यह सतन चलता रहता है।	मूल्याकन पाठयक्रम की अवधि पूण होने पर किया जाता है तथा मूल्याकन प्रत्यक्ष होता है।	प्रशिक्षण प्रत्यक्ष होता है तथा दक्षता के अर्जित किये जाने से सम्बंधित है।
(9) शिक्षण के उपरान्त बालक को प्रमाण पत्र दिया जाना अनिवाय नही है।	औपचारिक परीक्षा के उपरान्त प्रमाण पत्र दिया जाना आवश्यक है।	प्रणिक्षण की समाप्ति पर प्रमाण पत्र दिया जाता है।
(10) बालक के सदव्यवहारो का पुनबलन किया जाता है जिससे कि उसके व्यक्तित्व म निखार आ सके।	ज्ञान सम्बंधित व्यवहारो को पुनबलित किया जाता है।	प्रशिक्षण के दौरान कौशल सम्बंधित व्यवहार को पुनबलित किया जाता है।
(11) शिक्षण का पाठयक्रम विस्तृत होता है तथा यह बालक के सर्वांगीण विकास से सम्बंधित होता है।	पाठयक्रम विषयानुसार सीमित तथा लघु अवधि का होता है।	इसका पाठ्यक्रम कौशल विकसित कर उसमे दक्षता प्राप्त करने के लिए एक सीमित अवधि का होता है।

शिक्षण, प्रशिक्षण तथा अनुदेशन के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों इत्यादि में अन्तर होते हुए भी इनमें एकरूपता है। ये शिक्षा दिये जाने के विभिन्न रूप हैं। हेन्डरसन ने शिक्षा के तीन रूप क्रमशः शिक्षण, अनुदेशन एवं प्रशिक्षण माने हैं। ग्रीन ने इन सम्प्रत्ययों के सम्बन्ध एवं अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शिक्षण एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य बालक की उच्च मानसिक क्षमताओं का विकास करना है। इस दृष्टि से अनुदेशन तथा प्रशिक्षण दोनों ही इसके निकट हैं। शिक्षण एक सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शिक्षण तथा प्रशिक्षण दोनों ही सम्मिलित किये जा सकते हैं। इसे निम्न वृत्त चित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है—



शिक्षण व्यवहार परिवर्तन पर सम्पूर्ण विकास पर बल देता है जिसके अन्तर्गत तीनों पक्ष अर्थात् ज्ञानात्मक पक्ष, भावात्मक पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष निहित हैं। यदि इस दृष्टि से समझा जाय तो अनुदेशन तथा प्रशिक्षण इसके लघु रूप में स्वीकार किए जा सकते हैं क्योंकि प्रशिक्षण कौशल आधारित शिक्षण है जबकि अनुदेशन ज्ञान में वृद्धि करता है।

सारांश

इस अध्याय में शिक्षण के प्रमुख सिद्धान्त तथा प्रमुख शिक्षण सूत्रों का वर्णन किया गया है। अनुभवी शिक्षक इनके अनुसार शिक्षण आयोजित करते हैं तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने में समर्थ होते हैं। अतः उन सभी शिक्षकों को, जो अपना शिक्षण-कार्य उन्नत करना चाहें, इन सिद्धान्तों तथा सूत्रों के अनुसार अपना शिक्षण रूप में वांछित सुधार करना चाहिए। संक्षेप में शिक्षण के प्रमुख सिद्धान्त अग्रांकित हैं—

(1) उद्देश्य निर्धारण का सिद्धात
(2) जीवन की वास्तविकता से सम्बन्धित करने का सिद्धान्त
(3) क्रियाशीलता का सिद्धात
(4) रुचि का सिद्धात
(5) अभिप्रेरण का सिद्धात
(6) चयन का सिद्धान्त
(7) वयक्तिक भिन्नता का सिद्धात
(8) आयोजन का सिद्धान्त
(9) जनतन्त्रीय प्रणाली का सिद्धान्त
(10) अभ्यास एव आवृत्ति का सिद्धान्त
(11) मनोरञ्जन का सिद्धात एव
(12) समवाय का सिद्धात ।

मुख्य शिक्षण-सूत्र इस प्रकार हैं—

(1) ज्ञात स अज्ञान की ओर
(2) सरल से कठिन की ओर
(3) प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर
(4) सम्पूर्ण से अश की ओर
(5 स्थूल स सूक्ष्म की ओर
(6) विशिष्ट से सामान्य की ओर
(7) अनुभव स तक की ओर
(8) मनोवज्ञानिक क्रम से ताकिक क्रम की ओर, एव
(9) विश्लेषण स सश्लेषण की ओर ।

अनुदेशन, प्रशिक्षण तथा शिक्षण तीनो म पर्याप्त अन्तर है। अनुदेशन से तात्पय शक्षिक घटनाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करना है जिससे कि शिक्षार्थी म व्यवहारगत परिवतन लाया जा सक। यह केवल मानसिक विकास पर ही बल प्रदान करता है। अनुदेशन शिक्षण का एक छोटा रूप है। शिक्षण में शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य अन्त क्रिया होना आवश्यक है जबकि अनुदेशन मे शिक्षक की उपस्थिति अनिवाय नही है।

प्रशिक्षण का उद्देश्य किसी काय अथवा कौशल विशेष मे दक्षता प्रदान किये जान हेतु बालक का निक्षित किया जाना है। इस प्रकार प्रशिक्षण का क्षेत्र सीमित है। प्रशिक्षण एक निश्चित समय के लिए दिया जाता है। समय का कम या अधिक होना व्यक्ति का सिखाय जाने वाले कौशल की जटिलता पर निभर करता है। शिक्षण का केन्द्र बिन्दु बालक है, अनुदेशन पाठ्यक्रम केन्द्रित होता है जबकि प्रशिक्षण का केन्द्र बिन्दु कौशल को विकसित करना है। ☐

अध्याय 3

शिक्षण में स्मृति

(Memory in Teaching)

स्मृति एक जटिल शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रिया है जब व्यक्ति किसी वस्तु को छूता देखता सूँघता या उसके बारे में सुनता है अथवा कोई घटना उसके सामने घटित होती है तब उसके ज्ञानवाहक तन्तु उस अनुभव को उसके ज्ञान केन्द्र में पहुँचा देते हैं। ज्ञान केन्द्र में उस अनुभव का एक प्रतिमा या छाप बन जाती है। यह प्रतिमा चेतन मन में कुछ समय रहने के पश्चात् अचेतन मन में चली जाती है। इस अनुभव को जो कि प्राणी के अचेतन मन में उपस्थित है चेतन मन में लाने की प्रक्रिया को स्मृति कहते हैं।

हमारे प्रियजन यदि वर्षों बाद भी मिलें अचानक पुरानी सारी बातें याद आ जाती हैं जो कि चेतनावस्था में उस समय नहीं थी। स्मृति एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने पूर्वानुभवों का उपयोग समस्या समाधान हेतु भी करता है। मानव जीवन समस्यायुक्त जीवन है। उसके सम्मुख समस्या के उत्पन्न होते ही वह अपने पूर्व अनुभवों को टटोलता है तथा इन गत अनुभवों की सहायता से समस्या समाधान कर लेता है।

स्मृति का अर्थ
(Meaning of Memory)

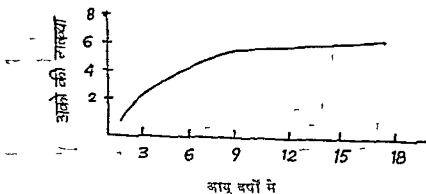
स्मृति मानव मस्तिष्क की एक विलक्षण शक्ति है। इसकी सहायता से मानव समस्त संस्कारों एवं अनुभवों को अपने मन में धारित कर सुरक्षित रखता है तथा आवश्यकता पड़ने पर वह इनका लाभ उठाता है। मैक्डुगल ने इसे मन की सामान्य धारण शक्ति का प्रकाश माना है जबकि स्टाउट के अनुसार स्मृति एक आदर्श पुनःस्मरण है।

मनुष्य का जीवन घटनाओं एवं समस्याओं से युक्त है। घटना घटित होने के पश्चात् वह धीरे धीरे इन्हें स्वतः ही भूलना प्रारम्भ करता है। कुछ घटनाएँ इतनी प्रभावी होती हैं कि उनका नाम या विवरण देने से वे तुरन्त याद आ जाती हैं। कुछ बातें दूसरों के याद दिलाने पर याद आ जाती हैं तथा बहुत सी मामूली बातें ऐसी भी होती हैं जिनको मनुष्य सदा के लिए भूल जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि

स्मृति द्वारा हम कुछ सस्कारो को मन मे सग्रहीत करते हैं तथा कुछ ऐस निबल सस्कार होने हैं जिहे हम लुप्त कर देते हैं। इस प्रकार स्मृति एव विस्मृति जीवन मे एक साथ काय करती हैं।

स्मृति का अथ स्पष्ट करने के लिए कुछ मनोवैज्ञानिको द्वारा दी गई परिभाषाओ पर विचार किया जाना तव सगत रहेगा। स्मृति की परिभाषाएँ निम्न प्रकार से हैं—

स्मति एक आवश्यक मानवीय गुण है। व्यापार, लेन देन, परीक्षा म प्रश्न के उत्तर देना, समस्या समाधान इत्यादि सब व्यक्ति की स्मति पर आधारित हैं। प्रश्न उठता है कि स्मति का विस्तार किस सीमा तक होता है। प्रारम्भ म बालक-बालिकाएँ कुछ तथ्य ही मात्र रख सकते है, ज्यो ज्यो वे बडे होते हैं उनके अनुभव बढते जाते हैं इसका प्रभाव उसकी स्मृति पर पडता है। स्टेनफोर्ड बिने द्वारा बुद्धि परीक्षण के माध्यम से अक स्मति परीक्षण किया गया। यह पाया गया कि जैसे जैसे बालक की आयु म वद्धि होती जाती ह उसकी स्मृति म विस्तार आता जाता है।



आयु वर्षों मे

ग्राफ म यह स्पष्ट होता है कि स्मृति का विस्तार 18 वप की आयु तक नियमित चलता रहता है। जीवन के प्रारम्भ मे तीन वप के लगभग स्मति की गति तीव्र होता ह तथा 18 वप पर यह स्मृति विस्तार म एक निश्चित विस्तार प्राप्त कर लेती है। प्रौढावस्था म शारीरिक शिथिलता से प्रौढो की स्मृति प्रभारी होती है।

स्मृति के प्रकार

मनोवैज्ञानिको ने स्मृति के अनेक प्रकार बताये है इनमे से कुछ महत्वपूण प्रकारों का वणन किया जा रहा है—

(1) तात्कालिक स्मृति (Immediate Memory)

कोई बात सीखने के बाद तुरत दोहरा देना तात्कालिक स्मृति कहलाती है। एक विद्यार्थी एक कविता याद कर उसे तुरन्त सुनाता है, यह उसकी त

स्मृति का एक उदाहरण है। इस प्रकार की स्मृति में याद की गई विषयवस्तु को अधिक अवधि तक धारण नहीं किया जा सकता है।

(2) स्थायी स्मृति (Permanent Memory)

व्यक्ति यदि किसी विषयवस्तु को याद करता है तथा अधिक समय बाद भी उसे पुनः दोहराने की क्षमता रखता है तो इस प्रकार की स्मृति को स्थायी स्मृति कहते हैं। इस प्रकार की बात भुलाई नहीं जा सकती क्योंकि वे हमारी स्थायी स्मृति का अंग होती है। इस प्रकार की स्मृति बालकों की अपेक्षा प्रौढ़ों में अधिक होती है।

(3) सक्रिय स्मृति (Active Memory)

जब व्यक्ति पिछले अनुभवों को याद करता है तथा वे तुरन्त उसे याद आ जाते हैं तो इस प्रकार की स्मृति को सक्रिय स्मृति कहते हैं। परीक्षा भवन में परीक्षार्थी पूर्व में याद की गई विषयवस्तु का तुरन्त स्मरण करता है यह उसकी सक्रिय स्मृति का एक उदाहरण है।

(4) निष्क्रिय स्मृति (Passive Memory)

वे बातें जो बिना किसी प्रयास के ही स्मृति में बनी रहती हैं, निष्क्रिय स्मृति कहलाती है। कुछ बातें बालक नित्यप्रति दोहराता है जैसे पहाड़े दैनिक उपयोग की वस्तुओं के नाम इत्यादि। वह बिना किसी प्रयास के उनका प्रत्यास्मरण कर सकता है अतः इस प्रकार के अनुभव निष्क्रिय स्मृति के उदाहरण हैं।

(5) तार्किक स्मृति (Logical Memory)

इस प्रकार की स्मृति का आधार तर्क या चिन्तन होता है। जब किसी वस्तु को सोच विचार कर अथवा तर्क के आधार पर याद किया जाता है तो यह तार्किक स्मृति कहलाती है। उदाहरण—पृथ्वी का गोल होने का प्रमाण, रेखागणित की साध्य इत्यादि।

(6) यांत्रिक स्मृति (Rote Memory)

जब किसी पाठ्यवस्तु को बार-बार अभ्यास कर उसे पूर्णरूप से सीख लिया जाता है तथा उसका प्रत्यास्मरण बिना किसी प्रयास के कर दिया जावे तो यह यांत्रिक स्मृति कहलाती है। जैसे विज्ञान एवं गणित के सूत्रों का प्रत्यास्मरण, साइकिल चलाते समय स्वतः सन्तुलन करना इत्यादि।

स्मृति के अंग
(Factors of Memory)

वुडवर्थ (Woodworth) ने स्मृति के चार प्रमुख अंगों का वर्णन किया है। ये अंग खण्ड कहलाते हैं। चूंकि स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है अतः ये खण्ड संगठित रूप में कार्य करते हैं अथवा एक दूसरे के सम्पूरक होते हैं। इनको केवल वर्णन करने या व्याख्या किए जाने हेतु अलग-अलग दर्शाया गया है। चार अंग हैं—

(1) अधिगम (Learning)

(2) धारणा (Retention)

(3) प्रत्यास्मरण (Recall)

(4) पहिचान (Recognition)।

1 अधिगम

अधिगम या सीखना स्मृति का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अ ग है। गिलफाड[1] (Gilford) के अनुसार किसी बात को भली भाँति याद रखने के लिए उसे अच्छी तरह सीख लेना आधी स अधिक लडाई जीत लेना है। किसी अनुभव को स्मरण तब ही किया जाना सम्भव है जबकि वह पूर्व म सीख लिया गया हो। किसी काय का बार-बार अभ्यास करने स तथा उसका पुनर्बलन किये जाने पर बालक के अचेतन मन पर एक गहरी छाप अंकित हो जाती है। इस प्रकार जब बालक किसी काय को पूण रूप म सीख लेता है तो वह आवश्यकता पडने पर उसका प्रत्यास्मरण भी कर सकता है। यदि कोई बालक किसी नियम को भली-भाति सीख लेता है तो यह नियम उसे याद हो जाता है। आवश्यकता पडने पर उसे वह पुन लिख सकता है। अथवा अन्य परिस्थितियों मे इसका उपयोग भी कर सकता ह। परन्तु यदि उसने यह नियम सीखा ही नही है तो वह उसका प्रत्यास्मरण नही कर सकेगा। इस प्रकार सीखना स्मृति का न केवल महत्त्वपूण अपितु आवश्यक प्रथम चरण है।

2 धारणा (Retention)

स्मृति बहुत बडी मात्रा मे धारण करने की शक्ति पर निभर करती है। जब कोई बालक किसी काय को सीखता है तो ये सीखी हुई क्रियाएँ एव ज्ञान धीरे-धीरे उसके अचेतन मन मे चली जाती हैं। अचेतन मन मे स्थानान्तरित अनुभवो को वह आवश्यकतानुसार उपयोग करता रहता है। यहाँ यह अनुभव कितने समय तक सचित रहते हैं यह बालक की धारणा शक्ति पर निभर करता है।

धारणा को कुछ मनोवैज्ञानिक जन्मजात योग्यता मानते हैं। उनके अनुसार कुछ बालकों की जन्म से ही धारणा शक्ति प्रबल होती है, अध्यापक इसमे कमी या वद्धि नही कर सकता है। जेम्स के अनुसार धारणा एक ऐसी जन्मजात शक्ति है जिसमे परिवतन किया जाना सम्भव नही है। रायबन भी इस बात से सहमत हैं। उनके अनुसार—"अधिकांश व्यक्तियो की धारणा शक्ति मे किसी विशेष सीमा तक परिवतन नही किया जा सकता है।" यदि ऐसा मान लिया जावे तो शिक्षक धारण-शक्ति के विकास हेतु कुछ प्रयत्न नही कर सकता है।

1 Gilford For an efficient memory effective learning is more than half the battle

मनोवैज्ञानिक खोजों से ज्ञात होता है कि धारण शक्ति विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न होती है। बाल्यकाल में उसका विकास तेज होता है। 11 वर्ष की उम्र तक धारण करने की शक्ति का विकास अधिक तीव्रता से होता है तथा बढ़ने की यह क्षमता 16 वर्ष तक अनवरत रूप से चलती रहती है 25 वर्ष की आयु के पश्चात यह कुछ शिथिल पड़ जाती है। इसके पश्चात इसमें वृद्धि नहीं होती है।

प्रश्न उठता है कि जो कुछ बालक सीखता है उसे वह किस प्रकार धारित करे? इस सम्बन्ध में शरीर शास्त्र का मत यह है कि सीखी गई पाठ्यवस्तु बालक के मस्तिष्क में कुछ संरचनाएँ अथवा चिह्न अंकित करती है। ये चिह्न स्मृति चिह्न कहलाते हैं। धारण करने की क्रिया अनवरत नहीं होती वरन् यह मस्तिष्क की संरचना का रूपान्तर है। यही रूपान्तर स्मृति चिह्न होते हैं। जब तक ये चिह्न बालक के मस्तिष्क में उपस्थित रहते हैं, वह पाठ्यवस्तु का स्मरण कर सकता है, तथा जैसे ही ये लुप्त हो जाते हैं वह उसे भूल जाता है।

मनोविश्लेषणवादी इस 'भूलने' के भ्रम से सहमत नहीं है। उनके अनुसार स्मृति चिन्ह अचेतन मन में चले जाते हैं तथा वहाँ से ये स्वयं कभी भी लौट नहीं सकते। यदि कोई परिस्थिति विशेष ऐसी हो तो इनको पुनः लौटाया जा सकता है उदाहरण—सम्मोहन की अवस्था में इनको लौटाया जा सकता है।

धारण करने की शक्ति में आमूलचूल परिवर्तन किया जाना सम्भव नहीं है फिर भी कुछ तत्त्व धारण शक्ति का प्रभावित करते हैं। ये निम्न प्रकार से हैं—

(1) मस्तिष्क

मस्तिष्क में स्मृति चिन्हों को ग्रहण करने की क्षमता में भिन्नता पाई जाती है। कुछ का मस्तिष्क सुग्राही होता है तो कुछ ऐसे भी होते हैं जो कि स्मृति चिन्हों को धारित करने में अधिक समय लगाते हैं या असमर्थ होते हैं। मस्तिष्क किस प्रकार से कार्य करता है इस बारे में विभिन्न मत हैं। एक प्रयोग लैशले (Lashley) ने चूहों पर किया। टेढ़े मेढ़े रास्ते से निकलने का चूहों को अभ्यास करा कर उनके मस्तिष्क में Cortex के विभिन्न भागों को शल्य चिकित्सा से हटा कर स्मृति चिह्नों के ग्रहण करने की क्षमता पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया। उसने यह पाया कि Cortex के भागों को अलग करने से धारणा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मस्तिष्क एक इकाई के रूप में कार्य करता है।

धारण करना एक जैविक प्रक्रिया है। धारणा करते समय बालक के मस्तिष्क की क्षमताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं।

(2) सीखने की मात्रा

सीखने की मात्रा एवं धारणा एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। सीखने की मात्रा जितनी अधिक होगी, धारणा भी अधिक होगी कम समय तक सीखा गया कार्य अधिक समय तक धारित नहीं किया जा सकता है।

(3) विषयवस्तु की मात्रा

एबिंघास[1] ने सीखने वाली विषय वस्तु की मात्रा का धारणा से सम्बन्ध ज्ञात करने के लिए दो समूह बनाए एक समूह को अधिक तथा एक को कम सामग्री याद करने को दी गई उसने यह पाया कि कम सामग्री याद करने वाले बालक अधिक समय तक विषय वस्तु को धारित कर सकते हैं। अधिक सामग्री होने पर बालक याद करने तथा धारित करने में कठिनाई का अनुभव करता है।

(4) स्वास्थ्य

स्वस्थ व्यक्ति शीघ्रता से विषयवस्तु को धारित कर सकता है, जबकि अस्वस्थ व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। यदि स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो बालक मानसिक रूप से सन्तुलित नहीं रहता तथा विषयवस्तु पर ठीक प्रकार से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। अतः बालकों की धारण शक्ति अच्छे स्तर की रखने के लिए उन्हें बीच-बीच में आराम भी दिया जाना चाहिए जिससे कि वे मानसिक रूप से स्वस्थ रहें।

(5) सीखने की विधियाँ

सीखने की विधियों का बालक की धारण शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। यदि वह बिना समझे यन्त्रवत किसी पाठ्यवस्तु को रट लेता है तो वह कुछ समय बाद उसे भूल जायगा। इसके विपरीत यदि वह उसे भली भाँति समझकर याद करता है तो विषय वस्तु को अधिक समय तक धारित करने में समर्थ हो सकेगा।

(6) सुखद या दुःखद अनुभव

जरसील्ड (Jersield) ने कुछ बालकों से अपने जीवन की कुछ प्रिय तथा कुछ अप्रिय घटनाओं को लिखने को कहा। बालकों ने ये घटनायें कागजों पर अंकित कीं। एक सप्ताह बाद उसने उन्हीं घटनाओं को दुबारा लिखने को कहा जो कि उसने पूर्व में लिखवाई थीं। उसने यह पाया कि बालक बहुत सी अप्रिय घटनाओं को लिखना भूल गये हैं। जो घटनायें या अनुभव प्रिय होते हैं उन्हें बालक अधिक लम्बे समय तक स्मृति में धारित किए हुए रखते हैं जबकि अप्रिय अनुभवों को स्मृति में से शीघ्र भुलाना मानवीय प्रकृति है।

(7) पुनरावृत्ति

सीखी गई वस्तु की जितनी अधिक पुनरावृत्ति होगी, उतने ही अधिक समय तक वह विषयवस्तु स्मृति में धारित की जा सकेगी। बालक सीखने के पश्चात भूलना प्रारम्भ करता है। यदि उस समय पर पुनः अभ्यास करा दिया जाये तो उसकी स्मृति ताजी हो जाती है तथा धारण शक्ति बढ़ जाती है।

3 प्रत्यास्मरण
(Recall)

मानसिक संस्कारों को जो कि बालक के अचेतन मन में पहिले से अंकित हैं, पुनः चेतना में लाना पुनः स्मरण अथवा प्रत्यास्मरण कहलाता है। पुनः स्मरण को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख नियम अग्रांकित हैं—

1 Ebbinghaus H Memory a Contribution to Experimental Psychology Translated by Ruger and Bessenius New York Teachers College Columbia University 1913

(1) समानता का नियम (Law of Similarity)

जिन नियमों, प्रत्ययों अथवा विचारों में समानता होती है, वे एक दूसरे के लिए उत्तेजना का कार्य करते हैं तथा इनको अधिक समय तक स्मृति में धारित किया जा सकता है। भारत का भूगोल पढ़ाने के पश्चात् इटली का भूगोल, लिवरपूल की समानता बम्बई के बन्दरगाह से की जा सकती है। अध्यापन को प्रभावशाली बनाने के लिए समानता के नियम का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

(2) विपरीत होने का नियम (Law of Contrast)

जिस प्रकार समान रूप गुण और स्वरूप वाली वस्तुएँ अथवा प्रत्यय एक दूसरे को उत्तेजित करते हैं, ठीक इसी प्रकार विपरीत वस्तुएँ भी मस्तिष्क को उत्तेजित करती है। एक की उपस्थिति में दूसरे की उपस्थिति आवश्यक हो जाती है। उदाहरण के लिए मीठा-कड़ुवा, सबसे अधिक वर्षा वाले स्थान और रेगिस्तान, दिन और रात का बनना, गर्मी पाकर पदार्थ का फैलना तथा ठंड पाकर सिकुड़ना इत्यादि। व्यावहारिक शिक्षण में समानता एवं विपरीता दोनों गुणों को साथ-साथ पढ़ाने से विद्यार्थी की धारण शक्ति अधिक समृद्ध होती है।

(3) सहचारिता का नियम (Law of Contiguity)

स्थान, समय तथा परिस्थिति के अनुसार जो विचार, घटनाएं अथवा अनुभव साथ-साथ प्रकट होते है उन्हें सहचारिता कहते हैं। स्थान सम्बन्धित उदाहरण श्याम-पट्ट, कक्षा कक्ष, टेबल कुर्सी, ग्लोब भूगोल इत्यादि हैं। एक साथ घटित होने वाली घटनाएं अथवा एक स्थान से सम्बन्धित वस्तुएँ यदि साथ में पढ़ाई जावें तो वे अधिक आसानी में धारित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए 15 अगस्त पर निबन्ध सिखाते समय स्वतन्त्रता का अर्थ, तैरने के नियम पढ़ाते समय पनडुब्बी की बनावट इत्यादि पढ़ाना तर्क संगत होगा।

कुछ उपनियम इस प्रकार हैं—

(1) नवीनता (Recency)

पुराने संस्कारों अथवा अनुभवों की अपेक्षा नवीन अनुभव तुरन्त स्मरण हो जाते हैं।

(2) स्पष्टता (Vividness)

जो विषयवस्तु स्पष्ट होती है तथा जिसमें किसी प्रकार की भ्रान्ति बालक के मन में उसके प्रति न हो ऐसी पाठ्यवस्तु आसानी से पुनः स्मरित की जा सकती है।

(3) रोचकता (Interest)

बालक की रुचि का उसकी स्मृति से निकट का सम्बन्ध है जिन बातों में उसकी रुचि होती है उससे सम्बन्धित बातों का प्रत्यास्मरण वह सरलतापूर्वक कर

लेता है। आजकल बालकों को टी वी देखने में बड़ी रुचि होने के कारण वे उसके कार्यक्रमों को आसानी से प्रत्यास्मरण कर लेते हैं।

4 पहिचानना (Recognition)

यह स्मृति का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। यह वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत बालक पूर्व अनुभवों के आधार पर वस्तु, तथ्य अथवा घटना का पुन: स्मरण करता है। बालक विद्योपार्जन के उपरान्त जब वह अपने गुरु को देखता है तो उसकी पहिचान पूर्व अनुभवों के आधार पर कर लेता है।

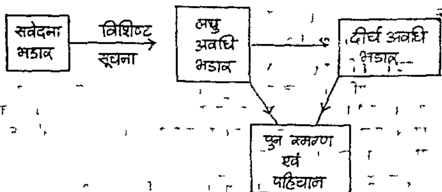
रौस[1] के अनुसार—"पहिचानना हमारी सचय शक्ति के प्रकाशन का प्रथम स्वरूप है जिसे हम स्मृति कहते हैं। पहिचानने की शक्ति में व्यक्तिगत विभिन्नता पाई जाती है। कुछ लोग अधिक व्यक्तियों के नाम याद रख सकते हैं जैसे एक सफल व्यापारी अपने ग्राहकों को शीघ्र पहिचान लेता है। पहिचानने करने के निम्न दो प्रकार हैं—

(क) बाह्य पहिचान (Explicit Recognition)—इस प्रकार की पहिचान बाह्य गुणों पर आधारित है जैसे रंग, रूप, आकृति इत्यादि। पदार्थ जैसे लोहा, चाँदी इत्यादि इस आधार पर पहिचाने जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में तुलना, तर्क, विचार, निर्णय आदि का समावेश रहता है।

(ख) आन्तरिक पहिचान (Implicit Recognition)—जब किसी वस्तु या प्रक्रिया को प्रत्यक्ष देख कर न पहिचाना जा सके तथा उसके अन्य गुप्त गुणों को आधार बना कर ही पहिचाना जा सके, आन्तरिक पहिचान कहलाती है जैसे किसी व्यक्ति को उसकी आवाज पहिचान कर उसे पहिचानना, पानी को छू कर उसके गर्म या ठंडे होने का अनुमान लगाना इत्यादि।

स्मृति की संरचना

स्मृति की संरचना निम्नांकित चित्र से स्पष्ट की जा सकती है—



आकृति स्मृति संरचना

1 Ross James S Groundwork of Educational Psychology

संवेदना भंडार में सूचनाएं संवेदना-अंग जैसे आँख, नाक, कान इत्यादि से पहुँचती हैं यहाँ पर यह कम समय तक रहती हैं तथा अधिकांश सूचनाएं लघु अवधि भंडार में चली जाती हैं। लघु स्मृति भंडार एक प्रकार की क्रियात्मक स्मृति है जहाँ कि सूचनाओं को दिशा प्रदान की जाती है तथा इनका समाधान एवं आधे सैकण्ड में लघु अवधि में हो जाता है।

मिलर[1] के अनुसार लघु अवधि भण्डार की क्षमता सीमित होती है। एक समय में यह सात स्वतन्त्र इकाइयां रख सकता है तथा ये सूचनाएं लघु अवधि के लिए रहती हैं। यदि लघु अवधि भंडार की सूचना का अभ्यास किया जाय तथा उनको संकेत में बदल लिया जाय तो ये स्थायी हो जाती हैं।

अभ्यास से यहाँ अर्थ बार बार दोहराने से है जैसे पहाड़ा याद करते समय बालक मन में अथवा मुँह से बोलकर बार बार दोहराता है तो यह स्थायी स्मृति का अंग बन जाता है। संकेत का अर्थ है कि सूचना को किसी सूक्ष्म भाषा या चिह्न में बदल कर याद रखना। उदाहरण के लिए जब बालक किसी बगीचे को देखता है तो पेड़, फूल, घास इत्यादि की प्रतिमा मस्तिष्क में सुरक्षित कर लेता है। कभी-कभी सूचना को शब्दों में सीमित कर भी याद कर लिया जाता है जैसे इन्द्र धनुष के सात रंग अंग्रेजी के शब्द VIBGYOR से कंठस्थ कर लिए जाते हैं।

दीर्घ अवधि भण्डार स्थायी स्मृति का भण्डार भी कहलाता है। जब बालक बार बार अभ्यास करता है तथा सूचना को ठीक प्रकार से समझ लेता है तो यह दीर्घ अवधि भण्डार में चली जाती है तथा वहां से वह जब चाहे पुनः स्मरण कर लेता है। परन्तु पुनः स्मरण के लिए यह आवश्यक है कि सूचनाएं स्मृति में ठीक प्रकार से संगठित की हुई होनी चाहिए। बालक इन सूचनाओं को स्मृति चिन्ह के रूप में मस्तिष्क में अंकित कर लेता है। आवश्यकता पड़ने पर वह इन अर्जित अनुभवों को पुनः स्मरण कर सकता है।

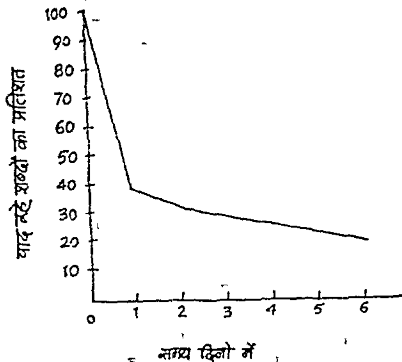
स्मरण करने की विधियां
(Methods of Memorization)

(1) रटने की विधि (Rote Method)

यह स्मृति की निम्नतम परन्तु प्रारम्भिक शिक्षण में एक आवश्यक एवं उपयुक्त विधि है। इसमें बालक विषयवस्तु को दोहरा कर रटता है जैसे गिनती, पहाड़े, वर्णमाला के अक्षर इत्यादि। इस प्रकार याद की गई विषयवस्तु यदि उपयोगी न हो तो बालक इसे शीघ्र भूल जाता है।

1 Miller G A The Magical Number Seven Plus or Minus Two Some Limits on Our Capacity for Processing Information The Psychological Review 63 2 1956 PP 81 97

एबिघास[1] ने निरथक शब्दो को रटने से सम्बन्धित एक प्रयोग किया। उसने स्वय कुछ शब्द रटे तथा फिर अपनी स्मृति का परीक्षण किया। उसने यह पाया कि निरथक शब्दो का 55 प्रतिशत याद करने के तुरन्त बाद, 65 प्रतिशत एक दिन के पश्चात्, 72 प्रतिशत 6 दिनो के बाद वह भूल चुका था।



निरथक शब्द यदि रट लिए जायें तो वे शीघ्रता से भुला दिये जाते हैं। एबिघास के प्रयोग मे यह निष्कर्ष निकलता है कि—

(क) जैसे जैसे समय बीतता है विस्मरण की मात्रा अधिक हो जाती है।

(ख) प्रारम्भ मे विस्मरण तेजी से तथा बाद मे धीरे धीरे होता है।

रटने की विधि सार्थक रूप मे छोटी कक्षाओ मे प्रयुक्त की जा सकती है, परन्तु इसका व्यापक रूप से उपयोग नही किया जाना चाहिए।

(2) पूर्ण विधि (Whole Method)

यहा पर किसी भी इकाई को भागो या टुकडो मे बाट कर याद नही किया जाता अपितु पूरे पाठ को समग्र रूप मे याद कर लिया जाता है। इससे विषयवस्तु की तारतम्यता बनी रहती है। उदाहरण के लिए एक कविता को याद करते समय इसे पूरा ही याद करते हैं।

1 Ebbinghaus Experiment quoted from N K Dutt Psychological Foundations of Education Delhi Doaba House 1978 P 112

(3) आंशिक विधि (Part Method)

जब पाठ्यवस्तु अधिक लम्बी होती है तथा उसे एक साथ याद किया जाना सम्भव नहीं होता है ऐसी स्थिति में उसको अनेक भागों में विभाजित कर लिया जाता है तथा इन भागों को क्रमशः याद कर लेते हैं। इससे यह सुविधा रहती है कि अधिक सूचनाएँ बालक बिना थकान या अनुभव किये ग्रहण कर सकता है। परन्तु एक भाग को याद करने के तुरन्त बाद यदि दूसरा भाग याद न किया जाय तो प्रायः पहले याद किया हुआ भाग बालक भूल जाता है।

(4) मिश्रित विधि (Mixed Method)

इस विधि में पूर्ण तथा आंशिक विधि दोनों का प्रयोग मिश्रित रूप में किया जाता है।

(5) प्रगतिशील विधि (Progressive Method)

यह आंशिक विधि का सुधरा हुआ रूप है। इस विधि में आंशिक विधि की तरह पाठ्यवस्तु को विभिन्न खण्डों में बाँट लिया जाता है। प्रत्येक खण्ड को एक के बाद एक याद किया जाता है। नवीन खण्ड को याद करना प्रारम्भ करने से पूर्व पिछले याद किये गये खण्ड की आवृत्ति कर यह निश्चित कर लिया जाता है कि पूर्व खण्ड अच्छी प्रकार से याद है। इस प्रकार याद की हुई सामग्री में नवीन खण्ड जुड़ते जाते हैं।

(6) साहचर्य-विधि (Associative Method)

सीखी जाने वाली विषयवस्तु को किसी घटना या प्रक्रिया से जोड़कर सीखना इस विधि के अन्तर्गत आता है। साहचर्य विधि में तथ्यों को पढ़ाते समय किसी रोचक घटना से भी जोड़ा जा सकता है। जैसे पेंसिलीन पढ़ाते समय घटना जिस कारण एक डबलरोटी पर लगी फफूँद कीटाणुओं भरी प्लेट पर एक किनारे गिरी तथा उस किनारे पर स्थित कीटाणु समाप्त हो गये, फफूँद पेंसिलीन के आविष्कार में सहायक हुआ।

(7) समयान्तराल विधि (Spaced Method)

वुडवर्थ ने इस विधि को सर्वोत्तम माना है। उसके अनुसार याद करने या स्थायी स्मृति के लिए समयान्तर का होना आवश्यक है। इस विधि के अनुसार किसी पाठ को याद करने के बाद उसे कुछ समय के लिए याद करना बन्द कर दिया जाता है बाद में पुनः दोहराया जाता है। इसमें विषयवस्तु का समयान्तरालों के पश्चात् बार-बार अभ्यास होता है तथा ज्ञान स्थायी बनता है।

अध्यापक को चाहिए कि वह अपने विद्यार्थियों की स्मृति बढ़ाने के लिए उपर्युक्त विधियों का उपयोग करें। पुराने समय में स्मृति को एक जन्मजात शक्ति माना जाता था अर्थात् यह एक ऐसी शक्ति मानी जाती थी जो कि बालक जन्म से

ही साथ लाता था तथा इसमे किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नही था। आधुनिक प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि स्मृति को प्रशिक्षण द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। मैक्डूगल का तो यहा तक मानना है कि स्मृति का विकास अभ्यास द्वारा किया जा सकता है।

अध्यापक को स्मृति की विभिन्न विधियो से छात्रो को अवगत कराना चाहिए। इसके साथ किसी विषय को वह किस विधि मे याद करे। इस सन्दर्भ मे मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिये। बालको की स्मृति के विकास के लिए स्मृति नियमों तथा स्मृति के प्रकारो को ध्यान मे रखकर उसे याद करने की मितव्ययी विधिया बतानी चाहिए।

अच्छी स्मृति के लक्षण
(Characteristics of Good Memory)

(1) अधिगम त्वरित गति से होना (Quick Learning)

स्मृति एव बुद्धि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति की स्मरण शक्ति अच्छे स्तर की है तो वह शीघ्रता से सीख लेगा। अच्छी स्मरण शक्ति वाले व्यक्ति की धारणा शक्ति उच्च प्रवृत्ति की होती है।

(2) त्वरित प्रत्यास्मरण (Quick Recall)

सीखी गई विषयवस्तु या कोई सिद्धान्त अच्छी स्मृति वाला विद्यार्थी फौरन ही पुन स्मरण कर लेता है। यह उसकी उच्च चेतना शक्ति के कारण होता है।

(3) शीघ्र पहिचानना (Quick Recognition)

किसी सीखी हुई विषयवस्तु का कुछ समय के बाद भूल जाना स्वाभाविक है। अच्छी स्मरण शक्ति वाला विद्यार्थी पुराने अनुभव या सीखी हुई विषयवस्तु का तुरन्त चेतना में ले आता है तथा पहिचान कर लेता है।

(4) उत्तम धारणा शक्ति (Good Retention)

किसी विषयवस्तु को अधिक समय तक स्मृति मे रखना। उसकी धारण शक्ति पर निर्भर करता है। अच्छी स्मृति के कारण अधिक बाते या अधिक समय तक विद्यार्थी मन मे धारित किये रख सकता है।

(5) उपयोगिता (Utility)

समय पर काम आने वाली स्मृति उपयोगिता की दृष्टि से उत्तम मानी जाती है जैसे परीक्षा के समय प्रश्न को हल करने से सम्बन्धित बातो का—परीक्षार्थी को याद आना स्मृति की उपयोगिता को दर्शाता है।

स्मृति-शिक्षण का प्रतिमान
(Model for Memorizing as Teaching)

क्या निर्बल स्मृति का विकास किया जाना सम्भव है ? इस प्रश्न का उत्तर

अपने आप मे स्पष्ट ह । पूर्व मे यह माना जाता था कि स्मृति का विकास सम्भव नही है परन्तु वतमान म हुए शोध इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि इसम विकास सम्भव है । स्मरण करने के शिक्षण का प्रतिमान हरबट ने विकसित किया है ।

स्मृति स्तर के शिक्षण क प्रतिमान के प्रारूप का वणन चार पक्षो म किया गया है—

(1) उद्देश्य (Focus)

(2) सरचना (Syntax)

(3) सामाजिक प्रणाली (Social System)

(4) मूल्याकन प्रणाली (Support System) ।

(1) उद्देश्य (Focus)

शिक्षण प्रतिमान के उद्देश्य से आशय उस बिन्दु से है जिसक लिए प्रतिमान का विकास किया जाता है । स्मृति-स्तर के शिक्षण का उद्देश्य बालक मे निम्न क्षमताओ को विकसित करने हतु किया जाता है—

(1) मानसिक पक्षो का प्रशिक्षण

(2) तथ्यो का ज्ञान प्रदान करना

(3) सीखे हुए तथ्यो का स्मरण रखना

(4) सीखे हुए तथ्यो का प्रत्यास्मरण करना ।

स्मृति-स्तर का शिक्षण, शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था मानी जाती है जिसमे मात्र तथ्यो सूचनाओ इत्यादि क प्रस्तुतिकरण एव याद करने पर बल प्रदान किया जाता ह । *बिग्गी के अनुसार 'स्मृति स्तर का अधिगम तथ्यपूर्ण सामग्री की स्मृति* करता है इससे अधिक कुछ नही । इसीलिए इस प्रकार क शिक्षण को विचारहीन स्तर (Thoughtless level) के रूप म भी माना जाता है ।

(2) सरचना (Syntax)

शिक्षण प्रतिमान की सरचना म शिक्षण क्रियाओ एव युक्तियो की व्यवस्था का वणन होता है । यह व्यवस्था इस प्रकार की जाती है जिसस कि उद्देश्य की प्राप्ति हो सके । स्मृति स्तर क शिक्षण की सरचना हरबट क पाच पदो पर निम्न प्रकार से आधारित है—

(क) प्रस्तावना (Preparation)—इस पद का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियो को स्मृति शिक्षण हतु तयार करना है । विषय वस्तु के शिक्षण से पूव अध्यापक का यह कत्तव्य है कि वह प्रस्तुत की जाने वाली विषय वस्तु के प्रति विद्यार्थियो की रुचि एव जिज्ञासा उत्पन्न कर । इसके द्वारा शिक्षक पाठ्यवस्तु के सार्थक विचारो को चेतन मन मे लाने का प्रयास करता है । प्रस्तावना, पूव ज्ञान या अनुभवो का नवीन ज्ञान या अनुभव स सम्ब ध स्थापित करने का काय करती है ।

(ख) प्रस्तुतीकरण (Presentation)—इस पद के अन्तगत शिक्षक नवीन ज्ञान छात्रो को प्रस्तुत करता है। यह प्रस्तुतीकरण अधिगम युक्त पदो मे बालक की मानसिक क्रियाओ का उत्तेजित कर किया जाता है। शिक्षक स्मृति के विकास हेतु शिक्षण सामग्री का एक निश्चित क्रम मे प्रस्तुत करता है, वह ऐसी शिक्षण तकनीक अपनाता है जिससे कि बालक शीघ्रता से विषयवस्तु का याद कर ले। उदाहरण के लिए किसी कविता के रटन के लिए सवप्रथम शिक्षक एक निश्चित क्रम मे उसे बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है, बच्चे उसे याद कर लते हैं और फिर शिक्षक उसको बार बार दोहराने के लिए कहता है। रट कर बिना देखे उसको लिखवाता है, यह स्मृति-स्तर का प्रस्तुतिकरण एव शिक्षण है।

(ग) तुलना एव सम्बन्ध (Comparison & Association)—नवीन ज्ञान जिसे कि बालक सीख चुका है, को अधिक सरल स्पष्ट एव बोधगम्य बनाय जाने हेतु तथ्यो, घटनाओ इत्यादि का पूव ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है अथवा तुलना की जाती है।

(घ) सामान्यीकरण (Generalisation)—मूल पाठ्यवस्तु को समझने के पश्चात छात्रो को इस पर सोचने एव विचार करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इसके आधार पर वह एसे नियमो का निर्माण करता है जिनका उपयोग अन्य परिस्थिति या समस्या के हल म किया जा सके।

(ङ) प्रयोग एव अभ्यास (Application)—सामान्यीकरण के उपरान्त निर्मित नियमो अथवा सीखे हुए सिद्धान्तो का अन्य परिस्थिति मे उपयोग कर नियम की सत्यता की जाच करता है। इसम इनकी पुष्टि भी होती है।

(3) सामाजिक प्रणाली (Social System)

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है, इसम शिक्षक एव छात्र का व्यवहार शिक्षण की सफलता के लिए आवश्यक है। स्मृति-स्तर के शिक्षण म अभ्यास का स्थान प्रमुख है। शिक्षक अधिक क्रियाशील रहता है तथा छात्र केवल श्रोता का काय करता है तथा शिक्षक को आदश मान कर उसका अनुसरण करता रहता है। शिक्षक छात्रो के सम्मुख पाठयवस्तु का प्रस्तुत कर उनका रटने के लिए प्रेरित करता है। इसम वह प्रमुख रूप से व्याख्यान विधि का उपयोग करता है। स्मृति स्तर पर अभिप्रेरणा का बाह्य रूप जसे शाब्दिक प्रेरणा पुरस्कार इत्यादि का प्रयाग किया जाता है।

(4) मूल्यांकन प्रणाली (Support System)

स्मृति स्तर के शिक्षण का मूल्याकन परम्परागत पद्धति द्वारा ही किया जाता है। मूल्याकन लिखित या मौखिक दोनो प्रकार स किया जाता है तथा इसमे रटने के द्वारा सीखी हुई बातें ही पूछी जाती हैं। यह लिखित निबन्धात्मक परीक्षा,

सही गलत पूर्ति वाले प्रश्नों एव लघु प्रश्नों के द्वारा किया जा सकता है। प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि व बालक की प्रत्यास्मरण एव पहिचान का मूल्याकन कर सकें।

स्मृति को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing Memory)

स्मृति को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व हैं उनमे से प्रमुख तत्वों का वर्णन निम्नलिखित है—

(1) प्रेरणा (Motivation)

शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य विद्यार्थी ज्ञान बालक को न देकर उसे ज्ञानार्जन हेतु प्रेरित करना है। प्रेरणा एक ऐसी आन्तरिक शक्ति है जो कि बालक को लक्ष्यो मुख व्यवहार कराती है। यह शक्ति का प्रवाह न कर बालक मे क्रियाशीलता उत्पन्न करती है। कक्षा शिक्षण म ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं जिन्हे शिक्षक प्रेरक के रूप म काम म लेकर स्मृति के विकास म सहायता कर सकता है। उदाहरण प्रशंसा पुरस्कार आरोप दण्ड इत्यादि।

प्रेरणा बालक म पढने के लिए रुचि भी पैदा करती है। यदि बालक को किसी विषय विशेष को पढने के लिए प्रेरित करते हैं तो वह उस विषय को पूर्ण रुचि से बार बार पढेगा। इस अभ्यास तथा रुचि के कारण पढी गई विषयवस्तु उसकी स्थायी स्मृति का अग बन जाएगी।

(2) रुचि (Interest)

यह एक प्रेरक शक्ति है जो बालक क ध्यान को किसी क्रिया अथवा विषय वस्तु की तरफ उन्मुख करती है। रुचि का शाब्दिक अर्थ "सम्बन्ध से है। यदि बालक की किसी विषय म रुचि ह तो उसके सम्बन्ध उस विषय से प्रगाढ होते जाते हैं।

प्रारम्भिक स्तर पर मनुष्य की रुचियाँ मूल प्रवृत्यात्मक होती हैं तथा अन्त म यह आत्म गौरव क स्थायी भावों के अनुसार हो जाती हैं। ऐसा पाया गया है कि यदि पाठ को रुचिपूर्ण ढग से बालक पढे तो वह अधिक समय तक उसे याद रहता है। अरुचिकर पाठ को याद करने के लिए बालक को चाहे जितना समय दिया जावे, वह उसे अधिक समय तक धारण करने म समर्थ नही हो पाता है।

(3) साहचर्य (Association)

ज्ञानार्जन एक सतत क्रिया है। साहचर्य के द्वारा और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। साहचर्य से यहा तात्पर्य सीखी जाने वाली विषयवस्तु का सम्बन्ध पूर्व अनुभव या वर्तमान परिस्थितियो स सम्बन्ध स्थापित कर याद करने से है। इस

विधि से नवीन बातें शीघ्रता से याद हो जाती हैं तथा अधिक समय तक याद रहती हैं।

(4) पुनरावृत्ति एवं अभ्यास (Exercise and Recapitulation)

याद की जाने वाली विषयवस्तु का बार-बार अभ्यास कराने से यह शीघ्रता से याद हो जाता है तथा स्मृति में अधिक समय तक बनी रहती है। यह सिद्धान्त थार्नडाइक के अभ्यास के नियम पर आधारित है। जिन बातों को बार बार दोहराया जाता है वे मस्तिष्क में स्थायी स्थान बना लेती हैं जबकि दोहराये न जाने पर वे बातें शीघ्र भुला दी जाती हैं। कुछ ऐसे विषय जैसे गणित, चित्र बनाना, कविता, याद करना, टाइप करना इत्यादि में अभ्यास की अधिक आवश्यकता पड़ती है। यदि इन विषयों को अधिक समय तक न दोहराया जाय तो बालक इन्हें भूल सकता है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि स्मृति पुनरावृत्ति तथा अभ्यास से प्रभावित होती है।

(5) मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य

स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है। मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ बालक शीघ्र याद कर लेता है। अस्वस्थ बालक थकान का अनुभव शीघ्र करते हैं। इस कारण वे याद करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

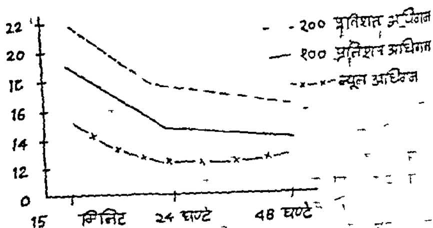
(6) सामग्री की सार्थकता

यदि पढ़ने वाली सामग्री विद्यार्थी के लिए सार्थक एवं उपयोगी होती है तो इससे इसमें इसकी रुचि जागृत हो जाती है तथा वह शीघ्रातिशीघ्र याद करने का प्रयास करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सार्थक सामग्री को बालक शीघ्रता से याद कर लेते हैं। अनुपयोगी सामग्री को वह शीघ्रता से भूल जाता है।

(7) अधिगम

अधिगम का स्तर और विधियों का स्मृति के ऊपर प्रभाव पड़ता है। गिलबर्ट[1] ने एक प्रयोग अधिक अधिगम (Over learning) पर किया। उसने 20 से 26 वर्ष के उम्र के मध्य 27 विद्यार्थी लिए, इन्हें 230 सार्थक शब्दों को रटने को कहा गया। निष्कर्ष रूप में परिणाम ग्राफ द्वारा दिखाये गये हैं।

1 Gilbert T F, Overlearning and the retention of meaningful prose Journal of General Psychology 56 281 289 1957



विद्यार्थियों से 22 शब्द 15 मिनिट बाद, 24 घण्टे तथा 48 घण्टे बाद पूछे गये। निष्कर्ष रूप में यह पाया गया कि जिन विद्यार्थियों ने 200 प्रतिशत अधिगम किया उनकी स्मृति में शब्द भण्डार अधिक पाया गया।

(8) शांतिपूर्ण वातावरण

अच्छी स्मृति के लिए शान्तिपूर्ण वातावरण की आवश्यकता होती है। जहां शोर गुल अधिक होता है अथवा अन्य किसी कारण से बार बार व्यवधान उत्पन्न होता है उस स्थान पर रहने वाला बालक अपने ध्यान को अधिक समय तक केन्द्रित नहीं कर पाता। इस कारण से वह विषयवस्तु को शीघ्र याद नहीं कर सकता है।

बालक की स्मृति के विकास हेतु सुझाव

(1) विषयवस्तु की पुनरावृत्ति एवं निश्चित लक्ष्य की पूर्ति हेतु किये जाने से स्मृति विकसित होती है।

(2) बालक की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का ध्यान रखा जाना चाहिए जिससे क्रियाएं करते समय वह थकान को अनुभव न कर उसे समय-समय पर विश्राम भी दिया जाना चाहिए।

(3) स्मृति के विकास हेतु सुझाई गई पद्धतियों में से उपयोगी पद्धति का प्रयोग करना चाहिए। इसे तय करते समय बालक की आयु, उसका मानसिक स्तर इत्यादि का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(4) विषयवस्तु रोचक और उपयोगी होने पर बालक उसे शीघ्रता से याद कर लेता है अतः याद कराने से पूर्व इसे अर्थपूर्ण एवं उपयोगी बना लेना चाहिए।

(5) विषयवस्तु की क्रमबद्धता स्मृति पर प्रभाव डालती है। अत इसे एक विशेष क्रम में याद कराई जानी चाहिए।

(6) पुनर्बलन का अपना विशेष प्रभाव है। इससे सीखी गई क्रिया या विषयवस्तु स्थाई बनती है अत याद कराते समय अध्यापक को पुनर्बलन जैसे स्वीकृति। अस्वीकृति प्रदान करना, शाबासी देना इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

(7) अभ्यास अधिगम प्रक्रिया म जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही स्मृति के विकास मे। शिक्षक द्वारा जितना अधिक अभ्यास समय समय पर कराया जायेगा उतनी ही स्मृति अच्छे स्तर की होगी।

स्मृति स्तर के शिक्षण को विचारहीन शिक्षण की सज्ञा दी गई है परन्तु इस प्रकार का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे अपना विशेष स्थान रखता है। इससे बोध एव चिन्तन स्तर के शिक्षण का आधार बनता है। उदाहरण के लिए रसायन शास्त्र शिक्षण म तत्वो के सूत्र याद करने आवश्यक हैं जिन्हे विद्यार्थी रटता है तथा इनका उपयोग अन्य रसायनिक क्रियाओ को समझने मे करता है। यदि उसे तत्त्वो के नाम एव सूत्र याद नही हैं तो वह इन्हे कठिनाई से ही समझ सकेगा। इस प्रकार स्मृति-स्तर का शिक्षण बालक के मनोनामसिक विकास में सहायक हो सकता है।

धारण-शक्ति को प्रभावित करने वाले बिन्दु

(1) शिक्षण उद्देश्य

बालक की धारण शक्ति का विकास शिक्षण उद्देश्यो पर निर्भर करता है। धारण करने की प्रक्रिया में ऐसा समझा जाता है कि बालक द्वारा पाठ को याद करते समय उसके मस्तिष्क पर चेतनता के कुछ कण शेष रह जाते हैं जो कि संरचनात्मक रूपान्तर द्वारा कुछ निशान छोड देते हैं। जब तक ये चिन्ह मस्तिष्क म विद्यमान रहते हैं, बालक किसी वस्तु का आसानी से स्मरण कर सकता है। शिक्षण उद्देश्य अध्यापन की दिशा तथा प्रयोजन को निश्चित करता है। इस रूप मे धारण शक्ति को ये प्रभावित करते हैं।

(2) शिक्षण सामग्री

(अ) अर्थहीन शिक्षण-सामग्री बहुत कम धारित की जा सकती है तथा इसको शीघ्रता से बालक भूल जाता है।

(ब) शिक्षण सामग्री रुचिकर हो तो वह शीघ्रता से धारित की जा सकती है। गद्य की अपेक्षा पद्य इसी कारण से शीघ्र याद हो जाता है। छपाई मशीनो के आविष्कार से पूव इसी कारण अध्यापक शिक्षण मे पद्य एव कविता का अधिक उपयोग करते थे।

(स) अर्थपूर्ण सामग्री को अधिक समय तक धारित किया जा सकता है, कारण कि इस प्रकार की सामग्री के सगठन मे बालक रुचि प्रदर्शित करता है।

(द) गामक अथवा कौशल सम्बन्धी ज्ञान अधिक-समय तक धारित किया जा सकता है। कुछ कौशल ऐसे हैं जिन्हें एक बार सीख लेने पर आजीवन भूलना कठिन होता है जैसे तैरना, साइकिल चलाना आदि।

(3) अधिगम की समग्रता

यदि विषयवस्तु को समग्र रूप में प्रस्तुत किया जाय तो यह शीघ्रता से धारित की जा सकती है।

(4) अन्य बाधाएं-

अनुसंधानों के माध्यम से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि धारण शक्ति की क्षीणता का अर्थ पुराने प्रभावों के नष्ट होने से नहीं है। नए प्रभाव पुराने प्रभावों को धूमिल कर देते हैं। लम्बे समय के बाद रास्ते में अचानक किसी व्यक्ति के मिलने से यदि कोई उसका नाम याद करना चाहे तो अचानक स्मृति में नहीं आता है कारण कि बीच के समय में याद किए नाम बाधा उपस्थित करते हैं। इस प्रकार नए प्रभाव पुराने प्रभावों की क्रियाशीलता में हस्तक्षेप करते हैं।

(5) रुचि

धारण शक्ति को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला तथ्य बालक की विषय-वस्तु में रुचि है।

साराश

स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है। इसकी सहायता से बालक समस्त अनुभवों एवं सस्कारों को मन में धारित कर सुरक्षित रखता है। स्मृति को तात्कालिक स्मृति, स्थायी स्मृति, सक्रिय स्मृति, निष्क्रिय स्मृति तथा यान्त्रिक स्मृति में वर्गीकृत किया जा सकता है। स्मृति के प्रमुख चार अंग क्रमश अधिगम, धारणा, प्रत्यास्मरण तथा पहिचान हैं जो कि सगठित रूप में कार्य करते हैं।

स्मृति की सरचना का प्रारम्भ सवेदना भडार से होकर यह स्थायी रूप में दीर्घ अवधि भडार में रहती है। स्मरण करने की अनेक विधियाँ हैं। वुडवर्थ के अनुसार समयान्तराल विधि सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

स्मृति शिक्षण का प्रतिमान हरबर्ट के पंच पद पर आधारित है जिसके द्वारा स्मृति प्रशिक्षण दिया जा सकता है। स्मृति शिक्षण को विचारहीन शिक्षण माना जाता है परन्तु यह बोध शिक्षण का आधार निर्मित करता है। बालक की स्मृति का विकास किया जाना सभव है इसके लिए अध्यापक को प्रयास करने चाहिए।

अध्याय 4

शिक्षण-उद्देश्य

(Educational Objectives)

जब कोई अध्यापक या व्यक्ति अध्यापन का कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय करता है तो हम इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए उसे कई शैक्षिक क्रियाएँ करनी होती हैं। इनमें प्रथम तथा महत्त्वपूर्ण कार्य "शिक्षण उद्देश्यों" को निश्चित करना है अर्थात् वह शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों को क्या सिखाना चाहता है, कौन-कौन से व्यवहारगत परिवर्तन लाना चाहता है? इनकी प्राप्ति हेतु शिक्षण-सामग्री, शिक्षण विधि इत्यादि का चुनाव करता है। शिक्षण की सफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों का मूल्यांकन कर यह परखना है कि शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है।

इस प्रकार शिक्षण की सम्पूर्ण क्रिया का मूलाधार शिक्षण उद्देश्य हैं। यदि इनको ठीक प्रकार से निश्चित किया जाता है तो अध्यापक का कार्य उत्कृष्ट प्रकृति का माना जायगा। इसके विपरीत यदि इनको ठीक प्रकार से नहीं लिया जाता है तो शिक्षण का कार्य भ्रमित दिशा में होगा। एक पाठ में "पानीपत के युद्ध" के बारे में पढ़ाते समय अध्यापन में निम्न उद्देश्य निर्धारित किये—

(1) छात्र पानीपत के युद्ध का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

(2) छात्र पानीपत के युद्ध को समझ सकेंगे।

(3) छात्र पानीपत के युद्ध का कौशल विकसित करेंगे।

(4) छात्र पानीपत के युद्ध में रुचि उत्पन्न कर सकेंगे।

उक्त उद्देश्य अपने आप में अपूर्ण, अस्पष्ट, भ्रामक तथा अप्राप्य हैं। पानीपत के युद्ध का ज्ञान किस रूप में प्राप्त कर सकेंगे तथा पानीपत के युद्ध में छात्र कौशल तथा रुचि कैसे उत्पन्न करेंगे, अनिश्चित तथा अधूरे वाक्य हैं जो कि न केवल हास्यास्पद बल्कि भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले हैं। इस स्थिति से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उद्देश्यों को ठीक प्रकार से लिखा जावे।

राबर्ट मेगर[1] ने उद्देश्य के महत्त्व को दर्शाने के लिए एक रोचक उदाहरण दिया है जो कि निम्न प्रकार से है—

पुरानी कथा है कि एक समुद्री घोड़े को कुछ धन आकस्मिक रूप से प्राप्त हो गया। उस धन को लेकर वह भाग्य की खोज में चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर उसे ईल मछली मिली। वह बोली—

— श्रीमान् कहाँ जा रहे हो ?"

— भाग्य की तलाश में।

— बहुत दूर है यदि आधा धन दो तो तेज गति से चलने वाले पर तुम्हें दे दूँ।'

समुद्री घोड़े ने आधा धन देकर पर ले लिए। आगे चलने पर स्पोन्ज से मुलाकात हुई। उसने भी समुद्री घोड़े को तेज गति से चलने वाली नाव दी तथा शेष धन ले लिया। अब यह चौगुनी रफ्तार से भाग्य की तलाश में चलने लगा।

रास्ते में "शार्क" मछली मिली। यह सुनकर कि समुद्री घोड़ा भाग्य की तलाश में है, उसने अपना मुँह खोलकर कहा "यदि तुम मेरे मुँह में छलांग लगा दो तो शीघ्र ही भाग्य को प्राप्त कर लोगे' बेचारा समुद्री घोड़ा छलांग लगाकर शार्क के मुँह में चला गया और वह उसे निगल गई।

उपरोक्त कथा से यह साराश निकलता है कि व्यक्ति को उसके कार्य का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए अन्यथा वह भटकता हुआ निरर्थक क्रियाओं में लीन होकर ही समाप्त हो लेगा। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह तथ्य खरा उतरता है। शिक्षण सामग्री, पाठ्यक्रम, विधियाँ इत्यादि शक्षिक उद्देश्यों से जुड़ी है।

परिवर्तन को आकस्मिक प्रक्रिया नहीं माना गया है। यह जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो कि व्यक्ति के जन्म से प्रारम्भ होकर उसके अन्त होने पर ही समाप्त होती है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति में होने वाले परिवर्तन सतत् एवं साम्य हैं। वर्तमान युग में ज्ञान के विस्फोट के कारण व्यक्ति के व्यवहार में इन परिवर्तनों को शीघ्रता से लाने का कार्य शिक्षा को सौंपा गया है। इस प्रकार शिक्षा एक पूर्व में नियोजित सोद्देश्य प्रक्रिया है जो कि प्रमुख रूप से (1) बालक में समाज द्वारा चाहे गये परिवर्तन को लाने में सहायता प्रदान करती है तथा (2) बालक के व्यक्तित्व का विकास शीघ्रता से करती है।

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यक्ति का विकास स्वतः भी सम्भव है तथा इसके लिए पूर्व नियोजन की भी आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु यह विकास बहुत धीमे त्रुटि एवं प्रयास पर आधारित तथा अनिश्चित दिशा में होगा। यदि वास्तव में शीघ्र विकास कर उसमें आवश्यक परिवर्तन लाने हैं तो

1 Robert F. Mager — Preparing Instructional Objectives Fearon Publishers 962, p 9

इसके लिए सोद्देश्य शिक्षण व्यवस्था की आवश्यकता होगी। इन्ही कारणो से शिक्षण से पूर्व उद्देश्य निर्धारित किये जाते है।

शैक्षिक उद्देश्यो का अर्थ एव परिभाषा

शिक्षण एक अन्त नियात्मक प्रक्रिया है जिसमे अध्यापक शिक्षार्थी से विभिन्न व्यवहार कराता है। शिक्षक तथा विद्यार्थी के मध्य यह क्रिया एक वाछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सम्पन्न की जाती है। विद्यार्थी के व्यवहार मे लाये जाने वाले परिवतन यदि पूव निश्चित है तो उन्हे नियोजित रूप से प्राप्त करना आसान होता है। इनके स्पष्ट रूप से वर्णित होने पर न केवल विद्यार्थी के विकास या स्तर का मापन सभव होता है अपितु शिक्षण म अपनाये जाने वाली विधियो की प्रभावशीलता के बारे मे दिशा निर्देश भी मिलते हैं। इस प्रकार शैक्षिक उद्देश्य के कथन है जिनका सीधा सम्बन्ध शिक्षार्थी मे शिक्षण के माध्यम से लाये जाने वाले परिवतना से है। इन्हे निम्न प्रकार मे पारिभाषित किया गया है—

(1) बी एस ब्लूम

शक्षिक उद्देश्य वे लक्ष्य हैं जिनकी सहायता से न केवल पाठयक्रम की रचना तथा अनुदेशन के लिए निर्देश ही दिया जाता हे अपितु इनसे मूल्याकन प्रविधिया की रचना एव प्रयोग के लिए विस्तृत विशिष्टताएँ भी प्राप्त होती हैं।

(2) डेविड ए पयने

शक्षिक उद्देश्यो से तात्पय छात्रो मे होने वाले उन परिवतनो से है जो शक्षिक क्रियाओ द्वारा नियोजित रूप मे लाए जाते हैं। ये परिवतन समाज द्वारा निधारित प्रतिमाना के प्रतिबिम्ब हैं।

(3) राबर्ट मेगर

अधिगम अनुभव अर्जित करने के उपरान्त शिक्षार्थी मे होन वाले व्यवहारगत परिवतना की पूव सूचना शक्षिक उद्देश्यो से प्राप्त होती है।

उद्देश्यो के प्रकार

(Types of Objectives)

उद्देश्यो को दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है

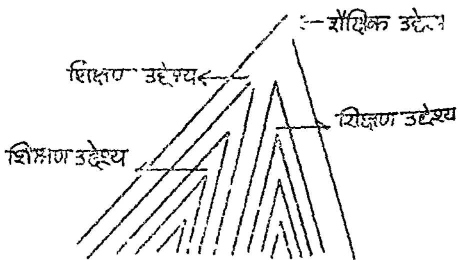
(1) शक्षिक उद्देश्य (Educational Objectives)

(2) शिक्षण उद्देश्य (Instructional Objectives)।

शिक्षा के लक्ष्य अथवा उद्देश्यो का सम्बन्ध शिक्षाक्रम के सभी विषयो तथा सहशिक्षा प्रवत्तियो से होता है जबकि शिक्षण उद्देश्य का सीधा सम्बन्ध विषय शिक्षण से है। शिक्षण उद्देश्य सकुचित होते हैं तथा कक्षा शिक्षण मे ही प्रयुक्त किये जाते हैं। शिक्षा के लक्ष्य अथवा उद्देश्य को प्राप्त करने मे बहुत लम्बा समय लगता है जबकि शिक्षण उद्देश्य पाठ अथवा इकाई की समाप्ति पर प्राप्त किये जा सकते

हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के उद्देश्य दीर्घकालिक एवं व्यापक होते हैं जिनकी प्राप्ति प्राथमिक स्तर की शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की जाती है जबकि शिक्षण उद्देश्य अल्पकालिक तथा पाठ या इकाई विशेष से ही संबंधित होते हैं।

उक्त विवेचना से यह आशय निकलता है कि शिक्षण उद्देश्य शनैः शनैः शिक्षार्थियों को शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करते हैं। इसे निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है—



शैक्षिक उद्देश्य एवं शिक्षण उद्देश्य में अन्तर निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है—

शैक्षिक उद्देश्य	शिक्षण उद्देश्य
(1) इनका सम्बन्ध शिक्षाक्रम के समस्त विषयों से होता है और ये व्यापक हैं।	(1) इनका सम्बन्ध विषय के शिक्षण से है अतः इनका क्षेत्र सीमित है।
(2) ये सामान्य होते हैं।	(2) ये विशिष्ट होते हैं।
(3) इनका स्रोत सामाजिक ज्ञान होता है।	(3) इनका मनोवैज्ञानिक आधार होता है।
(4) इनसे शिक्षण उद्देश्य निर्मित होते हैं।	(4) इनकी सहायता से शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

(5) ये कक्षान्तगत शिक्षण को परोक्ष रूप मे प्रभावित करते हैं।	(5) ये कक्षान्तगत शिक्षण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है।
(6) ये दीर्घावधि के पश्चात् ही प्राप्य हैं।	(6) ये अल्पावधि में प्राप्त किए जा सकते है।
(7) इनको परिभाषित करना कठिन होता है।	(7) इनको परिभाषित करना सरल होता है।

उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Classification of Objectives)

अध्यापन के समय अध्यापक के द्वारा दिया गया ज्ञान किस स्तर का है इस सम्बन्ध में एक शोध कार्य वाल्टर पीयर्स तथा हावर्ड गेज[1] (Walter Pierce and Howard Gety) द्वारा अमरिका में किया गया। उन्होंने पाया कि अध्यापक द्वारा कक्षा में दिया गया ज्ञान बालक की उच्च मानसिक क्रियाओं के अनुरूप नहीं है। अध्यापन के स्तर में सुधार लाने का एक तरीका यह हो सकता है कि उद्देश्यों का निर्धारण ठीक प्रकार से किया जावे। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए किसी एक योजना की आवश्यकता होती है जिसकी सहायता से अध्यापक यह कार्य विधिपूर्वक भली प्रकार पूरा कर सके।

उद्देश्यों के वर्गीकरण की एक विस्तृत एवं प्रभावी योजना शोधकर्त्ताओं के एक समूह ने, जिसके प्रधान बेंजामिन ब्लूम (Benjamin Bloom) थे, 1956 में तैयार की। इस योजना के अन्तर्गत बालक के मानसिक पक्ष के तीन पक्ष अर्थात् ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain), भावात्मक पक्ष (Affective Domain) तथा क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor Domain) बनाये गये। ज्ञानात्मक पक्ष में बालक से ज्ञान को पहिचानने या प्रत्यास्मरण करने की योग्यता तथा मानसिक योग्यताओं का अधिग्रहण कर उससे सम्बन्धित कौशलों के विकास को सम्मिलित किया गया। भावात्मक पक्ष में अभिवृत्ति, मूल्यों, रुचि सामंजस्य तथा प्रशंसा इत्यादि को रखा गया जबकि क्रियात्मक पक्ष में मनोगत्यात्मक (Psychomotor) कौशल से सम्बन्धित व्यवहार लिये गये।

ब्लूम तथा उसके साथियों ने ज्ञानात्मक तथा भावात्मक उद्देश्यों को वैज्ञानिक ढंग से निम्न से उच्च स्तर की ओर वर्गीकृत करके उपभागों में विभाजित

1 Walter Pierce and Haward Gety— Relationship among teaching cognative levels Testing and I. Q. Illinois School Research 6 No 2 (Winter 1973) P 27 31

...आत्मक पक्ष के पाँच भाग बनाये गये। ज्ञानात्मक पक्ष का वर्गीकरण ब्लूम ने 1956 में, भावात्मक पक्ष का वर्गीकरण ब्लूम, करथवाल तथा मसीआ ने 1964 में तथा क्रियात्मक पक्ष का वर्गीकरण सिम्पसन ने 1969 में किया। वर्गीकरण को सरल तथा व्यवहार आधारित बनाया गया है जिसकी सहायता से शिक्षक शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण सुगमता से कर सकता है। चूँकि ये उद्देश्य बालक में शिक्षा के माध्यम से लाए जाने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित हैं तथा वस्तुनिष्ठता रखते हैं अतः इनका मापन भी सरल बन गया। तीनों पक्षों के अन्तर्गत आने वाले शिक्षा उद्देश्यों का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

ज्ञानात्मक पक्ष

(Cognitive Domain)

ज्ञानात्मक पक्ष ज्ञान तथा सूचनाओं का संग्रह तथा उनके उपयोग से सम्बन्धित है। इस पक्ष में सूचनाओं, तथ्यों तथा ज्ञान की जानकारी सम्मिलित की गई है। अधिकांशतः शिक्षण द्वारा इसी पक्ष की प्राप्ति की जाती है। ब्लूम ने ज्ञानात्मक पक्ष में प्रत्यास्मरण अथवा ज्ञान के पहचानने और मानसिक योग्यताओं एवं कौशलों के विकास से सम्बन्धित उद्देश्यों को सम्मिलित किया है। इस पक्ष से सम्बन्धित निम्न 6 प्रमुख शिक्षण उद्देश्य हैं—

(1) ज्ञान (Knowledge)
(2) अवबोध (Understanding)
(3) ज्ञानोपयोग (Application)
(4) विश्लेषण (Analysis)
(5) संश्लेषण (Synthesis)
(6) मूल्यांकन (Evaluation)।

ज्ञानात्मक उद्देश्य

(Knowledge Objective)

इस उद्देश्य के अन्तर्गत शिक्षार्थी विषय से सम्बन्धित तथ्यों, घटनाओं, परम्पराओं, प्रत्ययों सिद्धांतों इत्यादि का अवबोध अर्जित करता है। अधिगम की दृष्टि से ज्ञानार्जन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। बालक को जितना अधिक ज्ञान होगा, वह उस प्रत्यय या सिद्धान्त को उतनी ही भली प्रकार समझ सकेगा। यह एक वास्तविक धारणा है कि विद्यार्थी के पास जितना अधिक ज्ञान भण्डार होगा, वह विश्व में घटित होने वाली घटनाओं को उतनी ही अधिक बारीकी से समझ सकेगा। परन्तु बालक को दिये जाने वाले ज्ञान की प्रकृति में स्थायित्व होना आवश्यक है। ऐसा ज्ञान जिस पर समय या स्थान का प्रभाव पड़े अर्थात् वह बदलने वाला हो, कम दिया जावे। ऐसा ज्ञान जो कि स्थाई प्रकृति का है बालक की समस्या हल करने में सहायता प्रदान करेगा।

ज्ञान से सम्बन्धित विषय-वस्तु का निर्धारण करते समय निम्न बातों का ध्यान एक शिक्षक को रखना चाहिए—

(1) बालक के स्तर के अनुसार उसे ज्ञान दिया जाना चाहिए।
(2) ज्ञान बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला हो।
(3) पढ़ाये जाने वाले ज्ञान में आन्तरिक क्रमबद्धता हो।
(4) ज्ञान बालक के जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए।
(5) ज्ञान की मात्रा बालक के लिए बोधगम्य हो।

ज्ञानात्मक उद्देश्यों का निर्माण करते समय अध्यापक इस बात पर बल देता है कि शिक्षार्थी अर्जित ज्ञान का प्रत्यास्मरण तथा पुनर्पहिचान कर सके। इस हेतु उसकी स्मरण योग्यता पर विशेष बल प्रदान किया जाता है।

(1) अवबोध (Understanding)

अवबोध, ज्ञान से उच्च स्तर की मानसिक योग्यता है। बोध के लिए ज्ञान की आवश्यकता होनी है। ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति पर बालक जिस पाठ्यवस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे अपने शब्दों में अनुवाद करना (Translation), व्याख्या करना (Interpretation) तथा उल्लेख करना आदि क्रियाएँ अवबोध के अन्तर्गत आती हैं। इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी विभेदीकरण करता है, विवेचन करता है, तुलना करता है, वर्गीकरण तथा स्पष्टीकरण करता है, अशुद्धि पहिचान कर उनको शुद्ध करता है इत्यादि मानसिक क्रियाएँ करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

(2) ज्ञानोपयोग (Application)

प्रयोग के लिए ज्ञान तथा बोध दोनों का होना आवश्यक है। यदि कोई विद्यार्थी किसी सिद्धान्त का ज्ञान एवं बोध प्राप्त कर चुका है तो उसका उपयोग भी भली प्रकार से कर सकेगा। उदाहरण के लिए यदि किसी कमरे की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई दी हुई हो व प्रति वर्ग इकाई रंग करने का व्यय उसे ज्ञात हो तो कमरे की चारदीवारी पर रंग कराने का व्यय निकालना ज्ञानोपयोग-उद्देश्य के अंतर्गत आयेगा। यहाँ बालक को क्षेत्रफल निकालने के सूत्र का ज्ञान तथा बोध कि फर्श पर रंग नहीं किया जायेगा इत्यादि होना आवश्यक है। इस ज्ञान के अभाव में वह समस्या को ठीक प्रकार से हल नहीं कर सकेगा।

(3) विश्लेषण (Analysis)

बालक के ज्ञानात्मक पक्ष का चौथा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विश्लेषण है। इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर विद्यार्थी किसी प्रत्यय का विश्लेषण कर उसको निर्मित करने वाले तथ्यों को पहिचान सकेगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह प्रत्यय से सम्बन्धित तत्त्वों का विश्लेषण कर उनके मध्य सम्बन्ध को ज्ञात कर सके। कुछ उदाहरण अग्रांकित हैं—

(1) किसी प्रशिक्षणार्थी का व्यवहारगत परिवर्तनों में लिये गये कुछ के कथन दिये जावें तथा वह इनमें प्रयुक्त अनुपयुक्त शब्दों का हटा...

(2) यदि किसी विद्यार्थी को कुछ वस्तुएं दी जायें तथा वह इनको वर्ग बाट कर अलग-अलग ढेरियों में रख सके।

(4) संश्लेषण (Synthesis)

इस उद्देश्य की प्राप्ति पर विद्यार्थी अनेक स्रोतों से तत्वों का निकाला नवीन ढांचा तैयार कर लेता है। अपने ज्ञान तथा बोध के आधार पर सृजनात्मक योग्यता का उपयोग करते हुए बालक नवीन प्रत्यय या वस्तु का निर्माण करता इसके लिए यह आवश्यक है कि उसे विषयवस्तु का पूर्ण ज्ञान हो। इसके अभाव वह नवीन अथवा अनूठी वस्तु का निर्माण नहीं कर सकेगा।

संश्लेषण के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से है—

(1) किसी नवीन प्रकरण पर बिना पढ़े दो या तीन मिनिट तक अपने विचार प्रस्तुत करना।

(2) विद्यालय सम्बन्धित समस्या जैसे "बालक पढ़ाई बीच में क्यों छोड़ देते है" पर परिकल्पना का निर्माण करना।

(5) मूल्यांकन (Evaluation)

ज्ञानात्मक पक्ष की सबसे उच्च स्तर की मानसिक प्रक्रिया मूल्यांकन करना है। मूल्यांकन से अभिप्राय है कि बालक नियमों, तथ्यों एवं सिद्धांतों की आलोचनात्मक रूप में व्याख्या कर सके। अपने पक्ष को प्रस्तुत करते समय वह उदाहरण, तथ्य इत्यादि का उल्लेख भी करे। इस उद्देश्य की प्राप्ति पर विद्यार्थी में निर्णय लेने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं—

(1) कक्षा का आकार तथा रूप के बारे में जानकारी प्राप्त करने के उपरांत बालक उसे किस प्रकार सजायें, तर्क सहित विवरण दें।

(2) "उपस्थिति की अनिवार्यता" पर अपनी विवेचनात्मक टिप्पणी सोदाहरण प्रस्तुत करें।

ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों का वर्गीकरण एवं पहिचान
(Classification of Objectives of Cognitive Domain with Specification)

(1) ज्ञान (Knowledge)

(अ) प्रत्यास्मरण करना (Recall)

(1) तथ्य सम्बन्ध, घटना तथा नियम (Facts, Principles and Relationship)

(2) पदों का ज्ञान (Terminology)।

(ब) पहचान करना (Recognise)

(1) तथ्यों, सम्बन्धों तथा नियमों का पहचानना।

(2) परिभाषा, सूत्र या प्रतीक का पहचानना।

(2) अवबोध (Understanding)

बालक

(1) दिये गये चित्र या नमूने में त्रुटियों का इंगित कर सके।

(2) लिखे गये वाक्य में त्रुटियां निकाल सके।

(3) दिये गये चित्र, वाक्य सिद्धान्त, नमूने इत्यादि में सुधार कर सके।

(4) किसी सिद्धान्त की व्याख्या अपने शब्दों में कर सके।

(5) शब्दों को संकेत में तथा संकेत को शब्दों में प्रकट कर सके।

(6) सजीव अथवा निर्जीव वस्तुओं का किसी गुण के आधार पर वर्गीकरण कर सके।

(7) किसी सिद्धान्त का स्पष्ट करने के लिए उदाहरण दे सके।

(8) किसी विषयवस्तु के तार्किक क्रम का ज्ञान कर सके।

(9) एक जैसी वस्तु या प्रत्ययों में भेद स्पष्ट कर सके।

(10) गणितीय निष्कर्षों का सत्यापन कर सके।

(3) ज्ञानोपयोग

इस उद्देश्य की प्राप्ति पर बालक निम्न व्यवहार प्रदर्शित करेगा—

(1) दिये गये तथ्यों की पर्याप्तता के बारे में निर्णय लेना।

(2) तथ्यों में सम्बन्ध स्थापित करना।

(3) सुधार किये जाने हेतु नवीन योजना प्रस्तुत करना।

(4) किसी समस्या का हल करने हेतु विभिन्न हल प्रस्तुत करना।

(5) दिये गये तथ्यों की सहायता से सामान्य सिद्धान्त बनाना।

(6) घटना तथा तथ्य में कार्य कारण सम्बन्ध ढूँढना।

(7) पूर्वानुमान लगाना।

(8) पूर्वानुमान का सत्यापन करना।

(4) संश्लेषण

(1) दिये गये तथ्यों से किसी नवीन सम्प्रेषण का उत्पादन।

(2) किसी नवीन कार्य के लिए योजना का निर्माण करना।

(3) अमूर्त सम्बन्धों का वर्गीकृत कर नए समूह बनाना।

(5) विश्लेषण

(1) किसी विषयवस्तु का उसके घटकों में बाटना।

(2) तत्वों का विश्लेषण करना।

(3) सम्बन्धों का विश्लेषण करना।

(4) नियम या सिद्धान्त को उसके तत्वों में विश्लेषण करना।

(6) मूल्यांकन

(1) किसी विषय के औचित्य के बारे में निर्णय देना।
(2) नवीन समस्या के पक्ष या विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करना।
(3) साक्षियों के आधार पर मूल्यों का निर्धारण।

भावात्मक पक्ष

व्यक्तित्व का यह पक्ष रुचियों तथा अभिवृत्तियों आदि उद्देश्यों से सम्बन्धित है। रुचि किसी अनुभव में सविलीन होने और उसमें लगे रहने की मानसिक प्रवृत्ति है। अभिवृत्ति व्यक्ति के उन दृष्टिकोणों की ओर संकेत करती है, जिनके कारण वह किसी वस्तु, परिस्थिति या व्यक्ति के प्रति सकारात्मक अथवा नकारात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है। यदि शिक्षण के फलस्वरूप शिक्षार्थी में विषय के प्रति रुचि विकसित हो जाती है तो वह विषय से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता है, रेडियो वार्ता सुनता है उससे सम्बन्धित दूरदर्शन के कार्यक्रम देखता है, विषय परिषद् का सक्रिय सदस्य बनता है आदि। रुचि जाग्रत होने पर विद्यार्थी ज्ञान के अर्जित करने में प्रयत्न करने लगता है।

पियर्से तथा लावर[1] ने भावात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है—

(1) अधिग्रहण करना (Receiving)
(2) अनुक्रिया (Reacting)
(3) अनुमूल्यन (Conforming)
(4) संधारण (Processing Values)
(5) व्यवस्थापन (Integrating Values)
(6) चरित्रीकरण (Judging)।

(1) अधिग्रहण करना (Receiving)

(1) अभिज्ञान (Awareness)
(2) ग्रहण करने की तत्परता
(3) ध्यान केन्द्रित करना।

(2) अनुक्रिया (Reacting)

(1) अनुक्रिया करने की तत्परता
(2) अनुक्रिया करने की संतुष्टि
(3) अनुक्रिया करने की इच्छा।

(3) अनुमूल्यन (*Conforming*)

(1) मूल्य को स्वीकृति प्रदान करना

---

1 Walter D Pierce and Michael A Lerber— Objectives & Methods f Secondary Teaching Prentice Hall 1977 P 68 72

(2) किसी विशेष मूल्य को प्राथमिकता प्रदान करना
(3) मूल्य के प्रति प्रतिबद्धता।

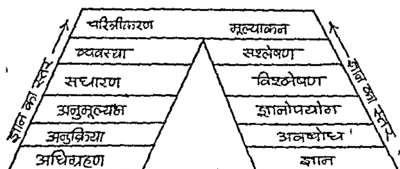
(4) सधारण (Processing Values)
(1) अपनी अभिवृत्ति का स्वमूल्यांकन करना
(2) विभिन्न मूल्यो का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(5) व्यवस्थापन (Integrating Values)
(1) मूल्य प्रणाली को धारित करना
(2) मूल्य प्रणाली का संगठन करना।

(6) चरित्रीकरण (Judging)
(1) मूल्यो का सामान्य समूह बनाना
(2) मूल्यो को आत्मसात करना
(3) मूल्य समूह का विशिष्टीकरण करना।

ज्ञानात्मक पक्ष एव भावात्मक पक्ष के मध्य सम्बन्ध

व्यक्ति मे ज्ञानात्मक एव भावात्मक पक्ष अलग-अलग नही है। ये एक दूसरे मे सम्बन्धित हैं इसे निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है—



ज्ञानात्मक पक्ष म प्रारम्भ म ज्ञान का स्थान है जिसका सम्बन्ध भावात्मक पक्ष के अधिग्रहण की भावना स है। ज्ञानात्मक पक्ष मे ज्ञान को आधार इसलिए माना गया है कि अन्य उद्देश्य इसके बिना प्राप्त नही किये जा सकते। भावात्मक पक्ष म भी बिना अधिग्रहण की इच्छा के अन्य क्रियाए नही हो सकती हैं। अन्य उद्देश्य भी आपस मे स्तरानानुसार एक दूसरे से सम्बन्धित है।

क्रियात्मक पक्ष
(Psychomotor Domain)

इस पक्ष का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के मनोगत्यात्मक कौशल के विकास से है। मनोगत्यात्मक कौशल का तात्पर्य मासपेशीय एव आगिक गतियो को किसी प्रयो

जन के निमित्त नए प्रतिमान में गठित करने में है। इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी मानचित्र खींचता है, रेखाचित्र बनाता है, उपकरणों का प्रयोग करता है, मॉडल बनाता है आदि।

मनोगत्यात्मक कौशल के अन्तर्गत सीखी हुई गतियों का नवीन परिस्थितियों या सगठन में सगठित करने से है। इसका वर्गीकरण निम्नानुसार है—

(1) प्रत्यक्ष (Perception)
( ) विन्यास (Cite)
(3) निर्देशित अनुक्रिया (Guide Response)
(4) कार्य विधि (Mechanism)
(5) जटिल बाह्य अनुक्रिया (Complex Overt Response)।

व्यवहार के तीन पक्षों में सामंजस्य

व्यवहार के तीन पक्षों में पूर्णतया सामंजस्य है। साथ ही प्रत्येक पक्ष अन्य दो पक्षों को प्रभावित करता है। मानचित्र खींचते समय तथा मानचित्र में आवश्यक सूचनाएँ दर्शाते समय सम्बन्धित सूचनाओं का ज्ञान तो होता ही है। वास्तव में व्यवहार के तीनों पक्ष अलग-अलग नहीं हैं। शिक्षण के समय व्यक्तित्व का कोई पक्ष ध्यान से ओझल न हो जाए इसी तथ्य को ध्यान में रखकर तीनों पक्षों की दृष्टि से शिक्षण किया जाता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

तीनों पक्षों के विकास की दृष्टि से शिक्षक किस प्रकार प्रयास करता है यह निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगा—

भूगोल शिक्षक 'पृथ्वी की दैनिक गति' नामक प्रकरण पढ़ा रहा है। शिक्षार्थी दैनिक गति की परिभाषा तथा अवधि से सम्बन्धित तथ्य सीखता है, यह ज्ञान का उद्देश्य हुआ। वे दैनिक गति का रात दिन बनने की घटना से सम्बन्ध पहचानते हैं तथा सूर्य के पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होने के कारण स्पष्ट करते हैं यह अवबोध हुआ। वे अर्जित ज्ञान नवीन परिस्थिति में प्रयोग करते हैं। यह ज्ञानोपयोग हुआ। वे रात दिन बनने की घटना के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करते हैं। यह अभिवृत्ति का उद्देश्य हुआ। वे दैनिक गति को रेखाचित्र से प्रदर्शित करते हैं यह क्रियात्मक कौशल हुआ। वे शिक्षक से भूगोल की अन्य पुस्तकों की माँग करते हैं, यह अभिरुचि हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही प्रकरण में सभी पक्षों का विकास करने की दृष्टि से प्रयास किया जा सकता है। इसका आशय यह कदापि नहीं है कि प्रत्येक प्रकरण में सभी पक्षों के विकास की दृष्टि से अनिवार्यतः प्रयास किया जाना चाहिये। यह तो बहुत कुछ प्रकरण की विषय-वस्तु पर निर्भर करेगा कि उसमें विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से कितनी क्षमता है। शिक्षक की दृष्टि सभी

पक्षों पर होनी चाहिये और यदि विषयवस्तु अनुकूल हो तो सभी उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रयास करना चाहिये।

उद्देश्यो के चुनाव की कसौटियाँ

किसी भी उद्देश्य के चुनाव के लिए उनको निम्नांकित तीन कसौटियो पर जाचा जाना चाहिये—

(1) उपयुक्तता

शिक्षण के उद्देश्यो की उपयुक्तता से तात्पर्य है कि व शिक्षा के लक्ष्यो के अनुकूल होने चाहिए। उनसे समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति होनी चाहिए। व व्यापक राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा म शिक्षार्थी को अग्रसर करने चाहिये। जो शिक्षण उद्देश्य इस कसौटी पर ठीक नही उतरते उनको चुनना उपयुक्त नही होता।

(2) व्यावहारिकता

शिक्षण उद्देश्यो का चुनाव करते समय उनकी व्यावहारिकता पर दृष्टि रखना आवश्यक होता है। इसके लिए विद्यालय के भौतिक एव मानवीय ससाधनो को ध्यान मे रखना चाहिए क्योकि जो शिक्षण उद्देश्य विद्यालय के ससाधनो को ध्यान मे रख कर नही चुने जाते, उनकी प्राप्ति म सदा कठिनाइया आती ह।

(3) प्राप्यता

उद्देश्यो के चुनाव के लिए प्राप्यता भी एक प्रमुख कसौटी है। इसके लिए शिक्षार्थियो का मानसिक परिपक्वता का स्तर ध्यान मे रखना होता है। जिन शिक्षको को शिक्षण का विशेष अनुभव नही होता व ऐसे शिक्षण उद्देश्य चुन लेते है जो शिक्षार्थियो की मानसिक परिपक्वता के स्तर से ऊँचे हो।

उक्त कसौटियो पर जो उद्देश्य ठीक उतरें उन्ही को शिक्षण उद्देश्यो के रूप म चुना जाना चाहिये।

शिक्षण उद्देश्यो को परिभाषित करना

शिक्षण उद्देश्यो को परिभाषित करने के कुछ आधारभूत सिद्धान्त है अत उनको ध्यान मे रखकर उद्देश्यो को परिभाषित किया जाना चाहिये।

(1) उद्देश्य कथन में दो भाग सम्मिलित किये जाते हैं

(अ) अपेक्षित व्यवहारगत परिवतन तथा

(ब) विषय वस्तु।

अपेक्षित व्यवहारगत परिवतन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षार्थी के व्यवहार म क्या परिवतन होगा। विषय वस्तु को सम्मिलित करने स यह स्पष्ट होता है कि व्यवहार का सक्रियात्मक क्षेत्र कौनसा है। उदाहरण के लिए 'व्यापारिक पवनें' लिखने मे कोई आशय स्पष्ट नही होता। इसी प्रकार मात्र यह कहने से कि "कारण स्पष्ट करता है" कोई अर्थ नही निकलता। अत उद्देश्य कथन का उपयुक्त ढग

होगा—"शिक्षार्थी व्यापारिक पवनें चलने का कारण स्पष्ट करता है।" इस कथन में "व्यापारिक पवनें चलना" विषय वस्तु से सम्बन्धित है तथा "कारण स्पष्ट करना" मानसिक क्रिया से सम्बन्धित है।

(2) शिक्षण उद्देश्य सदा शिक्षार्थियों के व्यवहारगत परिवर्तन की दृष्टि से निर्धारित किया जाता है।

(3) उद्देश्य सदैव स्पष्टता लिए हुए होना चाहिये। यदि उद्देश्य कथन अस्पष्ट हुआ तो उसके अनुसार शिक्षण आयोजित करने तथा मूल्यांकन करने में कठिनाई होगी।

(4) यदि एक पाठ में एक से अधिक उद्देश्य हों तो उन्हें सोपानिक ढंग से "सरल से कठिन" के क्रम में जमाना चाहिये। सबसे पहले सरल उद्देश्य होने चाहिए तथा बाद में कठिन उद्देश्य।

(5) एक उद्देश्य कथन में दो व्यवहारगत परिवर्तनों को मिला कर लिखना उपयुक्त नहीं माना जाता जैसे 'अकबर के महान् शासक कहलाने के कारण स्पष्ट करता है तथा अन्य शासकों से तुलना करता है' यहां "कारण स्पष्ट करता है" तथा "तुलना करता है" ये दो व्यवहारगत परिवर्तन हैं। इनको अलग अलग कथनों में लिखना चाहिये। परन्तु यदि एक ही व्यवहारगत परिवर्तन दो भिन्न विषय-वस्तुओं के साथ लिखना हो तो उन्हें एक साथ लिखा जा सकता है, जैसे शिक्षार्थी अशोक और समुद्रगुप्त, अशोक और अकबर के शासन प्रबन्धों की परस्पर तुलना करते हैं।

निम्नांकित उद्देश्य कथनों के कुछ उदाहरणों से उपयुक्त विचार भली भाँति स्पष्ट हो सकेंगे—

ज्ञान

(1) शिक्षार्थी वायु के प्रमुख अवयवों का प्रत्यास्मरण करता है। (विज्ञान)

(2) शिक्षार्थी वार्षिक गति का अर्थ और अवधि पुनस्मरण करता है। (भूगोल)

(3) शिक्षार्थी राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़े होने के लिए आवश्यक योग्यताओं का प्रत्यास्मरण करता है। (नागरिक शास्त्र)

अवबोध

(1) शिक्षार्थी डॉक्टरी थर्मामीटर में 85 डिग्री फा. से 110 डिग्री फा. तक ही तापांश नापने की सुविधा होने का कारण स्पष्ट करता है। (विज्ञान)

(2) वह राज्यपाल पद के लिए आवश्यक योग्यताओं में अशुद्धियों को पहचानता है। (नागरिक शास्त्र)

ज्ञानोपयोग

(1) शिक्षार्थी कुछ स्थानों के ताप व वर्षा के आंकड़ों के आधार पर उन स्थानों की सही स्थिति की भविष्यवाणी करता है। (भूगोल)

(2) शिक्षार्थी दैनिक तापक्रम, आद्र ता तथा वायु दिशा के आधार पर ऋतु की भविष्यवाणी करता है। (भूगोल)

कौशल

(1) शिक्षार्थी ऑक्सीजन गस बनाने के लिए आवश्यक उपकरण सजाता ह। (विज्ञान)

(2) शिक्षार्थी भारत के मानचित्र मे चावल उत्पादक क्षेत्रों को दर्शाता है। (भूगोल)

(3) शिक्षार्थी वायु दाब मापक यन्त्र से वायु दाब ज्ञात करता है। (विज्ञान)

अभिरुचि

(1) शिक्षार्थी विभिन्न प्रकार की वनस्पति की पत्तिया एकत्रित करता है। (वनस्पति शास्त्र)

(2) शिक्षार्थी विभिन्न प्रकार की चट्टानो के नमूने एकत्र करता ह। (भूगोल)

(3) शिक्षार्थी साहित्य परिषद् की गतिविधियो म सक्रिय रूप से भाग लेता है। (हिन्दी, अंग्रेजी)

अभिवृत्ति

(1) शिक्षार्थी चन्द्रग्रहण तथा सूय ग्रहण की प्राकृतिक घटनाओ के प्रति वज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करता है। (भूगोल)

(2) शिक्षार्थी समस्या के विभिन्न पक्षों पर व्यवस्थित रूप मे विचार करता है। (वज्ञानिक दृष्टिकोण)

(3) शिक्षार्थी तथ्यो की जाच करता ह। (वज्ञानिक दृष्टिकोण)

उक्त प्रकार से विभिन्न उद्देश्यों के अन्तर्गत उद्देश्यो को समुचित ढग स परिभाषित किया जा सकता है। यह आवश्यक है कि उद्देश्यो की भाषा स्पष्ट, विशिष्ट एव सरल होनी चाहिये ताकि तदनुसार शिक्षण की परिस्थितिया आयोजित करने तथा मूल्यांकन करने मे सुविधा रहे।

विशिष्ट उद्देश्यो को लिखना
(Writing Specific Objectives)

अध्यापक को शिक्षण-उद्देश्यो को व्यावहारिक रूप म लिखन के लिए सव प्रथम शिक्षण बिन्दुओ को विकसित करना चाहिए। उसके उपरान्त शिक्षण बिन्दुओ को ध्यान मे रखते हुए शिक्षण उद्देश्यो की रचना करनी चाहिए। राबट मेगर ने ज्ञानात्मक तथा भावात्मक पक्ष के उद्देश्यो को व्यावहारिक रूप मे और राबट मिलर ने क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यो को लिखने की योजना प्रस्तुत की है।

रावट मेगर ने व्यावहारिक उद्देश्यों का व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए निम्नलिखित तरीकों को काम में लाना चाहिए —

(1) अन्तिम व्यवहारों की पहिचान

(Identification of Terminal Behaviour)

उद्देश्य में केवल इस प्रकार से ज्ञात होना चाहिए कि वह प्रदर्शित करे कि विद्यार्थी शिक्षणोपरान्त किन व्यवहारों का प्रदर्शन कर सकेगा। मानसिक परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में नहीं देखा जा सकता है परन्तु रचना के फलस्वरूप व्यवहार की बनावट के रूप में ही जाना जा सकता है। ये परिवर्तन शाब्दिक अथवा अशाब्दिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। अध्यापक पाठ्यक्रम में इन परिवर्तनों की पहिचान करता है।

(2) अपेक्षित व्यवहारों को परिभाषित करना

(Defining Expected Behaviour)

व्यवहार परिवर्तनों को शब्दों या कथन के माध्यम से व्यक्त करना एवं बताना, जिसको सीखना अध्यापक के लिए आवश्यक है। उसको क्रियात्मक शब्दों का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए कि वह व्यवहार को सही अर्थों में प्रेषित कर सके। उद्देश्यों को लिखते समय उन परिस्थितियों तथा सीमाओं का वर्णन भी किया जाना चाहिए जो उस विशिष्ट व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक है।

(3) निष्पत्ति परीक्षा के लिए मानदण्ड का विशिष्टीकरण

(Stating the Criterion)

उद्देश्यों को किस सीमा तक सफलतापूर्वक शिक्षण द्वारा प्राप्त किया गया है इसके लिए इन पर आधारित निष्पत्ति परीक्षा ली जाती है। इसमें न्यूनतम व्यवहार जो विद्यार्थी शिक्षणोपरान्त प्रदर्शित कर पायेगा उसे उस रूप में लिखा जाता है कि उसका मापन सम्भव हो सके। उदाहरण के लिए भारत का मानचित्र देने पर विद्यार्थी मुख्य मुख्य भागों के नाम लिख सकेगा इस रूप में न्यूनतम व्यवहारों को निश्चित किया जा सकता है।

राबर्ट मेगर ने शिक्षण उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखने के लिए कार्य सूचक क्रियाओं को काम में लेने का सुझाव दिया है। ये कार्य सूचक शब्द बालक के व्यवहार को स्पष्ट करते हैं। इनका विवरण निम्न तालिका में दिया गया है—

ज्ञानात्मक पक्ष के लिए कार्य सूचक क्रियाएँ

(A list of action verbs of Cognitive Domain)

उद्देश्य (Objective)	कार्य सूचक क्रियाएँ (Action Verbs)
(1) ज्ञान (Knowledge) (तथ्य, सिद्धान्त परम्परा विधि वर्ग इत्यादि)	लिखना (Write) सूची बनाना (to enlist) परिभाषित करना (to define)

	मापन करना (to measure)
	चयन करना (to select)
	कथन देना (to state)
	प्रत्यास्मरण करना (to recall)
	पहचानना (to recognise)
(2) बोध (Comprehension)	उदाहरण देना (Illustrate)
(बिना किसी सामग्री के समझाना)	अनुवाद करना (Translate)
	व्याख्या करना (Explain)
	अर्थ ज्ञात करना (Interpret)
	संकेत देना (Indicate)
	प्रस्तुत करना (Present)
	निर्णय लेना (Judge)
	चयन करना (Select)
(3) ज्ञानोपयोगी (Application)	उल्लेख करना (Explain)
(सामान्यीकरण का प्रयोग अन्य	प्रदर्शन करना (Demonstrate)
परिस्थिति में करना)	प्रयोग करना (Use)
	प्राप्त करना (to find)
	जाच करना (to examine)
	पूर्व कथन (Predict)
	निर्माण करना (Construct)
	गणना करना (Compute)
(4) विश्लेषण (Analysis)	विभाजन करना (Divide)
(उपतत्त्वों में बाटना)	विश्लेषण करना (Analyse)
	निष्कर्ष देना (Conclude)
	पुष्टि करना (Justify)
	तुलना करना (Compare)
	भेद करना (Differentiate)
	आलोचना करना (Criticise)
(5) संश्लेषण (Synthesis)	तर्क करना (Argue)
(उप तत्त्वों को मिलाकर नयी	निष्कर्ष देना (Conclude)
संरचना अथवा भाव ग्रहण	सामान्यीकरण करना (Generalise)
करना)	संक्षिप्त करना (Summarise)
(6) मूल्यांकन (Evaluation)	निर्णय लेना (Judge)
(सामग्री का मूल्यांकन)	मूल्यांकन करना (Evaluate)
	समालोचना करना (Critical Appraisal)

उद्देश्यों के कथन में (Statements of educational objective)-इन कार्य सूचक क्रियाओं के उपयोग से व्यवहार को स्पष्ट रूप से लिखने, व्याख्या करने तथा मापन में आसानी रहती है। मेगर व्यवहारवादी व्यक्ति होने के कारण उन्होंने उद्दीपन तथा अनुक्रिया से अधिगम को व्यक्त किया है। यद्यपि उपरोक्त क्रियाएं व्यवहारों को व्यक्त करती हैं परन्तु अन्य क्रियाएं जो कि उक्त सूची में नहीं हैं का भी उपयोग किया जा सकता है।

सारांश

शिक्षा एवं मनोविज्ञान की आधुनिक धारणा से शिक्षण में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं उसमें उद्देश्य आधारित शिक्षण भी एक है। शिक्षक यदि शिक्षण के समय शिक्षण उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अध्यापन कार्य करे तो यह उद्देश्य आधारित शिक्षण कहलाता है। उद्देश्य आधारित शिक्षण में मुख्य रूप से चार बिन्दु क्रमशः उद्देश्यों को व्यवहारगत परिवर्तनों में वर्णित करना, उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों की योग्यताओं का पूर्वानुमान, शिक्षण उद्देश्यों की सम्प्राप्ति हेतु शिक्षण क्रियाओं का नियोजन तथा शिक्षण उद्देश्यों की विद्यार्थियों द्वारा सम्प्राप्ति का मूल्यांकन ध्यातव्य हैं।

शिक्षण उद्देश्य, अनुभव तथा मूल्यांकन एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। उद्देश्य निष्ठ शिक्षण के लिए तीनों ही महत्त्वपूर्ण हैं शक्षिक उद्देश्य उन व्यवहारगत परिवर्तनों को कहते हैं जिसे शिक्षार्थी शिक्षण के बाद स्वयं में प्रदर्शित करें। अधिगम अनुभव उस ज्ञानोत्पादक वातावरण प्रदान करते हैं जबकि मूल्यांकन यह बताता है कि शिक्षण के द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई है। उद्देश्यनिष्ठ शिक्षण के प्रमुख घटक पाठ्यवस्तु विश्लेषण शिक्षण उद्देश्यों को पहिचानना, शिक्षण सम्बन्धित क्रियाओं का नियोजन, पाठ योजना का निर्माण तथा अधिगम व्यवस्था की मूल्यांकन योजना है।

अध्यापक यदि स्वयं से कुछ प्रश्न पूछे कि उसे क्या पढ़ाना है किस लिए पढ़ाना है कैसे तथा क्या पढ़ाना है तथा शिक्षणोपरान्त प्राप्त उपलब्धि का विश्लेषण करे तो यह सब उसके शिक्षण का उद्देश्यनिष्ठ बना सकता है। अध्यापन की वर्तमान स्थिति सतोषजनक नहीं मानी गई है। यदि शिक्षक उद्देश्यनिष्ठ शिक्षण करते हैं तो इसमें शिक्षण का स्तर सुधर सकेगा।

□

अध्याय 5

शिक्षण योजना, वार्षिक एवं इकाई योजना

(Planning for Teaching, Annual and Unit Plan)

किसी भी काय को सफलतापूवक सम्पन्न करने के लिए उसका पूव नियोजन आवश्यक है। यदि योजना सुव्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ तथा समाधनो को दष्टि म रखकर तयार की गई है तो उस काय की सफलता प्राय निश्चित ही है। शिक्षण के क्षेत्र मे भी यह बात सत्य साबित होती ह। शिक्षण से पूव यदि कोई अध्यापक शिक्षण की एक निश्चित योजना तैयार कर लेता है तो वह अपने शिक्षण मे अवश्य ही सफल होगा। एक सफल एव जागरूक शिक्षक पढाये जाने वाली पाठयवस्तु का विश्लेषण कर उस एक तार्किक क्रम म व्यवस्थित करता ह, सा भर अध्यापन के दौरान किस समय क्या पढायेगा इत्यादि के बारे मे पूव निणय लेता है, इन सब को एक नियोजित रूप मे वह लिख लेता है, इसी को शिक्षण की योजना कहत हैं।

किसी भी कार्य को सफलतापूवक करा से पूर बुद्धिमत्तापूवक की गई अग्रिम तैयारी को योजना कहते हैं। शिक्षण की नवीन विचारधारा के अनुसार अध्यापक द्वारा व्याख्यान के स्थान पर अब बालक द्वारा सीखने पर अधिक बल प्रदान किया जाता है। अत शिक्षक अब एक व्यवस्थापक का काय करता है। वह उद्देश्यो को दष्टि मे रखते हुए ऐसे वातावरण का निर्माण करता ह जिससे कि विद्यार्थी सीखन के उपयुक्त अनुभव प्राप्त कर सके। यह एक जटिल काय है जिसमे अध्यापक को विभिन्न काय करने पडते है। आई के डेवीज (I K Davi) ने इस सम्बध म कहा है कि "नियोजन के अतगत वे सभी क्रियाए सम्मिलित होती है जिन्हे शिक्षक सीखने के उद्देश्या की प्राप्ति के लिए सम्पन्न करता है।

शिक्षण के आयोजन मे शिक्षक शिक्षण हेतु किये जाने वाल कार्यों पर पूर्व चिन्तन करता है। यह इसलिए आवश्यक है कि वह अपने काय को कुशलतापूवक एव प्रभावशाली ढग से पूरा करना चाहता है। आधुनिक युग म जहा बालक को दिया जाने वाला ज्ञान गुणात्मक एव संख्यात्मक दृष्टि से अधिक तथा समय कम उपलब्ध है, योजना का महत्त्व और अधिक बढ गया ह। सीमित समय मे अधिक ज्ञान प्रभावी रूप से देना ही सफल शिक्षक का सूचक है। इस हेतु शक्षिक नियोजन तथा शिक्षण नियोजन दोनो की आवश्यकता है।

उक्त विवेचन के आधार पर शिक्षण के लिये आयोजन का अर्थ ... व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए शिक्षणशास्त्र के ठोस सिद्धान्तों व प्रयास से पूर्व चिन्तन करना है।' स्पष्ट है, शिक्षण योजना बनाना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षण अधिगम स्थितियों का विधिवत् आयोजन की दृष्टि से व्यवस्थित रूप से चिन्तन किया जाता है।

मरसेल[1] (Mursell) के अनुसार "योजना को चिन्तन और अभिवृद्धि से बनना चाहिए। अतः शिक्षण में इसका उचित स्थान निर्धारित किया जाना चाहिए।

शिक्षण योजना के चरण

(Steps of Teaching Planning)

शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षण की व्यवस्था विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु की जाती है। कोई भी शिक्षक जब एक शिक्षण योजना बनाने की तैयारी करता है तो योजना निर्माण के लिए उसे तीन प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है जिससे कि वह शिक्षण द्वारा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। ये प्रश्न निम्न हैं—

(1) हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं ?
(2) हम जो कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, वह कैसे प्राप्त करेंगे ?
(3) हमें यह कैसे ज्ञात होगा कि हमने वह प्राप्त कर लिया है, जो हम प्राप्त करना चाहते थे ?

यदि उक्त तीनों प्रश्नों पर विचार किया जाय तो प्रथम प्रश्न शिक्षण उद्देश्यों से सम्बन्धित है जबकि दूसरा प्रश्न शिक्षण-अधिगम व्यवस्था से। शिक्षणोपरान्त जो उपलब्धियाँ हुईं उनका मूल्यांकन भी आवश्यक है, तीसरा प्रश्न इससे जुड़ा हुआ है। इस प्रकार शिक्षण योजना एक वैज्ञानिक योजना है।

डेवीज[2] (Davies) ने ठीक ही कहा है कि 'शिक्षण योजना एक शिक्षक द्वारा निर्मित योजना है जिसके द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की सफलतापूर्वक प्राप्ति की जाती है।'

शिक्षण योजना का महत्त्व

(Importance of Teaching Plan)

शिक्षण की योजना ठीक उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण है जैसे कि किसी मकान को बनाने की योजना। यदि व्यक्ति बिना योजना के मकान बनाना चाहे तो श्रम और साधन दोनों का अपव्यय होगा यही बात शिक्षण योजना के लिए भी सत्य प्रतीत

---

1 James L Mursell Successful Teaching Mc Graw Hill Book Co New York P 322

2 I K Davies Management of Learning Mc Graw Hill London 1971

होती है। यदि अध्यापक अपने काय के बारे मे पूव चितन कर ले तथा अध्यापन के काय को भली प्रकार से सम्पन्न करने की एक रूपरेखा तयार कर ले तो उसके अध्यापन का काय न केवल सरल अपितु प्रभावी रूप से सम्पन्न हो सकेगा। शिक्षण योजना बनाना निम्नांकित बिन्दुओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

(1) शिक्षण योजना शिक्षण काय को निश्चित दिशा प्रदान करती है।
(2) विषय वस्तु को एक तार्किक क्रम मे व्यवस्थित करती है।
(3) अध्यापक विषय वस्तु से सम्बन्धित तथ्यो, पदो, प्रत्ययो, सिद्धान्तो आदि को अपनी स्मृति मे सजीव कर उन पर पूव चिन्तन कर लेता है।
(4) बालक व्यवहार के तीन पक्ष—ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक के विकास हेतु सगठित प्रयास निश्चित करता है।
(5) इकाइयो के शिक्षण हेतु आवश्यकतानुसर समय का निर्धारण पूव मे करता है। इससे सभी इकाइया को उनके महत्त्व एव कठिनाई के स्तर के अनुसार समय मिलना सम्भव हो जाता है।
(6) शिक्षणोपयोगी साधन एव सामग्री का चयन कर उपयोग मे लाता है।
(7) उपलब्ध समय का अधिकाधिक उपयोग करना एक शिक्षक के लिए सम्भव हो जाता है।
(8) अध्यापक का मनोबल ऊँचा उठता है क्योंकि पूव नियोजन से उसका काय सरल तथा शिक्षण प्रभावी बनता है।

वार्षिक योजना

जसा कि पूव मे स्पष्ट किया जा चुका है कि शिक्षण योजना दो प्रकार की होती है, दीघकालिक योजना तथा अल्पकालिक योजना। सामान्यत शिक्षण का काय पूरे सत्र चलता है। पूरे सत्र की शिक्षण योजना बनाना इसलिए आवश्यक है कि शिक्षक निधारित पाठ्यक्रम को किस प्रकार पूरा करे। शिक्षण सत्र प्राय जुलाई से प्रारम्भ होकर मई तक चलता है, इसे शिक्षण वष भी कहते है। अत सत्र भर के लिए बनाई गयी योजना को वार्षिक योजना भी कहते है।

विद्यालय म अनेक कक्षाए होती है तथा प्रत्येक कक्षा मे विभिन्न विषय। इसलिए यह वार्षिक योजना प्रत्येक कक्षा के लिए विषयवार बनाई जाती है। चूँकि एक विषय अलग-अलग कक्षाओ मे भिन्न स्तर का होता है तथा पाठ्यवस्तु भी भिन्न-भिन्न होती है। इस कारण से सभी कक्षाओ की एक वार्षिक योजना बनाया जाना सम्भव नही है।

वार्षिक योजना का महत्त्व

वार्षिक योजना बना लेने से अध्यापन म सहायता मिलती है। अध्यापक का

यह ध्यान रहता है कि उस दिन मात्र में कितने पाठ पढ़ाने हैं तथा पढ़ाने से कौन-कौन से शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति करना है। मूल्यांकन की दृष्टि से भी वार्षिक योजना महत्त्व रखती है। वार्षिक योजना में प्रथम, द्वितीय, तृतीय परख तथा अर्द्ध वार्षिक परीक्षा तक कराये जाने वाले पाठ्यक्रम का उल्लेख होता है। वार्षिक योजना में प्रत्येक शिक्षण इकाई के पूर्ण होने पर इकाई मूल्यांकन तथा गृहकार्य अर्थात् की भी व्यवस्था होती है। इससे शिक्षण की सफलता का समय-समय पर शिक्षक को आभास होता रहता है तथा शिक्षार्थियों का उपचारात्मक शिक्षण भी हो जाता है।

वार्षिक योजना के ध्यातव्य बिन्दु

(1) योजना वास्तविक एवं व्यावहारिक होनी चाहिए अर्थात् योजना के अन्तर्गत उन्हीं तथ्यों व कार्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो कि पाठ्यक्रम में सम्बन्धित हों।

(2) योजना में सम्मिलित क्रियात्मक कार्य की प्रकृति व्यावहारिक हो अर्थात् उस विद्यालय के संसाधनों से निश्चित समय में पूरा किया जा सके।

(3) योजना का निर्माण करते समय अध्यापक को सर्वप्रथम सत्र के कार्य दिवसों की संख्या ज्ञात कर लेनी चाहिए। इनमें से परीक्षा तथा उत्सव के दिन घटा कर शेष बचे दिनों के लिए योजना तैयार करनी चाहिए।

(4) एक विषय के यदि एक से अधिक अध्यापक हों तो इन को मिलकर उस कक्षा की वार्षिक योजना तैयार करनी चाहिए।

(5) योजना निर्माण करते समय शिक्षक को स्वयं की क्षमता तथा छात्रों के स्तर का भी ध्यान में रखना चाहिए।

(6) योजना निर्माण करते समय अध्यापक को गत वर्ष की योजना का भी अवलोकन कर लेना चाहिए।

(7) योजना निर्माण में शिक्षक अपने अनुभवी साथियों से भी विचार विमर्श कर ले तो यह उसके लिए लाभदायक रहेगा।

(8) योजना का स्वरूप लचीला होना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन भी किया जा सके।

वार्षिक योजना निर्माण के चरण

वार्षिक योजना शिक्षण की सत्र भर की योजना है। इस योजना को आधार बनाकर ही शिक्षक अन्य योजनाएं जैसे पाठ योजना, इकाई योजना, उप क्षेत्र योजना इत्यादि बनाता है अतः इसको बड़ी सावधानीपूर्वक बनाया जाना चाहिए। वार्षिक योजना के अग्रलिखित महत्त्वपूर्ण चरण हैं—

(1) पाठ्यवस्तु का विश्लेषण—वप भर पढाये जाने वाली पाठ्वस्तु को सर्व प्रथम अलग-अलग इकाइयो मे विभाजित कर लेना चाहिये।

(2) प्रत्येक विषय मे शिक्षण सत्र मे कितने कालाश प्राप्त होग, यह जानकारी विषयाध्यापको का कर लेनी चाहिए। इसके लिए शिक्षण सत्र के कुल दिनो म से अवकाश के दिना को घटा दिया जाना चाहिए। इन शप दिना म से परीक्षा व जाच हेतु दिवस घटाने पर शिक्षण काय दिवस प्राप्त हो जायेंग।

(3) अन्य अध्यापका स विचार-विमश के आधार पर यह निश्चित करना चाहिये कि प्रत्येक इकाई के शिक्षण के लिए कितने कालाशा की आवश्यकता होगी।

(4) प्रत्येक इकाई क लिए आवृत्ति, मूल्याकन तथा सुधारात्मक अध्यापन के लिए भी कालाश की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(5) वार्षिक योजना बनाते समय प्रत्येक इकाई म ज्ञान, अवबोध ज्ञानापयोग, कौशल, रुचिया तथा अभिवृत्तिया आदि में से किन किन उद्देश्यो को प्राप्त करना है, को भी पूव मे निश्चित कर लेना चाहिए।

(6) उद्देश्यो के निर्धारण तथा समय-सीमा का सीधा सम्बन्ध है। यदि केवल ज्ञानात्मक उद्देश्य प्राप्त करने हैं तो उसम समय कम लगता है क्योकि यह मानसिक प्रक्रिया की प्रारम्भिक अवस्था ह। यदि अवबोध, ज्ञानोपयोग, कौशल इत्यादि का विकास करना हो तो इसके लिए अधिक समय योजना म देना हागा, कारण कि य उच्च मानसिक क्रियाओ से सम्बन्धित ह। इनके विकास मे अधिक समय लगेगा।

(7) सामान्यत एक वप म तीन सत्र होत है। प्रथम सत्र जुलाई से सितम्बर, द्वितीय सत्र अक्टूबर से दिसम्बर तथा तृतीय सत्र जनवरी से अप्रैल तक का माना गया ह। वार्षिक योजना का विभाजन यदि इन सत्रा को घ्यान मे रख कर किया जावे तो यह और अधिक प्रभावशाली एव समयबद्ध योजना बन सकती है।

(8) वार्षिक योजना बनात समय आवश्यक शिक्षण सामग्री का भी सक्षिप्त उल्लेख कर लिया जाना चाहिये।

वार्षिक योजना का प्रारूप -
(A Proforma for Annual Plan)

वार्षिक योजना (Annual Plan)

विषय—सामाजिक विज्ञान | कक्षा–IX

समयावधि	प्रथम उपसत्र जुलाई से सितम्बर			द्वितीय उपसत्र अक्टूबर से दिसम्बर			तृतीय उपसत्र जनवरी से अप्रेल				
उद्देश्य / इकाइयां	प्रथम इकाई	द्वितीय इकाई	तृतीय इकाई	चतुर्थ इकाई	पंचम इकाई	षष्ठ इकाई	सप्तम इकाई	अष्टम इकाई	नवम इकाई	पुनरावृत्ति	कालांशों का योग
ज्ञान	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		
अवबोध	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		
ज्ञानोपयोग	✓	—	✓	✓	—	—	✓	—	✓		
कौशल	—	✓	—	—	—	✓	—	—	—		
रुचियां	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		
अभिवृत्तियां	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		
इकाई के लिए आवश्यक कालांश	10	9	19	13	18	15	9	8	14	10	
आवृत्ति	2	2	2	2	2	2	2	2	2	0	
मूल्यांकन	1	1	1	1	1	1	1	1	1	0	
पुनरध्यापन	1	1	1	1	1	1	1	1	1	0	
योग	14	13	23	17	22	19	13	12	18	10	161

वार्षिक योजना जितनी अधिक कुशलता से तयार की जावगी, अध्यापन काय उतना ही अधिक विधिवत् होगा। अत इसका निर्माण करत समय शिक्षक का पूण सावधानी बरतनी चाहिये। इसका बनात समय शिक्षण उद्देश्य, साधन सुविधाए आदि का ध्यान रक्खा जाना चाहिय। वार्षिक योजना व निमाण मे प्रत्येक इकाई को उसकी प्रकृति के अनुसार महत्त्व दिया जाना चाहिए अर्थात् कठिन स्तर की इकाई के लिए अधिक तथा सरल स्तर की इकाई के लिए कम समय दिया जाना चाहिए। अध्यापक को शिक्षण के समय जिस प्रकार की शिक्षण सहायक सामग्री की आवश्यकता हो उसकी एक सूची तैयार कर उनकी विद्यालय मे उपलब्धि की जानकारी भी पूर्व मे कर लेनी चाहिय। इस प्रकार वार्षिक योजना सत्र भर चलन वाले शिक्षण काय के लिए एक दिशा सूचक का काय करगी।

इकाई योजना

शिक्षण की अल्पकालिक योजना मे सामान्यत दो याजनाए अर्थात् इकाई योजना तथा पाठ योजना आती ह। इस अध्याय म इकाई याजना का सविस्तार वणन किया जा रहा है।

इकाई का अर्थ

इकाई को भ्रमवश पाठ या विषय वस्तु का अश मान लिया जाता है वास्तव मे इकाई का अथ पाठ से भिन्न ह। इसका तात्पय ज्ञानानुभवो के एकीकृत रूप से ह। ऐसे अनुभव जा कि आपस म सम्बन्धित हो तथा जिन्ह एक साथ पढाया जा सके, शिक्षण इकाई के अन्तगत आत है। उदाहरण के लिए मानव सभ्यता एक इकाई ह जिसके अन्तगत रहन-सहन, सस्कृति, परम्परा, विभिन्न प्रकार की कला इत्यादि प्रकरण आते हैं। इसी प्रकार ध्वनि एक इकाई है जिसम ध्वनि की पद्धति, विभिन्न नियम, विवतन इत्यादि प्रकरण आत हे। यदि ध्वनि को भाग सगठित रूप म न पढाये जावे तो इसका वास्तविक अथ एव विभिन्न तत्त्वा का पारस्परिक सम्बन्ध शिक्षार्थी के समझ मे नही आयेगा। इस प्रकार इकाई ज्ञानानुभव का एक एकीकृत रूप ह। यह पाठ्यक्रम का वह सगठित अश ह जो ज्ञान के किसी महत्त्वपूण क्षेत्र पर केन्द्रित रहता है तथा जिसका ज्ञान होने पर उसम निहित विभिन्न प्रकरणा का परस्पर सबध स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक इकाई की अपनी सरचना होती है।

इकाई की परिभाषा
(Definition of a Unit)

प्रेस्टान (Preston)

"एक जसो वस्तुआ का समूह जा कि अधिगता द्वारा बोधगम्य हो, इकाई कहलाती है।"

(A unit is as large a block of related subject matter as can be overviewed by the learner)

समफोर्ड (Samford)

"इकाई एसी विषय-वस्तु की रूपरेखा है जो शिक्षार्थी की आवश्यकताओं और रुचियों से सम्बन्धित होने से अपने आप में अलग भी दिखाई देती है।"

(Unit is an outline of carefully selected subject matter which has been isolated because of its relationship to pupil's needs and interests.)

हेरम (Herram)

"इकाई किसी विषय का एक बड़ा उप भाग होता है, जिसमें कोई मूलभूत सिद्धान्त होता है। इस सिद्धान्त या प्रकरण के अनुसार ही छात्र क्रियाओं का इस प्रकार नियोजन किया जाता है कि उन्हें महत्त्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हो सकें।"

शिक्षण इकाई की बनावट

(Composition of the Teaching Unit)

एक पाठ्यक्रम के छोटे एवं बोधगम्य भाग इस प्रकार बना दिये जाते हैं कि एक ही प्रकार के प्रकरण उस भाग में सम्मिलित हो जाते हैं। शिक्षार्थी की दृष्टि से ये उप भाग सीखने हेतु उपयुक्त होते हैं क्योंकि वे इन छोटे भागों को आसानी से समझ लेते हैं तथा अन्य उपभागों को भी पढ़ने के लिए उत्साहित होते हैं। बालक के लिए इस प्रकार की शिक्षण इकाइयाँ लाभप्रद, बोधगम्य तथा रुचि जागृत करने वाली होती हैं। इन इकाइयों के मुख्यतः तीन भाग होते हैं। प्रारम्भिक भाग में छात्र इकाई का परिचय प्राप्त कर इकाई के उद्देश्य की जानकारी प्राप्त करता है। इकाई के दूसरे भाग में नवीन प्रत्यय एवं सूचनाएँ प्राप्त कर नवीन अनुभवों का अर्जित करता है। इकाई के तृतीय व अन्तिम भाग में वह सीखे हुए अनुभवों को दोहरा कर उनका अपने मस्तिष्क में संगठन करता है।

इकाई की विशेषताएँ

(अ) इकाई सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तथा दैनिक पाठ को जोड़ने वाली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

(ब) इकाई अन्य इकाइयों में सम्बन्ध जोड़ती है जैसे—वायुमण्डल का सम्बन्ध मानव-जीवन, जल मण्डल इत्यादि से जोड़ा जा सकता है।

(स) इकाई दैनिक शिक्षण के लिए आधार प्रदान करती है।

(द) इकाई शिक्षण में विषय-वस्तु की दृष्टि से समग्रता होती है, यह अपने आप में एक सम्पूर्ण अनुभव पर आधारित होती है।

(य) इकाई शिक्षण में सम्पूर्ण से अंश की ओर बढ़ते हैं जो कि शिक्षण का मूल्यवान सूत्र है।

(र) इकाई शिक्षण में शिक्षण के सभी उद्देश्य प्राप्त करना सम्भव है।

(ल) इकाई शिक्षण में विभिन्न विधियों का उपयोग सम्भव है।

इकाई का मनोवैज्ञानिक आधार

इकाई के प्रत्यय का विकास गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के फलस्वरूप हुआ है। इस मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का ध्यान किसी आकृति के अंगों की अपेक्षा उसके पूर्ण की ओर जाता है। दूसरे शब्दों में जब कोई व्यक्ति किसी आकृति का प्रत्यक्षीकरण करता है तो सर्वप्रथम पूर्ण आकृति के रूप में देखता है तथा उसके बाद उसके विभिन्न अंगों का विश्लेषण करता है।

गेस्टाल्टवाद के अनुसार सम्पूर्ण विभिन्न अंगों का मात्र योग नहीं होता, परन्तु वह अंशों के योग से भी कुछ अधिक होता है। उसके अनुसार पूर्ण की अनुभूति अंश या इकाई की सहायता से करते हैं। उदाहरण के लिये किसी वाद्य यन्त्र के भिन्न भिन्न स्वर अपने आप में कोई धुन या लय नहीं होते, इन स्वरों को किसी एक क्रम में बजाने से धुन विशेष का सृजन होता है। इसी प्रकार अलग-अलग पाठ पढ़ाने से समग्र प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। इन्हें किसी इकाई के भाग के रूप में पढ़ाने से शिक्षार्थी को इकाई की संरचना का ज्ञान होगा।

इकाई का आकार

एक इकाई में समग्रता का गुण होना आवश्यक है क्योंकि उसमें ज्ञान का एक संगठित अंश समाहित होता है फिर भी इकाई का आकार एवं विस्तार प्रत्येक स्तर पर समान नहीं होता। प्रत्येक विषय में कुछ बड़ी इकाइयाँ होती हैं। जैसे भूगोल में वायुमण्डल, जल मण्डल, स्थल मण्डल इत्यादि। प्राथमिक स्तर पर दिया जाने वाला ज्ञान मात्रा में कम होता है इस कारण विषय वस्तु का क्षेत्र सीमित होता है अतः ये वृहत् इकाइयाँ भी शिक्षण इकाई हो सकती हैं। माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक इकाई का क्षेत्र बढ़ जाता है इस कारण इन वृहत् इकाइयों को सुविधाजनक इकाइयों में विभाजित कर लिया जाता है उदाहरण के लिये वायुमण्डल की माध्यमिक स्तर पर निम्न इकाइयाँ बन सकती हैं—

(अ) वायुमण्डल की संरचना तथा विस्तार

(ब) वायु का तापमान

(स) वायुदाब

(द) हवाएँ तथा

(य) वायु की आर्द्रता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक स्तर पर इकाई के आकार का निर्णय उसमें समाहित विषय-वस्तु की मात्रा पर निर्भर करता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इकाई शिक्षण-अधिगम परिस्थिति का वह समूह है जो कम से कम दो तथा अधिक से अधिक आठ या दस पाठों में विभाजित किया जा सके। इस परिभाषानुसार यदि किसी इकाई में समाहित विषय-वस्तु

की मात्रा अधिक हो तो उसे और सुसगठित अशो म विभाजित करना उपयुक्त होता ताकि विषय वस्तु की एकता नष्ट न हो और साथ ही शिक्षार्थी को उसकी समग्रता भी बोधगम्य हो सके।

इकाई योजना का अर्थ

(Meaning of Unit Planning)

इकाइ योजना का निर्माण शिक्षार्थी के व्यवहार म अपेक्षित परिवतन लाने क लिय शिक्षणशास्त्र क ठास सिद्धातो क प्रकाश म पूव चिन्तन क आधार पर अध्यापक द्वारा किया जाता है। यदि अध्यापक अपने अध्यापन काय को व्यवस्थित ढग स न कर ता शिक्षण क द्वारा प्राप्त किय जान वाले उद्देश्यो का वह भली प्रकार स प्राप्त नही कर सकेगा। उदाहरण क लिये एक गणित अध्यापक बिना जोड, बाकी तथा गुणन क्रिया सिखाय सीधे ही भाग की क्रिया सिखाना चाहे तथा अन्य क्रियाओं का बाद मे सिखाव ता उसके प्रयत्न विफल होग। अत यह स्पष्ट है कि शिक्षण अधिगम परिस्थितिया को एक व्यवस्थित क्रम म पूव चिन्तन के आधार पर व्यवस्थित किया जाना चाहिए। इकाई योजना म विषय वस्तु की दृष्टि स समग्रता हाती है तथा यह अपने आप म सम्पूण अनुभव पर आधारित होती है।

इकाई-योजना के सम्बन्ध मे वाल्टर पियस तथा माइकल लोबर[1] (Walter D Pierce and Michael A Lorber) न कहा है कि "इकाई याजना अध्यापक द्वारा पूव चिन्तन, कि शिक्षार्थी शिक्षण के एक अन्तराल म (सामान्यत 3 स 6 सप्ताह) क्या प्राप्त करेंगे तथा कसे सफलतापूवक प्राप्त करेंगे, को प्रदर्शित करती ह।" इस दृष्टि स इकाई योजना को अध्यापक के काय करने की रूपरेखा अथवा अध्यापन की व्यूह रचना माना गया है। यह याजना पूव चिन्तन पर आधारित है तथा इसकी समाप्ति मूल्याकन द्वारा होती है।

इकाई योजना म सम्पूण इकाई के अध्यापन बिन्दुओ का एक निश्चित क्रम मे व्यवस्थित किया जाता है। इन बिन्दुओ से सम्बन्धित प्राप्य उद्देश्यो को परिभाषित किया जाकर इनके अनुरूप अध्ययनाध्यापन परिस्थितियो के निर्माण हेतु विचार किया जाता है। इकाई योजना स्तर पर स्पष्ट रूप स उद्देश्यो के अनुरूप मूल्याकन की प्रविधियो तथा उपकरणो के सम्बन्ध मे व्यावहारिक रूपरेखा बनाई जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इकाई योजना एक आधार पत्र है जिसमे शिक्षण उद्देश्य, विषय वस्तु, अध्ययन-अध्यापन स्थितिया, सहायक शिक्षण सामग्री, नियत काय तथा मूल्याकन आदि की स्पष्ट रूपरेखा होती है।

1 Walter D Pierce and Michael A Lorber Objectives and Methods for Secondary Teaching Prentice Hall 1977 P 218

इकाई योजना का प्रारूप

इकाई योजना में सभी विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर एक प्रारूप विकसित किया गया है जो आवश्यक परिवर्तन के साथ सभी विषयाध्यापकों द्वारा अपनाया जा सकता है।

इकाई योजना का प्रारूप निम्नांकित हो सकता है—

(1) कक्षा— विषय— इकाई—
(2) इकाई-संख्या (वार्षिक योजनानुसार)—
(3) इकाई शिक्षण हेतु आवश्यक कालांश—
(4) आवृत्ति हेतु आवश्यक कालांश—
(5) मूल्यांकन हेतु आवश्यक कालांश—
(6) सुधारात्मक अध्यापन हेतु आवश्यक कालांश—

योग

उप इकाई एवं प्रकरण	शिक्षण बिन्दु	उद्देश्यमय व्यवहारगत सपरिवर्तन	अध्ययनाध्यापन संस्थितियाँ		सहायक शिक्षण सामग्री	नियत काय	मूल्यांकन
			शिक्षण क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ			
1	2	3	4	5	6	7	8

इकाई योजना के इस प्रारूप के प्रत्येक पक्ष का समुचित स्पष्टीकरण करना समीचीन ही होगा।

परिचयात्मक पक्ष

इस पक्ष में इकाई-योजना से सम्बन्धित ऐसी कतिपय सूचनायें अंकित की जाती हैं जिनसे इकाई योजना की प्रारम्भिक जानकारी हो जाती है जैसे इकाई

योजना कौनसी कक्षा से सम्बन्धित है ? इकाई शिक्षण हेतु कितने कालांशो की आवश्यकता होगी ? इकाई शिक्षण के पश्चात सम्पूर्ण इकाई की आवृत्ति हेतु कितने कालांशों की आवश्यकता होगी ? मूल्यांकन हेतु कितने कालांशों की आवश्यकता होगी ? तथा मूल्यांकन के पश्चात सुधारात्मक अध्यापन हेतु कितने कालांशों की आवश्यकता होगी ? इन सूचनाओं के आधार पर अन्य शिक्षक भी इकाई-योजना का आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकते हैं।

उप-इकाई एवं प्रकरण

इकाई के छोटे उप विभाग उप इकाई कहलाते हैं तथा प्रतिदिन के पाठ के शीर्षक प्रकरण। उदाहरण के लिए कक्षा नौ में भूगोल विषय में पृथ्वी की गतियाँ नामक इकाई की दो उप इकाइयाँ हो सकती हैं—

(1) पृथ्वी की दैनिक गति

(2) पृथ्वी की वार्षिक गति।

उप इकाइयां निश्चित हो जाने के पश्चात् यह विचार करना होता है कि प्रत्येक उप इकाई में कितने प्रकरण होंगे। पृथ्वी की गतियाँ नामक इकाई में प्रत्येक उप इकाई के अन्तर्गत निम्नांकित प्रकरण हो सकते हैं—

(1) पृथ्वी की दैनिक गति

(अ) दैनिक गति का परिचय

(ब) दैनिक गति के प्रमाण

(स) दैनिक गति के प्रभाव

(द) दैनिक गति का रेखाचित्र बनाना।

(2) पृथ्वी की वार्षिक गति

(अ) वार्षिक गति का परिचय

(ब) 21 जून की स्थिति तथा प्रभाव

(स) 22 दिसम्बर की स्थिति तथा प्रभाव,

(द) 21 मार्च और 23 सितम्बर की स्थितियां तथा प्रभाव

(य) ऋतु परिवर्तन और मानव जीवन

(र) वार्षिक गति का रेखाचित्र बनाना।

उप इकाइयाँ तथा प्रकरण निश्चित कर लेने से यह अनुमान लगाने में सुविधा हो जाती है कि इकाई शिक्षण में कितने कालांशों की आवश्यकता होती है। ऐसा करने से इकाई की संरचना भी स्पष्ट हो जाती है।

शिक्षण-बिन्दु

शिक्षण बिन्दुओं का चयन करना तथा उन्हें व्यवस्थित रूप से लिखना इकाई योजना का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसके लिए शिक्षक में दो बातें आवश्यक होती हैं—

(1) विषय वस्तु पर पर्याप्त अधिकार और

(2) विषय वस्तु विश्लेषण करने की योग्यता।

यह एक जाना माना तथ्य है कि कोई भी शिक्षक अपना कार्य भली भांति तभी कर सकता है जबकि उसका अपने विषय पर पर्याप्त अधिकार हो। यह पहली आवश्यकता है। इसकी पूर्ति हुए बिना शिक्षण कार्य प्रारम्भ करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। अतः शिक्षक को शिक्षण बिन्दु लिखने से पूर्व पाठ्यवस्तु का गहराई से अध्ययन कर लेना चाहिये।

विषय वस्तु विश्लेषण से तात्पर्य अध्याप्य विषय वस्तु को पदों, तथ्यों, प्रत्ययों आदि में विभाजित करना है। वे शब्द जो विषय विशेष से सम्बन्धित होते हैं और जिनका अर्थ ज्ञात किए बिना इकाई में निहित विषय वस्तु को समझना कठिन होता है, उन्हें पद कहते हैं। ये पद किसी भौतिक घटना तथा वास्तविकता को प्रकट करते हैं। प्रत्यय विभिन्न तथ्यों के परस्पर सम्बन्ध तथा घटना, प्रतिक्रिया अथवा व्यवहार के किसी पक्ष को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार विषय वस्तु को पदों, तथ्यों, प्रत्ययों आदि में विभाजित कर लेने से शिक्षक के समक्ष सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यह विचार पृथ्वी की गतियां नामक इकाई की विषय-वस्तु का विश्लेषण करने से भली भांति स्पष्ट हो सकेगा।

पद   अक्ष, कक्षतल, परिभ्रमण, परिक्रमण, आकर्षण शक्ति केन्द्र विमुखी शक्ति अधिवर्ष, कर्क-सक्रान्ति मकर सक्रान्ति, वसन्त विषुव, शरद-विषुव।

तथ्य

(1) पृथ्वी अपने अक्ष पर 23 घण्टे और 56 मिनट में पूरा चक्कर लगाती है।

(2) पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है।

(3) पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने में $365\frac{1}{4}$ दिन लगते है।

(4) परिभ्रमण की निरन्तरता से रात दिन होते रहते है।

(5) प्रति चौथे वर्ष अधिवर्ष होता है।

(6) परिक्रमण के समय पृथ्वी अपने कक्षतल के साथ सदा एक ही ओर $66\frac{1}{2}^{0}$ का कोण बनाती है।

(7) 21 जून को सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर सीधी पड़ती हैं।

(8) 22 दिसम्बर को सूर्य की किरणें मकर रेखा पर सीधी पड़ती हैं।

(9) 21 मार्च और 23 सितम्बर को सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा पर सीधी पड़ती है।

(10) परिभ्रमण के समय पृथ्वी के सदा अपने कक्षातल के साथ $66\frac{1}{2}°$ का कोण बनाने से ऋतुएँ बनती हैं।

(11) ऋतुएँ मानव के क्रिया-कलापों को प्रभावित करती हैं।

प्रत्यय

(1) रात दिन की कुल अवधि परिभ्रमण के समय के तुल्य होती है।

(2) पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व को घूमने के कारण सूर्य पूर्व में उदित होकर पश्चिम में अस्त होता है।

(3) रात दिन की घटना के कारण मनुष्य ने अपने कार्य करने तथा विश्राम करने का समय निर्धारित किया है।

(4) परिभ्रमण गति तथा पृथ्वी के अपने कक्षातल के साथ $66\frac{1}{2}°$ का कोण बनाने से कभी दिन बड़े होते हैं तथा कभी छोटे।

(5) गर्मी और सर्दी में तापक्रम की भिन्नता का मुख्य कारण सूर्य की सीधी और तिरछी किरणें हैं।

इस प्रकार शिक्षण बिन्दुओं के अन्तर्गत विषय वस्तु का विश्लेषण करके पदों, तथ्यों, प्रत्ययों, सिद्धान्तों आदि का चयन कर लिया जाता है तथा उन्हें व्यवस्थित रूप में लिख लिया जाता है।

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, विषय-वस्तु विश्लेषण करके विषय-वस्तु के पदों, प्रत्ययों, तथ्यों, सिद्धान्तों आदि में विभाजित करना पर्याप्त कुशलता का परिचायक है। अत शिक्षण बिन्दुओं के अन्तर्गत विषय-वस्तु को छोटे छोटे पदों में विभाजित करके क्रमबद्ध रूप से लिख लेना भी उतना ही लाभदायक सिद्ध होता है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की गतियाँ नामक इकाई के शिक्षण बिन्दु छोटे छोटे पदों में क्रमबद्ध ढंग से निम्नानुसार लिखे जा सकते है—

(1) पृथ्वी की दो गतियाँ है, दैनिक और वार्षिक।

(2) दैनिक गति में अपनी कीली पर चक्कर लगाती है।

(3) दैनिक गति की अवधि एक रात और दिन के बराबर होती है।

(4) वार्षिक गति में पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

(5) परिक्रमा करने में $365\frac{1}{4}$ दिन लगते हैं।

(6) पृथ्वी की दोनों गतियाँ साथ साथ होती रहती है।

(7) इन गतियों से मानव जीवन अत्यधिक प्रभावित है।

उक्त प्रकार से सम्पूर्ण इकाई के शिक्षण बिन्दु लिखे जा सकते हैं।

उद्देश्यमय, व्यवहारगत संपरिवर्तन
(Objectives with Behavioural Changes)

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन शिक्षण उद्देश्यों का उल्लेख करना होता है जो

इकाई के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी अर्जित करते हैं । स्पष्ट है कि ये उद्देश्य विशिष्ट, व्यवहारपरक तथा प्राप्य होते हैं ।

शिक्षण उद्देश्यों को शिक्षण बिन्दुओं के पश्चात् इकाई-योजना में स्थान दिया गया है । अतः यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि ऐसा क्यों किया गया है ? वास्तव में शिक्षण उद्देश्य अध्ययन अध्यापन स्थितियों मूल्यांकन की प्रविधियों आदि को दिशा प्रदान करते हैं । पाठ्यक्रम में ऐसी पाठ्यवस्तु का समावेश करना ठीक नहीं माना जाता जो उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक न हो । परन्तु एक बार उद्देश्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम निश्चित हो जाने के पश्चात् यही विचार करना शेष रहता है कि किसी इकाई विशेष में निहित पाठ्य वस्तु के माध्यम से कौन-कौन से शिक्षण उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं । इस कारण इकाई योजना में शिक्षण बिन्दुओं को पहले तथा शिक्षण उद्देश्यों को बाद में स्थान दिया गया है । व्यावहारिकता की दृष्टि से ऐसा करना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा ।

यहाँ 'पृथ्वी की गतियाँ' नामक इकाई के उद्देश्य दिए जा रहे हैं ताकि उद्देश्य लिखने का ढंग स्पष्ट हो सकेगा ।

(1) ज्ञान (Knowledge)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) अक्ष, कक्षतल, परिभ्रमण, परिक्रमण, आकर्षण शक्ति, केन्द्र विमुख शक्ति, अधिवर्ष, मकर-संक्रान्ति, मकर संक्रान्ति, बसन्त विषुव आदि पदों का अर्थ पुनः प्रस्तुत करता है ।

(ब) पृथ्वी की गतियों से सम्बन्धित तथ्यों को पुनः प्रस्तुत करता है ।

(स) पृथ्वी की गतियों से सम्बन्धित रेखाचित्र पढ़ता है ।

(2) अवबोध (Understanding)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) अक्ष, कक्षतल, परिभ्रमण, परिक्रमण, आकर्षण शक्ति, केन्द्र विमुखी शक्ति अधिवर्ष, कर्क-संक्रांति, मकर-संक्रांति, बसन्त विषुव, शरद विषुव आदि पदों का अर्थ स्पष्ट करता है ।

(ब) परिभ्रमण तथा रात दिन के मध्य सम्बन्ध देखता है ।

(स) सूर्य तथा अन्य ग्रहों के पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होने का कारण स्पष्ट करता है ।

(द) रात दिन की घटना का मानव जीवन में महत्त्व स्पष्ट करता है ।

(य) प्रति चौथे वर्ष अधिवर्ष होने का कारण स्पष्ट करता है ।

(र) दैनिक और वार्षिक गति की तुलना करता है ।

(ल) सूर्य की सीधी और तिरछी किरणों का क्रमशः गर्मी और सर्दी के साथ सम्बन्ध देखता है ।

(व) गर्मी मे दिन बड़े होने तथा गर्मी मे रातें बड़ी होने कारण स्प
करता है।

(य) ऋतुओं का मानव जीवन मे महत्त्व स्पष्ट करता है।

(र) गतियों से सम्बन्धित रेखाचित्र की व्याख्या करता है।

ज्ञानोपयोग

(Application of Knowledge)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) रात की अवधि ज्ञात होने पर दिन की अवधि का तथा दिन की अवधि ज्ञात होने पर रात की अवधि का सही अनुमान लगाता है।

(ब) विभिन्न ग्रहों की परिभ्रमण की अवधि ज्ञात होने पर उन्ही रात दिन की अवधि का सही अनुमान लगाता है।

(स) ग्लोब पर एक स्थान का समय ज्ञात होने पर अन्य स्थानों के समय का अनुमान लगाता है।

(द) विभिन्न वर्षों मे अधिवर्ष चुनता है।

(य) रात दिन की अवधि ज्ञात होने पर विभिन्न स्थानो की भूमध्यरेखा से सापेक्षिक दूरी का निर्णय करता है।

(र) जनवरी व जुलाई के तापक्रम के आंकडो के आधार पर किसी भी स्थान की गोलार्द्धीय स्थिति का निर्णय करता है।

अभिरुचि (Interest)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) स्वतः रात दिन तथा ऋतुओं सम्बन्धी भौगोलिक स्पष्टीकरण देता है।

(ब) स्वतः दैनिक गति तथा वार्षिक गति से सम्बन्धित रेखाचित्र बनाता है।

(स) स्वतः पृथ्वी की गतियों सम्बन्धी साहित्य पढ़ता है।

अभिवृत्ति (Attitude)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) रात दिन तथा ऋतुओं के मानव जीवन मे महत्त्व की सराहना करता है।

(ब) रात दिन व ऋतुओं की घटनाओं के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करता है।

कौशल (Skill)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) रात दिन दर्शाने वाला रेखाचित्र खींचता है।

(ब) ऋतुओं को दर्शाने वाला रेखाचित्र खींचता है।

इस प्रकार इकाई से सम्बन्धित उद्देश्यो का उल्लेख किया जाता है। यहा यह ध्यातव्य है कि इकाई शिक्षण मे ज्ञान अवबोध ज्ञानोपयोग, अभिरुचि, अभिवृत्ति, कौशल आदि सभी उद्देश्यो को प्राप्त करने की दृष्टि से प्रयास करना चाहिए परन्तु इसका यह आशय कदापि नही है कि इकाई शिक्षण म किसी उद्देश्य की प्राप्ति की सम्भावनाएँ न हो तो भी औपचारिकता का निर्वाह करने के लिए वह उद्देश्य लिखा जाय। यह स्मरणीय है कि केवल वे ही उद्देश्य इकाई योजना मे लिखे जाने चाहिए जो इकाई शिक्षण के माध्यम से प्राप्त किये जा सकें।

अध्ययनाध्यापन सस्थितिया
(Teaching Learning Situations)

इसके अन्तर्गत शिक्षण बिन्दु तथा उद्देश्य के अनुरुप शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओ का उल्लेख किया जाता है।

मान्यता यह है कि शिक्षक कक्षा मे उद्देश्यानुरूप शिक्षण-परिस्थिति का निर्माण करता है। शिक्षार्थी परिस्थिति के प्रति अन्त क्रिया करता है। इस अन्त क्रिया के फलस्वरूप उसे अधिगम्यात्मक अनुभवो की प्राप्ति होती है। अध्ययनाध्यापन सस्थितियो मे शिक्षक द्वारा आयोजित सुसबद्ध क्रियाओ के प्रति शिक्षार्थी की अन्त क्रिया होना बहुत आवश्यक है। यदि शिक्षार्थी शिक्षक क्रियाओं के प्रति प्रतिक्रिया न करें तो शिक्षक द्वारा आयोजित क्रियाए निष्फल रहती हैं। "पृथ्वी की गतियो" के उदाहरण मे इस विचार को ग्रहण करने म सहायता मिलेगी।

अध्ययनाध्यापन सस्थितिया

शिक्षक क्रियाएँ (Teaching Activities)	शिक्षार्थी क्रियाएँ (Student Activities)
(1) शिक्षक द्वारा पृथ्वी की दोना गतियो को दर्शाने वाले उपकरण का प्रदशन तथा स्पष्टीकरण।	(1) शिक्षार्थियो द्वारा प्रदशन का ध्यान पूवक अवलोकन तथा जिज्ञासावश प्रश्न पूछना।
(2) अधेरे कमरे मे ग्लोब को प्रकाश के सामने रखकर रात दिन, सूर्योदय, मध्याह्न, सन्ध्या की स्थितियो का प्रदशन तथा स्पष्टीकरण।	(2) शिक्षार्थियो द्वारा ध्यानपूवक अवलोकन।

शिक्षण क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ
(3) रेल यात्रा करने के सामान्य उदाहरण द्वारा पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर घूमने की घटना के परिणामस्वरूप सूर्य के पूर्व में उदय होने तथा पश्चिम में अस्त होने की घटना का उदाहरण प्रविधि द्वारा स्पष्टीकरण।	(3) शिक्षार्थियों द्वारा ध्यानपूर्वक कक्ष तथा यात्रा में अनुभवों के आधार पर सूर्य के पूर्व में उदय होने एवं पश्चिम में अस्त होने का कारण आत्मसात् करना।
(4) शिक्षक मानव-जीवन में रात दिन की घटना का महत्त्व स्पष्ट करने के लिए वर्ग विचार विमर्श आयोजित करेगा। (विचार विमर्श विधि)	(4) शिक्षार्थी दो वर्गों में विभाजित होकर रात दिन की घटना का मानव जीवन में क्या महत्त्व है इस पर विचार विमर्श करेंगे।
(5) शिक्षक रात दिन की घटना को दर्शाने वाले रेखाचित्र खींचेगा तथा वैसा ही रेखाचित्र अपनी-अपनी पुस्तिकाओं में खींचने का शिक्षार्थियों को सुझाव देगा। (प्रदर्शन प्रविधि)	(5) शिक्षार्थी ध्यानपूर्वक श्यामपट्ट पर खींचे जा रहे रेखाचित्र का अवलोकन करेंगे तथा शिक्षक के संकेत पर वैसा ही रेखाचित्र अपनी-अपनी पुस्तिकाओं में बनाएंगे।
(6) शिक्षक नियत कार्य के रूप में शिक्षार्थियों को रात दिन दर्शाने वाले सुन्दर रेखाचित्र खींचने को कहेगा। (नियत कार्य प्रविधि)	(6) शिक्षार्थी अपने अवकाश के समय में नियत कार्य करेंगे तथा रात दिन दर्शाने वाला अच्छा से अच्छा रेखाचित्र खींचने का अभ्यास करेंगे।
(7) प्रति चौथे वर्ष अधिवर्ष मानने का कारण स्पष्ट किया जाएगा तथा विभिन्न वर्षों की तालिका में से अधिवर्ष चुनने की विधि बताई जायगी।	(7) शिक्षार्थी प्रति चौथे वर्ष अधिवर्ष होने का कारण समझेंगे तथा विभिन्न वर्षों की तालिका में से अधिवर्ष चुनेंगे।
(8) ऋतुएँ दर्शाने वाले रेखाचित्र के माध्यम से पृथ्वी की 21 जून, 22 दिसम्बर, 21 मार्च, 23 सितम्बर	(8) शिक्षार्थी ऋतुएँ दर्शाने वाले रेखाचित्र के माध्यम से विभिन्न तिथियों को पृथ्वी की स्थितियों का अध्ययन

शिक्षक क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ
की स्थितियों का स्पष्टीकरण किया जाएगा। (स्पष्टीकरण प्रविधि)	करेंगे तथा ऋतुएँ बनने का कारण समझेंगे।
(9) शिक्षक 21 जून की स्थिति का रेखाचित्र दर्शाकर उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़े होने तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में रातें बड़ी होने का कारण स्पष्ट करेगा।	(9) शिक्षार्थी 21 जून की स्थिति में उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़े होने तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में रातें बड़ी होने का कारण ज्ञात करेंगे।
(10) शिक्षक 22 दिसम्बर की स्थिति का रेखाचित्र दर्शाकर इस स्थिति में दक्षिणी गोलार्द्ध में दिन बड़े होने तथा उत्तरी गोलार्द्ध में दिन छोटे होने का कारण स्पष्ट करेगा।	(10) शिक्षार्थी रेखाचित्र का ध्यानपूर्वक अवलोकन करेंगे तथा स्थिति को समझने का प्रयास करेंगे।
(11) शिक्षक 21 मार्च और 23 सितम्बर की स्थितियों में पूरे संसार में रात दिन की अवधि समान होने का रेखाचित्र के माध्यम से कारण स्पष्ट करेगा।	(11) शिक्षार्थी 21 मार्च और 23 सितम्बर को पूरे संसार में रात दिन समान होने का कारण समझेंगे।
(12) ऋतुओं का मानव-जीवन पर प्रभाव विषय पर विचार विमर्श आयोजित किया जाएगा।	(12) शिक्षार्थी दो विभागों में विभाजित होकर अपने संयोजक के नेतृत्व में ऋतुओं का मानव-जीवन पर प्रभाव विषय पर विचार विमर्श करेंगे। शिक्षक से आवश्यकतानुसार परामर्श करेंगे।
(13) शिक्षक ऋतुएँ दर्शाने वाले रेखाचित्र खींचने की विधि श्यामपट्ट पर प्रदर्शन करेगा। तत्पश्चात् शिक्षार्थियों को अपनी-अपनी पुस्तिकाओं में बनाने का अवसर दिया जाएगा।	(13) शिक्षार्थी ऋतुएँ दर्शाने वाले रेखाचित्र की विधि ध्यानपूर्वक अवलोकन करेंगे तथा शिक्षक के संकेत पर अपनी-अपनी पुस्तिकाओं में खींचेंगे।
(14) शिक्षक शिक्षार्थियों की माँग पर या अपनी पहल में शिक्षार्थियों को	(14) शिक्षार्थी सुझाई हुई पुस्तका का पुस्तकालय में विशेष अध्ययन करेंगे।

शिक्षक क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ
विशेष अध्ययन के लिए कुछ पुस्तकों के नाम बताएगा।	
(15) शिक्षक बड़े आकार में ऋतुएँ दर्शाने वाले रेखाचित्र बनाने के लिए कहेगा तथा अच्छे रेखाचित्रों को भूगोल कक्ष के बुलेटिन बोर्डों पर प्रदर्शित करेगा।	(15) शिक्षार्थी अपने अवकाश के ... में बड़े आकार के रेखाचित्र बनाने तथा बुलेटिन बोर्ड सजाने में शिक्षक की सहायता करेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अध्ययनाध्यापन संस्थितियों में उद्देश्यों एवं विषय-वस्तु के अनुसार शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है शिक्षक को जितनी अधिक विधियों का ज्ञान होगा उतनी ही अधिक ... शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओं के आयोजन में देखी जा सकती है।

सहायक-शिक्षण-सामग्री

(Teaching Aids)

इकाई योजना के इस खण्ड के अन्तर्गत उन रेखाचित्रों, मानचित्रों तथा अन्य श्रव्य-दृश्य साधनों का उल्लेख किया जाता है जिनकी इकाई शिक्षण में आवश्यकता होगी। उन सामान्य साधनों के लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती जो प्रति दिन के शिक्षण में अनिवार्य रूप से काम में आते हैं जैसे श्यामपट्ट, चाक, डस्टर, संकेतक आदि। इनके सम्बन्ध में अलग से लिखने का मूल प्रयोजन यही है कि शिक्षक का ध्यान सरलतापूर्वक इनकी ओर आकर्षित हो जाये तथा वह इनको प्राप्त करने की दृष्टि से प्रयास प्रारम्भ कर दे। इस इकाई में निम्नांकित सहायक शिक्षण सामग्री की आवश्यकता होगी—

(1) ग्लोब।
(2) पृथ्वी की गतियाँ दिखाने वाला उपकरण।
(3) मोमबत्ती यदि विद्युत की सुविधा न हो।
(4) रेखागणितीय मंजूषा।
(5) सामान्य कक्षोपकरण।

नियत-कार्य

(Assignment or Home Work)

नियत कार्य का अध्ययनाध्यापन-संस्थितियों में विशेष महत्त्व है, इस कारण इकाई योजना में अलग से इसका खण्ड निर्धारित है। इसके विशेष महत्त्व को स्वीकार करते हुए शिक्षण प्रविधियों के अध्याय में इसका अलग युक्ति के रूप में वर्णन किया

गया है। यहाँ तो इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि शिक्षार्थी काय अधिगम अर्जित करने तक ही सीमित नही ह परन्तु अर्जित अधिगम का प्रबलीकरण करना भी उतना ही आवश्यक ह। नियत काय द्वारा शिक्षक कक्षान्तगत शिक्षण का विस्तार करता ह तथा विभिन्न ढगा स अर्जित ज्ञान का प्रबलीकरण करने की परिस्थितियो का निमाण करता है। सप्रति इकाई में निम्नांकित नियत काय आयोजित किये जा सकते ह—

(1) बडे आकार का ऋतुएँ दर्शाने वाला रेखाचित्र बनाना तथा उसको बुलेटिन बोड पर सजाना। (प्रत्येक शिक्षार्थी द्वारा)

(2) विशेष अध्ययन के लिए सुझाई गई पुस्तका का अध्ययन करना।

(3) पाठ्य-पुस्तक मे इकाई से सम्बधित दिए गए प्रश्नो को हल करना।

मूल्यांकन
(Evaluation)

इकाई योजना का अतिम परन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष मूल्यांकन ह। मूल्यांकन की प्रविधियो तथा उपकरणो द्वारा उन सारणियो का सकलन किया जाना है जो यह प्रमाणित करती हैं कि इकाई शिक्षण के उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो सके ह। मूल्यांकन के विशिष्ट महत्त्व का ध्यान मे रखते हुए इस पुस्तक म मूल्यांकन के सम्बन्ध म विभिन्न पक्षो पर अलग अध्याय म विस्तार से चर्चा की गई ह। इकाई योजना के इस पक्ष म इकाई जाच पत्र की रूपरेखा देना ही पर्याप्त होना है क्योंकि इकाई जाच पत्र बनाना स्वय अपने आप म एक सम्पूर्ण योजना ह जिसके सभी पक्षो का इकाई योजना के इस पक्ष म समावेश करना सम्भव प्रतीत नही होता।

सामान्यतया इकाई-जाच पत्र द्वारा ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग एव कौशल उद्देश्यो की ही जाच की जाती है। अभिरुचियो एव अभिवृत्तियो की जाच के लिए लिखित परीक्षा विश्वसनीय साधन नहीं है। अत इन उद्देश्यो की जाच के लिए पर्यवेक्षण, साक्षात्कार, घटनावृत्त, प्रपत्र आदि प्रविधियाँ अपनाई जाती है। इस प्रकार शिक्षण उद्देश्यो को दो भागो म विभाजित किया जा सकता है, लिखित परीक्षा द्वारा जाच करने योग्य उद्देश्य तथा अन्य शेष उद्देश्य। अध्यापन के समय सभी विभिन्न उद्देश्यो की प्राप्ति की दृष्टि म प्रयास किया जाना चाहिये। ऐसा नही कि जिन उद्देश्यो की लिखित परीक्षा द्वारा जाच नही की जा सकती उनके सम्बन्ध म प्रयास ही न करें। वास्तव मे देखा जाय तो ज्ञान, अवबोध आदि उद्देश्यो की तुलना म अभिरुचियो तथा अभिवृत्तियो के विकास का अधिक महत्त्व है क्योंकि इनके विकसित हो जाने पर शिक्षार्थी द्वारा स्वशिक्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती ह।

सुधारात्मक पाठ

इकाई जाच पत्र द्वारा शिक्षक को यह ज्ञात हो जाता ह कि शिक्षार्थी ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग तथा कौशल उद्देश्यो को किस सीमा तक प्राप्त कर सके हैं अत इकाई जाच पत्र के तुरन्त पश्चात् शिक्षार्थियो को इकाई जाच के परिणाम से परिचित कराकर इकाई के उन शिक्षण बिन्दुओ का पुनराध्यापन करना चाहिये जिनमे अधि

कारण शिक्षार्थी कमजोर हो। ऐसा करना इकाई योजना का ही अंग माना जाना चाहिये।

उपसंहार

इकाई योजना के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट ही है कि योजना इकाई शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया का शाब्दिक चित्र प्रस्तुत करती है। इकाई-योजना बना लेने से शिक्षक शिक्षण के प्रत्येक पक्ष की दृष्टि से स्पष्ट हो जाता है तथा शिक्षण कार्य को पूर्ण आत्मविश्वास एवं प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न कर सकता है। इतना होते हुए भी, यह सही है कि इकाई योजना एक साधन है, साध्य नहीं। ऐसा नहीं है कि शिक्षक योजना का दास होकर कार्य करे। उसे शिक्षण प्रक्रिया में प्रत्येक स्तर पर अपनी सूझ बूझ का उपयोग कर शिक्षण को निरंतर उन्नत बनाने का प्रयास करना चाहिये। यदि ऐसा करने के लिए अपनी योजना में परिवर्तन भी करना पड़े तो सहर्ष करना चाहिये क्योंकि योजना साध्य नहीं, साधन ही तो है।

सारांश

अल्पकालिक योजना के दो रूप हैं—(अ) इकाई-योजना तथा (ब) दैनिक पाठ योजना। इस अध्याय में इकाई-योजना के सम्बन्ध में सम्यक् चिंतन करने का प्रयास किया गया है।

इकाई-योजना में विषय-वस्तु की दृष्टि से समग्रता होती है। यह एक सम्पूर्ण अनुभव पर आधारित होती है। इसमें सभी विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से चिंतन करना सम्भव होता है। यह सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तथा दैनिक शिक्षण को जोड़ने वाली अत्यंत महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसमें विभिन्न प्रगतिशील विधियों के उपयोग की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। इसका मनोवैज्ञानिक आधार भी सुदृढ़ है।

इकाई का आकार स्तरानुसार बदल जाता है। सामान्यतः इकाई अनुभवों का वह समूह है जो कम से कम दो तथा अधिक से अधिक आठ-दस पाठों में विभाजित किया जा सके।



अध्याय 6

पाठ-योजना

(Lesson Plan)

किसी कार्य की सफलता अथवा विफलता उस कार्य को भली प्रकार से सपन्न करने की योजना पर काफी हद तक निर्भर करती है। यदि कार्य का पूर्व चिंतन के आधार पर नियोजित तरीके से किया जाय तो उससे श्रम एवं समय का सदुपयोग होता है तथा कार्य का सफलतापूर्वक पूर्ण होना सुनिश्चित सा होता है। शिक्षण के क्षेत्र में भी यह बात उतनी ही सत्य है। जो शिक्षण पहले से ही नियोजित होता है वह निस्सन्देह सफल होता है।

एक सफल एवं जागरूक शिक्षक जिस पाठ्यवस्तु को पढ़ाना चाहता है उसे सर्वप्रथम इकाइयों में वर्गीकृत कर लेता है। एक इकाई को पूर्ण करने में उसे 3 से 6 सप्ताह तक का समय लग सकता है। अतः उसे इस इकाई की विषय वस्तु को प्रतिदिन कक्षा में पढ़ाना पड़ता है। प्रतिदिन के पढ़ाने हेतु वह निम्न तथ्यों पर पूर्व चिंतन करता है—

(1) विषय वस्तु को सीखने के लिए शिक्षार्थी को किस प्रकार तत्पर किया जाय जिससे कि उसकी सीखने में उत्सुकता बढ़े?

(2) विषय-वस्तु के अध्यापन में शिक्षण सहायक सामग्री कौन-कौन सी काम में ली जावे तथा उनका उपयोग कब किया जाय?

(3) पाठ्यवस्तु में कौनसी बातें पहले तथा कौनसी बाद में पढ़ाई जाएँ?

(4) शिक्षण के उपरान्त शिक्षार्थी में कौन कौन से व्यवहारगत परिवर्तन सम्भव हो सकेंगे?

(5) शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओं का स्तर तथा प्रकार क्या हो?

जब एक शिक्षक उक्त प्रश्नों पर मनन करता है तथा इन पर चिंतन करने के उपरान्त एक कालांश के शिक्षण की लिखित योजना बनाता है इसे पाठ-योजना कहते हैं। मरसेल[1] (Mursell) ने शिक्षक को एक कलाकार के समान माना है।

1 Mursell, J L Successful Teaching Mc Graw Tokyo P 322

उसकी कृति श्रेष्ठ तभी होगी जबकि वह एक सफल कलाकार की भांति अपने कार्य की योजना सामान्य शिक्षण सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित करे। स्ट्रक[1] (Struck) ने शिक्षण के कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए पाठ योजना बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। उन्होंने शिक्षक और इन्जीनियर की तुलना करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार एक यन्त्र अभियन्ता पूर्व में ही कार्य तथा सामान के बारे में निर्णय ले लेता है ताकि दूसरे दिन काम बिना रुकावट व कुशलतापूर्वक चलता रहे, अध्यापक को भी अध्यापन से पूर्व रोमी ही अध्यापन की रूपरेखा बना लेनी चाहिए।

पाठ योजना का आविर्भाव

(Origin of Lesson Plan)

पाठ योजना का आविर्भाव गस्टाल्ट मनोविज्ञान से हुआ है यह एक उत्तम अधिगम सिद्धान्त माना गया है। इसके अनुसार सीखने योग्य विषय-वस्तु को समग्र रूप में प्रस्तुत करने से बालक खण्ड को भी सीख लेता है। इस अधिगम सिद्धान्त में दो तत्त्वों पर प्रमुख ध्यान देना होता है। प्रथम प्रत्यक्षीकरण (Perception) तथा दूसरा सामान्यीकरण (Generalisation)। शिक्षण में प्रत्यक्षीकरण की अनुभूति इकाई (Unit) द्वारा की जाती है तथा इस इकाई का प्रस्तुतीकरण विभिन्न चरणों में किया जाता है जिन्हें पाठ योजना कहते हैं।

पाठ योजना की आवश्यकता

(Need of Lesson Plan)

पाठ योजना शिक्षक के लिए एक मार्गदर्शिका का कार्य करती है। मरसेल[2] ने पाठ योजना के निम्न तीन लाभ बताये हैं—

(1) पाठ योजना पाठ को सर्वोत्तम ढंग से पढ़ाने की सम्भावना को बढ़ाती है।

(2) पाठ योजना अध्यापक को अपने शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने में सहायक है तथा इस प्रकार उसकी शिक्षण योग्यता में निरन्तर वृद्धि करती है।

(3) पाठ योजना द्वारा उत्तम शिक्षक का निर्माण सरलता से सम्भव है।

मरसेल के शब्दों में—पाठ योजना के दो महान् लाभ हैं। यह उत्तम शिक्षण में योग देती है और उत्तम शिक्षक का निर्माण करती है। पाठ योजना शिक्षण के

---

1 Struck F Theodore Creative Teaching John Wiley & Sons 1977 P 174

2 James L Mursell Opcit P 323— Lession Planning has two great values It makes for good teaching and it makes a good teacher

लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके माध्यम से शिक्षक शक्षिक उद्देश्यो तथा प्रक्रियाओ का नियमन भली प्रकार से कर लेता है। इसके द्वारा कक्षागत परिस्थितियों का पूण उपयोग तथा उनका अधिगम हेतु समायोजन सफलतापूर्वक कर लेता है तथा कक्षा म क्रियाशीलता को बढावा मिलने से अधिगम प्रक्रिया को यह रुचिकर बनाती है।

पाठ-योजना का अर्थ एव परिभाषाएँ

पाठ-योजना शिक्षण के पूव की तयारी है जिसे शिक्षक पूव चिंतन के आधार पर अधिगम एव शिक्षण सिद्धान्तो को ध्यान मे रखकर अध्यापन हेतु तयार करता है। यह एक कक्षा अध्यापन की पूव लिखित योजना है जिसमे पाठ का प्रयोजन और उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयोग किये जाने वाली विधियो को निश्चित करता है। पाठ योजना शिक्षक की एक कालाश के शिक्षण की एक लिखित योजना है जिसमे वह शिक्षार्थी को पाठ सीखने हेतु आवश्यक पूव ज्ञान, पाठ के लिए विद्यार्थियो को तत्पर करने का तरीका, शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओ का क्रम, शिक्षण के प्राप्य उद्देश्य तथा मूल्याकन इत्यादि के बारे मे लिखित योजना बनाता है।

उदाहरण के लिए अध्यापक कक्षा 9 मे "तैरने के नियम" विज्ञान विषय म एक कालाश मे पढाना चाहता है। अध्यापक तैरने के नियम सीखने के उपरान्त शिक्षार्थी म होने वाले व्यवहारगत परिवतनो को उद्देश्यो के रूप मे लिखेगा। इस प्रत्यय को समझने के लिए आवश्यक पूव ज्ञान का निर्धारण करेगा। तैरने के नियम से सम्बन्धित दैनिक जीवन के अनुभव, कक्षा म किये जाने वाले प्रयोग तथा अन्य शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओ को एक तार्किक क्रम म प्रस्तुत करने की योजना को लिखेगा तथा उसका शिक्षण कहा तक सफल रहा उसके लिए पाठ योजना के अन्त म मूल्याकन प्रश्न अकित करेगा।

अत पाठ योजना केवल एक आधार पत्र (Blue Print) नही है जिसका उस अनुकरण करना हो, अपितु यह एक पथ प्रदशक है जिसमे शिक्षक अपने शिक्षण को सफलतापूवक सम्पन्न करने के लिए योजना निर्माण विवेकपूवक करने को स्वतत्र है। पाठ-योजना को शिक्षाशास्त्रियो ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। इनमे से प्रमुख परिभाषाए निम्नाकित हैं—

(1) डेवीज (Davies) के अनुसार शिक्षण व्यवस्था के सभी पक्षो के व्यावहारिक रूप का आलेख ही पाठ योजना है।

(2) बोसिंग (Bossing) के अनुसार शिक्षण क्रियाओ तथा उद्देश्यो के आलेख को पाठ-योजना कहते है।

(3) लेस्टर बी स्टेण्ड्स (Lester B Stands) के अनुसार पाठ-योजना एक कार्य योजना है। इसमे अध्यापक की शिक्षार्थियो के मान एव

उसकी कृति श्रेष्ठ तभी होगी जबकि वह एक सफल कलाकार की भांति अपने कार्य की योजना सामान्य शिक्षण सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित कर ले। स्ट्रक[1] (Struck) ने शिक्षण के कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए पाठ योजना बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। उन्होंने शिक्षक और इन्जीनियर की तुलना करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार एक कुशल अभियन्ता पूर्व में ही कार्य तथा सामग्री के बारे में निर्णय ले लेता है ताकि दूसरे दिन कार्य बिना रुकावट के कुशलतापूर्वक चलता रहे, अध्यापक को भी अध्यापन से पूर्व ऐसी ही अध्यापन की रूपरेखा बना लेनी चाहिए।

पाठ योजना का आविर्भाव

(Origin of Lesson Plan)

पाठ योजना का आविर्भाव गैस्टाल्ट मनोविज्ञान से हुआ है यह एक उत्तम अधिगम सिद्धान्त माना गया है। इसके अनुसार सीखने योग्य विषय-वस्तु को समग्र रूप में प्रस्तुत करने से बालक खण्ड को भी सीख लेता है। इस अधिगम सिद्धान्त में दो तत्त्वों पर प्रमुख ध्यान देना होता है। प्रथम प्रत्यक्षीकरण (Perception) तथा दूसरा सामान्यीकरण (Generalisation)। शिक्षण में प्रत्यक्षीकरण की अनुभूति इकाई (Unit) द्वारा की जाती है तथा इस इकाई का प्रस्तुतीकरण विभिन्न चरणों में किया जाता है जिन्हें पाठ योजना कहते हैं।

पाठ योजना की आवश्यकता

(Need of Lesson Plan)

पाठ योजना शिक्षक के लिए एक मार्गदर्शिका का कार्य करती है। मरसेल[2] ने पाठ योजना के निम्न तीन लाभ बताये हैं—

(1) पाठ योजना पाठ को सर्वोत्तम ढंग से पढ़ाने की सम्भावना को बढ़ाती है।

(2) पाठ योजना अध्यापक को अपने शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने में सहायक है तथा इस प्रकार उसकी शिक्षण योग्यता में निरन्तर वृद्धि करती है।

(3) पाठ योजना द्वारा उत्तम शिक्षक का निर्माण सरलता से सम्भव है।

मरसेल के शब्दों में—पाठ योजना के दो महान् लाभ हैं। यह उत्तम शिक्षण में योग देती है और उत्तम शिक्षक का निर्माण करती है। पाठ योजना शिक्षण के

---

1 Struck F Theodore Creative Teaching John Wiley & Sons 1977 P 174

2 James L Mursell Opcit P 323— Lession Planning has two great values It makes for good teaching and it makes a good teacher

लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके माध्यम से शिक्षक शैक्षिक उद्देश्यो तथा प्रक्रियाओ का नियमन भली प्रकार से कर लेता है। इसके द्वारा कक्षागत परिस्थितियो का पूर्ण उपयोग तथा उनका अधिगम हेतु समायोजन सफलतापूर्वक कर लेता है तथा कक्षा म क्रियाशीलता को बढावा मिलने से अधिगम प्रक्रिया को यह रुचिकर बनाती है।

पाठ-योजना का अर्थ एव परिभाषाएँ

पाठ योजना शिक्षण के पूर्व की तैयारी ह जिसे शिक्षक पूर्व चिन्तन क आधार पर अधिगम एव शिक्षण सिद्धान्तो को ध्यान मे रखकर अध्यापन हेतु तैयार करता ह। यह एक कक्षा अध्यापन की पूर्व लिखित योजना है जिसमे पाठ का प्रयोजन और उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयोग किये जाने वाली विधियो को निश्चित करता ह। पाठ योजना शिक्षक की एक कालाश के शिक्षण की एक लिखित योजना है जिसमे वह शिक्षार्थी को पाठ सीखने हेतु आवश्यक पूर्व ज्ञान, पाठ के लिए विद्यार्थियो का तत्पर करन का तरीका, शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओ का क्रम, शिक्षण क प्राप्य उद्देश्य तथा मूल्याकन इत्यादि के बारे मे लिखित योजना बनाता है।

उदाहरण के लिए अध्यापक कक्षा 9 म "तैरने के नियम" विज्ञान विषय मे एक कालाश मे पढाना चाहता है। अध्यापक तैरने के नियम सीखने के उपरान्त शिक्षार्थी म होने वाले व्यवहारगत परिवर्तनो की उद्देश्यो के रूप म लिखेगा। इस प्रत्यय को समझने के लिए आवश्यक पूर्व ज्ञान का निर्धारण करेगा। तैरने के नियम से सम्बन्धित दैनिक जीवन के अनुभव, कक्षा म किये जाने वाले प्रयोग तथा अन्य शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओ को एक तार्किक क्रम म प्रस्तुत करने की योजना को लिखेगा तथा उसका शिक्षण कहा तक सफल रहा उसके लिए पाठ योजना के अन्त म मूल्याकन प्रश्न अकित करेगा।

अत पाठ योजना केवल एक आधार पत्र (Blue Print) नही ह जिसका उस अ धानुकरण करना हो, अपितु यह एक पथ प्रदर्शक है जिसमे शिक्षक अपन शिक्षण का सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए योजना निर्माण विवेकपूर्वक करन को स्वतन्त्र है। पाठ-योजना को शिक्षाशास्त्रियो ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। इनमे से प्रमुख परिभाषाए निम्नाकित ह—

(1) डेवीज (Davies) के अनुसार शिक्षण व्यवस्था क सभी पक्षो के व्यावहारिक रूप का आलेख ही पाठ योजना है।

(2) बासिंग (Bossing) के अनुसार शिक्षण क्रियाओ तथा उद्देश्यो के आलेख को पाठ योजना कहत है।

(3) लस्टर बी स्टेण्ड्स (Lester B Stands) के अनुसार पाठ-योजना एक कार्य योजना ह। इसमे अध्यापक न शिक्षार्थियो के ज्ञान व्य

क्षमताओं की जानकारी, शिक्षण के उद्देश्य, पढ़ाई जाने वाली पाठ्यवस्तु का ज्ञान तथा शिक्षण विधियों को प्रभावशाली रूप में क्रम से उपयोग का वर्णन होता है ।

(4) बाईनिंग एवं बाईनिंग का मत है कि—दैनिक पाठ-योजना के निर्माण में उद्देश्यों को परिभाषित करना, पाठ्यवस्तु का चयन करना, उसे क्रम-बद्ध रूप में व्यवस्थित करना और प्रस्तुतिकरण की विधियों तथा प्रक्रियाओं का निर्धारण करना है ।

उत्तम पाठ-योजना के आवश्यक तत्त्व

(Essential Elements of a Good Lesson Plan)

कौनसी पाठ-योजना उत्तम प्रकृति की है ? यह निश्चित करना एक कठिन कार्य है फिर भी यह कहा जा सकता है कि जो पाठ योजना शिक्षक को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता प्रदान करे, वही योजना अच्छी योजना है । शिक्षक पाठ-योजना बनाते समय अपनी सूझबूझ तथा विवेक का सहारा लेते हैं अतः एक निश्चित नियम इसके निर्माणार्थ प्रस्तुत किया जाना सम्भव नहीं । फिर भी एक उत्तम पाठ-योजना के आवश्यक तत्त्वों का वर्णन किया जा रहा है—

(1) पाठ-योजना को लिखित रूप में तैयार करना चाहिए ।

(2) पाठ योजना में शिक्षण बिन्दुओं का स्पष्ट उल्लेख हो ।

(3) पाठ-योजना में पढ़ायी जाने वाली पाठ्यवस्तु बालक के पूर्व ज्ञान पर आधारित हो ।

(4) शिक्षण उद्देश्यों का शिक्षण बिन्दुओं पर आधारित कर व्यवहारगत परिवर्तन के रूप में लिखा जाना चाहिए ।

(5) रोचक तथा प्रेरणादायक शिक्षण विधियों को उपयोग में लाना चाहिए ।

(6) शिक्षण सामग्री के प्रयोग किये जाने का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए ।

(7) छात्र को पूछे जाने वाले प्रश्न तथा उनके सम्भावित उत्तरों को स्पष्ट भाषा में लिखा जाना चाहिए ।

(8) छात्र को दिये जाने वाले अधिगम-अनुभवों का उल्लेख किया जाना चाहिए ।

(9) छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने वाले प्रश्न शिक्षण उद्देश्यों को ध्यान में रख कर बनाये जाने चाहिए ।

पाठ-योजना कक्षा शिक्षण की क्रियाओं का पूर्व निर्धारण एवं नियोजन है । इसमें विषय-वस्तु को एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित करना शिक्षण विधि का पूर्व निर्णय कर सहायक सामग्री, दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरणों का यथा स्थान

उल्लेख करना, अनुमानित कठिनाइयों एवं समस्याओं का हल प्रस्तुत करना तथा शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाओं को व्यवस्थित कर लिखना जिससे कि शिक्षण उद्देश्य प्राप्त हो सकें, सम्मिलित हैं।

योसिंग ने पाठ योजना के तत्वों का स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "पाठ योजना उस कथन को शीर्षक देती है जो इसका वर्णन करता है कि क्या उपलब्धियां प्राप्त करनी हैं और किन साधनों के माध्यम से उनको कक्षा की क्रियाओं के प्रति क्रिया स्वरूप प्राप्त करना है।' इस प्रकार पाठ-योजना एक पथ प्रदर्शक, कक्षा क्रियाओं की क्रमिक निर्देशिका, आवश्यक शिक्षण बिन्दुओं की सूचिका, शिक्षक शिक्षार्थी-अन्तःक्रिया की विवरणिका तथा मूल्यांकन द्वारा शिक्षार्थी की प्रगति की सूचक है। वस्तुतः पाठ योजना शिक्षक के शिक्षण में पूर्ण सहायक मानी गई है।

पाठ-योजना के विविध उपागम

(Various Approaches to Lesson Planning)

पाठ-योजना के निर्माण में अनेकों उपागमों को प्रयुक्त किया जाता है। इन उपागमों में प्रमुख उपागम अधोलिखित हैं—

(अ) हरबार्ट उपागम (The Harbartian Approach)—प्राचीन काल में यह मान्यता थी कि मनुष्य के मन में आत्मा निवास करती है तथा वह उसी के वशीभूत होकर समस्त कार्यों को करता है। जान लाक इस प्राचीन धारणा में परिवर्तन लाने में सफल हुए। उनके अनुसार बालक का मन एक कोरे कागज के समान है जिस पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। उनकी यह धारणा थी कि ज्ञानेन्द्रियां बाह्य जगत् में अनुभव प्राप्त करती हैं तथा ये अर्जित अनुभव बालक को प्रभावित करते हैं।

हरबार्ट की भी अधिगम के सम्बन्ध में यही धारणा है। उसके अनुसार बालक अनुभव द्वारा ज्ञानार्जन करता है। ये अनुभव वह बाह्य जगत् से सम्पर्क कर प्राप्त करता है। उसका यह ज्ञान धीरे धीरे संचित होता रहता है। इन अनुभवों से उसके मन की रचना होती है। शिक्षण के सम्बन्ध में हरबार्ट का मत है कि बालक को ज्ञान प्रस्तुत करते समय नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge) से यदि सम्बन्धित कर दिया जाता है तो वह इसे सुगमता एवं सरलता से सीख सकेगा। इस प्रकार दिए जाने वाले ज्ञान को वह "प्रस्तुतिकरण" की संज्ञा देता है। इसमें शिक्षक का कार्य महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि वह बालक को बाह्य जगत का अनुभव कराता है। ये अनुभव जितने क्रमबद्ध और तर्कसंगत होंगे बालक के ज्ञान का स्तर उतना ही अच्छा होगा।

(1) शिक्षक का महत्त्व

हरबार्ट के अनुसार बालक के चरित्र निर्माण में शिक्षक की प्रमुख भूमिका होती है। चूंकि वह बालक को विभिन्न अनुभवों से प्रत्यक्षीकरण कराता है तथा

इन अनुभवों के आधार पर वह अपने चरित्र का निर्माण करता है, अत यह कहा जा सकता है कि बालक के चरित्र निर्माण की चाबी शिक्षक के हाथ में है।

शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह बालकों को इस प्रकार के अनुभव को अर्जित करने में सहायता प्रदान करे जिससे कि उसका चरित्र उत्तम प्रकृति का बने। अनुभवों को किस प्रकार कराया जाय इस सम्बन्ध में हरबार्ट का मत है कि यह सामाजिक आदान प्रदान व्यक्तिगत सहानुभूति एवं निर्देशन तथा वस्तुओं से साधा सम्पर्क कराकर किया जा सकता है। यह भी आवश्यक है कि बालक अच्छे तथा बुरे में भेद स्थापित कर अच्छे तथ्यों एवं प्रत्ययों को ही ग्रहण करें। इसके लिए शिक्षक उन्हें दोनों प्रकार के अनुभवों को पहिचानना तथा भेद स्थापित करना सिखाता है। इस प्रकार शिक्षक का स्थान इस उपागम में अत्यधिक महत्त्व पूर्ण है।

(2) अध्यापन का महत्त्व

बालक का बाह्य जगत से सम्पर्क कराकर उन्हें अच्छे अनुभवों को अर्जित करने में सहायता प्रदान करना आसान काम नहीं है। इसके लिए बाह्य जगत की वस्तुओं को बालक के समक्ष एक तार्किक क्रम तथा वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होगी। हरबार्ट ने अपने उपागम में इस कला को एक निश्चित रूप प्रदान किया जो कि "पंचपदी शिक्षाक्रम" के नाम से जानी जाती है ये पद निम्न प्रकार सेहैं—

(1) प्रस्तावना
(2) प्रस्तुतिकरण
(3) व्यवस्था
(4) तुलना
(5) मूल्यांकन।

शिक्षण में अधिकांशत इन्हीं पदों का उपयोग किया जाता है।

हरबार्ट उपागम में शिक्षण का अर्थ केवल जानकारी उपलब्ध कराना मात्र नहीं है अपितु अध्यापन का तात्पर्य विभिन्न इकाइयों का तर्कपूर्ण ढंग से बालक के समक्ष प्रस्तुत करना है।

इस उपागम में मुख्य केन्द्र बिन्दु 'सीखना' माना गया है। यदि अध्यापक को सीखने सिखाने की प्रक्रिया भली भांति समझ में आ जाये तो वह एक शिक्षक बन सकता है। हरबार्ट ने इस दिशा में मार्गदर्शन प्रदान किया है। उसने सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण कर इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

"ज्ञानेन्द्रिया द्वारा वस्तुओं के सम्पर्क से बालक के मानस पटल पर कुछ चिह्न अंकित हो जाते हैं। यदि दो वस्तु साथ-साथ प्रस्तुत की जावें तो इनसे उत्पन्न चिह्नों

में सम्पर्क स्थापित हो जाता है। समान स्वरूप या गुण वाली वस्तुओ के चिह्नो म समन्वय स्थापित करने पर यालक अनुभवो को आसानी से ग्रहण कर लेता है तथा इनसे विचार समूह बनते है।"

उक्त मनोवज्ञानिक प्रक्रिया की परिकल्पना हरबाट ने की जो कि शिक्षण मे बहुत उपयागी सिद्ध हुई। वह इनका प्रायोगिक सत्यापन नही कर पाया। शिक्षण विधिया मे ये प्रत्यय इतने प्रभावी हुए कि आज भी इनका उपयाग अध्यापन मे किया जाता है।

अध्यापक बालक के पूव-सचित ज्ञान का उपयोग करते हुए नये नये विचारो को सफलतापूवक पढाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापन से पूव अध्यापक बालक के पूव-अनुभवो के बारे मे, उनकी शिक्षण मे उपयोगिता की दृष्टि से, विचार करे। उसका पूव ज्ञान नये ज्ञान के सीखने म सहायक सिद्ध होगा। हरबार्ट की शिक्षण प्रक्रिया की यह देन अत्यन्त महत्त्वपूण है।

सारांशत यह कहा जा सकता है कि हरबाट की अधिगम प्रक्रिया की सामान्यत धारणा यह है कि—

(1) बालक ज्ञानाजन बाह्य वातावरण के अनुभवो से करता ह।

(2) ज्ञान सचित किया जाता है।

(3) नये ज्ञान को पूर्वानुभवो से जोडन पर सीखने की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

(4) सीखने की क्रिया क्रमबद्ध तरीके से होती है।

हरबाट द्वारा प्रतिपादित शिक्षण के पाँच सोपान पाठ-योजना के निर्माण में बडे सहायक रहे है तथा इनका अनुसरण आज भी किसी न किसी रूप मे किया जाता है।

मूल्याकन उपागम

बी एस ब्लूम द्वारा दी गई शिक्षण योजना को मूल्याकन उपागम कहते हैं। यह शिक्षण उपागम उद्देश्य केन्द्रित है। शिक्षण उद्देश्यो का निर्धारण करने के लिए बालको मे व्यवहार परिवतन के विषय मे साक्षियो का सकलन किया जाता है जैसे प्रकरण "ग्राफ" को पढाने के बाद बालक मे ऐसे कौन कौनसे परिवतन आ जायेंगे जो इस तथ्य की पुष्टि करें कि बालक "ग्राफ" को सीख चुका है। कुछ साक्षियाँ निम्नानुसार हैं—

(1) दिये गये तथ्या पर आधारित ग्राफ का अकन कर सकें।

(2) ग्राफ मे, यदि कोई त्रुटि हो तो उसको सुधार सकें।

(3) ग्राफ को पढ कर वाछित सूचनायें दे सकें आदि।

इस प्रकार मूल्याकन उपागम मे बालक के शिक्षणोपरात हुए व्यवहारगत परिवतनो की साक्षियो की स्पष्ट शब्दा म व्याख्या की जाती है, इनका मूल्याकन

भी किया जाता है। इस प्रकार शिक्षण तथा परीक्षण दोनों ही उद्देश्य-केन्द्रित होते हैं।

पाठ योजना के निर्माण में इस उपागम का विशेष प्रभाव पाठ के उद्देश्यों के निर्माण तथा उनके मूल्यांकन पर पड़ा है। उद्देश्यों का निर्धारण व्यवहारगत परिवर्तनों के रूप में किया जाता है तथा इन निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षक शिक्षार्थी अन्तःक्रिया की जाती है। पाठ में मूल्यांकन भी इस दृष्टि से किया जाता है कि ये उद्देश्य प्राप्त हो पाये या नहीं। इस प्रकार पाठ-योजना के निर्माण में उद्देश्यों को प्राथमिकता दी जाती है जितने सुस्पष्ट एवं सुपरिभाषित उद्देश्य होंगे पाठ योजना का निर्माण तथा मूल्यांकन उतने ही अधिक प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न हो सकेगा।

डीवी तथा किलपेट्रिक उपागम

(Dewey and Kilpatric Approach)

इस उपागम में अधिगम अनुभवों को अधिक महत्त्व दिया गया है। इस उपागम की यह मान्यता है कि बालक अपने दैनिक जीवन में आई समस्याओं का हल करने में कुछ अनुभव प्राप्त करता है। यदि शिक्षार्थी का ज्ञान इन अनुभवों को आधार बनाकर दिया जाय तो वह इसे शीघ्रता से अर्जित कर लेगा। बालक का जीवन समाज से जुड़ा होने के कारण उसे इस अनुभव प्रदान किया जाता है कि उसमें सामाजिक गुणों एवं क्षमताओं का विकास हो सके।

डीवी और किलपेट्रिक उपागम में अधिगम का आधार प्रायोजनों को माना गया है। इसका सर्वाधिक उपयोग अमेरिका में किया गया। गाँधीजी ने भी मौलिक ढंग से बुनियादी शिक्षा में इसका उपयोग किया है। इस उपागम का आधार यह है कि विद्यार्थी अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाते हुए अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं। इससे शिक्षण प्रक्रिया सोद्देश्य हो जाती है। यह योजना इकाई अनुभवों पर आधारित है। किलपेट्रिक ने निम्न सात पद सुझाये हैं—

(1) परिस्थिति उत्पन्न करना।
(2) योजना का चयन।
(3) योजना का उद्देश्य।
(4) योजना नियोजन।
(5) योजना का क्रियान्वयन।
(6) कार्यों का मूल्यांकन।
(7) योजना पूर्ण होने पर लेखा [illegible]

उक्त सभी पद प्रायोजना वि[illegible] गये हैं।

मौरीसन उपागम
(Morrision Approach)

इस उपागम के प्रवर्तक एच सी मारीसन ने अपनी पुस्तक "माध्यमिक विद्यालय म शिक्षाभ्यास" (The Practice Teaching in Secondary Schools) म इसकी विस्तृत व्याख्या की है। इस उपागम म शिक्षण की एक चक्रीय योजना (Cycle Plan of Teaching) का प्रतिपादन किया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इकाई पद्धति (Unit Method) का महत्वपूर्ण माना गया है। इकाई पद्धति विद्यार्थी केन्द्रित होती है।

इकाई का निर्माण विद्यार्थियो की सहायता से शिक्षक द्वारा किया जाता है। इसमे विद्यार्थियो की मूलभूत आवश्यकतायें जस उनकी रुचि, ध्यान तथा जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है।

मौरीसन ने अपने इस उपागम मे डीवी की योजना विधि तथा हरबाट की पचपदी विधि का समन्वय किया है। यह इकाई पद्धति में स्पष्ट रूप से झलकता है। मौरीसन के अनुसार शिक्षण म पूर्व परीक्षा अध्यापन-मूल्यांकन सुधारात्मक शिक्षण-अध्यापन मूल्यांकन शृंखला का उपयोग तब तक किया जाना चाहिये जब तक कि बालक इकाई को पूर्ण रूप से सीख न ले। वह उद्देश्यो को भली प्रकार से स्पष्ट करने पर बल प्रदान करता है।

हरबाट की पचपदी प्रणाली की तरह ही मौरीसन की इकाई प्रणाली मे निम्न पाच पदो का अनुसरण किया जाता है—

(1) अन्वेषण (Exploration)
(2) प्रस्तुतिकरण (Presentation)
(3) आत्मीकरण (Assimilation)
(4) व्याख्या (Organisation)
(5) वर्णन (Recitation)

मौरीसन द्वारा प्रस्तावित शिक्षण उपभाग बोध स्तर का शिक्षण कहलाता है जिसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के शिक्षण म शिक्षक पाठ्यवस्तु को पूर्ण रूप से सीखने पर बल प्रदान करता है जिससे कि विद्यार्थी के व्यक्तित्व म वांछित परिवर्तन हो जाये।

अन्वेषण के अन्तर्गत विद्यार्थी से प्रश्न पूछ कर उसके पूर्वज्ञान का पता लगाया जाता है। पाठयवस्तु का भी विश्लेषण कर उसके अवयवो का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से क्रमबद्ध रूप मे व्यवस्थित किया जाता है। इस प्रकार सीखने वाला तथा सीखी जाने वाली वस्तु दोनो का अन्वेषण किया जाता है।

प्रस्तुतिकरण के अन्तर्गत शिक्षक पाठ्यवस्तु का एक तार्किक क्रम मे छोटी-छोटी इकाइयो मे प्रस्तुत करता है। इकाई का आकार छोटे बालकों के लिए छोटा तथा बडो के लिए बडा होगा। शिक्षक यह भी प्रयास करता है कि विद्यार्थी को

पाठ्यवस्तु का बोध हुआ या नहीं। यदि पाठ्यवस्तु बालकों के समझ में नहीं आई तो वह पुनः शिक्षण करता है।

ज्ञान को आत्मसात करने के लिए शिक्षक विद्यार्थियों को अनेक अवसर प्रदान करता है। इस हेतु विद्यार्थी स्वाध्याय के लिए पुस्तकालय या प्रयोगशाला जाने को स्वतन्त्र है। वे अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार अध्ययन या कार्य करते हैं। अध्यापक पर्यवेक्षक का कार्य करता है तथा यह ज्ञात करता है कि विद्यार्थियों को जो पाठ्यवस्तु पढाई गई है उन पर उन्होंने स्वामित्व प्राप्त किया या नहीं। उन्हें पुनः अवसर भी प्रदान किया जाता है।

आत्मसात कालांश के उपरांत विद्यार्थियों का परीक्षण होता है जो कि स्वामित्व परीक्षा कहलाती है। इस परीक्षण में सफल होने पर विद्यार्थी को सिखाई गई पाठ्यवस्तु का वर्णन अपने शब्दों में करने व लिखने को कहा जाता है। इस व्यवस्था कालांश कहते हैं। विद्यार्थी इसमें पाठ्यवस्तु को बिना किसी की सहायता से अपनी भाषा में लिखते हैं।

वर्णन के अन्तर्गत विद्यार्थी पाठ्यवस्तु का मौखिक वर्णन शिक्षक तथा सहपाठियों के सम्मुख करता है।

अमेरिकन उपागम

(American Approach)

इस उपागम पर निर्मित पाठ-योजना में अधिगम उद्देश्यों पर अधिक प्रधानता दी जाती है। पाठ योजना में शिक्षक शिक्षार्थी अन्त क्रियाओं को भी इस रूप में व्यवस्थित किया जाता है कि पाठ योजना में वर्णित उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सके। इसमें (1) उद्देश्य (2) व्यवहार तथा (3) मूल्यांकन का प्रमुख स्थान है।

उद्देश्यों को पाठ्यवस्तु पर आधारित कर सुपरिभाषित किया जाता है। इसके उपरांत शिक्षण परिस्थितियों, प्राविधियों युक्तियों दृश्य-श्रव्य सामग्री इत्यादि का चुनाव इस दृष्टि से किया जाता है कि बालक के लिए बोधगम्य वातावरण का निर्माण हो सके तथा शिक्षण उद्देश्य आसानी से प्राप्त हो सकें। प्रयत्न यह रहता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सभी विद्यार्थी सक्रिय रूप में भाग ले सकें जिसके परिणामस्वरूप उनमें अपेक्षित परिवर्तन हो सकें तथा अधिगम उद्देश्यों की सफलतापूर्वक प्राप्ति हो जाय।

ब्रिटिश उपागम

(British Approach)

इस उपागम में केन्द्र बिन्दु शिक्षक है। इस योजना पर आधारित पाठ-योजना बनाते समय शिक्षक की क्रियाओं तथा विद्यार्थी के मूल्यांकन पर विशेष बल दिया जाता है। इस उपागम में यह धारणा निहित है कि शिक्षक का शिक्षण उसकी प्रभावशाली शिक्षण क्रियाओं पर निर्भर करता है। जितनी अधिक क्रियाएँ होंगी विद्यार्थी को उतना ही अधिक अवसर सीखने को मिलेगा।

भारतीय उपागम

भारतीय उपागम पर ब्रिटिश उपागम तथा अमेरिकन उपागम का प्रभाव है। बीसवी सदी के प्रारम्भ मे भारत मे हरबार्ट की पचपदी प्रणाली पर आधारित पाठ योजना बनाई जाती थी। 1960 के पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा अनुसधान एव प्रशिक्षण सस्थान तथा उच्च शिक्षा सस्थान द्वारा अनेक प्रयोग किये गये जिसके परिणामस्वरूप पाठ योजना बनाने का एक नवीन उपागम प्रस्तुत किया गया है। इस पाठ योजना मे शिक्षण उद्देश्यो, शिक्षक-क्रियाओ तथा छात्र के मूल्याकन को महत्त्व दिया गया है।

वास्तव मे दैनिक पाठ-योजना का स्वरूप ऐसा नही हो सकता जो कि शिक्षण को निर्जीव और यन्त्रवत् बना दे। यह तो शिक्षण प्रक्रिया को सूझ बूझ के साथ आयोजित करने मे सहायक होनी चाहिये। साधारणत शिक्षण प्रक्रिया को एक त्रिकोण से प्रदर्शित करते हैं जिसके शीर्ष पर शिक्षण उद्देश्य एक कोण पर अध्ययना ध्यापन सस्थितिया दूसरे कोण पर तथा मूल्याकन प्रविधिया है। पाठ योजना का कोई भी प्रारूप इस त्रिकोण की परिधि से बाहर नही हो सकता इसी को दृष्टि मे रखते हुए पाठ योजना का एक प्रारूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

(1) परिचयात्मक सूचना

(अ) दिनाक — (ब) कालाश

(स) कक्षा — (द) विषय

(य) इकाई — (र) प्रकरण।

(2) उद्देश्य

(अ) ज्ञान

(ब) अवबोध

(स) ज्ञानोपयोग

(द) कौशल

(य) अभिरुचि

(र) अभिवृत्ति।

(3) सहायक शिक्षण सामग्री

(4) पूर्व ज्ञान

(5) पाठोपस्थापन एव पाठयाभिसूचन

(6) पाठ का विकास

शिक्षण बिन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययनाध्यापन संस्थिति	
		शिक्षक क्रिया	विद्यार्थी क्रि

(7) पुनरावृत्ति
(8) श्याम पट्ट सार
(9) मूल्यांकन
(10) गृह कार्य ।

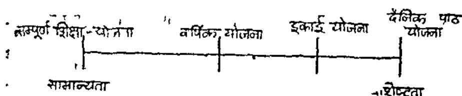
(1) परिचयात्मक सूचना (Introductory Information)

दैनिक पाठ योजना के इस पक्ष में दिनांक, कालांश, कक्षा, विषय, प्रकरण विषयक सूचनाएं अंकित की जाती हैं । स्पष्ट ही है कि ये सूचनाएं ... त्मक हैं तथा इन सूचनाओं के आधार पर दैनिक पाठ योजना का भविष्य में उपयोग किया जा सकता है । इन सूचनाओं के आधार पर अन्य शिक्षक भी योजना का लाभ उठा सकता है । यदि आवश्यकता हो तो यह सूची लम्बी या ... भी की जा सकती है । उदाहरण के लिए किसी कक्षा में दो तीन विभाग ... शिक्षक कौनसे विभाग के लिए दैनिक-पाठ योजना बना रहा है, इस सूचना का ... इस पक्ष में समावेश किया जा सकता है ।

(2) उद्देश्य

दैनिक पाठ योजना का यह पक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि उ... अध्ययनाध्यापन संस्थितियों तथा मूल्यांकन प्रविधियों दोनों को दिशा प्रदान करने... यह ध्यातव्य है कि दैनिक-पाठ योजना स्तर पर शिक्षण उद्देश्य पूर्णतः विशिष्ट... कार्यपरक होते हैं । इस स्तर पर सामान्यता का कोई स्थान नहीं होता... वार्षिक योजना बनाते समय यह मन्तव्य देना ही पर्याप्त होता है कि कौनसी शिक्षण... इकाई द्वारा कौन से उद्देश्य की पूर्ति होगी । इकाई योजना स्तर पर वार्षिक-योजना... की तुलना में अधिक विशिष्ट रूप से उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया जाता है । फि... भी यह मानना होगा कि इकाई योजना स्तर पर भी सम्पूर्ण इकाई की दृष्टि से उद्देश्य लिखे जाते हैं, अतः विशिष्टता का अंश बढ़ जाने पर भी सामान्यता का अ...

पूर्णतः लुप्त नहीं होता। दैनिक पाठ योजना-स्तर पर उद्देश्य एकदम विशिष्ट तथा व्यवहारपरक होते हैं। उपर्युक्त को निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है—



उक्त रेखाचित्र में एक सिरे पर सामान्यता है तथा दूसरे सिरे पर विशिष्टता है। ज्यों-ज्यों सामान्यता से विशिष्टता की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों सामान्यता का अंश घटता जाता है तथा विशिष्टता का अंश बढ़ता जाता है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि दैनिक पाठ योजना पूर्णतया क्रियात्मक योजना होती है जहाँ सामान्यता का कोई स्थान नहीं होता।

प्रारूप में छः विभिन्न उद्देश्यों के नाम दिए गए हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक के अन्तर्गत कुछ न कुछ अवश्य लिखा जाय। वास्तव में उन्हीं उद्देश्यों के अन्तर्गत उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनों सहित लिखते हैं जिनको दैनिक-पाठ द्वारा प्राप्त करना हो। इकाई योजना के अन्तर्गत विभिन्न पक्षों के स्पष्टीकरण हेतु जो शिक्षण इकाई चुनी गई थी, उसी के एक पाठ के उद्देश्य यहाँ दिये जा रहे हैं ताकि दैनिक-पाठ-योजना में उद्देश्य लिखने का ढंग स्पष्ट हो सके।

(अ) ज्ञान (Knowledge)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) पृथ्वी की गतियाँ पुनः प्रस्तुत करता है।

(ब) प्रत्येक गति की अवधि पुनः प्रस्तुत करता है।

(स) प्रत्येक गति का प्रभाव पुनः प्रस्तुत करता है।

(ब) अवबोध (Understanding)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर शिक्षार्थी—

(अ) पृथ्वी की गतियों का मानव जीवन में महत्त्व स्पष्ट करता है।

(स) अभिवृत्ति (Attitude)

इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति पर—

(अ) पृथ्वी की गतियों का मानव-जीवन पर प्रभाव की सराहना करता है।

(ब) पृथ्वी की गतियों के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करता है।

ये "पृथ्वी की गतियाँ" सम्बन्धी इकाई के पहले उद्देश्य हैं, जिसमें शिक्षार्थी को पृथ्वी की गतियों का प्रारम्भिक परिचय दिया जायगा।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग एवं कौशल ... हैं जिनका लिखित परीक्षा द्वारा मापन करना सम्भव है। अभिरुचि और ... नामक उद्देश्यों की लिखित परीक्षा के माध्यम से जाँच करना कठिन होता है। शिक्षण के समय सभी विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से पाठ पढ़ाया जाता ... ऐसे नहीं है कि अभिरुचि एवं अभिवृत्ति की लिखित परीक्षा द्वारा जाँच सम्भव ... है अतः अध्यापक के समय भी इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं ... जाय। शिक्षक, लिखित परीक्षा द्वारा न सही, शिक्षार्थियों के क्रियाकलापों ... वेक्षण कर इन उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में अपनी राय स्थिर कर ... इसी कारण पाठ-योजना में सभी विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से ... किया जाता है, यदि विषय-वस्तु उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुकूल हो।

(3) सहायक-शिक्षण सामग्री

इसके अन्तर्गत पाठ में काम में आने वाली सहायक शिक्षण सामग्री ... उल्लेख किया जाता है। यह अवश्य है कि इस पक्ष में उस सहायक शिक्षण-साम... का उल्लेख नहीं किया जाता है जो सामान्यतः प्रतिदिन शिक्षण कार्य में ... हैं, जैसे श्यामपट्ट, चाक-सकेतक, डस्टर आदि। यहाँ तो उस शिक्षण-सामग्री ... उल्लेख किया जाता है जो विशेष रूप से केवल इसी पाठ के लिए बनाई गई ... प्राप्त की गई हो। सहायक शिक्षण सामग्री के महत्त्व एवं प्रयोग के सम्बन्ध ... दृश्य साधनों वाले प्रकरण में विस्तार से चर्चा की गई है अतः विशेष अध्ययन के लिए सम्बन्धित पाठ देखें।

(4) पूर्व ज्ञान

प्रत्येक नए पाठ का शिक्षार्थी के पूर्वज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करना आव... श्यक होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शिक्षार्थी प्रत्येक नवीन अनुभव पूर्व में अर्जित अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में ही प्राप्त करता है। जो शिक्षक यह विचार करते हैं कि वे जो प्रकरण पढ़ा रहे हैं, वह एकदम नया है अतः नवीन पाठ से सम्बन्धित पूर्वज्ञान क्या हो सकता है? वास्तव में ऐसा विचार करना सत्य से अपने आपको दूर रखना है। ऊँची कक्षाओं की बात तो दूर रही, प्रारम्भिक कक्षा में प्रवेश लेते समय भी बालक में पूर्वानुभवों का भण्डार होता है। वह भली भाँति वार्तालाप कर सकता है, वह कुछ वस्तुओं को गिन सकता है तथा वह अनेक भौगोलिक तथा वैज्ञानिक घटनाओं के प्रत्यक्ष अनुभव रखता है। अतः यह कहना कि शिक्षार्थी का पूर्वज्ञान शून्य है या कुछ भी नहीं है, ठीक नहीं है। क्योंकि यदि कोई आधार नहीं है तो नयी ज्ञान रूपी ईंट रखी ही नहीं जा सकती। वास्तव में शिक्षक अपने पाठ की क्रियात्मक योजना बना ही नहीं सकता जब तक उसे शिक्षार्थियों का पूर्व ज्ञान स्तर ज्ञात न हो।

कभी कभी ऐसा भी देखने में आया है कि नए शिक्षक शिक्षार्थियों के पूर्व ज्ञान का व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त किये बिना कल्पना के आधार पर पूर्वज्ञान का

अनुमान लगाकर अध्यापन हेतु कक्षा मे चले जाते हैं और थोडी देर के वार्तालाप के पश्चात् उन्हे भान हो जाता है कि पूर्व ज्ञान के सम्बन्ध म उनका अनुभव ठीक नही था। ऐसी परिस्थिति म वे चिढने भी लग जाते है और कहते हैं कि तुम्हे यह भी नही आता। तुम तो बहुत कमजोर हो, आदि। स्पष्ट है कि ऐसा इसी कारण होता है कि शिक्षक को वास्तविकता का ज्ञान नही था तथा इस कारण दैनिक-पाठ-योजना भी वास्तविकता से दूर थी।

पूर्व ज्ञान वह बिन्दु है जहा से शिक्षार्थी नए पाठ के उद्देश्यो की प्राप्ति की दिशा म आगे बढता है। अत पूर्व ज्ञान की जानकारी करना तथा पाठ-योजना मे यथास्थान उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है।

(5) पाठोपस्थापन एव पाठ्याभिसूचन

(Introduction & Statement of aim)

ये दैनिक पाठ योजना की व महत्त्वपूर्ण कडिया है जो शिक्षार्थी के पूर्व ज्ञान का सम्बन्ध नवीन ज्ञान से स्थापित करने म सहायक होती है।

इस पक्ष के अन्तगत शिक्षक कक्षा म ऐसी परिस्थिति का निर्माण करता है जिसके द्वारा वह शिक्षार्थियो को नवीन ज्ञान प्राप्त करन के लिए अभिप्रेरित करता है। इस परिस्थिति द्वारा शिक्षार्थियो के पूर्व ज्ञान की पुनरचना हो जाती है और वे नवीन सीखने के अनुभवो को प्राप्त करन के लिए अभिप्रेरित हो जाते हैं।

पाठोपस्थापन की परिस्थिति द्वारा शिक्षक प्रत्येक शिक्षार्थी का उनके अपने अपने मनोससार से कक्षा की नवीन परिस्थिति के प्रति सजग करता है। जो शिक्षार्थी मध्यावकाश म खेलकूद कर कक्षा म उपस्थित हुए हैं, उनके मन मे अभी भी खेलकूद की घटनाएँ सर्वोपरि हैं। जो गली मे जादूगर का खेल देखते हुए कक्षा म आये है, उनका मन अभी भी जादूगर के आश्चर्यात्मक कार्यों मे उलझा हुआ है और जिन्होने पिछले कालाश मे विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग देखा है उनका मन अगले का घण्टा लग जाने पर भी प्रयोग के परिणाम मे रमा हुआ है। यह सब होना स्वाभाविक है। अत पाठोपस्थापन की परिस्थिति द्वारा शिक्षक शिक्षार्थियो का ध्यान अपने-अपने मनोससार से हटाकर कक्षा की नवीन परिस्थिति के प्रति आकर्षित करता है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि हरबार्ट के पाँच पदो मे भी पहला पद पाठोपस्थापन के अनुरूप ही था। वर्तमान म हम हरबार्ट के अन्य पदो का उपयोग ज्यों का त्यों दैनंदिन शिक्षण म नही करते, परन्तु पाठोपस्थान या प्रस्तावना वाला यह पद अपने महत्त्व के कारण शिक्षण प्रक्रिया का अभिन्न अग बना हुआ है।

पाठोपस्थापन के अनेक ढग हो सकते है। कुछ का वर्णन यहा किया जा रहा है—

(ध) समुचित प्रश्नों द्वारा—अधिकांश शिक्षक पाठोपस्थापन का यही ढंग अपनाते हैं। वे समुचित प्रश्नों द्वारा शिक्षार्थी के पूर्व ज्ञान की नवीन पाठ की दृष्टि से पुनरचना कर उसका सम्बन्ध नवीन पाठ से जोड़ते हैं। पाठोपस्थान का यह ढंग तभी प्रभावशाली सिद्ध होता है जबकि प्रश्नों का चयन यथोचित हो। अन्यथा पाठोपस्थापन की संकल्पना के प्रति स्पष्टता न होने के कारण प्रश्नों पर आधारित पाठोपस्थापन बड़ा ही हास्यास्पद हो जाता है। उदाहरण के लिए, भूगोल का शिक्षक जो "कहवा" का पाठ पढ़ाना चाहता है उसने पाठोपस्थापन के अन्तर्गत निम्नानुसार प्रश्न पूछना प्रारम्भ किया—

'आप प्रातःकालीन नाश्ते में किन किन वस्तुओं का उपयोग करते हैं' (प्रश्न)

"चाय, बिस्किट, डबल रोटी" (उत्तर)

(क्योंकि वांछित उत्तर नहीं मिला था अतः शिक्षक ने फिर पूछा)

"आप और किन-किन पेय पदार्थों का उपयोग करते हैं?" (प्रश्न)

"दूध, लस्सी" (उत्तर)

वांछित उत्तर नहीं आ रहा था इसलिए शिक्षक पूछते रहे किन किन वस्तुओं का उपयोग करते हो? शिक्षार्थी वांछित उत्तर नहीं दे पा रहे थे और शिक्षक के मन में तनाव बढ़ रहा था। जब पाँच छः मिनिट तक भी वांछित उत्तर नहीं मिला तो शिक्षक ने कहा—आप में से कुछ काफी अवश्य पीते होंगे, आज हम काफी अथवा कहवा के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। पाठक गण स्वयं निर्णय करें कि क्या इस प्रकार के पाठोपस्थापन का कोई महत्त्व है? वास्तव में अच्छे से अच्छे विचार की ऐसी दुर्गति हो जाती है जब वह अकुशल शिक्षक द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। इस प्रकार से पाठोपस्थापन करना शिक्षार्थियों के ध्यान को केन्द्रित करने के स्थान पर विकेन्द्रित कर देता है। स्पष्ट है कि ऐसे पाठोपस्थापन का प्रभावशाली शिक्षण की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। तो फिर प्रश्न उठता है, पाठोपस्थापन के समय कैसे प्रश्न पूछे जाने चाहिए? ऐसा प्रश्न उठाया जाना स्वाभाविक है। इस पाठ के अन्त में दैनिक पाठ-योजना के नमूनों के अन्तर्गत पाठक गण इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर सकेंगे।

(ब) संक्षिप्त कथन द्वारा—इस ढंग में शिक्षक पिछले दिन कक्षा में किए गए कार्य की ओर संक्षिप्त कथन द्वारा ध्यान आकर्षित करता है तथा यह स्पष्ट करता है कि आज क्या सीखना है। एक उदाहरण से यह ढंग स्पष्ट हो सकेगा।

शिक्षार्थियों को कक्षा में व्यवस्थित रूप से बिठाकर शिक्षक कहना आरम्भ करता है—"कल हमने प्रयोगशाला में ऑक्सीजन गैस तैयार की थी और गैस आठ जारों में भरली थी। आज यह जाँच करेंगे कि इसका कैसा स्वाद होता है, कैसा रंग होता है, क्या यह पानी में घुलती है आदि।

अनेक बार इस प्रकार के संक्षिप्त परन्तु प्रभावपूर्ण कथन से पाठोपस्थापन तथा पाठ्याभिसूचन का प्रयोजन पूरा हो जाता है।

(स) समकालिक घटना की ओर ध्यानाकर्षित कर—समाचार पत्रों में प्रत्येक विषय से सम्बन्धित समाचार, आकड़े तथा अन्य उपयोगी सामग्री आती रहती है। शिक्षक इन समाचारों को शिक्षार्थियों से पढ़वाकर या आकड़े प्रदर्शित कर मूल विषय की ओर ध्यान आकर्षित कर सकता है। एक दिन के समाचार पत्र में समाचार थे—"बोकारो इस्पात कारखाने का विस्तार", डी डी टी और मलेरिया उन्मूलन। अतः यदि शिक्षक को भारत का इस्पात उद्योग पाठ पढ़ाना हो तो सम्बन्धित समाचार पढ़वाकर तथा उस पर पूरक प्रश्न पूछ कर पाठ की प्रभावशाली प्रस्तावना की जा सकती है। इसी प्रकार मलेरिया से सम्बन्धित कोई पाठ हो तो मलेरिया से सम्बन्धित समाचार को पाठोपस्थापन का आधार बनाया जा सकता है।

ऐसा करने का एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि शिक्षार्थी समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं के महत्त्व को समझने लगते हैं और अपने विषय ज्ञान को समकालिक रखने के लिए उनका निरंतर उपयोग करने लगते हैं।

(द) दृष्टान्त सामग्री द्वारा—शिक्षक मानचित्र, चार्ट, रेखाचित्र, मॉडल आदि के प्रदर्शन द्वारा भी पाठ की प्रभावशाली प्रस्तावना कर सकता है। उदाहरण के लिए शिक्षक को भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या पर विचार विमर्श आयोजित करना है। वह पिछले दस बीस वर्षों के आकड़ों के आधार पर एक ग्राफ खींचकर कक्षा में ले जा सकता है तथा उसे प्रदर्शित कर उपयुक्त प्रश्नों द्वारा समस्या के स्वरूप की ओर शिक्षार्थियों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। जब शिक्षार्थी समस्या के स्वरूप से परिचित हो जाते हैं तो उनको परस्पर विचार विमर्श करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

पाठोपस्थापन के पश्चात् शिक्षक पाठ की अभिसूचना करता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि शिक्षार्थियों को यह स्पष्टतः ज्ञात हो जाय कि उन्हें किस प्रकरण का अध्ययन करना है। पाठ्याभिसूचन से संदिग्धता की स्थिति समाप्त हो जाती है और शिक्षार्थियों के प्रयास निश्चित दिशा की ओर अग्रसर होने लगते हैं। वास्तव में पाठ्याभिसूचन पाठोपस्थापन और पाठ के विकास के बीच की कड़ी है।

कुछ लोगों का यह मत है कि पाठ्याभिसूचन करने से पाठोपस्थापन द्वारा उत्पन्न पाठ के प्रति जिज्ञासा समाप्त हो जाती है और इस प्रकार पाठोपस्थापन का प्रयोजन अपूर्ण रह जाता है यदि शिक्षक यथार्थ में यह अनुभव करता है कि पाठ्याभिसूचन के पश्चात् शिक्षार्थियों की पाठ में रुचि कम हो जाती है तो वह पाठ्याभिसूचन भले ही न करे। परन्तु इस प्रकार के निर्णय से पूर्व दोनों पक्षों को भली-भांति तोल लेना उपयुक्त होगा।

कल्पना कीजिए कि एक वक्ता ऊँचे स्वर में धारा प्रवाह भाषण देता चला जा रहा है, परन्तु देर तक सुनने के पश्चात् भी यदि श्रोताओं को यह ज्ञात न हो कि वह क्या कहना चाहता है तो वे कितनी देर भाषण को तल्लीनतापूर्वक सुन सकेंगे ? स्पष्ट है कि इस प्रकार के भाषण में अधिक देर तक रुचि बनी रहना प्रायः कठिन होता है। अतः इस उदाहरण से तो ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षार्थियों को भी यह ज्ञात होना ही चाहिए कि उनको क्या पढ़ना है। इसके अभाव में अस्पष्टता विद्यमान रहेगी और वे कुछ भी नहीं ग्रहण कर पायेंगे। यह अवश्य है कि पाठ्याभिसूचन सरल और स्पष्ट शब्दों में किया जाना चाहिए ताकि अनिश्चितता की स्थिति समाप्त हो जाए और शिक्षण कार्य अभीष्ट दिशा की ओर सहज भाव से अग्रसर हो सके।

पाठ्याभिसूचन के कुछ उदाहरणों से यह तथ्य भली भांति स्पष्ट हो सकेगा। यदि पाठ भारत की प्रमुख नदियों का भारत के मानचित्र में दर्शाने का हो तो पाठ्याभिसूचन होगा—'आज हम भारत के मानचित्र में प्रमुख नदियाँ दर्शायेंगे'। यदि पाठ वायुदाब मापक यन्त्र से सम्बन्धित हो तो पाठ्याभिसूचन होगा—आज हम वायुदाब मापक यन्त्र की बनावट तथा कार्यों का अध्ययन करेंगे। इस प्रकार स्पष्टतापूर्वक सरल भाषा में पाठ्याभिसूचन करने से पाठ में निश्चितता उत्पन्न हो जाती है।

(6) पाठ का विकास

पाठ के विकास के अन्तर्गत सर्वप्रथम यह निश्चित करना होता है कि पाठ कितनी अन्वितियों में पूरा होगा। यदि विषय वस्तु कम हो तो एक ही अन्विति में अध्ययन करना उपयुक्त रहता है। परन्तु यदि विषय वस्तु अधिक हो तो पाठ को दो अन्वितियों में पढ़ना उचित रहता है।

पाठ के विकास की योजना बनाने के लिए तीन प्रश्न पूछे जाते हैं—

(1) कौनसा उद्देश्य प्राप्त करना है ?

(2) इस उद्देश्य की प्राप्ति का माध्यम क्या होगा ?

(3) उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कक्षा में कैसी परिस्थिति का निर्माण करना होगा ?

उक्त प्रकार से प्रत्येक उद्देश्य के लिए विचार किया जाता है। एक उदाहरण में यह विचार अधिक स्पष्ट हो सकेगा। इसी पाठ में दिये गए उदाहरण को ही आगे बढ़ाया जा रहा है।

उद्देश्य	शिक्षण बिन्दु	अध्ययनाध्यापन-सस्थितियाँ	
		शिक्षक क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ
ज्ञान (अ)	(1) पृथ्वी की दो गतियाँ हैं— पहली दैनिक गति तथा दूसरी वार्षिक गति।	शिक्षक लट्टू घुमाने के अनुभव का उपयोग कर अनुभव पर आधारित प्रश्न पूछेगा। लट्टू को घूमते समय कितनी गतियाँ होती है।	शिक्षार्थी अपने अनुभव को स्मरण कर प्रश्नो का उत्तर देंगे। दो गतियाँ—
		पहली गति मे क्या होता है ? दूसरी गति मे क्या होता है ? उक्त प्रश्न के पश्चात् विवरण प्रस्तुत करेगा—	पहली गति मे—लट्टू अपनी नोक पर घूमता है। दूसरी गति मे वह स्थान बदलता है।
		जिस प्रकार लट्टू की घूमते समय दो गतियाँ होती हैं वसे ही पृथ्वी की भी दो गतियाँ होती हैं।	शिक्षार्थी लट्टू घुमाने के अपने अनुभव के परिप्रेक्ष्य मे पृथ्वी की गतियो सम्बंधी विवरण को ध्यानपूर्वक सुनते हैं।
ज्ञान (ब)	(2) दैनिक गति की अवधि लगभग 24 घण्टा होती है। और वार्षिक गति की अवधि $365\frac{1}{4}$ दिन।	शिक्षक पृथ्वी की गतियाँ दर्शाने वाला उपकरण प्रदर्शित कर स्पष्टीकरण प्रस्तुत करेगा, यथा पृथ्वी को अपनी कीली पर घूमने मे 24 घंटे लगते हैं तथा सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करने मे $365\frac{1}{4}$ दिन।	शिक्षार्थी उपकरण का प्रदर्शन देखते हुए शिक्षक द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

उद्देश्य	शिक्षण बिन्दु	अध्ययनाध्यापन-संस्थितियाँ	
		शिक्षक क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ
ज्ञान (म)	(1) दैनिक गति के फलस्वरूप रात दिन होते है तथा वार्षिक गति के फलस्वरूप ऋतुएँ बनती हैं।	कमरे में अंधेरा करके एक मोमबत्ती के सामने ग्लोब को घुमाकर रात दिन बनने की घटना स्पष्ट की जायेगी। शिक्षक विवरण द्वारा वार्षिक गति का प्रभाव स्पष्ट करेगा।	शिक्षार्थी ग्लोब के कुछ भाग को अंधेरे से उजाले में और कुछ भाग को उजाले से अंधेरे में जाते हुए देखेंगे तथा रात दिन बनने की घटना को समझेंगे। शिक्षार्थी वार्षिक गति का प्रभाव ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्येक शिक्षण उद्देश्य को लेकर तदनुरूप शिक्षण बिन्दु का चयन कर अध्ययनाध्यापन-सस्थितियों का निर्माण किया जाता है। जितना अधिक शिक्षक कल्पनाशील होगा उतना ही अधिक वह अध्ययनाध्यापन सस्थितियों में विविधता ला सकेगा तथा पाठ को रोचक बना सकेगा।

पाठ के विकास की दृष्टि से पूर्वोक्त तालिका यह समझन में भी मदद देती है कि उद्देश्य निष्ठ शिक्षण का क्या आशय है। जसा कि पूव म स्पष्ट किया जा चुका है, उद्देश्य निष्ठ शिक्षण का अर्थ होता है—उद्देश्य पर आधारित शिक्षण। इस प्रकार के शिक्षण में उद्देश्य को ध्यान में रखकर तदनुरूप अध्ययनाध्यापन सस्थितियों का निर्माण किया जाता है। यदि ज्ञान का उद्देश्य प्राप्त करना हो तो विवरण वर्णन, स्पष्टीकरण करना ही पर्याप्त होता है, परन्तु यदि अवबोध उद्देश्य प्राप्त करना हो तो प्रदर्शन, विचार विमर्श, स्पष्टीकरण, भ्रमण आदि विधाओं का उपयोग करना होता है। इस दृष्टि से पाठ योजना में, यह पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिक्षक की कार्य कुशलता का इस स्तर पर ही पता लगता है।

(7) पुनरावृत्ति

सभी निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार शिक्षण आयोजित करने के पश्चात् पूरे पाठ की आवृत्ति या पुनरावृत्ति करना अधिगम के स्थिरीकरण के लिए नितान्त आवश्यक है। यदि पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया गया हो तो आवृत्ति करना पर्याप्त होता है। यदि पाठ दो अन्वितियों में पढ़ाया गया हो तो प्रत्येक अन्विति के पश्चात् आवृत्ति तथा सम्पूर्ण पाठ की पुनरावृत्ति की जानी चाहिए। आवृत्ति और पुनरावृत्ति से अर्जित ज्ञान का प्रबलीकरण होता है तथा ज्ञान स्थाई होता है।

पुनरावृत्ति के सभी विभिन्न ढग अपनाए जा सकते हैं। शिक्षक पाठ से सम्बन्धित मुख्य मुख्य प्रश्न पूछ कर पूरे पाठ को दोहरा सकता है। यह वह ढग है जो प्रत्येक शिक्षक सरलतापूर्वक अपना सकता है।

एक ढग यह भी हो सकता है कि कुछ चुने हुए शिक्षार्थी प्रश्नों का उत्तर दें तथा शेष शिक्षार्थी उन्हें प्रश्न पूछें। कहीं कोई कठिनाई हो तो शिक्षक अपनी सूझ बूझ का उपयोग कर सकता है। ऐसा करने से पुनरावृत्ति का अश अधिक रोचक हो सकता है।

एक अन्य ढग यह भी हो सकता है कि शिक्षार्थी पूरे पाठ पर कोई चार्ट या रेखाचित्र स्वयं बनाए। उदाहरण के लिए, राज्यपाल के अधिकार का पाठ हो तो पुनरावृत्ति के अन्तर्गत प्रत्येक शिक्षार्थी को राज्यपाल के अधिकारों को दर्शाता हुआ चार्ट बनाने को कहा जा सकता है। ऐसा करने से पाठ की पुनरावृत्ति भी होगी और प्रत्येक शिक्षार्थी को व्यक्तिगत कार्य करने का अवसर भी प्राप्त होगा।

स्मरणीय तथ्य यह है कि प्रतिदिन पुनरावृत्ति के समय एक जैसा ढंग अपनाना उपयुक्त नहीं होता। विषय-वस्तु और परिस्थिति के अनुसार पुनरावृत्ति में भी नवीनता लाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(8) श्याम पट्ट-सार (Black Board Summary)

पूरे पाठ का सारांश लिखना अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि सारांश देने के लिए शिक्षक के पास सबसे सुलभ साधन श्यामपट्ट होता है अत सारांश देने की इस प्रक्रिया का नामकरण भी श्यामपट्ट-सार हो गया है। सारांश लिखने की प्रक्रिया के निम्नांकित लाभ हैं—

(अ) सारांश लिखने से सम्पूर्ण पाठ का चित्र पुन मस्तिष्क में उभर आता है जो कि विषय-वस्तु की संरचना समझने में सहायता करता है।

(ब) सारांश लिखने की प्रक्रिया से अर्जित ज्ञान का प्रबलीकरण होता है जो कि ज्ञान के स्थाईकरण के लिए बहुत आवश्यक होता है।

(स) ज्ञानात्मक तथा भावात्मक पाठों में अधिकांश समय कथन, विवरण, विचार विमर्श, प्रश्नोत्तर आदि विधाओं के उपयोग में ही व्यतीत हो जाता है जिनमें श्रवणेंद्रिय अधिक सक्रिय रहती हैं। श्याम-पट्ट सार के द्वारा नेत्रेंद्रिय को भी सक्रिय किया जा सकता है जो कि ज्ञान के दृष्टिकरण में सहायक होती हैं।

(द) श्याम पट्ट-सार शिक्षार्थी द्वारा अपनी-अपनी पुस्तिका में अंकित किया जाता है, जो कि उनके पास मूल्यवान अभिलेख के रूप में रहता है। जिसका वे जब-तब आवश्यकतानुसार उपयोग कर अपनी स्मृति को ताजा कर सकते हैं।

(य) श्यामपट्ट-सार की एक विशेषता यह भी है कि यह ज्ञानार्जन के साथ ही लिख लिया जाता है अत इसके अशुद्ध होने की सम्भावनाएं बहुत कम होती हैं।

(र) इसकी एक विशेषता यह भी हो सकती है कि शिक्षार्थियों में सारांश लिखने की योग्यता का विकास होता है जो कि जीवन की अनेक परिस्थितियों में बहुत काम आता है।

इस प्रकार हम देखते है कि श्यामपट्ट-सार का पक्ष पाठ-योजना का महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है। अत इसके आयोजन के सम्बन्ध में भी पूर्णत विचार किया जाना चाहिए।

श्यामपट्ट-सार देने के कुछ ढंग निम्नानुसार हो सकते हैं—

(अ) पाठ के विकास के साथ—शिक्षक श्यामपट्ट का समुचित विभाजन एक ओर पाठ के मुख्य बिन्दु लिखते जाते हैं और दूसरी ओर श्याम-पट्ट का

उपयोग रेखाचित्र खींचने के लिए, चित्र बनाने या अन्य कोई बिन्दु स्पष्ट करने के लिए करते हैं। ऐसा करना उपयोगी तभी रहता है जबकि श्याम पट्ट काफी बड़ा हो। इस ढंग का यह लाभ अवश्य है कि शिक्षार्थी पाठ के विकास के साथ मुख्य बिन्दु अपनी पुस्तिका में लिखते जाते हैं और अनेक बार कालांश के छोटे होने या पाठ समय पर पूरा नहीं हो पाने के कारण श्यामपट्ट-सार नहीं दे पाने की जो समस्या उत्पन्न होती है, वह नहीं होता।

(ब) पाठ के अन्त में श्याम पट्ट-सार का विकास—इस ढंग में पुनरावृत्ति के प्रश्नों के साथ ही शिक्षक श्यामपट्ट-सार मुख्य मुख्य बिन्दुओं के रूप में लिखता जाता है। शिक्षार्थी भी साथ ही साथ लिखते जाते हैं यह ढंग सुविधाजनक है तथा अधिक प्रचलित है।

(स) सफेद फलक पर पूर्व तैयारी—यह ढंग प्रायः तब काम में लिया जाता है जब पाठ्य विषय-वस्तु की मात्रा अधिक हो। ऐसी स्थिति में कक्षान्तगत समय में पाठ पूरा करना भी कठिन होता है।

अतः यह सुविधाजनक होता है कि श्यामपट्ट-सार की तैयारी पाठ आरम्भ करने से पूर्व करली जाय। जिन शिक्षकों को श्यामपट्ट पर लिखने का अच्छा अभ्यास न हो या कक्षा में श्यामपट्ट की उपयुक्त व्यवस्था न हो तब भी ऐसी स्थितियों में भी इस विधि का उपयोग करना उपयोगी रहता है। इस ढंग की यह विशेषता है कि जो समय शिक्षक को कक्षा में श्यामपट्ट पर लिखने में व्यय होता है, उस समय में वह शिक्षार्थियों के लिखने के ढंग पर ध्यान दे सकता है तथा उनकी अशुद्धियाँ दूर करने में लग सकता है।

(द) शिक्षार्थी स्वयं पाठ का सारांश लिखें—इस ढंग में पुनरावृत्ति के प्रश्नों के साथ ही साथ शिक्षार्थी पाठ का सारांश लिखते जाते हैं। यदि पुनरावृत्ति के प्रश्नों के साथ सारांश लिखने में कोई कठिनाई हो तो पुनरावृत्ति के सभी प्रश्नों के पश्चात् शिक्षार्थी अपने-अपने ढंग से अपनी अपनी पुस्तिकाओं में पाठ का सारांश लिख सकते हैं। यह ढंग परम्परा से हटकर है अतः हो सकता है अधिक शिक्षकों को ग्राह्य न हो। परन्तु विचार करने पर लगेगा कि यह ढंग शिक्षार्थियों में सारांश लिखने की योग्यता का विकास करता है तथा इसमें मौलिकता भी होती है। शैक्षणिक दृष्टि से यह ढंग उपयुक्त प्रतीत होता है। उच्च कक्षाओं में विशेष रूप से यह ढंग अपनाया जा सकता है।

श्याम पट्ट सार देते समय कुछ तथ्य ध्यान में रह सकें तो उत्तम होगा—

(1) श्यामपट्ट सार मुख्य मुख्य बिन्दुओं के रूप में दिया जाना चाहिए।

(2) श्यामपट्ट-सार सम्पूर्ण पाठ पर आधारित होना चाहिये ताकि उसे पढ़ कर सम्पूर्ण पाठ का चित्र मस्तिष्क में उभर सके।

(3) श्यामपट्ट सार का शीर्षक दिया जा सके तो उत्तम होता है। यह प्रकरण भी हो सकता है।

(4) श्यामपट्ट सार का विकास शिक्षार्थियों के सक्रिय सहयोग से ही किया जाना चाहिये।

(5) श्यामपट्ट सार देते समय शिक्षक का लेख स्पष्ट एवं सुंदर होना चाहिए ताकि शिक्षार्थियों पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ सके।

(9) मूल्यांकन

जैसे शैक्षणिक विकास एक सतत् प्रक्रिया है वैसे मूल्यांकन कार्य भी सतत प्रक्रिया है। अतः प्रत्येक पाठ के पश्चात् शिक्षार्थियों का मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिये। ऐसा करने के निम्नांकित लाभ हैं—

(1) शिक्षक को यह ज्ञात हो जाता है कि शिक्षार्थी निर्धारित उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त कर सके हैं।

(2) शिक्षक को अध्ययनाध्यापन-परिस्थितियों की प्रभावोत्पादकता का भी ज्ञान हो जाता है।

(3) मूल्यांकन करने में नियत कार्य देने में सुविधा हो जाती है।

(4) शिक्षार्थी में स्वयं में अपने प्रयास का फल ज्ञात हो जाने से आत्म विश्वास विकसित हो जाता है।

(5) मूल्यांकन करने से आगे के पाठ की योजना बनाने में सुविधा रहती है।

(6) मूल्यांकन करने से शिक्षक के पास भी विभिन्न प्रकार के प्रश्नों का अच्छा संग्रह हो जाता है जिससे इकाई परख का निर्माण करने में सुविधा रहती है।

प्रत्येक पाठ के अन्त में मूल्यांकन करने में अधिक समय नहीं लगना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक उद्देश्य पर एक प्रश्न पूछ लेना पर्याप्त होता है। यदि विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकें तो इस कार्य में शिक्षार्थी अधिक रुचि दर्शाते हैं।

(10) नियत कार्य

यह भी दैनिक पाठ योजना का आवश्यक अंग होता है। नियत कार्य द्वारा शिक्षक कक्षान्तर्गत शिक्षण का विस्तार करता है ताकि अनुवर्ती कार्य करना सम्भव हो सके। नियत कार्य की एक प्रविधि के रूप में शिक्षण प्रविधियों वाले अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है। अतः विशेष अध्ययन के लिए सम्बन्धित पाठ का अध्ययन करना उपयुक्त होगा। यहाँ तो यह लिखना पर्याप्त होगा कि शिक्षक प्रत्येक शिक्षार्थी को आवश्यकतानुसार नियत कार्य दे सके तो उनके शैक्षिक विकास में सहायता मिलती है।

साराश

शिक्षण की सभी योजनाओं मे दनिक पाठ-योजना बहुत महत्त्वपूण है। यह एक क्रियात्मक योजना है तथा इसका दैनन्दिन शिक्षण से सम्बन्ध होता है।

दनिक पाठ-योजना का निर्माण करते समय शिक्षण उद्देश्य, अधिगम अनुभव, शिक्षक शिक्षार्थी-अनुक्रियाएँ, सहायक-शिक्षण सामग्री तथा मूल्याकन आदि का ध्यान रखा जाता है। उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए अध्ययनाध्यापन सस्थितियो का निर्माण कर अन्त मे मूल्याकन इस ध्येय से किया जाता है कि यह ज्ञात हो सके कि शिक्षण उद्देश्यो का पाठ योजना की सहायता से पढाने पर किस सीमा तक प्राप्त किया जा सका है।

इस अध्याय मे दैनिक पाठ योजना का प्रारूप विकसित किया गया है जिसमे (1) परिचयात्मक सूचना, (2) उद्देश्य, (3) सहायक शिक्षण-सामग्री, (4) पूवज्ञान, (5) पाठोपस्थापन, (6) पाठ का विकास (7) पुनरावृत्ति, (8) श्याम-पट्ट सार, (9) मूल्याकन तथा (10) नियत काय है।

पाठ योजना का उपयोग शिक्षण काय में भली प्रकार से कर शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है।



अध्याय 7

प्रायोजना-विधि

(Project Method)

यह शिक्षण विधि शिक्षा के क्षेत्र में प्रगतिशील तथा गत्यात्मक विधियों में मानी गई है। इसके जन्मदाता अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डब्ल्यू एच किलपेट्रिक (W H Kilpatric) थे।

सन् 1904 में ड्यूवी के विचारो से प्रभावित होकर मेरियम ने मिसूरी विश्वविद्यालय में एक पाठशाला खोली जिसमें बालकों को खेल व कहानी द्वारा शिक्षा दी जाती थी तथा उनके लिए श्रम करना अनिवार्य था। शिक्षण केवल 4 कालांशों में होता था।

फ्रांसिस डब्ल्यू पार्कर (Francis W Parker) ने शिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाने हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये जिनके निष्कर्ष उन्होंने 1912 में प्रकाशित किये। उनके अनुसार—

(1) छात्र छात्राओं को स्वयं कार्य करना उनके लिए उपयोगी एवं लाभप्रद है अतः उन्हें इसका अभ्यास विद्यालयों में कराना चाहिए।

(2) उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने के लिए उन्हें एक योजना के अनुरूप स्वतंत्र कार्य करने की छूट दी जानी चाहिये।

(3) छात्र छात्राओं में सामाजिक भावना उत्पन्न किया जाना आवश्यक है।

पार्कर के उक्त विचारों का प्रायोजना विधि से काफी मेल है।

प्रायोजना विधि को वर्तमान स्वरूप किलपट्रिक ने प्रदान किया। वे मुख्यतः जान ड्यूवी के दर्शन एवं थार्न डाइक के मनोविज्ञान से प्रभावित हुए तथा उन्होंने सीखने से सबंधित निम्न तीन पक्ष प्रस्तुत किये—

(1) बौद्धिक पक्ष

सीखने के मानसिक पक्ष का अर्थ बालक द्वारा समस्या हल करने की योग्यता प्राप्त कर लेना है।

(2) शारीरिक पक्ष

शारीरिक क्रियाओं के सीखने से अभिप्राय हस्त कौशल अर्जित करने से है।

(3) भावात्मक पक्ष

बालक में उत्तम प्रकृति की रुचियों एवं मूल्यों को विकसित करना सीखने का भावात्मक पक्ष है।

प्रायोजना-विधि का अर्थ

(Meaning of Project Method)

प्रायोजना या प्रोजेक्ट शब्द इन्जीनियरिंग की देन है। किसी भवन आदि को बनाने से पूर्व उसकी एक योजना बनाई जाती है जिसे प्रोजेक्ट कहा जाता है। 1908 में इस शब्द का पहली बार प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में मसेच्यूसेट राज्य के बोर्ड आफ एजूकेशन में किया गया जिसके अन्तर्गत बालकों को अपने घरों में जानवर आदि पालने या बागवानी करने का प्रावधान था। शिक्षण के क्षेत्र में प्रथम प्रयोग किलपैट्रिक ने प्रायोजना विधि के रूप में किया।

इस शिक्षण विधि के अन्तर्गत शिक्षण को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया है। इसमें बालकों से स्वाभाविक परिस्थितियों में रचनात्मक कार्य कराये जाते हैं जिसके फलस्वरूप वे न केवल ज्ञान ही प्राप्त करते हैं अपितु उत्तम सामाजिक जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं। इस विधि में सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धारित कर उसकी प्राप्ति हेतु एक योजना बनाई जाती है। इस योजना के अन्तर्गत कई कार्य करने होते हैं जिन्हें बालक अपनी-अपनी इच्छा एवं रुचि के अनुसार पूरा करते हैं। अन्त में उनके द्वारा किये गये कार्य की सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार योजना विधि में समस्यामूलक कार्य बालकों को करने के लिए दिया जाता है। जिसे वे स्वाभाविक परिस्थिति में पूर्ण करते हैं। यह समस्या शिक्षक द्वारा उत्पन्न की जाती है तथा बालक इसे सुलझाते हुए अपनी अपनी रुचियों के अनुसार विभिन्न विषयों का स्वाभाविक रूप से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

प्रायोजना के प्रकार

प्रायोजना मुख्यतः दो प्रकार की होती है—

(1) व्यक्तिगत योजनायें

इस प्रकार के प्रोजेक्ट्स में ऐसे कार्य लिए जाते हैं जिसे बालक अकेला ही सरलतापूर्वक कर सके। सभी बालकों को अलग-अलग प्रोजेक्ट दिये जाते हैं तथा वे अपने-अपने ढंग से इन्हें पूर्ण करते हैं। उदाहरण के लिए किसी वस्तु का मॉडल तैयार करना।

(2) सामूहिक योजनायें

इस प्रकार के प्रोजेक्ट में अनेक प्रकार के कार्य किये जाने हेतु होते हैं जिन्हें कक्षा के सभी बालक मिल जुल कर स्वाभाविक रूप से करते हैं। उदाहरण के लिए

विद्यालय में किसी नाटक का खेला जाना। बालक अपने-अपने स्वभाव एवं रुचि अनुसार कार्यों को बाँट कर पूरा कर लेते हैं।

किलपेट्रिक ने चार प्रकार की प्रायोजनाओं का उल्लेख किया है जो कि निम्नांकित हैं—

(1) रचनात्मक प्रायोजनायें

ऐसी प्रायोजना जिसमें विद्यार्थी ऐसा कार्य करें जिसके परिणामस्वरूप कुछ उत्पादन हो। इस प्रकार की प्रायोजना में रचना या निर्माण पर बल प्रदान किया जाता है। जैसे बाग लगाना या पेड़ पौधे उगाना, खिलौने बनाना, ड्रामा करना, पत्र लिखना आदि।

(2) कलात्मक प्रायोजनायें

कार्य के द्वारा कला का सौन्दर्य-बोध प्राप्त कराना इस प्रकार की प्रायोजनाओं का उद्देश्य होता है। बालक कलापूर्ण कार्य कर ज्ञानार्जन के साथ साथ अथवा सौन्दर्यानुभूति भी प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए कहानी का या सुनना, संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करना, कविता सुनना या सुनाना, आदि।

(3) समस्यात्मक प्रायोजनायें

इसके अन्तर्गत बालक के समक्ष किसी बौद्धिक कठिनाई को प्रस्तुत कर उसे सुलझाना है। जैसे दिन रात कैसे बनते हैं, खाद्यान्न की कमी को कैसे दूर कर सकते हैं, पर्यावरण कैसे प्रदूषित हो रहा है, मूल्यों में गिरावट क्यों हो रही है आदि।

(4) अभ्यास की प्रायोजनायें (Drill Projects)

इस प्रकार की योजनाएँ बालक में किसी कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिए बनाई जाती हैं। इसके सीखने से उसमें कार्य करने का कौशल उत्पन्न होता है तथा उसकी क्षमता में वृद्धि होती है। जैसे तैरना सिखाना, मानचित्र या रेखाचित्र बनवाना आदि।

प्रायोजना विधि की कार्यप्रणाली

(Steps of Project Method)

इस विधि की कार्यप्रणाली के 6 प्रमुख पद हैं—

(1) परिस्थिति का निर्माण (Creating the Situation)
(2) योजना का चुनाव (Choosing the Project)
(3) योजना बनाना (Planning the Project)
(4) योजना का क्रियान्वयन (Execution of the Project)
(5) मूल्यांकन (Evaluation)
(6) योजना कार्य का लेखा (Recording the Project)।

(1) परिस्थिति का निर्माण (Creating the Situation)

प्रायोजना विधि का यह एक प्रमुख पद है। इसके अन्तर्गत अध्यापक कक्षा मे ऐसी परिस्थिति का निर्माण करता है कि शिक्षार्थी समस्या विशेष का तीव्रता से अनुभव करने लगता है। यहा विशेष बात यह है कि कोई भी कार्य शिक्षक द्वारा बालक पर थोपा नही जाता है, इसके विपरीत वह छात्रो से बातचीत या विचार-विमर्श करते-करते ऐसी परिस्थिति का निर्माण कर देता है कि बालक स्वप्रेरित हो उसके समाधान हेतु प्रयत्न करने के लिए तत्पर हो उठता है। कक्षा म जो परिस्थिति इस प्रकार बनाई जाती है, वह उसके तत्कालीन जीवन से सम्बधित होती है तथा उसमे जीवन की वास्तविकता झलकती है। एक उदाहरण से यह विचार भली भाति स्पष्ट हो सकेगा।

प्रतिवर्ष विद्यालय म अनेक प्रकार के दिवस जसे—स्वतत्रता दिवस, गणतत्र दिवस, शिक्षक दिवस, बाल दिवस, सयुक्त राष्ट्र दिवस, विश्व साक्षरता दिवस आदि मनाये जाते हैं। इनम से अधिकांश दिवसो पर जो आयोजन होता ह वह मात्र औपचारिकता का निर्वाह है न तो आयोजना म शिक्षार्थियो का सक्रिय सहयोग मिलता है और न उनमे इन दिवसो के आयोजन के प्रति उत्साह ही दृष्टिगत होता है। अत शिक्षक चाहे तो इन दिवसा को प्रोजेक्ट का रूप प्रदान कर हिन्दी, सामाजिक ज्ञान, नागरिक शास्त्र, भूगोल, उद्योग, अथशास्त्र आदि विषयो के समवित शिक्षण का प्रभावी माध्यम बना सकते हैं।

इसकी सहायता से शिक्षक कक्षा म सजीव व वास्तविक परिस्थिति का निर्माण करने म सफल होता है। यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक योजना की परिस्थिति के निर्माण में प्रश्न ही पूछे जायें। अध्यापक द्वारा सक्षिप्त एव प्रभावशाली भाषण भी एक अच्छा उत्प्रेरक हो सकता है। मूल भावना यह है कि बालक स्वय कार्य की आवश्यकता की अनुभूति करें।

(2) प्रायोजना का चुनाव

यह प्रायोजना विधि का दूसरा चरण है। अध्यापक बालका को प्रेरित कर समस्यात्मक स्थिति उत्पन्न कर देता है। बालक इस समस्या के समाधान के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएँ या हल प्रस्तुत करत हैं परतु बालक द्वारा प्रस्तावित सभी योजनाआ को स्वीकार नही किया जा सकता। उनके द्वारा प्रस्तावित योजनाओं म कुछ काल्पनिक, बहुत बडी तथा साधनो के अभाव मे सभव नही, आदि होती हैं तथा कुछ वास्तविक आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाली तथा सहज होती हैं।

अध्यापक बालक द्वारा प्रस्तुत योजनाआ के गुण एव दोष पर वार्तालाप करन के लिए विद्यार्थियो को निपुणतापूर्वक उत्तेजित करता है। बालक विचार विमर्श कर केवल ऐसा प्रोजेक्ट चुनते हैं जो कि वास्तविक हो तथा सामाजिक महत्त्व का हो।

(3) योजना बनाना

प्रायोजना के लिए उपयुक्त परिस्थितियों निर्माण एवं सुझाव के पश्चात् निर्ध
को इसकी व्यापक योजना बनाने का अवसर देना चाहिए। इसके लिए छात्रों क
विभिन्न कार्यक्रमों का विस्तृत प्रस्तुत करने के लिए कहा जाना चाहिए। अध्याप
एवं छात्र अपने-अपने विचार कार्यक्रम तैयार में व्यक्त करते हैं। इस कार्यक्रम के
पर सब सहमति प्रदान कर देते चुन लिए जाते हैं।

(4) योजना का क्रियान्वयन

कार्यक्रम निर्धारित होने के पश्चात् बालक अपनी-अपनी योजना को पूर्ण करने
में लग जाते हैं इसके लिए वे आपस में परस्पर विचार विमर्श करते हैं तथा कार्य को
पूरा कैसे किया जाये इसके बारे में सोचते हैं। यदि आवश्यक होता है तो वे कार्य से
सम्बन्धित पत्र-पत्रिकायें पुस्तक आदि भी पढ़ते हैं। बनी हुई वस्तु का निर्माण
करते हैं। यहाँ शिक्षक किसी प्रकार का शिक्षण नहीं करता। यदि बहुत ही आवश्य
कता हो तो वह बालकों को आवश्यक सुझाव दे देता है। वह बालकों को "करके
सीखना" (Learning by Doing) का पूर्ण अवसर प्रदान करता है। चूँकि बालकों
की इस पद्धति से कार्य करने की गति धीमी होगी, अतः अध्यापक को धैर्य से काम
लेना होगा। समय-समय पर अध्यापक उनके कार्य का अवलोकन करता रहता है
तथा यदि बालक त्रुटियाँ कर रहे हो तो उन्हें सुधारता है।

(5) मूल्यांकन

योजना के क्रियान्वयन के पश्चात् उसका मूल्यांकन किया जाता है। शिक्षक
और शिक्षार्थी सामूहिक चिन्तन करते हैं तथा आपसी विचार विमर्श कर यह ज्ञात
करते हैं कि उनके द्वारा लिया गया प्रोजेक्ट किस सीमा तक सफलीभूत हुआ। योजना
के क्रियान्वयन में क्या कमियाँ रही? जिस उद्देश्य से कार्य प्रारम्भ किया गया था
उसको प्राप्त करने में उनको कितनी सफलता मिली? प्रत्येक शिक्षार्थी निःसंकोच
अपनी अभिव्यक्ति करता है। मूल्यांकन के समय प्रधानाध्यापक, स्टाफ के सदस्य
तथा अभिभावकों की सम्मति का भी समुचित लाभ उठाया जा सकता है। इस
प्रकार पारस्परिक चर्चा द्वारा प्रायोजना की सफलता को आंका जाता है।

(6) प्रोजेक्ट के कार्य का लेखा

प्रत्येक बालक के पास एक 'प्रोजेक्ट पुस्तिका' होती है। इस पुस्तक में वह
उपर्युक्त वर्णित पाँचों पदों पर आधारित प्रोजेक्ट का पूर्ण विवरण लिखता है इसमें
वह यह भी लिखता है कि कार्य पूर्ण करने के लिये किन किन पुस्तकों अथवा स्रोतों
से सूचनाएँ प्राप्त हुई। उसे कौन-कौन से कार्य दिये गये थे तथा उसने वह कार्य
किस प्रकार पूरा किया।

ऐसा भी हो सकता है कि प्रोजेक्ट अधूरा रह जाय। उस स्थिति में बालक
को यह लिखना होता है कि उस प्रोजेक्ट का कितना कार्य कर लिया गया है

तथा कितना शेष है। इस प्रकार के लेखे से प्रोजेक्ट की प्रगति का ज्ञान होना सम्भव है।

प्रायोजना पद्धति का प्रयोग
(Application of Project Method)

विभिन्न विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक उदाहरण निम्नांकित है—

योजना शीर्षक—सब्जी उगाना।

(1) गणित

खेत का क्षेत्रफल, प्रति वर्ग मीटर उत्पादन, लागत और विक्रय मूल्य से लाभ निकालना, कार्य के अनुपात में लाभांश का वितरण।

(2) जीव विज्ञान

विभिन्न पौधों का अध्ययन, खाद, पानी आदि की विभिन्न मात्रा का पौधों पर प्रभाव का अध्ययन, पौधों के क्रमिक विकास तथा फल एवं बीज बनने तक की प्रक्रिया का अध्ययन।

(3) भूगोल

मिट्टी के प्रकार, सिंचाई के साधन, जलवायु आदि का वर्णन करना।

(4) लेखन कार्य (भाषा)

बीजों की खरीद, खाद की गोदामों से प्राप्ति आदि के लिये व्यवसायियों को पत्र लिखना। सरकार से आर्थिक सहायता हेतु प्रार्थना-पत्र। फसल उत्पादन में मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु कृषि विभाग से पत्र व्यवहार।

(5) पढ़ना (भाषा)

अन्य देशों में सब्जी उत्पादन की नवीन विधियाँ एवं शोध कार्यों को पत्र पत्रिकाओं में पढ़ना।

(6) चित्रकला

खेत का चित्र, पौधे, फल और फूल का चित्र बनाना।

(7) स्वास्थ्य विज्ञान

खेत की जलवायु का तुलनात्मक अध्ययन, शहरी व घनी आबादी से दूर प्रदूषण से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।

(8) इतिहास

विभिन्न युगों में सब्जी उत्पादन के तरीकों का ऐतिहासिक अध्ययन करना।

(9) शारीरिक श्रम

खेत पर जुताई, खुदाई, कटाई सिंचाई आदि के लिये शारीरिक श्रम करना।

(10) अर्थशास्त्र

विभिन्न मण्डियों के सब्जी के भावों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रायोजना के चयन के लिए आवश्यक शर्तें

प्रोजेक्ट का चयन करते समय निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(1) प्रोजेक्ट शिक्षाप्रद होना चाहिए तथा उसको पूर्ण करने के लिए सामग्री सुलभ होनी चाहिए।

(2) प्रोजेक्ट अधिक खर्चीला न हो अन्यथा धनाभाव के कारण इसे बीच में ही बन्द करना पड़ेगा।

(3) इसमें लगने वाला समय पाठ्यक्रम पूरा करने में बाधक न हो अर्थात् कम समयावधि के प्रोजेक्ट ही लिए जाने चाहिए।

(4) प्रोजेक्ट पूरा करने में ऐसे विशिष्ट कौशल की आवश्यकता न हो जिसके लिए विशेषज्ञ बुलाना पड़े। जैसे टेलीविजन का कक्षा 10 के छात्रों द्वारा बनाना।

(5) प्रोजेक्ट पूरा करने में विद्यार्थियों को करके सीखने का पूर्ण अवसर प्राप्त होना चाहिए।

(6) प्रोजेक्ट का सम्बन्ध अनेक विषयों से होना चाहिए।

प्रोजेक्ट पद्धति के गुण

(Merits of Project Method)

प्रोजेक्ट विधि द्वारा शिक्षण आयोजित करने के निम्नांकित लाभ हैं—

(अ) ज्ञान की समग्रता—प्रायोजना विधि में शिक्षण किसी समस्या मूलक प्रवृत्ति के रूप में आयोजित किया जाता है। कई विषयों को समस्या से सम्बन्धित किया जाता है। इससे ज्ञान समग्र रूप में प्राप्त होता है तथा विषयों के मध्य संकुचित दीवारें टूट जाती हैं।

(ब) सीखने के नियमों पर आधारित—जैसा कि प्रारम्भ में बताया गया कि पेट्रिक, प्रोजेक्ट विधि के जन्मदाता, पर थार्नडाइक के मनोविज्ञान का भी प्रभाव पड़ा। थार्नडाइक के तीन महत्त्वपूर्ण नियम निम्नलिखित हैं—

(1) तत्परता का नियम (Law of Readiness)

(2) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)

(3) प्रभाव का नियम (Law of Effect)।

उक्त तीनों नियमों का उपयोग योजना विधि में किया जाता है। अध्यापक प्रोजेक्ट के प्रारम्भिक चरण में बालकों को कार्य करने के लिए तैयार करता है। फिर छात्र कार्य करके सीखते हैं तथा कार्य पूर्ण करने पर उन्हें संतोष का अनुभव होता है।

(स) वैयक्तिक गुण—इस विधि द्वारा शिक्षण के आयोजन में शिक्षार्थियों में पहल करने, नेतृत्व करने, सहयोग करने, उत्तरदायित्व वहन करने, व्यवस्था करने आदि उपयोगी गुणों का विकास होता है।

(द) वास्तविक जीवन से सम्बन्धित—इस विधि में समस्याओं का चयन वास्तविक जीवन से किया जाता है। इससे शिक्षा अर्थपूर्ण तथा उद्देश्यपूर्ण बन जाती है। बालक वास्तविक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का हल कर जीवन के नवीन अनुभव प्राप्त करते हैं जो कि उनके भावी जीवन के लिए उपयोगी होते हैं।

(य) श्रम के प्रति निष्ठा—इस विधि में प्रत्येक बालक को कुछ न कुछ कार्य करना पड़ता है तथा वह इस कार्य को करने में किसी संकोच का अनुभव नहीं करता। इससे बालकों में श्रम करने की आदत का विकास होता है तथा इसके प्रति निष्ठा बढ़ती है।

(र) जनतान्त्रिक जीवन की तैयारी—इस विधि में योजना का चुनाव करना, योजना बनाना, योजना क्रियान्वित करना तथा मूल्यांकन आदि का कार्य विद्यार्थी स्वयं करते हैं। वे स्वयं योजना बनाते हैं तथा योजना को क्रियान्वित करते हैं। जनतान्त्रिक जीवन पद्धति में उनसे यही अपेक्षा की जाती है। अतः यह विधि जनतान्त्रिक जीवनयापन के लिए समुचित प्रशिक्षण देती है। इस विधि की निम्नांकित सीमाएँ हैं—

(अ) विषयवस्तु की क्रमबद्धता का अभाव—इस विधि में शिक्षण किसी समस्या की पूर्ति की दृष्टि से किया जाता है। शिक्षण में विषयवस्तु की क्रमबद्धता नहीं रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि विषय का व्यवस्थित ज्ञान इस विधि से दिया जाना सम्भव नहीं है।

(ब) समय विभाग चक्र की अवहेलना—प्रत्येक कक्षा में विभिन्न विषयों की दृष्टि से उनकी कठिनाई के अनुसार समय का विभाजन कर समय विभाग चक्र बनाया जाता है। इस विधि के अनुसार शिक्षण आयोजित करने पर समय विभाग चक्र के अनुसार कार्य करना कठिन हो जाता है अतः समय विभाग चक्र की अवहेलना करनी पड़ती है।

(स) पिछड़े बालकों की अवहेलना—इस विधि में मुख्य कार्य अच्छे तथा बुद्धिमान बालक को दिया जाता है, वही नेतृत्व करता है तथा कक्षा के पिछड़े बालक उसका अनुसरण करते हैं। परिणामस्वरूप प्रत्येक बालक को संतुलित शिक्षा का अवसर नहीं मिलता है।

(द) पाठ्य पुस्तकों की कमी—यह एक विशेष प्रकार की शिक्षण विधि है तथा इस विधि पर आधारित पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। पाठ्य पुस्तकें परम्परागत रूप में उपलब्ध होने से उनका उपयोग इस विधि में किया जाना सम्भव नहीं है।

(य) उत्साही शिक्षक की आवश्यकता—योजना विधि से अध्यापन कराने के लिए अधिक कल्पनाशील एवं उत्साही अध्यापक की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अध्यापकों की कमी है।

(र) साधन सम्पन्नता—इस विधि के प्रयोग के लिए विद्यालय में पूर्णतः साधनों का होना बहुत आवश्यक है। जिस विद्यालय में सामान्य स्तर का पुस्तकालय न हो, सामान्य उपकरण व मानचित्र न हो तो वहाँ इस विधि का प्रयोग करना कठिन है।

अन्वेषण-विधि

(Discovery Method)

शिक्षक द्वारा बालक को बताया गया ज्ञान तथा बालक द्वारा स्वयं के प्रयत्नों से खोजे गये ज्ञान के स्थायित्व में पर्याप्त अन्तर है। उदाहरण के लिए एक बालक पौधे के विकास के बारे में शिक्षक से पढ़ता है, दूसरा बालक खेतों में पौधे को विकसित होना देखता है, दिन रात उन्हीं से खेलता है तथा नए नए अनुभव अर्जित करता है। दोनों के द्वारा अर्जित ज्ञान में पर्याप्त अन्तर होगा। पहले छात्र का ज्ञान दूसरे के अनुभवों का निचोड़ है जो कि उसने अध्यापक से सुना है, जबकि दूसरे छात्र का ज्ञान स्वयं के प्रयत्नों से प्राप्त किया हुआ है। इस कारण वह इसके प्रत्येक अंश की बारीकी से व्याख्या कर सकता है। इसीलिए स्पेन्सर[1] (Spencer) ने कहा है 'विद्यार्थियों को जितना सम्भव हो कम से कम बताया जाय और यथासम्भव उनको खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।'

बालक में खोज करने की प्रवृत्ति होती है। वह नई नई बातों को जानने को उत्सुक रहता है। बालक की इस प्रवृत्ति का उपयोग उसके द्वारा ज्ञान-अर्जित किये जाने हेतु प्रोफेसर आर्मस्ट्रांग (H E Armstrong) ने 19वीं सदी के अन्तिम दशक में किया। मूलतः यह विधि विज्ञान शिक्षण के लिए बनाई गई। इसका नाम ह्यूरिस्टिक पद्धति (Heuristic Method) रक्खा गया है। ह्यूरिस्टिक विधि को अन्वेषण विधि भी कहते हैं।

अन्वेषण-विधि के सोपान

(Steps of Discovery Method)

अन्वेषण विधि में विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करने के लिए निम्नांकित सोपानों का अनुसरण किया जा सकता है—

(1) प्रकरण का निर्धारण (Decision about Topic)

प्रत्येक विषय या प्रकरण पर अन्वेषण द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाना छात्र के लिए सम्भव नहीं है। इसका प्रमुख कारण विद्यालयों में साधनों की कमी तथा

1 Spencer Herbart Education P 53

बालकों का अपरिपक्व होना है। माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक सब प्रकार के प्रकरणों पर स्वयं चिंतन एवं प्रयोग कर ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। अतः ऐसे प्रकरणों का अध्यापक निश्चित करें जिसमें सम्बन्धित खोज बालकों द्वारा सम्भव हो।

(2) उपयुक्त साधन सामग्री की उपलब्धता (Availability of Teaching Material)

अध्यापक जिस प्रकरण पर छात्रों से खोज कराना चाहता है उससे सम्बन्धित उपकरण आदि उपलब्ध होने चाहिए। जैसे यदि अध्यापक छात्रों से अम्ल और क्षार में भिन्नता ज्ञात कराना चाहता है तो विज्ञान की प्रयोगशाला में अम्ल, क्षार, लिटमस पेपर, फिनोफ्थलीन आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों जिससे कि सभी बालक अलग-अलग अन्वेषण कार्य कर सकें।

(3) समस्या उत्पन्न करना (Creation of Problems)

इस सोपान में अध्यापक बालकों के सामने समस्या इस प्रकार से उत्पन्न करता है कि वे प्रेरित होकर समस्या के समाधान में लग जावें। समस्या रुचिकर तथा विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने वाली होनी चाहिए। यदि समस्या नीरस और अरुचिपूर्ण होगी तो छात्र इसे हल करने में रुचि नहीं दिखायेंगे तथा यह विधि असफल हो जायेगी।

(4) तथ्यों की खोज (Discovery of Facts)

किसी भी ठोस नतीजे पर पहुँचने से पूर्व तथ्यों का संकलन आवश्यक है। उदाहरण के लिए भूगोल में यह ज्ञात करने के लिए कि किसी स्थान की अनाज की पैदावार वहाँ की जलवायु, मिट्टी के प्रकार, पानी के साधन आदि पर निर्भर करती है, बालकों को विभिन्न स्थानों से अनाज उत्पादन (प्रति एकड़) जलवायु, मिट्टी की किस्म आदि के आंकड़ों की खोज करनी होगी। विज्ञान विषय में यह सिद्धान्त विकसित करने के लिए कि ठोस गर्मी पाकर फलते हैं, उसे रेल लाइनों के बीच जगह का छोड़ना, तारों का ढीला होना आदि तथ्यों की खोज करनी होगी।

(5) परिकल्पना का निर्माण (Formation of Hypothesis)

इस सोपान में बालकों द्वारा तथ्यों को एकत्रित करने के बाद एक परिकल्पना का निर्माण करना पड़ता है। परिकल्पना का अर्थ है किसी भी समस्या का सम्भावित हल। चूँकि यह विधि समस्या प्रधान विधि है, इसमें प्रस्तुत समस्या का सम्भावित हल बालक पूर्व चिंतन के आधार पर निर्मित कर लेता है। उदाहरण के लिए बालक यह अनुमान करता है कि ताप के बढ़ने या घटने से धातु के छड़ की लम्बाई पर प्रभाव पड़ता है।

(6) परिकल्पनाओं का परीक्षण (Verification of Hypothesis)

परिकल्पना केवल एक अनुमान मात्र ही है। इसका परीक्षण किया जाना

आवश्यक है। शिक्षण विधि के इस चरण में बालक परिकल्पनाओं के पक्ष द्वारा विषय में तथ्य एकत्रित करता है अथवा उनका प्रायोगिक सत्यापन करता है। इन्हें के आधार पर वह परिकल्पनाओं को स्वीकार या अस्वीकार करता है।

उदाहरण के लिए परिकल्पना ताप के बढ़ने या घटने से धातु की छड़ की लम्बाई प्रभावित होती है वह एक उपकरण लेता है इसमें धातु की एक छड़ होती है। छड़ को गर्म करने से पूर्व तथा गर्म करने के बाद छड़ की लम्बाई नाप करता है। गर्म छड़ की लम्बाई ठण्डी छड़ से अधिक पाई जाने पर वह परिकल्पना का सत्यापन करता है कि गर्मी पाकर धातु की छड़ बढ़ती है।

(7) निष्कर्ष निकालना (Drawing Inferences)

यह एक महत्त्वपूर्ण चरण है क्योंकि इसमें बालक को बौद्धिक चिन्तन कर निर्णय लेना होता है। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया, छात्र कई परिकल्पनाएँ बनाता है इनमें कुछ सत्य तथा कुछ असत्य पाई जाती हैं। बालक असत्य अनुमानों को त्याग कर केवल उन अनुमानों को स्वीकार करता है जो कि परिकल्पना परीक्षा के समय सत्य पाये गये हैं।

अन्वेषण-विधि के उद्देश्य

अन्वेषण विधि के निम्नांकित उद्देश्य हैं—

(1) स्वयं कार्य करने की आदतों का बालकों में विकास करना।
(2) खोज करने के लिए प्रोत्साहित करना।
(3) वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।
(4) तथ्यों के आधार पर सत्य की खोज करना।
(5) बालक की निरीक्षण करने की क्षमता का विकास करना।
(6) परिश्रम करने की आदत का विकास करना।
(7) तथ्यों का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकालने की क्षमता का विकास करना।
(8) तार्किक चिन्तन की शक्ति का विकास करना।

अन्वेषण-विधि का प्रयोग

अन्वेषण विधि का प्रयोग पाठ्यक्रम के सभी विषयों में किया जा सकता है परन्तु विषय के सभी प्रकरण इस विधि से पढ़ाये जाने सम्भव नहीं हैं। केवल वे प्रकरण जो कि समस्या के रूप में विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हों तथा जिनका हल किया जाना इनके लिए सम्भव हो वे ही अन्वेषण विधि से पढ़ाए जा सकते हैं। अतः यह मानना कि अन्वेषण विधि केवल विज्ञान विषय तक ही सीमित है गलत है। नीचे कुछ विषयों से सम्बन्धित समस्याएँ दी जा रही हैं जिनको शिक्षक छात्रों के समक्ष प्रस्तुत कर उनसे हल ज्ञात करा सकता है और इस प्रकार अन्वेषण विधि का उपयोग कर सकता है।

(1) हिन्दी—शैली, भाषा तथा विषयवस्तु की दृष्टि से नई तथा पुरानी कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन।

(2) इतिहास—भारत में 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की फ्रांस की क्रान्ति से तुलना करना।

(3) भूगोल—राजस्थान की जलवायु की तुलना आसाम की जलवायु से करना।

(4) विज्ञान—स्थिर ताप पर गैस के आयतन एवं दाब में सम्बन्ध ज्ञात करना।

(5) गणित—किसी भी त्रिभुज के तीनों कोणों के योग को ज्ञात करना।
—वृत्त की परिधि और व्यास में सम्बन्ध ज्ञात करना।

(6) सामान्य विज्ञान—पर्यावरण प्रदूषण के कारणों का पता लगाना।

(7) सामाजिक ज्ञान—राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्त्वों को ज्ञात करना।

उपरोक्त सभी प्रकरण ऐसे हैं जिनमें कोई-न-कोई समस्या उपस्थित है। विद्यार्थी अन्वेषण विधि द्वारा इनका हल निकाल सकता है।

अन्वेषण-विधि की विशेषताएँ

(Characteristics of Discovery Method)

अन्वेषण विधि में अधोलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) यह विधि अधिगम के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है अतः यह एक प्रभावशाली शिक्षण विधि है।

(2) इस विधि के शिक्षण में उपयोग किये जाने से बालक में स्वयं कार्य करने का गुण विकसित होता है। जब बालक स्वयं कार्य करता है तो उसमें सोचने तथा कार्य करने की प्रक्रिया में समन्वय हो जाता है अर्थात् उसकी मांसपेशियों एवं मानसिक क्रियाओं में सुदृढ़ सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं।

(3) यह विधि एक वैज्ञानिक विधि है क्योंकि इसमें वैज्ञानिक विधि के अनुरूप समस्यानुभूति, चिन्तन निरीक्षण, तथ्य संकलन, परिकल्पना निर्माण एवं सत्यापन, निष्कर्ष आदि सोपान हैं। इससे बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास होता है।

(4) अन्वेषण विधि बालक को भावी जीवन में समस्याएँ सुलझाने का पूर्व प्रशिक्षण देती है। बालक इस विधि से समस्याओं को सुलझाने में दक्षता प्राप्त कर लेता है। इसका उपयोग जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए कर सकता है।

(5) अन्वेषण विधि में छात्र को सभी कार्य विद्यालय में रहकर पूरे करने होते हैं तथा अन्वेषण में निष्कर्ष प्राप्त करने के बाद शिक्षण समाप्त हो जाता है। गृह-कार्य करने की समस्या इस विधि के उपयोग से स्वत ही सुलझ जाती है।

(6) इस विधि में शिक्षक के कार्य का स्वरूप बदल जाता है। परम्परागत शिक्षण में उसका अधिकांश समय अध्यापन में व्यतीत होता है जबकि इस विधि में वह एक मार्गदर्शक है। चूँकि अधिकांश कार्य बालक करते है, शिक्षक का कार्यभार कम हो जाता है।

(7) इस विधि को उपयोग में लाने से बालक का कठिन कार्य करने का डर दूर हो जाता है। इससे वह किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहता है।

उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालक में सृजनात्मकता के विकास एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण जागृत करने की दृष्टि से अन्वेषण विधि एक उत्तम विधि है।

अन्वेषण-विधि की सीमाएँ

अन्वेषण विधि की निम्नांकित सीमाएँ हैं—

(1) इस विधि का उपयोग केवल साधन सम्पन्न स्कूलों में ही किया जाना सम्भव है। इस विधि के लिए पुस्तकें, सन्दर्भ पुस्तकें, उपकरण, प्रयोगशाला आदि की आवश्यकता पड़ती है।

(2) अन्वेषण विधि में बालक के सम्मुख प्रकरण समस्या के रूप में रख बालकों से इसका हल कराना पड़ता है इसके लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापक की आवश्यकता पड़ती है।

(3) इस विधि का उपयोग छोटी कक्षा में किया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि छोटे बालकों की मानसिक शक्ति इतनी विकसित नहीं हो पाती है कि वे तथ्यों का अवलोकन एवं विश्लेषण कर सत्य की खोज कर सकें।

(4) उच्च कक्षाओं में अध्ययनरत पिछड़े बालक भी इस विधि द्वारा अध्ययन नहीं कर सकते है। इस प्रकार के बालकों में समस्या का विश्लेषण कर उसका हल ढूँढने की क्षमता निम्न स्तर की होती है, अतः वे इस विधि में असफल रहेंगे।

(5) इस विधि में समय अधिक लगता है।

(6) पूरे पाठ्यक्रम को तथा किसी विषय के सभी पाठों का इस विधि से पढ़ाया जाना सम्भव नहीं है।

(7) कुछ पाठ ऐसे हैं जिनका ज्ञान शिक्षक द्वारा ही दिया जा सकता है तथा बालक उसे स्वयं नहीं खोज सकते हैं।

(8) अन्वेषण विधि में अध्यापक इसके सोपानों का पूर्व निश्चित कर देता

है। इस कारण बालक को स्वतन्त्र चिंतन का अवसर नहीं मिल पाता है।

(9) आज के युग में कक्षा का आकार बड़ा है। छात्रों की संख्या अधिक होने कारण प्रत्येक छात्र को अन्वेषण विधि द्वारा ज्ञान की खोज करने का अवसर दिया जाना साधनों के सीमित होने के कारण सम्भव नहीं है।

उपरोक्त वर्णित गुणों और सीमाओं से यह स्पष्ट होता है कि यह विधि एक उत्तम प्रकार की विधि है जिसमें छात्र को मौलिक चिन्तन, मनन, तथ्यों का विश्लेषण तथा प्रयोगों या तुलना के आधार पर निष्कर्ष निकालने का पूर्ण अवसर मिलता है। इसके प्रयोग से बालक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है। वह समस्याओं को विधिपूर्वक सुलझाने का प्रशिक्षण प्राप्त करता है जो कि उसके भावी जीवन में कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि धनाभाव में तथा ससाधनों की कमी के कारण इसका उपयोग किया जाना सम्भव नहीं है। न ही प्रत्येक पाठ को अन्वेषण विधि से पढ़ाया जा सकता है।

परिवीक्षित अध्ययन-विधि

(Supervised Study Method)

शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक सामान्यत हरबर्ट के पंच पदों का उपयोग करते हैं। निःसन्देह ये पद शिक्षण में सहायक हैं परन्तु इनसे बालक की स्मृति का विकास किया जाना ही सम्भव हो पाता है। मौरिसन (Morrison) ने बोध स्तर के शिक्षण की एक नवीन योजना प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत शिक्षण को विचार केन्द्रित प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया। उसके अन्तर्गत विद्यार्थी स्वयं अध्ययन करते हैं तथा अध्यापक उनका मार्गदर्शन करता रहता है।

सन् 1971 में डेजी मारविन ने परिवीक्षित अध्ययन विधि का सुझाव प्रस्तुत किया। शिक्षण को कक्षा में व्याप्त व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप बनाकर शिक्षक के मार्ग दर्शन में स्वाध्याय करना इस विधि का प्रमुख उद्देश्य था। इस विधि में शिक्षार्थी शिक्षक के परिवीक्षण और निर्देशन में अपनी कठिनाइयां हल करता हुआ स्वाध्यायरत रहता है। इस प्रकार यह विधि प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी योग्यतानुसार आगे बढ़ने का पूरा अवसर प्रदान करती है।

परिवीक्षित अध्ययन विधि में परम्परागत शिक्षण विधि के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया है। अध्यापक द्वारा व्याख्यान देने के स्थान पर वह अब एक पथ प्रदर्शक है। वह बालकों द्वारा किये जाने वाले कार्यों का, इस प्रकार निर्धारण करता है ताकि वे भली प्रकार से विषयवस्तु को स्वयं समझ लें। इस प्रकार इस शिक्षण विधि में शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा इस पद्धति की सफलता उसके कुशल मार्गदर्शन पर निर्भर है।

परिवीक्षित-अध्ययन-विधि के उपयोग के सोपान

(Steps for Supervised Study Method)

प्रस्तावना

(Introduction)

इस विधि का उपयोग करने से पूर्व शिक्षार्थियों को पाठ के लिए तैयार किया जाता है ताकि सभी को यह स्पष्ट ज्ञान हो जाय कि उन्हें क्या करना है। शिक्षार्थी को पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त कुछ और सन्दर्भ ग्रन्थ भी उपलब्ध करा दिये जाते हैं ताकि व चाहें तो विषय से सम्बन्धित अतिरिक्त जानकारी इन ग्रन्थों से प्राप्त कर सकें। जिन विद्यालयों में कक्षा-पुस्तकालय और विषय-पुस्तकालय प्रणाली लागू हो वहां इस विधि की उपयोगिता और बढ़ जाती है। ... पुस्तकालय कक्षा-पुस्तकालय प्रणालियों में शिक्षक के पास विषय से सम्बन्धित अनेक ... सुलभ होती हैं जिनका वह आवश्यकतानुसार कक्षा में ही शिक्षार्थियों को ... योग करने का अवसर दे सकता है। अध्यापक विद्यार्थियों का स्वाध्याय हेतु प्रकरण बताकर इसे श्यामपट्ट पर लिख देता है।

अध्ययन हेतु निर्देश

(Instruction for Study)

पाठ की प्रस्तावना के उपरान्त अध्यापक छात्रों को विभिन्न निर्देश देता है। ये निर्देश आवंटित कार्य से सम्बन्धित होते हैं। वह स्वाध्याय हेतु यह बताता है कि उन्हें किन किन ग्रन्थों का अध्ययन करना है तथा पुस्तकालय में सदर्भ साहित्य अथवा आवश्यक शिक्षण सामग्री कहां उपलब्ध होगी। अध्यापक शिक्षार्थियों को यह भी बताता है कि प्रकरण के कौन कौन से पक्षों से सम्बन्धित टिप्पणियां उन्हें लिखनी हैं अथवा मानचित्र रेखाचित्र उपकरण का चित्र, ग्राफ समय रेखाचित्र आदि बनाने हैं। इन सबका अध्यापक लिखित उल्लेख श्यामपट्ट पर करता है ताकि विद्यार्थी उसका भली प्रकार से अनुसरण कर सकें। विद्यार्थी, इसके उपरान्त स्वाध्याय में लग जाते हैं।

अध्यापक द्वारा परिवीक्षण

(Supervision by the Teacher)

अध्यापक समय समय पर कक्षा में घूमकर विद्यार्थियों के पास जाता है। उनकी अधिगम सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करता है। उनके द्वारा तैयार की गई टिप्पणियों को पढ़ कर यदि आवश्यक हो तो सुधार भी करता है।

श्यामपट्ट सार का विकास

(Development of Black Board Summary)

अध्ययन समाप्त होने पर अध्यापक सभी छात्रों को एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए निर्देश देता है। वह इनसे विभिन्न प्रश्न कर विषयवस्तु के मुख्य मुख्य

बिन्दुओं को उभारता है तथा इन बिन्दुओं को श्याम पट्ट पर लिखता है। छात्र इसे नोट करते हैं।

उदाहरण के लिए नागरिक शास्त्र विषय के अन्तगत राज्यपाल के अधिकार ज्ञात करने हों तो शिक्षक श्यामपट्ट पर 'राज्यपाल के अधिकार' शीर्षक रूप में लिख देता है। इसके बाद वह राज्यपाल के अधिकार में सम्बन्धित विषयवस्तु किन-किन सन्दर्भ ग्रन्थों में मिलेगी उनकी एक सूची भी लिख देता है। सभी शिक्षार्थी अलग-अलग बढ़कर नागरिक शास्त्र की पुस्तकों का अध्ययन कर राज्यपाल के भिन्न भिन्न अधिकारों पर संक्षिप्त टिप्पणियां तैयार करते हैं। जब शिक्षार्थी टिप्पणियां तैयार करते हैं तो शिक्षक घूमकर यह ज्ञात करता है कि प्रत्येक विद्यार्थी की विषय में सम्बन्धित क्या कठिनाई है और वह कठिनाई को आवश्यक मार्गदर्शन देकर तुरन्त हल कर देता है। जब विद्यार्थी तल्लीन होकर स्वाध्याय करते हैं तो कक्षा में शिक्षण के लिए शांत तथा स्वाभाविक वातावरण निर्मित हो जाता है।

यदि एक ही पाठ में अध्ययन और पाठ की आवृत्ति सम्भव नहीं हो तो एक दिन पूरे कालांश में अध्ययन आयोजित किया जा सकता है और दूसरे दिन तैयार की गई टिप्पणियों पर पूरे समूह में चर्चा की जा सकती है प्रश्नोत्तर आयोजित किया जा सकता है और आवश्यात्मक प्रश्न पूछ कर श्यामपट्ट सार दिया जा सकता है।

पाठ्य सामग्री के अभाव में या अध्ययन प्रिय एवं कुशाग्र बुद्धि बालकों के साथ काम करने या अन्य शिक्षार्थियों का अवसर प्रदान करने की दृष्टि से पूरी कक्षा को छोटे छोटे समूहों में विभाजित करके भी इस विधि का प्रभाव पूर्ण ढंग से उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार से परिवीक्षित अध्ययन विधि का उपयोग करने का एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि शिक्षार्थी परस्पर विचार विमर्श करके आपसी सहयोग से अपनी कठिनाइयां हल कर लेते हैं और उनमें सहयोग से काम करने की भावना का विकास होता है।

परिवीक्षित अध्ययन विधि को उपयोग में लाते समय ध्यातव्य बातें

(Precautions for using Supervised Study Method)

इस विधि का उपयोग करते समय अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना चाहिए

(1) अध्यापक को उन प्रकरणों का चुनाव पूर्व में ही कर लेना चाहिए जिन्हें इस विधि से पढ़ाया जाना है।

(2) परिवीक्षित अध्ययन विधि के लिए ऐसे प्रकरणों का चयन किया जाना चाहिए जिससे सम्बन्धित पुस्तकें एवं सन्दर्भ साहित्य पुस्तकालय में उपलब्ध हो।

(3) इस विधि के अन्तर्गत अध्यापक द्वारा परिवीक्षण कार्य किया जाता है। अध्यापक का निर्देश कम से कम देना चाहिए और छात्रों को समस्या समाधान हेतु प्रेरित करना चाहिए। समस्या समाधान करने की योग्यता का विकास नहीं होगा।

(4) परिवीक्षित अध्ययन के लिए कालांशों का पूर्व में ही निश्चय करना चाहिए तथा इसमें लगने वाले समयानुसार ही कालांशों की व्यवस्था कर देनी चाहिए।

(5) परिवीक्षित अध्ययन को सफल बनाने के लिए अध्यापक को पाठ्य की रूपरेखा एवं सम्बन्धित पाठ्य पुस्तकों की सूची भी देनी चाहिए।

(6) गृह-कार्य प्रत्येक विद्यार्थी को अलग अलग रूप में दिया जाना चाहिए।

(7) प्रकरण निश्चित करते समय विद्यार्थियों की मानसिक क्षमता को ध्यान में रखना चाहिए।

(8) इस विधि में काम में ली जाने वाली पुस्तकें आदि विद्यार्थियों को सुलभ होनी चाहिए।

परिवीक्षित अध्ययन विधि की विशेषताएँ

(Characteristics of Supervised Study Methods)

परिवीक्षित अध्ययन विधि की निम्नांकित विशेषताएं हैं—

(1) प्राय सभी विषयों के शिक्षण में इसका भली भांति उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि यह एक स्वाध्याय विधि है।

(2) इस विधि के अनुसार शिक्षण आयोजित करने पर प्रत्येक शिक्षार्थी अपनी वैयक्तिक प्रतिभा के अनुसार आगे बढ़ सकता है।

(3) इस विधि में शिक्षार्थी स्वयं क्रियाशील रहकर ज्ञानार्जन में तल्लीन हो जाता है। इस कारण अनुशासन बनाये रखने की समस्या स्वतः ही हल हो जाती है।

(4) इस विधि में शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक के रूप में उभर जाती है। शिक्षक का वास्तव में सही रूप यही है।

(5) इस विधि द्वारा शिक्षण आयोजित करने पर शिक्षार्थी में उन कतिपय योग्यताओं का विकास हो जाता है जिनका उपयोग करके वे ज्ञानार्जन की दृष्टि से शनैः शनैः स्वावलम्बी हो जाते हैं।

(6) शिक्षार्थी को शिक्षक के मार्गदर्शन में प्रश्नों के सही उत्तर लिखने का अभ्यास हो जाता है अतः उनको लिखित परीक्षाओं में अच्छे उत्तर लिखने में सुविधा हो जाती है।

(7) इस विधि के द्वारा कक्षा कार्य व्यवस्थित रूप से करने की आदत का विकास हो जाता है और गृह कार्य लिखित कार्य के रूप में देने की आवश्यकता नहीं रहती।

परिवीक्षित अध्ययन विधि की सीमाएँ

(Limitations of Supervised Study Method)

(1) इस विधि के सफलतापूर्वक संचालन हेतु विशिष्ट रूप से दक्ष शिक्षकों की आवश्यकता होती है जिनका हर विद्यालय में होना सम्भव नहीं है।

(2) इस विधि के अन्तर्गत विद्यार्थी को कई कार्य करने पड़ते हैं जैसे संदर्भ ग्रन्थों को देखना, स्वाध्याय करना, संक्षिप्त नोट बनाना, चर्चा करना आदि। इन सब में समय अधिक लगता है इस कारण इस विधि से पाठ्यक्रम पूरा नहीं किया जा सकता।

(3) परिवीक्षित अध्ययन विधि में अध्ययन के लिए विशेष शिक्षण सामग्री जैसे संदर्भ ग्रन्थ, पाठ्य पुस्तकें, उपकरण, नक्शे, चार्ट आदि की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अच्छे स्तर का पुस्तकालय तथा शिक्षण सामग्री की आवश्यकता होगी। वर्तमान में अधिकांश विद्यालयों में इनकी कमी है।

(4) इस विधि से कुशाग्र बुद्धि के छात्र अधिक लाभान्वित नहीं होंगे कारण कि वे विषयवस्तु को शीघ्र समझ लेते हैं तथा उनको चर्चा करने के लिए इंतजार करना पड़ेगा।

(5) परिवीक्षित अध्ययन विधि द्वारा कुछ विषय जैसे गणित आदि पढ़ाया जाना अधिक प्रभावी नहीं होगा।

(6) परिवीक्षित अध्ययन विधि पर भाषा योग्यता का प्रभाव पड़ता है। जो बालक भाषा का अच्छे स्तर का ज्ञान रखते हैं वे संदर्भ ग्रन्थों में वर्णित बातों को शीघ्र समझ कर उनका सार संक्षेप शीघ्रता से लिख देंगे। साधारण ज्ञान रखने वाले बालक ऐसा शीघ्रता से नहीं कर पायेंगे।

उपरोक्त गुण एवं सीमाओं के होते हुए भी यह एक अच्छी शिक्षण विधि है जिसमें वैयक्तिक अध्ययन को प्रोत्साहन मिलता है तथा विद्यार्थियों में अध्ययन आदतों का विकास होता है।

(3) इस विधि में क्रमागत अध्यापक द्वारा परिवीक्षण कार्य किया होता है। अध्यापक का निर्देश कम से कम होना चाहिए तथा छात्र की समस्या समाधान हेतु प्रेरित करना चाहिए। अन्यथा समस्या समाधान करने की योग्यता का विकास नहीं होगा।

(4) परिवीक्षित अध्ययन के लिए कालांश को पूर्व में ही निश्चित करना चाहिए तथा इसमें लगने वाले समयानुसार ही कालांश व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

(5) परिवीक्षित अध्ययन का सफल बनाने के लिए अध्यापक को प्र की रूपरेखा एवं सम्बन्धित पाठ्य पुस्तकों की सूची प्र चाहिए।

(6) गृह-कार्य प्रत्येक विद्यार्थी को अलग अलग रूप में दिया चाहिए।

(7) प्रकरण निश्चित करते समय विद्यार्थियों की मानसिक क्षमता ध्यान में रखना चाहिए।

(8) इस विधि में काम में ली जाने वाली पुस्तकें आदि विद्यार्थि सुलभ होनी चाहिए।

परिवीक्षित अध्ययन विधि की विशेषताएँ

(Characteristics of Supervised Study Methods)

परिवीक्षित अध्ययन विधि की निम्नांकित विशेषताएं हैं—

(1) प्राय सभी विषयों के शिक्षण में इसका भली भांति उपयोग कि सकता है, क्योंकि यह एक स्वाध्याय विधि है।

(2) इस विधि के अनुसार शिक्षण आयोजित करने पर प्रत्येक शि अपनी वैयक्तिक प्रतिभा के अनुसार आगे बढ़ सकता है।

(3) इस विधि में शिक्षार्थी स्वयं क्रियाशील रहकर ज्ञानार्जन में हो जाता है। इस कारण अनुशासन बनाये रखने की समस्या ही हल हो जाती है।

(4) इस विधि में शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक के रूप में जाती है। शिक्षक का वास्तव में सही रूप यही है।

(5) इस विधि द्वारा शिक्षण आयोजित करने पर शिक्षार्थी में कतिपय योग्यताओं का विकास हो जाता है जिनका करके वे ज्ञानार्जन की दृष्टि से शनै शनैः स्वावलम्बी जाते हैं।

(6) शिक्षार्थी का शिक्षक के मार्गदर्शन में प्रश्नों के सही उत्तर लिखने का अभ्यास हो जाता है अतः उनको लिखित परीक्षाओं में अच्छे उत्तर लिखने में सुविधा हो जाती है।

(7) इस विधि के द्वारा कक्षा कार्य व्यवस्थित रूप से करने की आदत का विकास हो जाता है और गृह कार्य लिखित कार्य के रूप में देने की आवश्यकता नहीं रहती।

परिवीक्षित अध्ययन विधि की सीमाएँ

(Limitations of Supervised Study Method)

(1) इस विधि के सफलतापूर्वक संचालन हेतु विशिष्ट रूप से दक्ष शिक्षकों की आवश्यकता होती है जिनका हर विद्यालय में होना संभव नहीं है।

(2) इस विधि के अन्तर्गत विद्यार्थी को कई कार्य करने पड़ते हैं जैसे संदर्भ ग्रन्थों को देखना, स्वाध्याय करना, संक्षिप्त नोट बनाना, चर्चा करना आदि। इन सब में समय अधिक लगता है इस कारण इस विधि से पाठ्यक्रम पूरा नहीं किया जा सकता।

(3) परिवीक्षित अध्ययन विधि में अध्ययन के लिए विशेष शिक्षण-सामग्री जैसे संदर्भ ग्रन्थ, पाठ्य पुस्तकें, उपकरण, नक्शे, चार्ट आदि की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अच्छे स्तर का पुस्तकालय तथा शिक्षण सामग्री की आवश्यकता होगी। वर्तमान में अधिकांश विद्यालयों में इनकी कमी है।

(4) इस विधि से कुशाग्र बुद्धि के छात्र अधिक लाभान्वित नहीं होंगे कारण कि वे विषयवस्तु को शीघ्र समझ लेते हैं तथा उनको चर्चा करने के लिए इंतजार करना पड़ेगा।

(5) परिवीक्षित अध्ययन विधि द्वारा कुछ विषय जैसे गणित आदि पढ़ाया जाना अधिक प्रभावी नहीं होगा।

(6) परिवीक्षित अध्ययन विधि पर भाषा योग्यता का प्रभाव पड़ता है। जो बालक भाषा का अच्छे स्तर का ज्ञान रखते हैं वे संदर्भ ग्रन्थों में वर्णित बातों का शीघ्र समझ कर उनका सार संक्षेप शीघ्रता से लिख देंगे। साधारण ज्ञान रखने वाले बालक ऐसा शीघ्रता से नहीं कर पायेंगे।

उपरोक्त गुण एवं सीमाओं के होते हुए भी यह एक अच्छी शिक्षण विधि है जिसमें वैयक्तिक अध्ययन को प्रोत्साहन मिलता है तथा विद्यार्थियों में अध्ययन-आदतों का विकास होता है।

(3) इस विधि के अन्तर्गत अध्यापक द्वारा परिवीक्षण कार्य ि होता है । अध्यापक का निर्देश कम से कम देना चाहिए व को ही समस्या समाधान हेतु प्रेरित करना चाहिए । अ समस्या समाधान करने की योग्यता का विकास सकेगा ।

(4) परिवीक्षित अध्ययन के लिए कालांश का पूर्व में ही नि लना चाहिए तथा इसमें लगने वाले समयानुसार ही क व्यवस्था कर देनी चाहिए ।

(5) परिवीक्षित अध्ययन को सफल बनाने के लिए अध्यापक की रूपरेखा एवं सम्बन्धित पाठ्य पुस्तकों की सूच चाहिए ।

(6) गृह कार्य प्रत्येक विद्यार्थी को अलग अलग रूप में ि चाहिए ।

(7) प्रकरण निश्चित करते समय विद्यार्थियों की मानसिक स्त ध्यान में रखना चाहिए ।

(8) इस विधि में काम में ली जाने वाली पुस्तकें आदि वि सुलभ होनी चाहिए ।

परिवीक्षित अध्ययन विधि की विशेषताएँ

(Characteristics of Supervised Study Methods)

परिवीक्षित अध्ययन विधि की निम्नांकित विशेषताएं हैं—

(1) प्राय सभी विषयों के शिक्षण में इसका भली भांति उपयो सकता है क्योंकि यह एक स्वाध्याय विधि है ।

(2) इस विधि के अनुसार शिक्षण आयोजित करने पर प्रत्य अपनी वैयक्तिक प्रतिभा के अनुसार आगे बढ़ सकता है ।

(3) इस विधि में शिक्षार्थी स्वयं क्रियाशील रहकर ज्ञानार्जन हो जाता है । इस कारण अनुशासन बनाये रखने की स ही हल हो जाती है ।

(4) इस विधि में शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक के र जाती है । शिक्षक का वास्तव में सही रूप यही है ।

(5) इस विधि द्वारा शिक्षण आयोजित करने पर शिक्षा— कतिपय योग्यताओं का विकास हो जाता है जिन करके वे ज्ञानार्जन की दृष्टि से शनै शनै स्वा जाते हैं ।

क्योंकि उसमें कच्चे माल के, मूल्य के अलावा, मजदूरी तथा व्यापारियों का मुनाफा भी सम्मिलित है।

(5) यदि हम घर पर साबुन बनाए तो क्या यह महगा पड़ेगा ?
(अध्यापक स्वयं कार्य करने के महत्त्व एवं साबुन की दैनिक जीवन में उपयोगिता का वर्णन कर छात्रों को साबुन बनाने के लिए तत्पर करता है।)

(4) प्रोजेक्ट चुनना

अध्यापक—दैनिक जीवन में स्वच्छता के महत्त्व को देखते हुए आप किस वस्तु को बनाना सीखेंगे।

एक छात्र—नहाने के साबुन का बनाना।

दूसरा छात्र—कपड़े धोने के साबुन को बनाना।

तीसरा छात्र—सर्फ बनाना।

अध्यापक—बहुत अच्छा, आज हम साबुन एवं सर्फ बनाने की विधियाँ स्वयं करके सीखेंगे।

(5) कार्यक्रम बनाना एवं कार्य का निर्णय

अध्यापक—सुविधा की दृष्टि से हम नहाने तथा कपड़े धोने के साबुन का बनाना एवं सर्फ बनाने का कार्य तीन अलग-अलग समूहों में करवायेंगे। इससे सभी छात्र कार्य करने में मदद कर सकेंगे।

(अध्यापक छात्रों की रुचि अनुसार कक्षा को तीन छोटे छोटे समूहों में विभक्त करता है।)

अध्यापक—तीनों दलों में से कौनसा दल कपड़े धोने का साबुन बनायेगा।

दल संख्या–1—हमारा दल कपड़े धोने का साबुन बनाना चाहता है।

(अध्यापक इसी प्रकार दल की रुचि अनुसार दल संख्या–2 को नहाने का साबुन बनाना तथा दल संख्या–3 को सर्फ बनाने का कार्य सौंपता है) अध्यापक तीनों समूह को पुस्तकालय जाने का कहता है तथा निम्न पुस्तकों का अध्ययन कर साबुन/सर्फ बनाने की विधि, आवश्यक सामग्री तथा बरती जाने वाली सावधानियों को लिखने को कहता है।

(छात्र पुस्तक एवं अन्य उपलब्ध सामग्री से साबुन बनाने की विधि का अध्ययन करते हैं, आवश्यक बिन्दुओं को अपनी डायरी में लिखते हैं तथा आपस में विचार विमर्श करते हैं। दो कालांश के बाद अध्यापक तीनों समूहों को अलग-अलग बिठाकर कार्यक्रम को अंतिम रूप प्रदान करता है।)

समूह संख्या–1 से बातचीत करते हुए—

अध्यापक—समूह संख्या–1 का उद्देश्य क्या है ?

आदर्श पाठ

प्रकरण साबुन एवं सफ बनाना   कक्षा 9वी
विद्यालय एवीसी   विधि बहुमुखी प्रोजेक्ट विधि

(प्रोजेक्ट विधि पर आधारित)

(1) उद्देश्य

1 साबुन बनाने की प्रक्रिया का अवलोकन कर निष्कर्ष सकेंगे।

2 साबुन बनाने की प्रक्रिया का अपने शब्दों में प्रत्यास्मरण सकेंगे।

3 स्वयं निर्मित साबुन के मूल्य का बाजार भाव से तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

4 विभिन्न प्रकार के साबुन बनाने में प्रयुक्त रसायनों का सकेंगे।

5 साबुन बनाने का प्रयोग स्वयं कर सकेंगे।

6 दैनिक जीवन में साबुन की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।

7 आय एवं व्यय का लेखा रख सकेंगे।

8 नहाने एवं धोने के साबुन में भेद स्थापित कर सकेंगे।

9 साबुन बनाने की प्रक्रिया में होने वाले रासायनिक परिवर्तनों का समझ सकेंगे।

10 साबुन बनाते समय बरती जाने वाली सावधानियां को बता सकेंगे

(2) आवश्यक सामग्री

(अ) उपकरण—प्लास्टिक की बाल्टी लोहे की कड़ाही, लकड़ी का डंडा लोहे का तार, साँचे, प्लास्टिक का टब, लकड़ी का तख्ता।

(ब) आवश्यक रसायन—तेल (तिल एवं नारियल), कास्टिक पोटाश कास्टिक सोडा, जिंक ऑक्साइड सुगंधि, पानी आदि।

(3) परिस्थिति का निर्माण

अध्यापक कक्षा में निम्न प्रश्न कर परिस्थितियों का निर्माण करेगा—

(1) मनुष्य को साफ रहना क्यों आवश्यक है ?

(2) शरीर की सफाई के लिए हम किन किन वस्तुओं का उपयोग करते हैं ?

(3) गंदे कपड़ों को साफ करने के लिए हम किस वस्तु का उपयोग करते हैं ?

(4) यदि अचानक साबुन बाजार से गायब हो जाये तो क्या करेंगे ?

अध्यापक कथन—बाजार में मिलने वाला साबुन महंगा होता है

क्योंकि उसमें कच्चे माल के मूल्य के अलावा, मजदूरी तथा व्यापारियों का मुनाफा भी सम्मिलित है।

(5) यदि हम घर पर साबुन बनाए तो क्या यह महगा पड़ेगा ?
(अध्यापक स्वय कार्य करने के महत्त्व एव साबुन की दनिक जीवन में उपयोगिता का वर्णन कर छात्रों को साबुन बनाने के लिए तत्पर करता है।)

(4) प्रोजेक्ट चुनना

अध्यापक—दनिक जीवन में स्वच्छता के महत्त्व को देखते हुए आप किस वस्तु को बनाना सीखेंगे।

एक छात्र—नहाने के साबुन को बनाना।

दूसरा छात्र—कपड़े धोने के साबुन को बनाना।

तीसरा छात्र—सर्फ बनाना।

अध्यापक—बहुत अच्छा, आज हम साबुन एव सर्फ बनाने की विधिया स्वय करके सीखेंगे।

(5) कार्यक्रम बनाना एव कार्य का निर्णय

अध्यापक—सुविधा की दृष्टि से हम नहाने तथा कपड़े धोने के साबुन को बनाना एव सर्फ बनाने का कार्य तीन अलग-अलग समूहों मे करवायेंगे। इससे सभी छात्र कार्य करने में मदद कर सकेंगे।

(अध्यापक छात्रों की रुचि अनुसार कक्षा को तीन छोटे छोटे समूहों में विभक्त करता है।)

अध्यापक—तीनों दलों में से कौनसा दल कपड़े धोने का साबुन बनायेगा।

दल सख्या-1—हमारा दल कपड़े धोने का साबुन बनाना चाहता है।

(अध्यापक इसी प्रकार दल की रुचि अनुसार दल सख्या-2 को नहाने का साबुन बनाना तथा दल सख्या-3 को सर्फ बनाने का कार्य सौंपता है) अध्यापक तीनों समूह को पुस्तकालय जाने को कहता है तथा निम्न पुस्तकों का अध्ययन कर साबुन/सर्फ बनाने की विधि, आवश्यक सामग्री तथा बरती जाने वाली सावधानियों को लिखने को कहता है।

(छात्र पुस्तक एव अन्य उपलब्ध सामग्री से साबुन बनाने की विधि का अध्ययन करते हैं, आवश्यक बिन्दुओं को अपनी डायरी में लिखते हैं तथा आपस में विचार विमर्श करते हैं। दो कालांश के बाद अध्यापक तीनों समूहों को अलग-अलग बिठाकर कार्यक्रम को अन्तिम रूप प्रदान करता है।)

समूह सख्या-1 से बातचीत करते हुए—

अध्यापक—समूह सख्या-1 का उद्देश्य क्या है ?

छात्र—कपड़े धोने का साबुन बनाना।

अध्यापक—कपड़े धोने का साबुन बनाने के लिए कौन-कौनसे उपकरण आवश्यक हैं?

छात्र—बाल्टी, कड़ाही, लकड़ी का डंडा, लोहे का तार, लकड़ी का तख्ता।

अध्यापक—यदि लोहे की बाल्टी लें तो क्या हानि होगी?

छात्र—यह कास्टिक सोडे से क्रिया कर खराब हो जायेगी।

अध्यापक—साबुन बनाने के लिए उपकरण कौन इकट्ठे करेगा?

(दो छात्र हाथ ऊपर करते हैं, अध्यापक दल नायक से इन छात्रों का यह कार्य करने का दायित्व सौंपने को कहता है।)

अध्यापक—साबुन बनाने के लिए सर्वप्रथम क्या कार्य करते हैं?

छात्र—प्लास्टिक की बाल्टी में कास्टिक सोडा लेकर पानी मिलाते हैं।

अध्यापक—कास्टिक सोडा को हाथ से छूने पर क्या होगा?

छात्र—हाथ जल जायेगा।

अध्यापक—इन दोनों के मिश्रण को किससे चलाना चाहिए?

छात्र—डंडे से चलाना चाहिए।

अध्यापक—इस मिश्रण को कितने समय पड़ा रहने देना चाहिए?

छात्र—बारह घंटे तक।

(अध्यापक दो छात्रों को इस मिश्रण को तैयार करने का कार्य सौंपता है।)

अध्यापक—साबुन बनाने हेतु कास्टिक सोडा के जलीय विलयन में क्या डाला जाता है?

छात्र—तेल डाला जाता है।

अध्यापक—तेल डालते समय क्या सावधानी रखनी चाहिए?

छात्र—तेल धीरे डालना चाहिए।

दूसरा छात्र—तेल डालते समय मिश्रण को धीरे धीरे हिलाना चाहिए।

अध्यापक—जब घोल गाढ़ा हो जाय तो क्या करना चाहिए?

छात्र—इसे कुछ समय तक बड़े साँचे में पड़ा रहने देना चाहिए तथा फिर सूखने पर तार से टुकड़ों में काट देना चाहिए।

(अध्यापक—तीन छात्रों को उपरोक्त कार्य सौंपता है।)

अध्यापक—साबुन को यदि हम विद्यालय में अन्य छात्रों को बेचना चाहें तो इसे कौन करेगा?

(दो छात्र तैयार होते हैं अध्यापक इन्हें यह कार्य सौंपता है)

अध्यापक—साबुन के मूल्य निर्धारण हेतु क्या करेंगे?

छात्र—साबुन के बनाने में आय व्यय का हिसाब लगायेंगे।

दूसरा छात्र—लागत मूल्य पर दस प्रतिशत लाभ कमाने हेतु रकम व्यय में जोड़ेंगे।

(अध्यापक एक छात्र को साबुन बनाने की प्रक्रिया का पूर्ण लेखा रखने हेतु नियुक्त करता है।)

श्याम पट्ट पर अध्यापक दल संख्या-1 के लिए निम्न निर्देश लिखता है

कपड़े धोने का साबुन

आवश्यक सामग्री

तेल	5 किलोग्राम
पानी	4 किलोग्राम
कास्टिक सोडा	1 किलोग्राम।

सावधानियाँ

(1) पानी से भरे बरतन में कास्टिक सोडा न डालें कारण कि उससे निकलने वाली ऊष्मा से घोल के छींटे शरीर को जला सकते हैं।

(2) कास्टिक सोडा को हाथ न लगावें, इससे अंगुलियों पर घाव हो जायेंगे।

(3) कास्टिक सोडा के ठण्डे घोल को ही काम में लावें।

(4) तेल का जलीय विलयन में डालते समय उसे लकड़ी के डंडे से धीरे धीरे हिलावें।

(अध्यापक उपरोक्त विधि अपनाते हुए नहाने का साबुन बनाने वाले दल संख्या-2 के उप समूह, क्रमशः उपकरण एकत्रित एवं आवश्यक रसायन एकत्रित करने वाले समूह, कास्टिक सोडा का जलीय विलयन तैयार करने वाला दल, तेल डालकर साबुन बनाने वाला समूह, आय व्यय का लेखा रखने वाला दल तथा पूर्ण रिपोर्ट लिखने हेतु छात्रों की नियुक्ति उनकी रुचि अनुसार करता है।)

श्याम पट्ट पर समूह संख्या 2 के लिए आवश्यक निर्देश निम्नानुसार लिखता है—

नहाने का साबुन—आवश्यक सामग्री

नारियल (गोले) का तेल	1 किलो ग्राम
कास्टिक पोटाश।	250 ग्राम
जिंक ऑक्साइड	20 ग्राम
सुगंधि	50 मि ग्राम
पानी	500 ग्राम

(अध्यापक नहाने के साबुन बनाने की सम्पूर्ण विधि पर चर्चा कर सावधानियों को भी नोट कराता है।)

अध्यापक तीसरे दल के कार्य को भी बात कर उनके लिए निम्न आवश्यक सूचना श्याम पट्ट पर लिखता है।

सर्फ बनाना

आवश्यक सामग्री

एसिड सलेरी	1 किलो ग्राम
कपडे धोने का सोडा	200 ग्राम
यूरिया खाद	260 ग्राम
नील	25 ग्राम

बनाने की विधि पर विचार करते हुए अलग-अलग दलों में कार्य का बंटवारा करता है।

कार्यक्रम की क्रियान्विति

तीनों दल अपना कार्य अलग-अलग कक्षा में करते हैं। अध्यापक तीनों कक्षा का समय समय पर निरीक्षण करता है। छात्र सभी कार्य को सावधानी से क्रमशः साबुन तथा सर्फ तैयार करते हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार हिदायत करता है।

कार्य का लेखा

प्रत्येक दल में एक छात्र पूरे कार्य का लेखा लिखने को नियुक्त किया जाता है। कार्य की समाप्ति पर प्रत्येक दल एक स्थान पर बैठ कर पूरी प्रक्रिया पर विचार करता है। लेखक पूरी कार्यवाही को लिख कर रिपोर्ट तैयार करता है। प्रत्येक दल अपनी रिपोर्ट पूरी कक्षा के सामने प्रस्तुत करता है जिस पर आवश्यकतानुसार विचार विमर्श भी किया जाता है।

प्रोजेक्ट का उपयोग

(1) हिन्दी के कालांश में साबुन बनाने की विधि एवं उपयोगिता पर लेख लिखवाया जाता है।

(2) गणित के कालांश में विभिन्न रसायनों का साबुन में भागात्मक अनुपात, साबुन के विक्रय में होने वाले प्रतिशत लाभ आदि निकलवाये जाते हैं।

(3) विज्ञान के कालांश में साबुन एवं सर्फ बनाने की विधियों में होने वाली रासायनिक क्रिया एवं समीकरण पर चर्चा की जाती है।

(4) सामाजिक ज्ञान के कालांश में 'स्वच्छता की आदत एवं समाज' पर विचार विमर्श होता है।

(5) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के कालांश में छात्र अन्य प्रकार के साबुन बनाने के लिए प्रेरित किए जाते हैं।

आदर्श पाठ

(समस्या समाधान विधि)

विषय भौतिक विज्ञान	प्रकरण बर्फ के गलनांक पर दाब का प्रभाव
कक्षा नवीं	समय 6 कालांश

उद्देश्य

(1) विद्यार्थी बर्फ के गलनांक के अर्थ को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे।
(2) दैनिक जीवन में गलनांक संबंधित समस्या को सफलतापूर्वक चुन सकेंगे।
(3) गलनांक संबंधित समस्याओं को स्वयं हल करने की योग्यता प्राप्त कर सकेंगे।
(4) दाब एवं पदार्थ के गलनांक में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।
(5) गलनांक एवं दाब से संबंधित आंकड़ों का संग्रह कर इनका विश्लेषण कर सकेंगे।
(6) गलनांक पर दाब के प्रभाव का उपयोग अपने दैनिक जीवन में कर सकेंगे।
(7) गलनांक से संबंधित अन्य समस्याओं के अध्ययन हेतु अपने सुझाव प्रस्तुत करेंगे।

(1) परिस्थिति का निर्माण

अध्यापक बर्फ की सिल्ली पर धातु का एक तार लटकाता है तथा इस तार के दोनों सिरों पर भारी बाट लटकाता है। तार धीरे धीरे बर्फ में प्रवेश करता है, तार के ऊपर कुछ पानी आ जाता है तथा वह बर्फ में नीचे बैठ जाता है। तार के ऊपर आया पानी पुनः बर्फ बन जाता है। तार शनैः शनैः बर्फ की सिल्ली में उतरता जाता है तथा थोड़े समय बाद यह बिना सिल्ली को दो भागों में पृथक् किए बाहर निकल जाता है।

अध्यापक इस घटना से संबंधित प्रश्न पूछता है कि ऐसा क्यों हुआ? छात्र इसे जानने को उत्सुक हो जाते हैं।

(2) समस्या को परिभाषित करना

अध्यापक, छात्रों से उक्त वैज्ञानिक प्रयोग में उन्होंने क्या अवलोकन किया, पूछता है तथा इस वैज्ञानिक घटना को अपने शब्दों में व्यक्त करने को कहता है। छात्र अनेक प्रकार से समस्या को परिभाषित कर सकते हैं उनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं—

(1) बर्फ तार से गर्मी पाकर पिघल गयी।
(2) तार बर्फ को काट सकता है।
(3) तार पर बाट क्यों लटकाया गया?
(4) तार के ऊपर पहिले बर्फ का पानी क्यों बना तथा बाद में यह पुनः बर्फ क्यों बन गया?
(5) बर्फ के पिघलने के लिए गुप्त ऊष्मा कहाँ से आई?
(6) तार बर्फ की सिल्ली को दो भागों में काटे बिना कैसे इसमें से पार निकल गया?
(7) तार पर भार लटकाने से बर्फ शीघ्र पिघली तथा पानी तार के ऊपर आने पर भार पुनः घटने से बर्फ क्यों बन गई?

उक्त सभी सभावनाओ को छात्रो ने प्रश्नो के माध्यम से व्यक्त किया। अध्यापक ने आखरी सभावना को स्वीकार किया, कारण कि यह 'गलनाक पर दाब के प्रभाव' से निकट थी।

(3) तथ्यो का सकलन एव सम्पादन

समस्या से सबधित तथ्यो के सकलन के लिए छात्रों को समय दिया जाता है। उनको विभिन्न स्रोत के बारे में अध्यापक निर्देश देता है जहा से वे 'गलनाक पर दाब का प्रभाव' सबधित तथ्य एकत्रित करते हैं जो तथ्य प्रकरण से सबधित होते है उन्हे स्वीकार कर लिया जाता है तथा अन्य को अस्वीकार कर देता है।

(4) परिकल्पना का निर्माण

समस्या से सबधित साक्षियो को प्राप्त करने के पश्चात् इन्हे व्यवस्थित किया जाता है। छात्र को समस्या के हल हेतु परिकल्पना निर्माण करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। इनमे से कुछ निम्न प्रकार से हैं

(1) बर्फ पर गर्म तार रखने से इसे दो भाग मे बाँटे बिना तार इसमे से *निकल सकता है।*

(2) तार के तीखे होने से भी बर्फ पानी में परिवर्तित हो जाती है।

(3) यदि तार के स्थान पर धागा (कुचालक) ले तथा भार लटकायें तो यह बर्फ मे प्रवेश करेगा।

(4) तार (सुचालक) पर भार लटकाने से यह बर्फ की सिल्ली को दो भागो मे बिना बाँटे इसमे से निकल सकेगा।

(5) तार पर भार लटकाने पर भी यह बर्फ की सिल्ली का दो बराबर भागो मे बाँटे बिना इसमे से निकल सकेगा।

(5) प्रयोग एव सही परिकल्पना को चुनना

छात्र विभिन्न परिकल्पनाओ का प्रायोगिक परीक्षण करते हैं। परीक्षण के उपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि परिकल्पना सख्या 4 ही ठीक है। केवल तार जो कि ऊष्मा का चालक है, पर ही भार लटकाने पर यह बर्फ की सिल्ली को बिना दो भागो मे बाटे इसमे से आर-पार निकलता है।

(6) निष्कर्ष एव सामान्यीकरण

विद्यार्थियो ने जिस परिकल्पना का परख कर सही पाया वही उन्हे सही दिशा निर्देश दे रही है। उनका ध्यान मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओ पर केन्द्रित किया जाता है—

(1) दाब का बढना।

(2) गलनाक का कम होना।

अध्यापक स्केटिंग का उदाहरण देता है। मनुष्य के भार से उसके परों के नी बर्फ दाब बढ़ने के कारण पिघल जाती है तथा वह आसानी से फिसल

सकता है। इस प्रकार विद्यार्थी सामान्यीकरण करता है कि वफ पर दाब पड़ने से उसका गलनांक कम हो जाता है।

प्रकरण जनसंख्या-वृद्धि व आदर्श नागरिकता-समस्या-समाधान-विधि

उद्देश्य

व्यवहारगत परिवर्तन

ज्ञान

(1) छात्राएं यह प्रत्यास्मरण कर सकेंगी कि एक आदर्श नागरिक के विकास में किन गुणों का समावेश होता है।
(2) छात्राएं जनसंख्या-वृद्धि से उत्पन्न समस्यायें बता सकेंगी।
(3) छात्राएं जनसंख्या वृद्धि के परिणामों की पुनर्पहिचान कर सकेंगी।

अवबोध

(1) छात्राएं जनसंख्या वृद्धि के कारणों व परिणामों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगी।
(2) छात्राएं जनसंख्या वृद्धि के नगरीकरण की अन्योन्याश्रितता निर्धारित कर सकेंगी।
(3) छात्राएं जनसंख्या-वृद्धि के उपायों का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाल सकेंगी।

उपयोजन

(1) छात्राएं जनसंख्या-वृद्धि की समस्या से अवगत हो इससे बचने का प्रयास करेंगी।

अभिरुचि

(1) छात्राएं जनसंख्या वृद्धि की समस्या तथा आदर्श नागरिकता पर इसके प्रभावों पर विस्तृत अध्ययन करने हेतु सन्दर्भ साहित्य पढ़ सकेंगी।
(2) छात्राएं यह जानने में रुचि लेंगी कि घर की तरह विद्यालय आदर्श नागरिकता के प्रशिक्षण में कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

विधि — समस्या-समाधान विधि
सहायक सामग्री — जनसंख्या सम्बन्धी आंकड़े व आदर्श नागरिक के गुण (कर्त्तव्यों) का चार्ट।

विषय — कालांश
कक्षा — समय
स्कूल का नाम — वर्ग

प्रकरण पाठोपस्थापन। (पूर्व ज्ञान पर आधारित)

(1) (क) परिस्थिति का निर्माण (समस्यानुभूति)

प्रश्न 1 विश्व में कुल कितने महाद्वीप हैं ?
प्रश्न 2 विश्व के सात महाद्वीप कौन कौन से हैं ?

प्रश्न 3 एशिया महाद्वीप में सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश कौनसा है?

प्रश्न 4 चीन के पश्चात् दूसरा नम्बर किस देश का है?

प्रश्न 5 भारत में जनसंख्या की अधिकता के क्या कारण हैं?

पाठ्याभिसूचन

आज हम जनसंख्या-वृद्धि के कारणों व श्रेष्ठ नागरिकता पर जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभावों व इससे सुरक्षा के उपायों का अध्ययन करेंगे।

(ख) समस्या की अनुभूति (समस्या की व्याख्या)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत प्राचीन काल में सोने की चिड़िया कहलाता था किन्तु आज हम विश्व के निर्धनतम राष्ट्रों में से हैं, हमारा जीवन स्तर बहुत निम्न है, इसका मुख्य कारण हमारे राष्ट्र की निरन्तर बढ़ रही जनसंख्या है। इसके परिणामस्वरूप निर्धनता, अशिक्षा, काला-बाजारी व नैतिक मूल्यों में पतन जैसी सामाजिक समस्याओं को बल मिला है।"

(अध्यापक उपयुक्त चार्ट प्रस्तुत कर प्रश्न करेगा)।

(1) भारत को प्राचीन काल में क्या कहते थे?

(2) भारत को सोने की चिड़िया क्यों कहते थे?

(3) आज हमारी स्थिति कैसी है?

(4) निर्धनता व निम्न जीवन स्तर का मुख्य कारण क्या है?

(5) जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप और किस प्रकार की समस्याएँ पैदा हुई हैं?

(6) इन समस्याओं का नागरिकों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

(7) एक आदर्श नागरिक इन समस्याओं के समाधान में कहाँ तक सहायक हो सकता है?

(2) तथ्यों का संकलन

(अध्यापक भारत की जनसंख्या के निम्न तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत कर प्रश्न करेगा)

तथ्य (जनसंख्या सम्बन्धी) 1	1921 में 2	1971 में 3	1981 में 4
कुल जनसंख्या (करोड़ों में)	25 12	54 79	68 35
ग्रामीण जनसंख्या	88 90 प्रति	80 प्रति	78 प्रति
नगरीय जनसंख्या	11 20 प्रति	20 प्रति	22 प्रति
जनसंख्या घनत्व	91	178	221
अनुपात (प्रति हजार)	955	930	935

1	2	3	4
जन्म-दर (प्रति हजार)	48 10	41 20	36 00
मृत्यु-दर (प्रति हजार)	47 20	19 00	14 80
वृद्धि-दर (प्रतिशत)	1 00	2 2	2 1
जीवन-अपेक्षा	20 वर्ष	46 वर्ष	54 वर्ष

प्रश्न 1 1921 मे भारत की जनसख्या कितनी थी ?

प्रश्न 2 1971 मे भारत की जनसख्या कितनी थी ?

प्रश्न 3 1981 मे भारत की जनसख्या कितनी थी ?

प्रश्न 4 जनसख्या म निरन्तर क्या हो रहा है ?

प्रश्न 5 1971 की तुलना मे 1981 म जनसख्या बढी या घटी ?

प्रश्न 6 जनसख्या घनत्व मे 1921 की तुलना मे 1981 म क्या परिवतन आया है ?

प्रश्न 7 1971 के पश्चात् जन्म दर म वृद्धि कितनी रही है ?

प्रश्न 8 1971 म एक व्यक्ति की औसत आयु क्या थी ?

प्रश्न 9 1981 मे यह आयु कितनी आकी गई थी ?

प्रश्न 10 इसम निरन्तर वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव किस पर पड रहा है ?

प्रश्न 11 1971 म यह बढकर कितनी हो गई थी ?

(3) परिकल्पनाओ का निर्माण

(क) अध्यापक जनसख्या-वृद्धि के आदश नागरिक जीवन पर पडने वाले दुष्परिणामो पर परस्पर वाद विवाद करने का समय देकर उनमे समस्या के परिणामो का पता लगाने का प्रयास करने को कहेगा ।

(छात्राए सम्भवत निम्न दुष्परिणाम बता सकेंगी)

(1) निधनता
(2) बेरोजगारी
(3) अशिक्षा
(4) बीमारी
(5) कालाबाजारी
(6) अपराध
(7) व्यभिचार
(8) नागरिको का नतिक पतन
(9) आदर्श नागरिको का अभाव ।

(ख) अध्यापक छात्रो को यह भी स्पष्ट करेगा कि एक अनियन्त्रित जनसख्या-वृद्धि एक बच्चे के भविष्य मे एक आदश नागरिक बनने मे कैसे बाधक है । इस

सम्बन्ध में छात्राओं को वाद विवाद का उचित समय देकर एक बच्चे के जीवन पर जनसंख्या-वृद्धि से पड़ने वाले दुष्परिणामों को जानने का प्रयास किया जायेगा—

छात्राएं सम्भवतः निम्नलिखित दुष्परिणाम बता सकेंगी—

(1) बालक के शारीरिक विकास में बाधक

(2) बालक की मानसिक वृद्धि में बाधक

(3) बालक के समाजीकरण में बाधक

(4) बालक के नैतिक चरित्र निर्माण में बाधक

(5) बालक में स्कूल से भागने की प्रवृत्ति का विकास

(6) बाल-अपराध को प्रोत्साहन

(7) बालक के एक आदर्श नागरिक बनने में बाधक।

(ग) अध्यापक छात्राओं को यह भी स्पष्ट करेगा कि जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित भी किया जा सकता है। छात्राओं के मध्य परस्पर वाद विवाद द्वारा यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि एक आदर्श व जागरूक नागरिक जनसंख्या को नियन्त्रित करने में कहां तक सहायक हो सकता है।

(छात्राएं इस सम्बन्ध में निम्न बातें बता सकेंगी अर्थात् निम्न सुझाव दे सकेंगी)

(1) शिक्षा का प्रसार

(2) परिवार नियोजन के साधनों का प्रयोग

(3) विवाह की आयु में वृद्धि

(4) बाल विवाह विरोधी कानूनों का सख्ती से पालन

(5) नागरिकों की परिवार नियोजन के कार्यों में सक्रिय सहभागिता।

(घ) अध्यापक छात्राओं को स्पष्ट करेगा कि छोटे परिवारों में नागरिकता के श्रेष्ठ गुणों का विकास सम्भव है। छात्राओं को विषय पर वाद विवाद हेतु उचित समय दिया जाकर एक आदर्श नागरिक के प्रमुख कर्त्तव्यों या गुणों को जानने का प्रयास किया जायेगा।

(छात्राएं सम्भवतः एक आदर्श नागरिक के निम्नलिखित कर्त्तव्य बता सकेंगी)

(1) स्वयं के प्रति

(2) परिवार के प्रति

(3) ग्राम या नगर के प्रति

(4) देश के प्रति

(5) विश्व के प्रति।

(4) परिकल्पनाओं की जांच

(छात्राध्यापक बारी बारी से एक एक छात्रा का एक एक कर्त्तव्य पूछता जावेगा तथा वह उन कर्त्तव्यों को छांटकर श्यामपट्ट पर लिखता जायेगा। सम्भवतः

सभी प्रमुख कर्त्तव्य छात्रायें बतायें। छात्राध्यापक फिर इन कर्त्तव्यों को प्रत्येक छात्रा को अपनी उत्तर पुस्तिका में लिखने को कहेगा)

(5) निष्कर्ष/निराकरण

देश में बढ़ती जनसंख्या के दाब के कारण आदर्श नागरिक मूल्यों का पतन होता जा रहा है, जिससे सामाजिक समस्याओं का समाधान बहुत मुश्किल होता जा रहा है। व्यक्तियों को आदर्श नागरिक बनाने के लिए जनसंख्या-वृद्धि की समस्या को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

(6) समस्या के समाधान हेतु सुझाव

जनसंख्या वृद्धि की समस्या के समाधान हेतु छात्रायें निम्न सुझाव दे सकेंगी। आवश्यक नहीं कि सभी सही हों—

(1) विवाह बड़ी उम्र में होना
(2) बाल विवाह से छुटकारा
(3) मनोरंजन के अन्य साधन जुटाना
(4) शिक्षा का प्रसार
(5) विवाह को एक सामाजिक आवश्यकता न मानना
(6) फिल्मों के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों को स्पष्ट किया जाना
(7) विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में जनसंख्या शिक्षा का एक अनिवार्य विषय बनाया जाना आदि।

(7) मूल्यांकन

(1) एक बड़ा परिवार निम्नलिखित समस्याओं के प्रति कैसे उत्तरदायी है—
(अ) ऋण की समस्या
(ब) बाल-अपराध
(स) भूमि का बटवारा।

(2) जनसंख्या वृद्धि जल, वायु व ध्वनि प्रदूषण के लिए कहाँ तक उत्तरदायी है। इन परिस्थितियों में एक आदर्श नागरिक की क्या भूमिका हो सकती है?

(3) खाद्य वस्तुओं में अत्यधिक मिलावट के क्या कारण हैं?

(4) स्कूलों में अत्यधिक भीड़ छात्रों में अनुशासनहीनता को कैसे बढ़ावा दे रही है?

वार्षिक पाठ योजना

विषय सामाजिक अध्ययन — कक्षा 6
पाठशाला पाबू पाठशाला — समय
प्रकरण ज्वालामुखी — कालांश
विधि व्याख्यान प्रदर्शन विधि

(1) ज्ञान

(1) छात्र ज्वालामुखी बनने के कारणों का प्रत्यास्मरण कर सकेंगे।
(2) छात्र ज्वालामुखी को परिभाषित कर सकेंगे।
(3) छात्र ज्वालामुखी के उदगार से होने वाले लाभ व हानियों का कथन कर सकेंगे।

(2) अवबोध

(1) छात्र ज्वालामुखी व भूकम्प में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
(2) छात्र ज्वालामुखी के प्रभाव क्षेत्रों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
(3) छात्र ज्वालामुखी एवं भूकम्पों में सबंध स्थापित कर सकेंगे।

(3) उपयोजन

(1) छात्र ज्वालामुखी के सम्भावित परिणामों के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाल सकेंगे।
(2) छात्र ज्वालामुखी के प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।

(4) कौशल

(1) छात्र ज्वालामुखी का प्रतिरूप बना सकेंगे।
(2) ज्वालामुखी से प्रभावित देशों का अंकन कर सकेंगे।

(5) अभिरुचि/अभिवृत्ति

(1) छात्र ज्वालामुखी से निकलने वाले विभिन्न पदार्थों की जानकारी प्राप्त करने में रुचि लेंगे।
(2) छात्र ज्वालामुखी से होने वाले परिणामों को जानने में रुचि लेंगे।

(6) विशिष्ट उद्योतन सामग्री

(1) ज्वालामुखी के आन्तरिक रूप का चार्ट।
(2) ज्वालामुखी के बाहरी रूप का चार्ट।
(3) कक्षा उपयोगी समस्त सामग्री।

प्रस्तावना (कहानी द्वारा)

बच्चो मैं आपको आज एक कहानी सुनाता हूँ ध्यानपूर्वक सुनो।

जापान में फ्यूजीसान नाम का एक पर्वत है। जो वर्षों पूर्व धरती के आवरण को चीर कर समय समय पर धुआँ, राख डरावने काले काले बादलों को उड़ाता था तथा अति उष्ण लावा उगलता था। जिससे जन व धन की अपार हानि होती थी। इस भय से बचने के लिए वहां के लोगों ने इस पर्वत की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। फिर भी यह पर्वत शान्त नहीं हुआ। जब यह पर्वत उपरोक्त क्रियाएं करता था तो वहां की भूमि डोलायमान हो जाती थी। जिससे मकान गिर जाते थे। इसलिए वहां के लोग लकड़ी के मकान बना कर रहते थे। इस पर्वत को ज्वालामुखी के नाम से पुकारा जाता था।

प्र उत्तर देंगे)

(1) जापान में कौनसा पवत है ?

(2) इस पवत में से क्या निकलता रहता था ?

(3) इन पदार्थों के निकलने से जन जीवन पर क्या प्रभाव पडता था ?

(4) इस विनाश से बचने के लिए वहाँ के लोग क्या करते थे ?

(5) इस परिवतन को क्या कहा जाता था ?

(6) ज्वालामुखी विस्फोट होने के क्या कारण हैं ?

ाठ्याभिसूचन

आज हम भौगभिक शक्ति ज्वालामुखी का अध्ययन करेंगे ।

शिक्षण बिन्दु	उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
ज्वालामुखी बनने के कारण	ज्ञान	(1) हमारी पृथ्वी का धरातल कसा है ?
		(2) इन भू-आकारो का निर्माण किस शक्ति के कारण होता है ?
		(3) पृथ्वी के ऊपरी धरातल का तापक्रम कैसा है ?
1) भूगभ मे ऊष्मा का होना		(4) भीतरी भाग का तापक्रम कसा रहता है ?
		(5) भूगभ मे कौन-कौन से पदाथ पाये जाते हैं ?
		(6) तरल पदार्थ कौन कौन से पाये जाते हैं ?
		(7) ऊष्मा पाकर ये पदार्थ किस रूप मे परिवर्तित हो जायेंगे ?
(2) ऊष्मा पाकर पदार्थों का परिवर्तित होना	अवबोध	(8) पानी को गम करने पर उसमे से क्या निकलती है ?
		(9) यदि इस पानी के बतन पर ढक्कन लगा देंगे तो क्या क्रिया होगी ?
		(10) ऐसे ही पृथ्वी के अन्दर अधिक ऊष्मा होने से क्या क्रिया होगी?
(3) तरल पदार्थों का कमजोर धरातल से बाहर आना		(11) पृथ्वी के इस प्रकार हिलने को क्या कहते हैं ?
		(12) अधिक भूकम्प आने से पृथ्वी का धरातल कसा हो जाएगा ?
		(13) इन दरारो मे से गम गैसें व लावा निकलने को क्या कहते हैं ?

शिक्षण बिन्दु	उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
2 ज्वालामुखी की परिभाषा		अध्यापिका कथन—ज्वालामुखी पृथ्वी की उस गहरी दरार को कहते हैं। जिसके द्वारा पृथ्वी के भीतरी भाग में से उष्ण लावा, शिलाखण्ड धरातल पर आते हैं।
3 ज्वालामुखी के प्रयत्नों का ज्ञान चार्ट द्वारा		(14) भूगर्भ से ये पदार्थ कहाँ से निकलते हैं (15) ज्वालामुखी किस प्रकार फटते हैं? (चार्ट दिखाकर)
(1) क्रेटर		(16) यह किसका चित्र है? (17) इसका ऊपरी भाग किस आकृति का हुआ है? (18) इस भाग को क्या कहते हैं? (19) क्रेटर से जुड़े इस भाग को क्या कहते हैं
(2) ग्रीवा		(20) ग्रीवा मे क्या भरा रहता है?
(3) लावा		(21) लावा किसे कहते हैं?
चार्ट द्वारा—		अध्यापिका कथन—चट्टानो के तरल रूप को लावा कहते हैं। यह लावा बाहर निकल कर धीरे धीरे ठण्डा होकर जमता रहता है जो शंकु के आकार का बनता है।
4 ज्वालामुखी विस्फोट व निकलने वाले पदार्थ		(ज्वालामुखी के बाहरी रूप का चार्ट दिखाकर) (22) ज्वालामुखी के क्रेटर से बाहर क्या निकल रहा है? (23) ये धुआ व गैसें किस भाग में होकर बाहर आते हैं? (24) इन धुए व आग के साथ कौन-कौन से पदार्थ बाहर निकलेंगे? (25) इस प्रकार विस्फोट होने पर कैसी आवाज होगी?
5 ज्वालामुखी के प्रकार		(26) बाहर का वातावरण कैसा हो जायगा? (27) लावा जमने से कैसा आकार बन जाता है? (28) ज्वालामुखी कितने प्रकार के होते हैं?

नक्षण बिन्दु	उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन-प्रक्रिया
(1) मक्रिय ज्वालामुखी (2) शात ज्वालामुखी		अध्यापिका कथन—ज्वालामुखी दो प्रकार के होते है— (1) सक्रिय ज्वालामुखी (2) शान्त ज्वाला मुखी। जिनम अभी भी कुछ सक्रियता पायी जाती है व जागृत या सक्रिय ज्वालामुखी कहलाते है। जिन क्रेटरो मे सब कुछ शात हो गया है वे शात ज्वालामुखी होते है।
हानिया (1) जनजीवन को खतरा (2) पदावार का नष्ट होना		(29) जब ज्वालामुखी का विस्फोट जोर स होगा तो पृथ्वी पर क्या प्रक्रिया होगी ? (30) क्रेटर से कौन कौन स पदाथ बाहर निकलेंगे ? (31) इन पदार्थों के निकलने से आस पास के लोगा पर क्या प्रभाव पडेगा ? (32) पैदावार पर क्या प्रभाव पडेगा ? (33) ज्वालामुखी फटने से कौनसा गाढा पदाथ निकलता है ? (34) लावा किस पदाथ से बनता है ?
7 लाभ (1) उपजाऊ मिट्टी का बनना (2) अमूल्य खनिजो का निकलना (3) झीलो का बनना		(35) यह बाहर आने पर किस ओर बहता है ? (36) लावे के मिश्रण से मिट्टी कसी बन जाएगी ? (37) अमूल्य खनिज पदाथ कौन कौन से है ? (38) ये पदाथ बाहर कब आयेंगे ? (39) झीलें किसे कहते है ? (40) ये झीलें कैसे बनती है ? अध्यापिका कथन—शान्त ज्वालामुखी के क्रेटरो से झीलो का निर्माण हो जाता है। इन झीलोके पानी मे कई रोगा म लाभ पहुंचता है।

श्याम-पट्ट सार

(1) ज्वालामुखी बनने के कारण

(1) भूगभ म ऊष्मा का होना।

(2) पदार्थों का परिवर्तित होना।

(3) तरल पदार्थों का कमजोर धरातल को तोडकर बाहर निकलना।

(2) ज्वालामुखी के प्रकार

(1) सक्रिय ज्वालामुखी

(2) शान्त ज्वालामुखी।

(3) ज्वालामुखी से लाभ

(1) उपजाऊ मिट्टी बनना।

(2) अमूल्य खनिजों का निकलना।

(3) झीलों का बनना।

पुनरावृत्ति

(1) ज्वालामुखी किसे कहते हैं ?

(2) ज्वालामुखी भूगर्भ की किस शक्ति के कारण बनते हैं ?

(3) ज्वालामुखी कितने प्रकार के होते हैं ?

(4) शान्त ज्वालामुखी किसे कहते हैं ?

(5) ज्वालामुखी विस्फोट होने पर कौन-कौन से पदार्थ निकलते हैं ?

(6) लावा किसे कहते हैं ?

(7) ज्वालामुखी से क्या-क्या लाभ हैं ?

मूल्यांकन

(1) ज्वालामुखी किसे कहते हैं ?

(अ) पर्वतों में दरार आने को

(ब) भूकम्पों को

(स) भूगर्भ में से लावा, गैसें व खनिजों के निकलने को।

(द) चट्टानों के सरकने को।

कक्षा नवम 'ब'	समय 35 मिनिट
विद्यालय रा उ मा महारानी	दिनांक
प्रकरण प्रदूषण	पाठ का स्वरूप प्रश्नोत्तर युक्त व्याख्यान विधि

इस पाठ के उद्देश्य एवं व्यवहारगत परिवर्तन

पाठ के उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन
ज्ञान	छात्राएं पर्यावरण की परिभाषा का प्रत्यास्मरण कर सकेंगी।
	छात्राएं प्रदूषण का अर्थ पुनः प्रस्तुत कर सकेंगी।
	छात्राएं प्रदूषण के कारण पुनः प्रस्तुत कर सकेंगी।
	छात्राएं प्रदूषण के प्रभावों का प्रत्यास्मरण कर सकेंगी।
अवबोधन	छात्राएं प्रदूषण की अपने शब्दों में व्याख्या कर सकेंगी।
	छात्राएं पर्यावरण व प्रदूषण में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगी।

(पा)ठ के उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन
(प्र)योजन	छात्राए विभिन्न प्रदूषणो म अन्तर कर सकेंगी। छात्राए प्रदूषण के कारण व प्रभावो मे सम्बन्ध बता सकेंगी। छात्राए प्रदूषण सम्बन्धी प्राप्त ज्ञान का उपयोग नई परिस्थितियो मे कर सकेंगी। छात्राए प्रदूषण को दूर करने के उपाय कर सकेंगी। छात्राए प्रदूषण सम्बन्धी प्राप्त तथ्यो क आधार पर भविष्य म होने वाली समस्याओ क बारे म बता सकेंगी।
कौशल	छात्राए विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, उनके कारणो व निवारणो को रेखाचित्र द्वारा निरूपित करने का कौशल प्राप्त करेंगी। छात्राए अध्यापिका द्वारा किये गये प्रयोग को रेखाचित्र द्वारा निरूपित कर सकेंगी।
अभिरुचि	छात्राए अपने आस-पास होने वाले विभिन्न प्रदूषणो के कारणो को जानने मे रुचि लेंगी। छात्राए प्रदूषण सम्बन्धी लेख पढने म रुचि लेंगी। छात्राए वातावरण को शुद्ध व स्वच्छ रखने के लिए पेड पौधे लगाने मे रुचि लेंगी।
मानवीय मूल्य	मनुष्य का जीवन प्रकृति पर ही निर्भर करता है। प्रकृति निस्वार्थ भाव से सभी जीव जगत् को जीवन यापन का आधार देती है लेकिन आज हम अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए अपनी जीवनदात्री को ही नष्ट करने पर तुले है। हमे प्रकृति को दूषित या नष्ट नही करना चाहिए व प्रकृति के समान ही निस्वार्थ भाव से तेरे मेरे का भेद भुलाकर प्रेम भाव से रहना चाहिए।
विशिष्ट उद्योतन सामग्री	लैम्प व चिमनी, प्रदूषण से सम्बन्धित स्वय निर्मित चार्ट, जल प्रदूषण से सम्बन्धित माडल व मूल्यांकन चार्ट (स्वय निर्मित) रगीन चाक आदि।

पाठोस्थापन

प्रश्न—हमे जीवित रहने के लिये किन किन चीजो की आवश्यकता होती है ?

उत्तर—(जल, वायु, भोजन)

प्रश्न—इन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हम किस पर निर्भर करते है ?

उत्तर—(प्रकृति पर)

प्रश्न—यदि जल, वायु भोजन में कुछ हानिकारक पदार्थ मिल जाएं, विषाक्त पदार्थ को हम ग्रहण कर लें तो क्या होगा ?

उत्तर—(बीमार हो जाएंगे)

प्रश्न—हानिकारक पदार्थों के वातावरण में मिलने की क्रिया को कहते हैं ?

उत्तर—(प्रदूषण)

पाठ-अभिसूचन

आज हम प्रदूषण के बारे में अध्ययन करेंगे।

पाठ का विकास

प्रदर्शन युक्त व्याख्यान विधि द्वारा पाठ का विकास किया जायगा।

शिक्षण बिन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
पर्यावरण 1 विभिन्न घटक		प्रश्न—अपने आस पास स्थित वस्तुओं के नाम बताइए उत्तर—फर्नीचर, मकान, यातायात के साधन पेड़-पौधे जीव जन्तु वायु।
2 परिभाषा वह सभी भौतिक, रसायनिक व जविक वातावरण जो हमारे चारों ओर स्थित है, पर्यावरण कहलाता है।		प्रश्न—हमारे आस पास अनेक प्रकार की ध्वनियां हैं। यह ध्वनि हमारे कान तक कैसे पहुँचती है ? उत्तर—तरंगों द्वारा। प्रश्न—हमारे प्रकाश स्रोत कौन कौन से है ? उत्तर—(सूर्य चाद-तारे, बिजली) प्रश्न—प्रकाश हम तक किसकी सहायता से पहुँचता है ? उत्तर—तरंगों द्वारा। प्रश्न—ब्रह्माण्ड मे सूर्य, चाद के अलावा और क्या-क्या है ? उत्तर—ग्रह, उपग्रह उल्का आदि।
प्रदूषण		अध्यापिका का कथन—वह सभी भौतिक, रसायनिक व जविक वातावरण जो हमारे चारों ओर स्थित है पर्यावरण कहलाता है। इसमें अवांछनीय पदार्थों के मिलने को प्रदूषण कहते हैं।
(1) वायु प्रदूषण वायु मण्डल के दूषित होने को वायु प्रदूषण कहते हैं।		प्रश्न—जन्तु श्वसन में कौनसी गैस लेते हैं ? उत्तर—O गैस। प्रश्न—कौनसी गैस छोड़ते हैं ? उत्तर—CO_2 गैस।

ण बिन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
		प्रश्न—पादप प्रकाश सश्लेषण म कौनसी गैस लेते हैं ?
		उत्तर—CO_2 गैस ।
		प्रश्न—कौनसी गैस छोडते ह ?
		उत्तर—O_2 गस ।
		अध्यापिका का कथन—इस प्रकार प्रकृति म CO_2 O_2 का सतुलन रहता है ।
) कारण		प्रश्न—किसी चीज के जलने पर क्या निकलता है ?
		उत्तर—धुआ ।
		(अध्यापिका चाट दिखाते हुए प्रश्न पूछेगी)
कल कारखाने		प्रश्न—धुआ कहा कहा से निकलता है ?
		उत्तर—कल कारखाना, यातायात के साधना व घरा स ।
घरेलू साधन		प्रश्न—घरा मे ई धन के रूप म किसका उपयोग करते है ?
		उत्तर—स्टोव, गस, लकडी, कोयला ।
यातायात के साधन		प्रश्न—लकडी, कोयला जलाने पर क्या निकलता है ?
		उत्तर—धुआ ।
		प्रश्न—इन सभी साधना से निकला हुआ धुआ कहा जा रहा है ?
		उत्तर—वातावरण म ।
		प्रश्न—इससे CO_2 O_2 सतुलन पर क्या प्रभाव हाता ह ?
		उत्तर—CO_2 बढ जायेगी व O_2 कम हो जायेगी ।
अम्ल वर्षा		प्रश्न—भारत की जनसख्या का तुलनात्मक चाट प्रस्तुत किया जाकर 1931 व 1981 की जनसख्या मे क्या अन्तर है ?
		उत्तर—जनसख्या वृद्धि ।
जनसख्या-वृद्धि		प्रश्न—अधिक जनसख्या से क्या नुकसान ह ?
		उत्तर—पानी, भोजन व स्थान अधिक चाहिए ।
		प्रश्न—साफ भूमि कम होगी तो पास के जगल का क्या करेंगे ?
		उत्तर—जगल काटेंगे ।
		प्रश्न—इतने पेड-पौधे काटने म हम क्या हानि ह ?
		उत्तर—CO_2 बढेगी व O_2 कम हा जायेगी ।
		प्रश्न—निरतर CO_2 बढने से वायुमण्डल पर क्या प्रभाव होगा ?
		उत्तर—दूषित हो जायेगा ।
		प्रश्न—वायुमण्डल के दूषित होने का क्या कहते हैं ?
		उत्तर—वायु प्रदूषण ।

शिक्षण विन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
(ब) प्रभाव		प्र.—हमारे देश में भोपाल गैस दुर्घटना हुई थी क्या हुआ था ?
		उत्तर—फैक्ट्री से गैस रिसाव हुआ।
1 फेफड़ों के रोग		प्रश्न—गैस रिसाव का जन जीवन पर क्या असर हुआ ?
2 दमा, खासी		उत्तर—लोग मर गये, बीमार हो गये।
3 कैंसर		प्रश्न—इसी प्रकार से हमारे वातावरण में भी [illegible] फैल रही है इससे हमें क्या-क्या हानियाँ है ?
4 आँखों के रोग		
5 ऐतिहासिक इमारतों का खराब होना		उत्तर—फेफड़ों के रोग, दमा, कैंसर, जुकाम, [illegible] रोग।
6 श्वास के रोग		अध्यापिका कथन—इन सभी साधनों से निकला [illegible] बाहर के रूप में ऊपर जम जाता है व फिर वर्षा के रूप में गिरता है। [illegible] सम्भावनाएँ हैं।
		प्रश्न—भारत की कौनसी ऐतिहासिक इमारत वायु [illegible] से खराब हो रही है।
		उत्तर—ताजमहल, लालकिला।
		प्रश्न—यदि इसी प्रकार निरन्तर वायु दूषित होती रही तो क्या होगा ?
		उत्तर—हमारे जीवन को खतरा है।
(स) निराकरण		प्रश्न—आप वायु प्रदूषण को दूर कर सकते हैं ?
1 फिल्टर या अवशोषक का उपयोग		उत्तर—बिना धुएं के चूल्हे का उपयोग व [illegible] लगाकर।
		(अध्यापिका चिमनी में धुएं का फिल्टर [illegible] दिखाकर विद्यार्थी से प्रश्न पूछेगी)
2 वृक्षारोपण		प्रश्न—फिल्टर [illegible] पर [illegible] क्या है ?
3 [illegible]		उत्तर—[illegible]।
		प्रश्न—[illegible] प्रकार के फिल्टर [illegible]
4 बिना धुएं के साधन		[illegible] क्या होगा ?
		उत्तर—[illegible] पर जम [illegible]।
		अध्यापिका कथन—[illegible]

शिक्षण बिन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
(2) जल-प्रदूषण		प्रश्न—हमारे पानी के स्रोत कौन-कौन से हैं ? उत्तर—समुद्र, नदी, वर्षा, नहर आदि ।
(अ) कारण		(अध्यापिका माडल दिखाकर प्रश्न पूछेगी) प्रश्न—पहाड़ों से निकलने वाली नदी का पानी कैसा होगा ? उत्तर—साफ, स्वच्छ । प्रश्न—शहर में आकर नदी का पानी कैसा हो गया है ? उत्तर—गंदा (दूषित) हो रहा है । प्रश्न—शहर में जीवनोपयोगी साधन कौन कौन से हैं ? उत्तर—कारखाने, मकान, यातायात के साधन, भौतिक समाधन आदि । (अध्यापिका चार्ट व माडल का इंगित करके प्रश्न पूछेगी)
1 कल-कारखानों के अपशिष्ट		प्रश्न—कारखानों से निकला कूड़ा-करकट कहाँ जा रहा है ?
2 शहर का पानी		उत्तर—नदी में।
3 नदी घाट पर स्नान		प्रश्न—हम घरों में पानी से क्या-क्या काम करते हैं ? उत्तर—कपड़े धोना, नहाना, बर्तन सफाई ।
4 हड्डियां व शवों का नदी में प्रवाह		प्रश्न—सभी घरों का गंदा पानी अंत में कहाँ जा रहा है ? उत्तर—नदी में ।
5 कीटनाशक दवाइयां		प्रश्न—पौधों को कीड़ों से बचाने के लिए क्या करते हैं ? उत्तर—कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव । अध्यापिका कथन—ये सभी कीटनाशक दवाइयाँ वर्षा द्वारा नदियों में मिल जाती हैं व जल को दूषित करती हैं । प्रश्न—अभी कुछ समय पहले किस नदी को साफ करने का अभियान चल रहा था ? उत्तर—गंगा नदी को। प्रश्न—गंगा नदी मैली कैसे हो गयी ? उत्तर—नहाने, कपड़े धोने से साबुन के रसायन व रोग के कीटाणु नदी में चले जाते हैं । प्रश्न—इसके अलावा और किन किन कारणों से जल दूषित हो रहा है ? उत्तर—जन्तुओं के शव, हड्डियां राख विसर्जन से ।

शिक्षण बिन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
(च) प्रभाव		अध्यापिका कथन—इन सब प्रदूषक-पदार्थों में अनेक विषैले रसायनिक पदार्थ होते हैं, पारा कैडमियम सीजीयम लोहा आदि। यह जीवों के लिए हानिकारक होते हैं व पानी में O_2 की मात्रा कम करते हैं।
1 O_2 की कमी		प्रश्न—इस प्रदूषित जल को पीने से जलीय जन्तुओं व पौधों पर क्या प्रभाव होता है?
2 विभिन्न रोग		उत्तर—O_2 की कमी से पौधे व जन्तु मर जायेंगे।
3 पौधों व जन्तुओं का नष्ट होना		प्रश्न—जब इन जन्तुओं को हम खायेंगे तो क्या होगा?
		उत्तर—हम बीमार हो जायेंगे।
		प्रश्न—खेतों में सिंचाई के लिए पानी कहाँ से आता है?
		उत्तर—वर्षा से नदियों से तालाबों से, नहरों से।
		प्रश्न—जब यह प्रदूषित पानी खेतों में जायेगा तो क्या होगा?
		उत्तर—प्रदूषक पदार्थ पौधों में चले जायेंगे।
		प्रश्न—इन पौधों को खाने से प्रदूषित जल को प्रयोग में हम कौन कौन सी बीमारियाँ हो सकती हैं?
		उत्तर—[illegible] अधापन पीलिया [illegible] की बीमारियाँ।
		(अध्यापिका उपर्युक्त द्वारा [illegible]

शिक्षण बिन्दु	शिक्षक उद्देश्य	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया
3 जीवाणुनाशक व आक्सीकारक पदार्थों का छिडकाव		प्रश्न—नदी पर यह कौनसा यन्त्र लगा ह ? उत्तर—जल सयन्त्र। प्रश्न—जल सयन्त्र जल प्रदूषण का कैस दूर करता ह ? उत्तर—हानिकारक पदार्थों व गदगी को अवशोषित कर लेता ह।
4 जलकुम्भी व कवक का उपयोग		अध्यापिका का कथन—जल म जीवाणुनाशक व ऑक्सीकारक पदार्थों का छिडकाव करना चाहिए। आजकल जलकुम्भी व कवक का उपयोग किया जा रहा है यह जल म घुलित लवणों का अवशोषण कर लेती है।
(3) ध्वनि प्रदूषण		प्रश्न—आप कही बठें हैं और ऊपर स कोई हवाई जहाज गुजर तो आप की क्या प्रतिक्रिया होगी ?
(अ) कारण		उत्तर—सब जहाज की ओर देखते है।
1 यातायात के साधन		प्रश्न—जब कभी ट्रेन में बठे हो व पास से कोई दूसरी ट्रेन गुजरे तो हम क्या करते हैं ?
2 मनोरजन के साधन		उत्तर—कान मे ऊगली डाल लेते ह।
3 पटाखे		प्रश्न—हमारा ध्यान इन चीजो का आर क्यो जाता है ?
4 सचार साधन		उत्तर—बहुत तेज ध्वनि हाती है। (अध्यापिका चाट दिखाकर प्रश्न पूछेगी) प्रश्न—तेज ध्वनि और किन किन साधना स उत्पन्न होती है ? उत्तर—रेलगाडी यातायात क साधन व हान, लाउडस्पीकर, रिकाड, रडियो, पटाखा आदि स।
(ब) प्रभाव		प्रश्न—यदि किसी आदमी को तेज ध्वनि वाले स्थान पर रखे तो क्या हागा ? उत्तर—मानसिक तनाव।
1 मानसिक तनाव		प्रश्न—यदि उस लगातार उसी स्थान पर रहना पडे ता क्या होगा ? उत्तर—पागल हो जायेगा।
2 बहरापन		प्रश्न—तेज ध्वनि से काना पर क्या असर हाता ह ? उत्तर—तेज (ऊँचा) सुनन लगते ह कान के पर्दे फट जाते हैं।

शिक्षण बिन्दु	शिक्षण उद्देश्य	अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया
3 हृदय रोग		प्रश्न—जब कभी बिजली जोर से गरजती है या कोई बहुत भयानक आवाज होती है, तो हम पर क्या असर होता है ?
4 रक्तचाप		उत्तर—हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। अध्यापिका का कथन—तेज ध्वनि से कभी-कभी हृदय रोगियों की मृत्यु तक हो जाती है। रक्तचाप बढ़ जाता है।
		प्रश्न—आज दिन प्रति दिन ध्वनि स्रोत बढ़ते जा रहे हैं यदि इसी प्रकार ध्वनि प्रदूषण बढ़ता रहा तो क्या होगा ?
		उत्तर—मानसिक तनाव बहुत बढ़ जायेगा हृदय रोग बढ़ जायेंगे।
(स) निराकरण		प्रश्न—ध्वनि प्रदूषण को कैसे रोक सकते हैं ?
1 वाहनों के हार्न तीखे न हों		उत्तर—वाहनों के हार्न तीखे न हों, अधिक आबादी वाले स्थानों से वाहनों का गुजरना रोकना चाहिए। लाउडस्पीकर की तेज आवाज पर पाबन्दी होनी चाहिए।
2 आबादी वाले स्थानों से वाहनों को न गुजरने दें		प्रश्न—आप ध्वनि प्रदूषण रोकने में कैसे सहयोग कर सकते हैं ?
		उत्तर—अपने रेडियो, टीवी की ध्वनि धीरे रख कर। अध्यापिका का कथन—शोर विभाजक पर्दों द्वारा भी ध्वनि प्रदूषण को दूर कर सकते हैं।
		प्रश्न—अगर किसी स्थान पर निरंतर तीनों प्रकार का प्रदूषण बढ़ता है तो जन जीवन पर क्या प्रभाव होगा ?
		उत्तर—जीवन अस्त व्यस्त हो जायगा। अध्यापिका का कथन—अतः हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखना चाहिए।

पुनरावृत्ति

(1) पर्यावरण किसे कहते हैं ?
(2) वायु प्रदूषण के क्या-क्या कारण हैं ?
(3) अधिक पेड़-पौधे लगाने से क्या लाभ हैं ?
(4) जल प्रदूषण [illegible] क्या [illegible] हैं ?

(5) ध्वनि प्रदूषण से क्या-क्या हानियां है ?

(6) ध्वनि प्रदूषण दूर करने में आप क्या सहयोग दे सकते हैं ?

मूल्यांकन

अध्यापिका कक्षा में मूल्यांकन चार्ट द्वारा करवायेगी। इसमें एक चार्ट में एक मोर की आकृति बनाई गयी है जिसके पत्तों के साचों में, छात्राओं द्वारा प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों के अनुसार, उनके कारण व निवारण को लगवाया जायेगा।

श्याम-पट्ट-कार्य

पर्यावरण — वे सभी भौतिक, रासायनिक व जैविक वातावरण जो हमारे चारों ओर स्थित है, पर्यावरण कहलाता है।

प्रदूषण — — — हमारे पर्यावरण में होने वाले ऐसे अवांछनीय परिवर्तन जिससे पर्यावरण को हानि पहुंचे, प्रदूषण कहलाते हैं।

प्रदूषण के प्रकार

(1) वायु प्रदूषण वायुमण्डल के दूषित होने को वायु प्रदूषण कहते हैं।

(अ) कारण—कारखाना, घरेलू ईंधन, यातायात के साधनों, अम्ल वर्षा व जनसंख्या-वृद्धि।

(ब) प्रभाव—फेफड़ों के रोग, श्वास व आंखों के रोग, कैंसर, दमा।

(स) उपाय—बिना धुएं के साधन, पेड़ पौधे लगाना, अवक्षेपक का उपयोग।

(2) जल प्रदूषण—जल के दूषित होने को जल प्रदूषण कहते हैं।

(अ) कारण कारखानों व शहर के अपशिष्ट, कीटनाशक दवाइयां, नदी घाट पर स्नान, कपड़े धोना, शव बहाना।

(ब) प्रभाव हैजा, पेचिश, टायफायड, अंधापन, पीलिया।

(स) उपाय सीवेरेज ट्रीटमेंट प्लांट, गंदा पानी शहर के बाहर, जीवाणु नाशक व ऑक्सीकारक पदार्थों का छिड़काव, जलकुम्भी व कवक।

(3) ध्वनि प्रदूषण—अवांछनीय ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

(अ) कारण लाउडस्पीकर, यातायात के साधन, संचार साधन आकाशीय युद्ध।

(ब) प्रभाव मानसिक तनाव, पागलपन, रक्तचाप, हृदय रोग, बहरापन।

(स) उपाय संचार साधनों की आवाज धीरे, हार्न तीखे न हों, आबादी वाले स्थानों से ट्रैफिक गुजरने की पाबंदी।

गृहकार्य

प्रदूषण की परिभाषा दो। यह कितने प्रकार का होता है ? संक्षेप में वर्णन करो।

दिनाक	13–3–89
विद्यालय	राजकीय महारानी उच्चतर माध्यमिक बालिका विद्यालय
कक्षा	नवम्
विषय	संस्कृत (पद्य पाठ)
पाठ्य प्रकरण	यदा युगे (गीता के दो श्लोक)
पाठ का स्वरूप	पद्य पाठ
विधि	खण्डान्वय (सामान्य विधि)

उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहार, परिवर्तन
ज्ञानम्	
1 भाषातत्त्वाना ज्ञानम्	(1) छात्रा शब्दाना प्रत्यभिज्ञान कर्तु शक्ष्यति।
2 विषयवस्तुन ज्ञानम्	(2) छात्रा शब्दाना प्रत्यास्मरण कर्तु शक्ष्यन्ति।
	(3) छात्रा पद्यभाव गृहीष्यति।
	(4) छात्रा प्रकरणस्य भावस्य सम्यक् ज्ञान कर्तु शक्ष्यन्ति।
अवबोधनम्/अर्थग्रहणम्	
1 श्रुत्वा अर्थग्रहणम्	(1) छात्रा श्लोकाना धैर्यमनोयोगपूर्वक श्रोतु शक्ष्यन्ति।
2 पठित्वा अर्थग्रहणम्	(2) छात्रा शुद्धपठनस्य प्रेरणा गृहीष्यन्ति।
	(3) छात्रा प्रधाना सौन्दर्यस्यानुभूति कर्तु शक्ष्यन्ति।
	(4) छात्रा श्रुत्वा पठित्वा च श्लोकानामर्थग्रहण करिष्यन्ति।
उपयोजनम्	
उक्त्वा लिखित्वा च अभिव्यक्तिकरणस्य योग्यता	(1) छात्रा पद्यानि सुस्पष्टवाण्या वक्तु शक्ष्यति।
	(2) छात्रा पद्यानि यतिगतिविरामचिन्हादिसहित पठितु लेखितु च शक्ष्यति।
	(3) छात्रा श्लोकाना रसास्वादन कृत्वा स्वशब्देषु अभिव्यक्तिकरणस्य योग्यता प्राप्स्यति।
कौशलम्	
श्रुत्वा उक्त्वा पठित्वा च भावपूर्णवाचनम्	(1) छात्रा पद्यानाम् यतिगतिविरामचिह्नसहित बलाघातपूर्वक च शुद्धोच्चारण करिष्यन्ति।
	(2) छात्रा श्लोकेषु शब्दयोजनाधारेण दृश्यचित्राणामुद्भावना करिष्यन्ति।

उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन
अभिरुचि	
काव्यसाहित्य प्रति रुचिजागरणम्	(1) छात्राणाम् काव्यसाहित्य प्रति रुचि भविष्यति । (2) छात्रा काव्यसाहित्यस्यायोजने भाग लप्स्यन्ति । (3) छात्रा पुस्तकालये वाचनालये च सस्कृत काव्य पठिष्यन्ति ।
सद्वृत्ति	
उदात्तभावना–विकास	(1) छात्रा भावनाया परिष्कार कृत्वा उदात्त भावनाया विकास कर्तु शक्ष्यन्ति । (2) नीतिश्लोकाना सग्रह करिष्यन्ति । (3) सद्वृत्तीना विकास करिष्यन्ति ।
विशिष्टोद्देश्यम्	
भगवत अवतारस्य कारणम्	छात्रा अस्य तथ्यस्य परिचयम् प्राप्स्यन्ति यत् धर्मस्य-अवनतिसमये भगवान्, सज्जनाना रक्षार्थ अवतार धारयति । गीताया अमरसन्देशेन छात्रासु उदात्तभावनाया विकास भविष्यति ।
विशिष्टोद्योतन सामग्री	(1) श्रीकृष्णस्य अर्जुन गीताया उपदेशस्य चित्रम् । (2) श्रीकृष्णस्य सज्जनाना रक्षाया चित्रम् । (3) श्रीकृष्णस्य धर्म सस्थापनस्य चित्रम् ।

पाठोपस्थापन

जब-जब होहिं धर्म कै हानी
बाढहिं असुर महा अभिमानी ।
तब-तब धरि प्रभु मनुज शरीरा
हरहिं दयानिधि सज्जन पीरा ॥

(1) भगवान् भूतले कदा अवतरति ?
(2) भगवान् केन कारणेन अवतरति ?
(3) इत्थ वर्णन सस्कृतस्य कस्मिन् ग्रन्थे उपलब्धम् ?

पाठ्याभिसूचनम्

श्रीकृष्णेन महाभारतयुद्धे अर्जुनाय य उपदेश दत्त, स उपदेश "गीता" इति नाम्ना प्रसिद्ध । अथ वयम् गीताया द्वौ श्लोकौ पठिष्याम ।

पाठस्य विकास —खण्डान्वय पद्धत्या ।

अध्यापन बिन्दु	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम्	अध्ययनाध्यापनस्य प्रक्रिया
युगे युग मभवामि		युगे युगे मभवामि — युग युग में उत्पन्न होता।
ग्लानिभवति अभ्युत्थानम- धमस्य तदात्मानम् धमसस्थाप नार्थाय	ज्ञानम— छात्रा सधियुक्तपदानाम प्रत्यास्मरणं कर्तुं शक्यन्ति उप— छात्रा सधिविच्छेदस्य योग्यता प्राप्स्यन्ति	सधिविच्छेद — ग्लानिभवति—ग्लानि + भवति अभ्युत्थानमधमस्य— अभ्युत्थानम् + अधमस्य तदात्मानम्—तदा आत्मान धमसस्थापनार्थाय— धमसस्थापन + अर्थाय
	रुचि — छात्राणाम् काव्यसाहित्य प्रति रुचि भविष्यति	सस्वरवाचनम्— छात्रा यतिगतिलयानुसार हावरोहानुसार बलाघातपूर्वक सस्वरवाचन करिष्यन्ति।
	ज्ञानम्— छात्रा श्लोकयो भावस्य प्रत्यास्मरण कतु शक्यन्ति। अव— छात्रा उक्त ... कर्ि	खण्डान्वय — (चित्र दर्शयित्वा) 1 अध्यापिका चित्र दर्श खण्डान्वयविधिना श्लोक अन्वय करिष्यति— प्रश्न 1 एतौ श्लोकौ क कथ उत्तर—भगवान् श्रीकृष्ण प्रश्न 2 स य प्रति कथयति? उत्तर—स अजु न प्रति कथयति प्रश्न 3 भगवान् श्रीकृष्ण केन नाम्ना सम्बोधय भारत नाम्ना सम्बोध य सृजति?

उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन
अभिरुचि	
काव्यसाहित्य प्रति रुचिजागरणम्	(1) छात्राणाम् काव्यसाहित्ये प्रति रुचि भविष्यति ।
	(2) छात्रा काव्यसाहित्यस्यायोजने भाग लप्स्यन्ति ।
	(3) छात्रा पुस्तकालय वाचनालये च सस्कृत काव्य पठिष्यन्ति ।
सद्वृत्ति	
उदात्तभावना-विकास	(1) छात्रा भावनाया परिष्कार कृत्वा उदात्त भावनाया विकास कर्तु शक्ष्यन्ति ।
	(2) नीतिश्लोकाना सग्रह करिष्यन्ति ।
	(3) सद्वृत्तीना विकास करिष्यन्ति ।
विशिष्टोद्देश्यम	
भगवत अवतारस्य कारणम्	छात्रा अस्य तथ्यस्य परिचयम् प्राप्स्यन्ति यत् धर्मस्य-अवनतिसमये भगवान्, सज्जनाना रक्षार्थे अवतार धारयति । गीताया अमरसन्देशेन छात्रासु उदात्तभावनाया विकास भविष्यति ।
विशिष्टोद्योतन सामग्री	(1) श्रीकृष्णस्य अर्जुन गीताया उपदेशस्य चित्रम् ।
	(2) श्रीकृष्णस्य सज्जनाना रक्षाया चित्रम् ।
	(3) श्रीकृष्णस्य धर्म सस्थापनस्य चित्रम् ।

पाठोपस्थापन

जब जब होहिं धर्म कै हानी
बाढहिं असुर महा अभिमानी ।
तब-तब धरि प्रभु मनुज शरीरा
हरहिं दयानिधि सज्जन पीरा ।।

(1) भगवान् भूतले कदा अवतरति ?
(2) भगवान् केन कारणेन अवतरति ?
(3) इत्थ वर्णन सस्कृतस्य कस्मिन् ग्रन्थे उपलब्धम् ?

पाठ्याभिसूचनम्

श्रीकृष्णेन महाभारतयुद्धे अर्जुनाय य उपदेश दत्त, स उपदेश "गीता" इति नाम्ना प्रसिद्ध । अथ वयम् गीताया द्वौ श्लोकौ पठिष्याम ।
पाठस्य विकास —खण्डान्वय पद्धत्या ।

दिनांक	13–3–89
विद्यालय	राजकीय महारानी उच्चतर माध्यमिक बालिका विद्यालय
कक्षा	नवम्
विषय	संस्कृत (पद्य पाठ)
पाठ्य प्रकरण	यदा यदा युगे (गीता के दो श्लोक)
पाठ का स्वरूप	पद्य पाठ
विधि	खण्डान्वय (सामान्य विधि)

उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहार, परिवर्तन
ज्ञानम्	
1 भाषातत्त्वानां ज्ञानम्	(1) छात्रा शब्दानां प्रत्यभिज्ञानं कर्तुं शक्ष्यन्ति ।
2 विषयवस्तुनः ज्ञानम्	(2) छात्रा शब्दानां प्रत्यास्मरणं कर्तुं शक्ष्यन्ति ।
	(3) छात्रा पद्यभावं गृहीष्यन्ति ।
	(4) छात्रा प्रकरणस्य भावस्य सम्यक् ज्ञानं कर्तुं शक्ष्यन्ति ।
अवबोधनम्/अर्थग्रहणम्	
1 श्रुत्वा अर्थग्रहणम्	(1) छात्रा श्लोकानां धैर्यमनोयोगपूर्वकं श्रोतुं शक्ष्यन्ति ।
2 पठित्वा अर्थग्रहणम्	(2) छात्रा शुद्धपठनस्य प्रेरणां गृहीष्यन्ति ।
	(3) छात्रा प्रधाना सौन्दर्यस्यानुभूतिं कर्तुं शक्ष्यन्ति ।
	(4) छात्रा श्रुत्वा पठित्वा च श्लोकानामर्थग्रहणं करिष्यन्ति ।
उपयोजनम्	
उक्त्वा लिखित्वा च अभिव्यक्तिकरणस्य योग्यता	(1) छात्रा पद्यानि सुश्रव्यवाण्या वक्तुं शक्ष्यन्ति ।
	(2) छात्रा पद्यानि यतिगतिविरामचिन्हादिसहितं पठितुं लेखितुं च शक्ष्यन्ति ।
	(3) छात्रा श्लोकानां रसास्वादनं कृत्वा स्वशब्देषु अभिव्यक्तिकरणस्य योग्यतां प्राप्स्यन्ति ।
कौशलम्	
श्रुत्वा, उक्त्वा पठित्वा च भावपूर्णवाचनम्	(1) छात्रा पद्यानाम् यतिगतिविरामचिह्नसहितं बलाघातपूर्वकं च शुद्धोच्चारणं करिष्यन्ति ।
	(2) छात्रा श्लोकेषु शब्दयोजनाधारेण दृश्यचित्राणामुद्भावनां करिष्यन्ति ।

उद्देश्य	अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन
अभिरुचि	
काव्यसाहित्य प्रति रुचिजागरणम्	(1) छात्राणाम् काव्यसाहित्यं प्रति रुचि भविष्यति । (2) छात्रा काव्यसाहित्यस्यायोजने भाग लप्स्यन्ति । (3) छात्रा पुस्तकालये वाचनालये च संस्कृत काव्य पठिष्यन्ति ।
सद्वृत्ति	
उदात्तभावना-विकास	(1) छात्रा भावनाया परिष्कार कृत्वा उदात्त भावनाया विकास कर्तु शक्ष्यन्ति । (2) नीतिश्लोकाना सग्रह करिष्यन्ति । (3) सद्वृत्तीना विकास करिष्यन्ति ।
विशिष्टोद्देश्यम	
भगवत अवतारस्य कारणम्	छात्रा अस्य तथ्यस्य परिचयम् प्राप्स्यन्ति यत् धर्मस्य-अवनतिसमये भगवान्, सज्जनाना रक्षार्थ अवतार धारयति । गीताया अमरसन्देशेन छात्रासु उदात्तभावनाया विकास भविष्यति ।
विशिष्टोद्योतन सामग्री	(1) श्रीकृष्णस्य अर्जुन गीताया उपदेशस्य चित्रम । (2) श्रीकृष्णस्य सज्जनाना रक्षाया चित्रम् । (3) श्रीकृष्णस्य धर्म सस्थापनस्य चित्रम् ।

पाठोपस्थापन

जब-जब होहिं धर्म कै हानी
बाढहिं असुर महा अभिमानी ।
तब-तब धरि प्रभु मनुज शरीरा
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

(1) भगवान् भूतले कदा अवतरति ?
(2) भगवान् केन कारणेन अवतरति ?
(3) इत्य वर्णन संस्कृतस्य कस्मिन् ग्रन्थे उपलब्धम् ?

पाठ्याभिसूचनम्-

श्रीकृष्णेन महाभारतयुद्धे अर्जुनाय य उपदेश दत्त, स उपदेश "गीता" इति नाम्ना प्रसिद्ध । अथ वयम् गीताया द्वौ श्लोकौ पठिष्याम ।

पाठस्य विकास —खण्डान्वय पद्धत्या ।

पाठ्यवस्तु

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अध्यापन बिन्दव	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम्	अध्ययनाध्यापनस्य प्रक्रिया
यदा युगे युगे	ज्ञानम्— 1 छात्रा शब्दानां प्रत्यभिज्ञानं कर्तुं शक्ष्यन्ति । 2 छात्रा श्लोकस्य पदानां प्रत्यास्मरणं कर्तुं शक्ष्यन्ति ।	प्रथमादर्शवाचनम्— अध्यापिका वातावरणसर्जनार्थं श्लोकस्य यतिगतिलयानुसारं आदर्शवाचनं करिष्यति । छात्रा मनोयोगपूर्वकं श्रोष्यन्ति । तथा पुस्तकानि अनुद्घाटितानि भविष्यन्ति । द्वितीयादर्शवाचनम्— अध्यापिका यतिगतिलयानुसारं श्लोकस्य द्वितीयादर्शवाचनं करिष्यति । छात्रा पृष्ठं उद्घाट्य श्रवणं करिष्यन्ति ।
	अवबोधः— 1 छात्रा श्लोकयोः धैर्यं मनोयोगपूर्वकं श्रोतुं शक्ष्यन्ति । 2 छात्रा श्रुत्वा अर्थग्रहणं करिष्यन्ति ।	अनुवाचनम्— अध्यापिका प्रथमं श्लोकस्य खण्डानुसारं वाचनं करिष्यति, छात्रा तस्य अनुवाचनं करिष्यन्ति । यथा— यदा । यदा । हि । धर्मस्य । ग्लानिः । भवति । भारत । अभ्युत्थानम् । अधर्मस्य । तदा । आत्मानं । सृजामि । अहम् । परित्राणाय । साधूनां । विनाशाय । च । दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय । सम्भवामि । युगे । युगे ।
	अव— छात्रा शुद्धपठनस्य प्रेरणां गृहीष्यन्ति ।	अनुकरणवाचनम्— कतिपयछात्रा यतिगतिलयानुसारं शुद्धोच्चारणपूर्वकं वाचनं करिष्यन्ति । अध्यापिका अन्य छात्राणां सहाय्येन उच्चारणसर्वविधदोषान् दूरी करिष्यति ।
	उपयोजनम्— छात्रा श्लोकान् शुद्धस्वरवाण्या वक्तुं शक्ष्यन्ति ।	

अध्यापन विन्दव	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम्	अध्ययनाध्यापनस्य प्रक्रिया	
	कौशलम्—छात्रा पद्यानि यतिगतिविराम चिन्ह सहित शुद्धोच्चारण करिष्यन्ति ।	बोधप्रश्ना — (चित्र माध्यमेन)	
	अव— छात्रा श्रुत्वा, उक्त्वा च केन्द्रीयभावग्रहण करिष्यन्ति ।	(1) अनयो श्लोकयो वक्ता क ? (2) भगवान् कृष्ण क प्रति कथयति ? (3) भगवान् कृष्ण अर्जुन किं उपदिशति ? (4) भगवान् कदा अवतरति ? काठिन्य-निवारणम् अध्यापिका छात्राणा काठिन्यनिवारणम् फलकपट्टे पूर्वलिखितशब्दाना साहाय्येन अर्थकथनविधिना करिष्यति ।	
	ज्ञानम्— 1 छात्रा भापातत्त्वाना प्रत्यास्मरण कर्तु शक्ष्यन्ति । 2 छात्रा कठिनशब्दाना प्रत्यभिज्ञान कर्तु शक्ष्यन्ति ।	शब्द	अर्थ
यदा यदा		यदा यदा	जब, जब
ग्लानि		ग्लानि	अवनति, ह्रास
भारत		भारत	अर्जुन
अभ्युत्थानम्		अभ्युत्थानम्	उन्नति
अधमस्य		अधमस्य	अधम की
तदा		तदा	तब
आत्मान		आत्मानम्	स्वय को
सृजामि		सृजामि	उत्पन्न करता हूँ (रचना करता हूँ)
परित्राणाय		परित्राणाय	रक्षा के लिए
साधूना		साधूना	साधुओ की
विनाशाय		विनाशाय	विनाश के लिए
दुष्कृताम्		दुष्कृताम्	पापियो के
धर्मसंस्थापनार्थाय		धर्मसंस्थापनार्थाय	धर्म की स्थापना के लिए

अध्यापन बिन्दव	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम्	अध्ययनाध्यापन्य प्रक्रिया	
युगे युगे सभवामि		युगे युगे सभवामि	युग युग मे उत्पन्न होता हूँ
ग्लानिभवति अभ्युत्थानम धमस्य तदात्मानम् धमसस्थाप नार्थाय	ज्ञानम्— छात्रा सधियुक्तपदाना प्रत्यास्मरण कर्तुं शक्ष्यन्ति	सधिविच्छेद — ग्लानिभवति—ग्लानि + भवति अभ्युत्थानमधमस्य— अभ्युत्थाम् + अधमस्य। तदात्मानम्—तदा आत्मानम्। धमसस्थापनार्थाय— धमसस्थापन + अर्थाय।	
	उप— छात्रा सधिविच्छेदस्य योग्यता प्राप्स्यन्ति	सस्वरवाचनम्— छात्रा यतिगतिलयानुसार आरोहावरोहानुसार बलाघातपूर्वक च सस्वरवाचन करिष्यन्ति।	
	रुचि — छात्राणाम् काव्यसाहित्य प्रति रुचि भविष्यति	खण्डान्वय — (चित्र दर्शयित्वा) 1 अध्यापिका चित्र दर्शयित्वा खण्डान्वयविधिना श्लोकयो अन्वय करिष्यति—	
	ज्ञानम्— छात्रा श्लोकयो भावस्य प्रत्यास्मरण कर्तु शक्ष्यन्ति।	प्रश्न 1 एतौ श्लोकौ क कथयति? उत्तर–भगवान् श्रीकृष्ण कथयति। प्रश्न 2 स क प्रति कथयति? उत्तर–स अर्जुन प्रति कथयति।	
	अव— छात्रा उत्तरा श्रुत्वा च अर्थग्रहण करिष्यन्ति।	प्रश्न 3 भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन, केन नाम्ना सम्बोधयति? उत्तर–भारत नाम्ना सम्बोधयति। प्रश्न 4 भगवान् क सृजति? उत्तर–आत्मानम् सृजति।	

अध्यापन बिन्दव	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम्	अध्ययनाध्यापनस्य प्रक्रिया
		प्रश्न 5 कस्य ग्लानि भवति ? उत्तर–धर्मस्य ग्लानि भवति । प्रश्न 6 अधर्मस्य किं भवति ? उत्तर–अधर्मस्य अभ्युत्थान भवति । प्रश्न 7 भगवान् आत्मान कदा सृजति ? उत्तर–यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि भवति, अधर्मस्य च अभ्युत्थान भवति । प्रश्न 8 केषाम् परित्राणाय भगवान् सम्भवति ? उत्तर–साधूना परित्राणाय भगवान् सभवति । प्रश्न 9 कस्य सस्थापनार्थाय स अवतरति ? उत्तर–धर्मसस्थापनार्थाय स अवतरति । प्रश्न 10 अवतारस्य अन्यत् किं प्रयोजनम् ? उत्तर–दुष्कृताम् विनाश ।
	शब्दयोजनानुसार दृश्यचित्राणामुद्भावना करिष्यन्ति ।	अध्यापिकाकथनम्— अनयो श्लोकयो सृजामि सभवामि च द्वे एव क्रिये ध्यातव्ये । एकस्याथ रचना, द्वितीयस्याथ आविर्भाव । भगवान् स्वय मेव रचना रचयिता च । यदा स पृथिव्या पापाना विनाशाय, सज्जनाना रक्षार्थं धर्मसस्थापनाय च मानवशरीर धारयति, स स्वरचना करोति । यदा स विश्व रचयति, स रचयिता भवति ।
		भावविश्लेषणात्मक प्रश्ना
	उप— छात्रा श्लोकयो	1 भगवान् अवतार कदा धारयति ?

अध्यापन विन्दव	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम्	अध्ययनाध्यापनस्य प्रक्रिया
	ग्माग्यादत्र पृ या स्वशब्देषु अभिव्यक्ति गरणस्य योग्यता प्राप्स्यति ।	2 स अवतार किमर्थ धारयति ? 3 अवतारे स कस्य रचनां करोति ? 4 'युग युग सम्भवामि' वाक्येन कि तात्पर्यम् ? 5 अनयो श्लोकयो यूय का शिक्षा अलभध्वम् ?
		तुलना
	अथ— तुलना कर्तु शक्ष्यन्ति	उडियाभाषाया प्रसिद्धकविना लक्ष्मीकान्त महापात्रेण । अपि युगावतार शीर्षकान्तरगते इत्य भाव व्यक्तम् । दुष्कृति विनाश साधुजन परित्राणकारण धरारे अवतरि महाप्राण स्वगर वारता घेनि अहे देवदूत । पुण्यभूमि भारत को करि अच्छापूत । धर्मसंस्थापन हेतु युग युगे जहिं अवतरि ऐसी शक्ति अस्वागढ़ महिं । —युगावतार अत्र कविता-स्पष्टोक्त यत् युगे युगे पृथिव्या भार निवारयितु धर्मस्थापनाय च ईश्वरस्य अवतार भवति ।
	ज्ञानम् विषयवस्तुन ज्ञानम्	पुनरावृत्तिप्रश्ना — 1 यदा धर्मस्य ग्लानिर्भवति तदा किं भवति ? 2 यदा अधर्मस्य अभ्युत्थान भवति, तदा किं भवति ? 3 तदा भगवान क सृजति ? 4 स केषा रक्षा करोति ? 5 स केषा विनाश करोति ?
		पुन वाचनम्— अध्यापिका पुन द्वयो श्लोकयो आदर्श वाचन करिष्यति ।

अध्यापन बिन्दव	उद्देश्य व्यवहारगत परिवर्तनम	अध्ययनाध्यापनस्य प्रक्रिया
		मूल्यांकन प्रश्ना शुद्ध उत्तर देहि । 1 श्रीभगवा कृष्ण अर्जुन नाम्ना सम्बो धयति— (अ) पार्थिव (ब) भारत (स) अर्जुन । 2 भगवान् आत्मान कदा सृजति ? (अ) यदा यदा हि धमस्य ग्लानि भवति । (ब) यदा धमस्य अभ्युत्थान भवति । (स) कस्मिन्नपित समये । 3 सृजाम्यहम् शब्दस्य सधिविच्छेद भवनि— (अ) सृजामि + हम् (ब) सृजति + अहम् (स) सृजामि + अहम् । 4 तदात्मान शब्दस्य सधिविच्छेद भवति— (अ) तद् + आत्मान (ब) तदा + आत्मान (स) तद् + मानम् । 5 यदा यदा हि ग्लानि भवति— (अ) धमस्य (ब) दुष्कृताम् (स) अधमस्य । 6 परित्राणाय विनाशाय च दुष्कृताम्— (अ) असाधूनाम् (ब) दुष्कृताम् (स) साधूनाम् । 7 सभवामि (अ) युग युगे (ब) दिन दिन (स) मासे मास । गृहकायम्— पठित श्लोकया हिन्दी भापाया भावाथम् लिखत । पुन सस्वरवाचनम्— अध्यापिका छात्राश्च सस्वरवाचन करि ष्यन्ति ।

साराश

प्रायोजना विधि के प्रमुख जन्मदाता प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री किलपेट्रिक है। परन्तु इसके विकास में अन्य शिक्षाशास्त्री जैसे—रूसो, जान ड्यूवी, फ्रांसिस डब्ल्यू पाकर, थार्नडाइक आदि का भी योगदान रहा है। इस विधि को प्रभावशाली एव जीवनोपयोगी विधि माना गया है।

इसमें बालको से स्वाभाविक परिस्थितियो मे रचनात्मक काय कराये जाते है जिसके परिणामस्वरूप वे न केवल ज्ञानार्जन ही करते हैं अपितु सामाजिक जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं। योजना के अन्तगत कई शैक्षिक काय करने होते है जिन्हे बालक अपनी-अपनी रुचि एव क्षमतानुसार करते है। इस प्रकार बालक को समस्यामूलक काय उसकी रुचि के अनुसार करने का अवसर मिलता है। इसे वे स्वाभाविक परिस्थिति मे पूण करते है। प्रायोजना विधि म क्रियाशीलता, यथार्थता, उपयोगिता, स्वतन्त्रता आदि होने के कारण शक्षिक दृष्टि स महत्त्व पूण है।

प्रायोजनाएँ कई प्रकार की होती है। इसके प्रमुख चरण क्रमश परिस्थिति का निमाण, योजना का चुनाव, योजना बनाना योजना का क्रियान्वयन, मूल्याकन एव योजना काय का लेखा रखना है। यह सब चरण कक्षा के छात्र मिलकर पूरा करते हैं।

प्रायोजना विधि म विभिन्न विषयो म सह-सम्बन्ध स्थापित किया जाकर एक ही प्रकरण से अनेक विषयो का अध्ययन किया जा सकता है। परन्तु प्रायोजना विधि की कुछ सीमाए जैसे विषयवस्तु की क्रमबद्धता का अभाव, समय विभाग चक्र की अवहेलना आदि है। फिर भी यह एक उपयोगी विधि है।

बालक मे खोज करने की प्रवत्ति होती है। वह सदव नवीन तथ्यो, घटनाओ आदि के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। ह्यूरिस्टिक विधि मे बालक की इस प्रवत्ति का उपयोग उसके द्वारा ज्ञान की खोज करने म किया जाता है। इस विधि म शिक्षक बालक के लिये खोजपूण वातावरण का निमाण करता है तथा बालक स्वय समस्या को सुलझाकर ज्ञानार्जन करता है। इस प्रकार बालक को अन्वेषक की स्थिति मे रखकर उससे ज्ञान की खोज कराई जाती है।

प्रत्येक विषय या प्रकरण पर अन्वेषण द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाना सभव नही है अत एसे प्रकरण जिस पर बालक द्वारा खोज की जानी सभव हो तथा सम्बन्धित उपकरण आदि आसानी से उपलब्ध हो, को ही इस विधि के लिये चुना जाता है। बालको के सम्मुख समस्या उत्पन्न कर उन्हे तथ्यो की खोज करने के लिय अवसर प्रदान किया जाता है। बालक तथ्य या सूचनाओ को एकत्रित कर परिकल्पना का निर्माण करते हैं तथा फिर उनका सत्यापन करते हैं। इसे आधार बनाकर बालक निष्कर्ष निकालता है।

अन्वेषण विधि अधिगम के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों जैसे खेल का सिद्धान्त, वैज्ञानिक चिन्तन जागृत करना, क्रियात्मकता का सिद्धान्त, स्वतन्त्रता का सिद्धान्त आदि पर आधारित है। इसकी अनेक विशेषताएं हैं। इसमें बालक को स्वयं कार्य करने का गुण विकसित होता है। यह समस्या सुलझाने का प्रशिक्षण प्रदान करती है। इस प्रकार यह विधि सृजनात्मकता के विकास तथा वैज्ञानिक चिन्तन जागृत करने की एक उत्तम विधि है।

परिवीक्षित अध्ययन विधि के प्रणेता डेजी मारविन हैं। इसमें परम्परागत शिक्षण विधि के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया है। परिवीक्षित अध्ययन ऐसी विधि है जिसमें बालक स्वाध्याय करते हैं तथा अध्यापक समय-समय पर उनका मार्गदर्शन करते हैं। विद्यार्थी भी अपनी कठिनाइयों का निवारण शिक्षक की सहायता से तुरन्त कर लेते हैं।

परिवीक्षित अध्ययन विधि वैयक्तिक विभिन्नता तथा क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित है। इससे कुशाग्र बुद्धि बालक तथा मन्द बुद्धि बालक दोनों ही लाभान्वित होते हैं क्योंकि इन दोनों प्रकार के बालकों को लाभ मिलता है। इस विधि के आधारभूत तथ्य 'वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुरूप शिक्षण, ज्ञानार्जन में स्वावलम्बन तथा शिक्षार्थी की सक्रियता है।

परिवीक्षित अध्ययन विधि के सफल क्रियान्वयन हेतु अध्यापक को विभिन्न सोपानों का उपयोग करना चाहिये। ये हैं—प्रस्तावना, अध्ययन हेतु निर्देश, अध्यापक का परिवीक्षण, श्याम पट्ट का विकास, अध्यापक को इस विधि हेतु प्रकरण निश्चित करते समय विद्यार्थी की मानसिक क्षमता, समय सीमा आदि का ध्यान रखना चाहिये।

इस विधि की कुछ सीमायें हैं जैसे—यह विधि प्रकरण को पूरा पढ़ने में अधिक समय लेती है, इसकी सफलता हेतु सन्दर्भ ग्रन्थ, पाठ्य पुस्तकें, उपकरण, नक्शे, चार्ट आदि की आवश्यकता होती है जिनके अभाव में यह विधि सफल नहीं होगी। कुछ विषय जैसे गणित आदि को इसके द्वारा पढ़ाये जाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। □

अध्याय 8

गृह-कार्य
(Home Work)

गृह काम का साधारणत अर्थ है ऐसा शैक्षिक कार्य जो कि अध्यापक द्वारा शिक्षणोपरान्त विद्यार्थी का घर पर किये जाने हेतु दिया जावे। शैक्षिक दृष्टि से इस प्रकार के कार्य का दिया जाना महत्त्वपूर्ण है। बालक विषय वस्तु को कक्षा में समझता है, समझने के उपरान्त वह उससे सम्बन्धित समस्या या प्रश्नों का यदि स्वयं हल कर लेता है तो यह माना जायेगा कि शिक्षार्थी ने उस प्रकरण को पूर्ण रूप से समझ लिया है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए बालक को कुछ प्रश्न या समस्या हल करने को शिक्षक द्वारा दी जाती है।

वर्तमान में इसका स्वरूप कुछ बिगड़े रूप में है। अध्यापक गृह कार्य इतना अधिक दे देते हैं कि बालक को इसे पूरा करने में मानसिक थकान उत्पन्न हो जाती है, विषय में अरुचि उत्पन्न हो जाती है और वह उसे कठिन समझने लगता है। ऐसा भी देखने में आया है कि शिक्षक प्रश्नों के उत्तर भी कक्षा में बता देते हैं जिससे कि उन्हें गृह-कार्य की जाँच करते समय अधिक मेहनत नहीं करनी पड़े। परन्तु इसका कुप्रभाव यह होता है कि बालक में मौलिक चिंतन करने का गुण विकसित नहीं होता तथा वह समस्या-समाधान करने की क्षमता को अपने में विकसित नहीं कर पाता। इस प्रकार गृह कार्य दिये जाने के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है।

वास्तविकता में गृह कार्य शिक्षण की प्रमुख व्यावहारिक युक्तियों में से एक है। कक्षा में सीखे गये अनुभवों को संगठित कर समस्या सुलझाने की प्रवृत्तियों के विकास के लिये यह एक आवश्यक उपागम है। इसके अतिरिक्त गृह-कार्य के माध्यम से बालक को सीखे हुए नियमों इत्यादि के अभ्यास करने का एक अवसर मिलता है। अभ्यास से उसके विषयवस्तु के अधिगम में स्थायित्व आता है। गृह-कार्य विषय वस्तु के पुनः संगठन की दृष्टि से भी आवश्यक है। कक्षागत शिक्षण में अध्यापन ज्ञान का उपयोग सीमित परिस्थितियों में कर पाते हैं। गृह-कार्य में उस उस ज्ञान का विभिन्न परिस्थितियों में उपयोग करने के लिए कहा जाता है। इसके लिए वह चिन्तन करता है तथा इससे उत्पन्न विचारों को अपने शब्दों में व्यक्त करता है। परिणामस्वरूप वह सीखे हुए अनुभवों का संगठित करता है। इस प्रकार गृह-कार्य एक उपयोगी तथा प्रभावशाली शिक्षण उपागम है।

वर्तमान में गृह-कार्य की स्थिति पर एक शोध कार्य राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया। यह सर्वे महाराष्ट्र तथा हरियाणा राज्यों के माध्यमिक छात्रों पर किया गया। ऐसा ही एक सर्वे ब्रेनन ने ब्रिटेन में अध्ययनरत 400 सैकण्डरी स्कूल के विद्यार्थियों पर किया।

तुलनात्मक अध्ययन[1] से यह प्रकट होता है कि भारतीय छात्र औसतन चार घण्टे प्रतिदिन अर्थात् 28 घण्टे प्रति सप्ताह गृह-कार्य पूरा करने में व्यतीत करते हैं जबकि ब्रिटेन में यह औसत 20 घण्टे है। भारत में गृह कार्य ऐसे प्रकरणों पर भी दे दिया जाता है जिसे अध्यापक कक्षा में नहीं पढ़ाता जबकि ब्रिटेन में गृह-कार्य केवल पढ़ाये गये प्रकरण पर ही दिया जाता है। भारत में विद्यार्थियों की गृह-कार्य के प्रति अभिवृत्ति निराशावादी पाई गई। 82.6 प्रतिशत छात्र छात्राएं यह सोचते हैं कि गृह-कार्य उनके खेल के समय को निगल रहा है जबकि ब्रिटेन में 70 प्रतिशत छात्र इसे उत्साहपूर्वक एकान्त तथा शान्तिपूर्ण वातावरण में सम्पन्न करते हैं।

उपरोक्त शोध, गृह-कार्य की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालता है। वर्तमान में दिये जाने वाला गृह-कार्य परम्परागत दृष्टि से इतना अधिक दे दिया जाता है कि बालक इसमें रुचि खो बैठता है तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बजाय यह उनके लिए एक कठिन कार्य बन जाता है।

गृह-कार्य का अर्थ एवं परिभाषा

गृह-कार्य विद्यार्थी द्वारा किसी पढ़ाये हुए प्रकरण पर दिये गये कार्य को अपने घर में एकान्त एवं शान्त वातावरण में बैठकर पूर्ण किये जाने से है। गृह-कार्य का आधुनिक सम्प्रत्यय उसे सोद्देश्य सृजनात्मकता, स्वाध्याय, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास के गुणों के विकास हेतु दिये गये उस कार्य को कहते हैं जिसे वह शिक्षणोपरान्त पूरा करता है। इससे उसके द्वारा कक्षा शिक्षण में अर्जित ज्ञान की सम्पुष्टि भी होती है। गृह-कार्य से सम्बन्धित कुछ विचार निम्नलिखित हैं—

पी० सी० रेन (P C Wren)

जब विद्यालय में प्रत्येक (विद्यार्थी) अपने रुचि के विषयों में गृह-कार्य करता हो, चाहे वे विषय नैतिक या मानसिक हों, जब वह दैनिक निर्देशन व परामर्श द्वारा अपनी अभिरुचियों व अभिवृत्तियों के विकास में संलग्न रहता है, तो गृह-कार्य एक अच्छी बात है।[2]

लारेन फाक्स (Lorene Fox)

गृह-कार्य विद्यार्थियों के लिये चुनौतीपूर्ण होना चाहिये।

1. शिविरा, मार्च 83, पृष्ठ संख्या 471
2. Wren P. C., Indian School Organisation, P. 61

गैद एवं शर्मा[1] (Gaind and Sharma)

शैक्षिक एवं नैतिक दृष्टि से गृह कार्य का बहुत महत्व है।

गृह कार्य अध्ययन का व्यवस्थित तथा एक मूल्यवान साधन है। यह कक्षागत शिक्षण का पूरक है तथा शिक्षण के समय सिखाये गये नियमों इत्यादि के पुनअभ्यास का एक अवसर प्रदान करता है। कुछ विषय ऐसे हैं जिनका पाठ्यक्रम विस्तृत है। एक अध्यापक इनके सभी पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों को कक्षा में हल नहीं करा सकता। ऐसी स्थिति में वह इसका कुछ अंश गृह-कार्य के रूप में भी पूरा करा सकता है।

गृह कार्य अभिभावक एवं अध्यापक के मध्य सेतु का कार्य भी करता है। जागरूक माता पिता या अभिभावक अपने बालक के गृह कार्य में भी रुचि लेते हैं। वे अध्यापक द्वारा समझाई गई पाठ्य वस्तु की प्रभावशीलता का अनुमान बालक द्वारा किये गये गृह-कार्य से कर लेते हैं। यदि बालक स्वयं गृह कार्य सफलतापूर्वक कर लेता है तो यह माना जाता है कि वह प्रकरण उसकी समझ में भली प्रकार आ गया है।

गृह-कार्य का महत्व
(Importance of Home Work)

(1) विषय-वस्तु में रुचि उत्पन्न करना

एक कहावत है कि सीखने की इच्छा उत्पन्न करना शिक्षण विधियों का एक मात्र उद्देश्य है। जब बालक में इच्छा और रुचि उत्पन्न हो जायगी तो वह स्वतः ही अध्ययन कर सकेगा। गृह कार्य के माध्यम से बालक में विषय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जा सकता है। जब बालक स्वयं किसी समस्या से जूझता है तथा उसे हल कर लेता है तो इस सफलता पर उसे एक विशेष आनन्द की अनुभूति होती है तथा वह विषय में रुचि लेने लगता है। इसके विपरीत यदि गृह कार्य मात्रा में अधिक थकान उत्पन्न करने वाला तथा कठिन स्तर का हो तो बालक को असफलता मिलती है। वह इसे पूरा करने में अपने आप को असमर्थ पाता है। परिणामस्वरूप उसमें विषय के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है। इस प्रकार एक अच्छे स्तर का गृह कार्य विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने में सहायक है।

(2) व्यक्तिगत विभिन्नताएं

बालकों में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ पाई जाती हैं ये विभिन्नताएँ मानसिक क्षमता सीखने की गति स्मृति इत्यादि में भी होती हैं। गृह कार्य एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप अध्ययन करने का अवसर विद्यार्थियों को

---

1 गैद एवं शर्मा—शैक्षिक एवं माध्यमिक विद्यालय व्यवस्था पृष्ठ संख्या 360

प्रदान किया जा सकता है। अच्छे तथा कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थियों को गृह कार्य अधिक मात्रा में तथा मन्दबुद्धि छात्रों को यह कार्य कम मात्रा में दिया जा सकता है। इन विभिन्नताओं के अतिरिक्त गृह-कार्य विद्यार्थियों की घर में व्यस्तता को ध्यान में रखकर भी दिया जा सकता है। यदि बालक कम मात्रा में हो तो विद्यालय में भी कराया जा सकता है।

(3) अतिरिक्त शक्ति का उपयोग

बालक में कार्य करने की शक्ति पर्याप्त मात्रा में होती है। यदि इस शक्ति का शैक्षिक कार्यों में उपयोग किया जाय तो वह मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहेगा तथा अधिक पठन के लिए प्रेरित होगा। यदि उसे घर पर किसी प्रकार का कार्य नहीं दिया जाता तो वह इस शक्ति का उपयोग इधर उधर भटकने या घूमने में करेगा जहाँ कि असामाजिक तत्त्व उसे गलत रास्ते पर डाल सकते हैं।

(4) मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति

बाल मनोविज्ञान की पूर्ति गृह कार्य द्वारा बड़ी आसानी से की जा सकती है। बालक में खोज की प्रवृत्ति, समस्या का हल ढूँढने की जिज्ञासा, निर्माण की प्रवृत्ति इत्यादि पाई जाती हैं। यदि बालक को गृह कार्य इस रूप में दिया जावे जहाँ उसे समस्या का हल ज्ञात करना हो, अथवा कोई नवीन रचना करनी हो तो उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं।

(5) ज्ञान का पुनर्बलन एवं संगठन

कक्षागत शिक्षण में बालक को जो ज्ञान दिया जाता है उससे सम्बन्धित प्रश्न का हल करने में उसे चिन्तन कर सीखे गये अनुभवों का पुनर्गठन करना होता है। उसके उपरान्त वह अपने शब्दों में समस्या के हल की व्याख्या करता है। इससे उसका ज्ञान के अनुभवों के संगठन का अवसर प्राप्त होता है। जब वह अपना गृह कार्य अध्यापक से जंचवाता है तथा उसका उत्तर सही पाया जाता है तो उसे इससे सन्तोष प्राप्त होता है जो कि उसके सीखे हुए अनुभवों का पुनर्बलित करता है।

(6) अभ्यास का अवसर

गृह कार्य बालक द्वारा सीखे गये प्रकरण या सिद्धान्त से सम्बन्धित होता है। कक्षा में समय सीमित होने के कारण अध्यापक इनसे सम्बन्धित प्रश्नों या पहलुओं पर अभ्यास कराने में असमर्थ रहता है। गृह कार्य के माध्यम से विद्यार्थियों को अभ्यास करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो जाता है।

(7) समय का सदुपयोग

गृह-कार्य द्वारा बालक के समय का सदुपयोग होता है। यदि बालक के पास गृह कार्य नहीं होगा तो वह इधर उधर खेलने या घूमने में अपना समय नष्ट कर देगा। गृह कार्य के द्वारा वह शैक्षिक कार्य घर पर करने के लिए बाध्य होता है।

(8) मौलिक चिन्तन का विकास

गृह कार्य मौलिक चिन्तन के विकास में सहायक है। जब बच्चे स्थान में एकाग्रचित्त होकर किसी समस्या के बारे में चिन्तन करता, मस्तिष्क में नवीन विचार जन्म लेते हैं जिनको वह लिखा करता है। इ चिन्तन के लिए उस गृह कार्य के रूप में कुछ मौलिक विषयों पर निबन्ध परीक्षा भवन में मेरा पन का मित्र टूट गया लिखने को कहा जा सकता

(9) नियमित कार्य करने की आदत

गृह-कार्य बालक में नियमित अध्ययन तथा कार्य करने की आदत करने में सहायक है। यदि वह गृह कार्य रोजाना नहीं करेगा तो वह ब जायगा। इस भय से वह नियमित कार्य करने की आदत का निर्माण परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि गृह कार्य की जाँच भी नियमित हो

गृह-कार्य के सिद्धान्त

(Principles Underlying Home Work)

गृह कार्य 'अभ्यास के नियम" (Law of Exercise) तथा 'क्रिया सिद्धान्त" (Principle of Activity) पर आधारित हैं। अभ्यास के नि स्पष्ट है कि जिस क्रिया का जितनी बार अभ्यास किया जाय, वह क्रिया अधिक प्रभावी रूप में व्यक्तित्व का अंग बन जायेगी। परन्तु ऐसी क्रि सुखानुभूति होना आवश्यक है। प्रश्न को सही रूप से हल करने पर बा प्राप्त कर लेता है। क्रियाशीलता का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि बालक से क्रियाशील होना है। यदि उसे प्रायोगिक कार्य करवाया जावे तो उसकी प्रति रुचि और अधिक विकसित होगी। गृह कार्य में दोनों मनोवैज्ञानिक सि कार्य करते हैं।

गृह-कार्य किस रूप में व किस स्तर तथा मात्रा में दिया जाना यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं, परन्तु मुख्य तथ्य कि इसे विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार दिया जाना उचित रहेगा। एक अच्छे कार्य में पाये जाने वाले गुणों का वर्णन आगे किया जा रहा है।

उत्तम गृह-कार्य की विशेषतायें

(Essential Characteristics of a Good Assignment)

विद्यालय में वर्तमान में दिया जाने वाला गृह कार्य सामान्यतः अच्छा नहीं होता। गृह कार्य अधिक प्रभावशाली ढंग से दिया जावे तथा विद्यार्थियों को अधिकतम लाभ पहुँचाने हेतु एक उत्तम गृह कार्य में पाई जाने वाली वि का वर्णन किया जा रहा है—

(1) सीखे हुए ज्ञान पर आधारित

कक्षा में अध्यापक के समय विद्यार्थी को विभिन्न प्रकार के अनुभव

जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे ही अनुभव वह अपने दैनिक जीवन में करता है। गृह-कार्य देते समय अध्यापक को दोनों प्रकार के अधिगम अनुभवों को आधार बनाना चाहिए। यदि उसे 'ज्ञात से अज्ञात' सिद्धान्त पर आधारित गृह-कार्य दिया जावे तो यह उसके लिए और अधिक लाभप्रद होगा। सीखे हुए सिद्धान्तों को वह स्वयं नवीन परिस्थितियों में लागू कर सकेगा। सीखे हुए ज्ञान पर आधारित गृह कार्य का यह अर्थ नहीं है कि बालक को वे ही प्रश्न दिये जावें जो कि उसने कक्षा में अध्ययन अध्यापन के समय हल किये हैं। इस प्रकार के प्रश्न देने से उसमें समस्या हल करने की प्रवृत्ति विकसित नहीं हो सकेगी।

(2) वस्तुनिष्ठता तथा स्पष्टता

गृह कार्य के अन्तर्गत दिया गया कार्य अपने आप में स्पष्ट होना चाहिए। उसमें यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि उसे क्या करना है तथा कितना करना है। कभी-कभी शिक्षक गृह कार्य की भाषा अस्पष्ट बना देते हैं अथवा उसमें कुछ कठिन, शब्दों का प्रयोग कर देते हैं जिस कारण से बालक गृह-कार्य को समझ नहीं पाता कि उसे क्या करना है। अतः यह आवश्यक है कि गृह कार्य की भाषा सरल तथा स्पष्ट हो एवं उसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख हो कि विद्यार्थी को क्या तथा किस सीमा तक करना है। अस्पष्ट भाषा युक्त गृह कार्य से न तो शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी और न ही विद्यार्थी इसे शिक्षक के चाहे अनुसार कर पायेगा।

(3) आवश्यक सन्दर्भ साहित्य का उल्लेख

गृह-कार्य का उद्देश्य बालक में अच्छी अध्ययन आदतों का विकास करना है। गृह-कार्य देते समय यदि अध्यापक उन पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, सदर्भ-ग्रन्थों इत्यादि का भी सकेत विद्यार्थी को देते हैं तो यह उसके लिए न केवल सुविधाजनक अपितु लाभप्रद रहेगा। उसमें खोज की प्रवृत्ति बढ़ेगी। बजाय इसके कि वह विषय वस्तु की खोज में अपना सारा समय नष्ट कर दे, बालक शिक्षक द्वारा बताये सदर्भ साहित्य को पढ़कर गृह कार्य को पूरा करेगा। इससे उसमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति जन्म लेगी तथा विषय का गूढ़ ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

(4) गृह कार्य रुचि जागृत करने वाला हो

यह एक निर्विवाद मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बालक रुचि पूर्ण कार्य करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। परन्तु उसकी रुचि गृह कार्य में किस प्रकार जागृत हो, यह एक विचारणीय प्रश्न है। गृह कार्य यदि सीमित मात्रा में पूर्व निर्मित योजनानुसार यदि बालक को दिया जावे तथा उसका स्तर कठिन न हो तो ऐसी स्थिति में उसे गृह कार्य पूर्ण करने में सतोष का अनुभव होगा। यदि कुछ मात्रा में कठिन प्रश्न दिये जावें तो उनको सरल करने के लिए कुछ अनुबोधक दिये जाने चाहिए।

केवल गृह-कार्य देने तथा विद्यार्थी द्वारा इसे पूर्ण करने मात्र से बालक में गृह कार्य के प्रति रुचि जन्म नहीं ले सकेगी इसके लिए यह आवश्यक है कि गृह-

(8) मौलिक चिन्तन का विकास

गृह कार्य मौलिक चिन्तन के विकास में सहायक है। जब बालक एकान्त स्थान में एकाग्रचित्त होकर किसी समस्या के बारे में चिन्तन करता है तो उसके मस्तिष्क में नवीन विचार जन्म लेते हैं जिनको वह लिखा करता है। इस प्रकार के चिन्तन के लिए उस गृह कार्य के रूप में कुछ मौलिक विषयों पर निबन्ध जैसे—"जब परीक्षा भवन में मेरा पेन का निब टूट गया" लिखने को कहा जा सकता है।

(9) नियमित कार्य करने की आदत

गृह कार्य बालक में नियमित अध्ययन तथा कार्य करने की आदत का विकास करने में सहायक है। यदि वह गृह कार्य रोजाना नहीं करेगा तो वह कक्षा में पिछड़ जायगा। इस भय से वह नियमित कार्य करने की आदत का निर्माण कर लेगा। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि गृह कार्य की जाँच भी नियमित हो।

गृह-कार्य के सिद्धान्त

(Principles Underlying Home Work)

गृह कार्य 'अभ्यास के नियम" (Law of Exercise) तथा "क्रियाशीलता के सिद्धान्त' (Principle of Activity) पर आधारित है। अभ्यास के नियम से यह स्पष्ट है कि जिस क्रिया का जितनी बार अभ्यास किया जाय, वह क्रिया उतनी ही अधिक प्रभावी रूप से व्यक्तित्व का अंग बन जायेगी। परन्तु ऐसी क्रिया में उसे सुखानुभूति होना आवश्यक है। प्रश्न को सही रूप से हल करने पर बालक इसे प्राप्त कर लेता है। क्रियाशीलता का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि बालक स्वभाव से क्रियाशील होता है। यदि उसे प्रायोगिक कार्य करवाया जावे तो उसकी विषय के प्रति रुचि और अधिक विकसित होगी। गृह कार्य में दोनों मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त कार्य करते हैं।

गृह कार्य किस रूप में व किस स्तर तथा मात्रा में दिया जाना चाहिए यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस सम्बन्ध में अनेक मत है, परन्तु मुख्य तथ्य यह है कि इसे विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार दिया जाना उचित रहेगा। एक अच्छे गृह कार्य में पाये जाने वाले गुणों का वर्णन आगे किया जा रहा है।

उत्तम गृह-कार्य की विशेषतायें

(Essential Characteristics of a Good Assignment)

विद्यालय में वर्तमान में दिया जाने वाला गृह कार्य सामान्यतः अच्छे स्तर का नहीं होता। गृह कार्य अधिक प्रभावशाली ढंग से दिया जावे तथा विद्यार्थियों को इसका अधिकतम लाभ पहुँचे इस हेतु एक उत्तम गृह कार्य में पाई जाने वाली विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है—

(1) सीखे हुए ज्ञान पर आधारित

कक्षा में अध्यापन के समय विद्यार्थी को विभिन्न प्रकार के अनुभव कराये

जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे ही अनुभव वह अपने दैनिक जीवन में करता है। गृह-कार्य देते समय अध्यापक को नाना प्रकार के अधिगम अनुभवों को आधार बनाना चाहिए। यदि उसे 'ज्ञात से अज्ञात' सिद्धान्त पर आधारित गृह-कार्य दिया जावे तो यह उसके लिए और अधिक लाभप्रद होगा। सीखे हुए सिद्धान्तों को वह स्वयं नवीन परिस्थितियों में लागू कर सकेगा। सीखे हुए ज्ञान पर आधारित गृह-कार्य का यह अर्थ नहीं है कि बालक को वे ही प्रश्न दिये जावें जो कि उसने कक्षा में अध्ययन अध्यापन के समय हल किये हैं। इस प्रकार के प्रश्न देने से उसमें समस्या हल करने की प्रवृत्ति विकसित नहीं हो सकेगी।

(2) वस्तुनिष्ठता तथा स्पष्टता

गृह कार्य के अन्तर्गत दिया गया कार्य अपने आप में स्पष्ट होना चाहिए। उसमें यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि उसे क्या करना है तथा कितना करना है। कभी-कभी शिक्षक गृह कार्य की भाषा अस्पष्ट बना देते हैं अथवा उसमें कुछ कठिन शब्दों का प्रयोग कर देते हैं जिस कारण से बालक गृह-कार्य को समझ नहीं पाता कि उसे क्या करना है। अतः यह आवश्यक है कि गृह कार्य की भाषा सरल तथा स्पष्ट हो एवं उसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख हो कि विद्यार्थी को क्या तथा किस सीमा तक करना है। अस्पष्ट भाषा युक्त गृह कार्य से न तो शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी और न ही विद्यार्थी इस शिक्षक के चाहे अनुसार कर पायेगा।

(3) आवश्यक सन्दर्भ साहित्य का उल्लेख

गृह-कार्य का उद्देश्य बालक में अच्छी अध्ययन आदतों का विकास करना है। गृह कार्य देते समय यदि अध्यापक उन पुस्तकों, समाचार पत्रों पत्रिकाओं, सदर्भ ग्रन्थों इत्यादि का भी सकेत विद्यार्थी को देते हैं तो यह उसके लिए न केवल सुविधाजनक अपितु लाभप्रद रहेगा। उसमें खोज की प्रवृत्ति बढ़ेगी। बजाय इसके कि वह विषय वस्तु की खोज में अपना सारा समय नष्ट कर दे, बालक शिक्षक द्वारा बताये सदर्भ साहित्य को पढ़कर गृह कार्य को पूरा करेगा। इससे उसमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति जन्म लेगी तथा विषय का गूढ़ ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

(4) गृह कार्य रुचि जागृत करने वाला हो

यह एक निर्विवाद मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बालक रुचि पूर्ण कार्य करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। परन्तु उसकी रुचि गृह कार्य में किस प्रकार जागृत हो, यह एक विचारणीय प्रश्न है। गृह कार्य यदि सीमित मात्रा में पूर्व निर्मित योजनानुसार यदि बालक को दिया जावे तथा उसका स्तर कठिन न हो तो ऐसी स्थिति में उसे गृह-कार्य पूर्ण करने में संतोष का अनुभव होगा। यदि कुछ मात्रा में कठिन प्रश्न दिये जावें तो उनको सरल करने के लिए कुछ अनुबोधक दिये जाने चाहिए।

केवल गृह कार्य देने तथा विद्यार्थी द्वारा उसे पूर्ण करने मात्र से बालक में गृह कार्य के प्रति रुचि जन्म नहीं ले सकेगी इसके लिए यह आवश्यक है कि गृह

काय की जाँच भी अध्यापक द्वारा समय समय पर की जानी चाहिए। गृह काय की जाच से वालक को अपनी त्रुटि का आभास होगा। अच्छे स्तर के काय के लिए 'अच्छा', 'उत्कृष्ट' आदि शब्द भी उसकी उत्तर पुस्तिका मे लिखना चाहिए। इन शब्दो स वालक द्वारा किये प्रयत्न तथा नियमित गृह काय करने की आदत का पुनबलन होगा।

(5) गृह कार्य अधिगम को दिशा प्रदान करे

गृह काय का उद्देश्य कक्षा म वालक द्वारा सीखे गय ज्ञान का अभ्यास करना तथा उसे नवीन परिस्थितियो मे लागू करने से है। एक अच्छे गृह काय म वालक को गह-काय भली प्रकार से पूण करने के लिए सहायक निर्देश दिये जाते है। गृह काय को अधिगम का पोषक माना गया है अत गृह काय से जितना अधिक सम्बधित होगा, बालक के ज्ञान का पोषण उतना ही अधिक होगा।

(6) गृह कार्य शिक्षण उद्देश्यो पर आधारित होना चाहिए

शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसका एक भाग गृह काय है। अत गृह काय को शिक्षण से अलग नही किया जा सकता। इसके विपरीत गृह काय को इस रूप मे दिया जाना चाहिए कि वालक मे अपक्षित व्यवहारगत परिवतन लाये जा सकें। उदाहरण के लिए यदि शिक्षण उद्देश्य वायुमण्डल के ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग, रुचि इत्यादि से सम्बधित हैं तो गृह काय के रूप म दिये जाने वाले प्रश्नो मे भी इन उद्देश्यो की पूर्ति की जानी चाहिए।

गृह-कार्य कब दिया जाना चाहिए

गृह काय कब दिया जाय, इस सम्बध म कोई स्पष्ट सिद्धात नही है परन्तु गृह काय सामायत शिक्षणोपरात दिया जाता है। कुछ विद्वानो का मत है कि गृह काय पाठ प्रारम्भ करने से पूव ही द दना चाहिए। उनके मतानुसार विद्यार्थी अध्ययन के समय विन्दुओ को विशेष रूप स समझने का प्रयास करेगा जिसे आधार बनाकर उसे गृह काय पूरा करना है। इससे गृह काय पूरा करने म आसानी रहेगी।

परन्तु अधिकाश शिक्षाशास्त्रियो का मत है कि गृह काय शिक्षण का पूरक है तथा इसके द्वारा सीखे हुए ज्ञान की पुष्टि होती है इसलिए गृह काय का शिक्षण काय पूण होन पर ही दिया जाना चाहिए। कालाश की समाप्ति पर गृह काय देन से एक लाभ यह भी है कि अध्यापक को अपन अध्यापन की प्रभावशीलता के बारे मे ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि गृह-काय पाठ के प्रारम्भ म ही दे दिया जाय तो यह निश्चित नही किया जा सकता कि उस पाठ का अध्यापक उस कालाश मे पूण कर पायेगा या नही। अत गृह-काय शिक्षण की समाप्ति पर ही दिया जाना चाहिए।

गृह कार्य देते समय यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह निम्नांकित बातों की पूर्ति कर रहा है—

(1) गृह कार्य पढ़ाये गये पाठ से सम्बन्धित होना चाहिए।

(2) गृह-कार्य बालक के स्तरानुसार इस रूप में दिया जाय कि वह रुचि उत्पन्न करने वाला हो।

(3) गृह-कार्य की भाषा सरल तथा स्पष्ट हो।

(4) गृह-कार्य पूर्ण करने में बालक का लगने वाला समय भी ध्यान में रखना चाहिए।

(5) गृह-कार्य को योजनाबद्ध रूप में किया जाना चाहिए।

गृह-कार्य के प्रकार

आज से कई वर्षों पूर्व ईयरहट[1] (Earhart) ने यह तथ्य इंगित किया था कि गृह-कार्य का उद्देश्य मात्र पाठ्यपुस्तक के अध्ययन से ही सम्बन्धित नहीं है। केवल पाठ्यपुस्तक के प्रश्न हल करने हेतु छात्रों को देना ही गृह कार्य नहीं है इसमें विविधता लाई जानी आवश्यक है। इन प्रश्नों के अतिरिक्त बालक के दैनिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को आधार बनाकर यदि कुछ गृह-कार्य दिया जावे तो गृह कार्य की उपयोगिता बढ़ जायेगी।

यद्यपि गृह-कार्य को वर्गीकृत करने के लिए अनेक प्रयास हुए, योकम[2] (Yokam) ने इन्हें निम्न दो रूपों में विभाजित किया है—

(अ) परम्परागत गृह-कार्य (Old Type Assignment)

(ब) नवीन प्रकार का गृह कार्य (New Type Assignment)।

परम्परागत गृह कार्य में योकम उस गृह कार्य को सम्मिलित करता है जो कि बालक की पाठ्यपुस्तक या पढ़ाई गई पाठ्यवस्तु से सीधा सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार के गृह कार्य में विद्यार्थी को अधिक चिन्तन या मेहनत करने की आवश्यकता नहीं होती है। चूँकि उसे अपने गृह कार्य में पाठ्यपुस्तक की पाठ्य वस्तु लिखनी है अतः इस प्रकार का गृह-कार्य मौलिक चिन्तन का अवसर बालक को प्रदान नहीं करता बल्कि उन तथ्यों या प्रत्ययों को रटने के लिए प्रेरित करता है।

नवीन प्रकार के गृह कार्य में बालक को नवीन परिस्थितियों में 'अधिगम' अनुभवों का प्रयोग करने को कहा जाता है। सीखे हुए सिद्धान्तों का सगठन कर

1 Lida B Earhart Types of Teaching, Boston Houghton Mifflin 1915 P 80

2 Gerald A Yoakam The Improvement of the Assignment New York The Macmillan Co 1933

वह इनका नवीन परिस्थिति मे उपयोग करने के लिए बालक को मौलिक चिन्तन करना पड़ता है, इस प्रकार के कार्य से उसमे मौलिकता का विकास होता है।

बालको की दृष्टि मे दोनों प्रकार के गृह कार्य उन्हें दिया जाना चाहिए। कक्षा मे सीखे हुए अधिगम अनुभवो का अभ्यास तथा उनका नवीन परिस्थितियो में उपयोग करना, दोनो ही कार्य महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान के उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि ज्ञान को बालक भली भाति समझ ले। इस हेतु उसके मानसिक अभ्यास की आवश्यकता है जिसे परम्परागत गृह कार्य से कराया जा सकता है।

गृह कार्य के स्वरूप की दृष्टि से भी इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है

(1) लिखित कार्य

इस प्रकार का गृह कार्य सामान्यत दिया जाता है। जिसमें निर्धारित प्रश्नो के उत्तर, व्याख्या, साराश, निबन्ध, पत्र इत्यादि प्रश्नो के उत्तर मौलिक ढग से लिखने को कहा जाता है।

(2) स्वाध्याय कार्य अथवा मौलिक कार्य

कक्षा मे पठित पाठ से सम्बन्धित पाठ्यवस्तु के अतिरिक्त पुस्तक, समाचार पत्र, सन्दर्भ ग्रन्थ आदि को पढने के लिए छात्र से कहा जाता है। छोटे बच्चो को कुछ सून, गुर या पहाडे आदि भी याद करने को दिये जाते है। इसमे अध्यापक बालक से उसके उत्तर मौखिक रूप से सुनता है।

(3) प्रायोगिक कार्य

विज्ञान, उद्योग, कार्यानुभव, समाजोपयोगी उत्पादन कार्य, मानचित्र, माडल, चित्राकन, ग्राफ बनाना इत्यादि प्रायोगिक कार्य से युक्त हैं। बालक को प्रायोगिक कार्य करने के लिए कहा जाता है तथा वह इसे तैयार कर अध्यापक को दिखाता है।

उपरोक्त गृह कार्य के प्रकारो का अपना अलग अलग महत्त्व एव प्रयोजन है। अध्यापक इनका उपयोग परिस्थितिनुसार कर सकता है। यदि सभी प्रकार के गृह कार्य बालक को दिये जावें तो इससे गृह कार्य मे विविधता आयेगी तथा यह रोचक बनेगा।

गृह-कार्य योजना

गृह-कार्य को देने के लिए यदि एक पूर्व नियोजित कार्यक्रम का निर्माण कर लिया जाता है तो इससे विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनो ही लाभान्वित होते है तथा *कार्य एक निश्चित विधि के अनुरूप सम्पन्न होता है। यह योजना कक्षा को दिये* जाने वाले गृह कार्य को आधार बनाकर बनाई जा सकती है तथा इन सबका समेकित कर सम्पूर्ण विद्यालय की गृह कार्य योजना बन जाती है।

विद्यार्थी एक कक्षा मे अनेक विषय पढता है। माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाए, विज्ञान, सामाजिकज्ञान, गणित, समाजोपयोगी उत्पादन काय अर्थात् 7 विषय उसे कक्षा म पढने होते हैं। यदि इन सब विषयो मे एक ही दिन गह काय दे दिया जावे तो उस पर काय की अधिकता होगी तथा वह इसे पूर्ण करने मे असमथ रहेगा। योजना के अभाव म ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि किसी विषय म नियमित गृह काय भी न दिया जाता हो।

शिक्षक की दृष्टि से भी योजना का विशेष महत्त्व है। गह काय योजना उस यह मार्गदशन प्रदान करती है कि किस दिन किस कक्षा को गृह काय दिया जाना है। सामान्यत एक शिक्षक 6 कालाश म लगभग इतनी ही कक्षाओं या वग को पढाता है। यदि वह सब कक्षाओ को एक साथ काय देता ह तो उसके सामने गह काय की जाच हेतु उत्तर पुस्तिकाओ का ढेर लग जाता है। वह इन सब को एक साथ जाच ले, यह असम्भव ह। अत शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनो के लाभ की दृष्टि मे गृह काय योजना का होना आवश्यक है।

गृह कार्य यदि नियमित रूप मे दिया जाता है तथा उसकी जाच भी उसी अनुसार होती है तो इससे छात्र का उसके द्वारा किये गये गृह काय मे त्रुटि इत्यादि का पता लगता है तथा वह उसमे सुधार करता रहता है। अच्छे स्तर के छात्रो को गृह-काय को नियमित करने एव उसकी जाच से पुनबलन मिलता रहता है जो कि उसे और अधिक काय करने के लिये प्रेरित करता ह। शिक्षा प्रशासक तथा प्रधानाध्यापकों को भी इस योजना से परिवीक्षण म सहायता मिलती है। इसलिए प्रत्यक विद्यालय म गह काय योजना का निर्माण आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए।

गृह-कार्य योजना निर्माण के सिद्धान्त

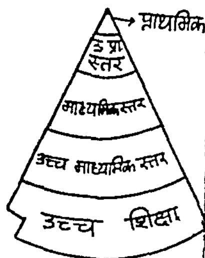
(1) गह काय की योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि एक दिन मे छात्र को इतना काय मिले कि वह उसे बिना मानसिक थकान के पूरा कर सके। सामान्यत निम्नांकित मानक बनाये जा सकते हैं—

(अ) दस वष की अवस्था से कम उम्र वाले विद्यार्थियो को गृह-कार्य यथासभव नहीं दिया जावे।

(ब) ग्यारह वष से 13 वष की अवस्था वाले बालको को दिये जाने वाला गृह काय मात्रा म इतना हो कि यह लगभग एक घण्टे म पूरा हो सके।

(स) चौदह स सोलह वष की अवस्था तक इतना गृह-काय हो कि विद्यार्थी लगभग तीन घण्टे प्रतिदिन काम कर इसे पूरा कर सकें। गृह-कार्य की मात्रा को अग्रांकित शकु से प्रदर्शित कर सकते हैं—

स्तर



उपरोक्त शंकु यह स्पष्ट करता है कि निम्न स्त
कम तथा उच्च स्तर पर गृह कार्य की मात्रा अधिक हो
पर गृह-कार्य नगण्य सा होना चाहिए क्योंकि इस उम्र में
एकाग्रचित्त होकर नहीं पढ़ सकता न ही स्वाध्याय कर
शिक्षा में स्वाध्याय का विशेष महत्त्व है अतः गृह कार्य
करने का समय अधिक होना चाहिए।

(2) गृह कार्य में विषयों का संतुलन बनाए रख
जैसे गणित, अंग्रेजी, विज्ञान आदि कठि
विषय सरल। कठिन विषयों में गृह का
विषय में यह प्रति सप्ताह कम दिन दिया

(3) गृह-कार्य में दिये जाने वाले प्रश्न पाठ्य
निर्मित भी होने चाहिए तथा उसे इस प्र
कि बालक नवीन परिस्थितियों में उ
उपयोग कर सके।

(4) गृह कार्य इस प्रकार न दिया जाय कि स
सरल विषय में एक ही दिन उसे कार्य कर

(5) यदि गृह कार्य स्तरानुसार दिया जा सके
मनोवैज्ञानिक होगा। अच्छे स्तर के वि
क्षमता अधिक तथा कमजोर छात्र में यह
क्षमतानुसार गृह कार्य की मात्रा को अ
सकता है।

(6) गृह कार्य पढ़ाये गये प्रकरणों पर ही दिया ज

पर गृह कार्य की मात्रा
ी चाहिए। प्राथमिक स्तर
बालक अधिक समय तक
सकता है जब कि उच्च
की मात्रा तथा उसको पूर्ण
जाना चाहिए कुछ विषय
माने गये हैं जबकि कुछ
अधिक दिया तथा सरल
जा सकता है।
इसके अलावा अध्यापक
टाइम टेबल बनाया जाना चाहिए
के सिद्धान्तों का
कठिन विषय या सब
ना पड़े।
तो यह और अधिक
छात्रों में कार्य करने की
क्षमता कम होती है। अतः
अधिक या कम किया जा
होना चाहिए।

गृह-कार्य-योजना

कक्षा 8वीं　　　　सत्र 1989–90

दिन/कालांश	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
सोमवार	अंग्रेजी	गणित				स उ		
मंगलवार			सा ज्ञान		विज्ञान		संस्कृत	
बुधवार		गणित		हिन्दी				चित्रकला
बृहस्पतिवार	अंग्रेजी		सा ज्ञान			स उ		
शुक्रवार				हिन्दी	विज्ञान		संस्कृत	
शनिवार	अंग्रेजी	गणित						चित्रकला

(3) यादृच्छिक जाच प्रणाली

इस पद्धति के अन्तगत अध्यापक दिये गये प्रश्नो मे से किसी एक प्रश्न की पूर्ण जाच प्रत्येक विद्यार्थी की उत्तर पुस्तिका म करता ह। अन्य प्रश्नो के उत्तरो पर वह केवल हस्ताक्षर करता है। इस प्रकार बालक द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियो का वह पता लगाकर उनमे सुधार करने के लिए अभ्यास कराता है। इस पद्धति म समग्र प्रश्नो की जाच सम्भव नही हो पाती।

गृह-कार्य जाच करने की उक्त वर्णित विधिया पर्याप्त नही ह। अभी इसम और अधिक शोध-काय की आवश्यकता है। इस अध्यापक निम्नलिखित उपायो का अपनाकर भी प्रभावी रूप से कर सकता है—

(1) गृह-काय सशोधन म सकेत अथवा चिन्ह की मदद ली जाय।

(2) एक बार के सशोधन म एक प्रकार की अशुद्धियो को ही इगित किया जावे।

(3) भाषा से सम्बन्धित गृह-काय म छात्रो से शब्द कोष का उपयोग कराकर वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियो को सुधरवाया जा सकता ह।

(4) गृह काय देने स पूव यदि छात्रो स मौखिक वार्तालाप कर उनस प्रश्न क हल पर चचा की जावे तो त्रुटि किये जाने की सम्भावना कम हो सकती है।

(5) कठिन शब्दो या जटिल प्रश्नो का हल श्याम-पट्ट पर लिखने से छात्र स्वय मिलान कर अपनी त्रुटिया निकाल सकते है।

गृह-काय सशोधन की स्थिति सतोषजनक नही है। इसम सुधार लाये जाने के लिए और अधिक चिन्तन और शोध की नवीन पद्धति खोजी जानी चाहिए।

साराश

गृह-काय एक शक्षिक काय है जो कि अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को घर पर करने की दृष्टि स दिया जाता है। यह कक्षागत अनुभवो का सगठित कर स्वय समस्या सुलझाने की प्रवृत्ति को बालक म विकसित करता है। गृह काय सीमित मात्रा म ही दिया जाना चाहिए ताकि यह विद्यार्थियो पर बोझ न बन सके। वतमान शोध काय यह बताते हैं कि विद्यालयो मे गृह काय बिना किसी योजना क अधिक मात्रा म दिया जाता है। गृह काय का दिया जाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह बालक म रुचि उत्पन्न कर उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। बालक की अतिरिक्त शक्ति का सदुपयोग गृह काय म सम्भव हो जाता है। यह उसमे स्वाध्याय की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है।

गृह काय दो महत्त्वपूण मनोविज्ञानिक सिद्धान्त अर्थात् अभ्यास का नियम एव *क्रियाशीलता का सिद्धान्त पर आधारित है। यह तभी प्रभावी होगा जबकि* इस उत्तम रूप स दिया जावे। गृह-काय म कुछ प्रमख विशेषताए होना आवश्यक है, जसे (1) सीखे हुए ज्ञान पर आधारित, (2) वस्तुनिष्ठता एव स्पष्टता (3) रुचि जागृत करने वाला, (4) आवश्यक सन्दभ साहित्य का सुलभ होना आदि है।

गृह-काय का बालक पर अचानक भार न बढ जाय इसके लिए आवश्यक है कि इसकी पूव मे योजना बना लेनी चाहिए। गृह-काय का सशोधन किया जाना भी आवश्यक है, इसक लिए अध्यापक अनेक विधिया जसे मानीटर पद्धति, सामूहिक जाच काय, यादृच्छिक जाच प्रणाली आदि काम म ला सकता है। गृह काय शिक्षण

अध्याय 9

शिक्षण-व्यूह-रचना

(Teaching Strategies)

शिक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षार्थी को 'सीखना सिखाना' (Learning to learn) है। इसका आशय यह है कि अध्यापक विभिन्न क्रियाओं, विधियों तथा सहायक सामग्री आदि की सहायता से विद्यार्थी का अधिगम हेतु प्रेरित करता है। इस प्रकार बालक में वांछित व्यवहारगत परिवर्तन लाने के लिए वह शिक्षण क्रियाओं पर बल देता है। शिक्षक कौन कौन सी क्रियायें आयोजित करे जिसके द्वारा शिक्षण के उद्देश्य प्राप्त किये जा सके, इसके लिए शिक्षण की व्यूह रचना करनी पड़ती है।

शिक्षण-व्यूह-रचना का अर्थ

व्यूह-रचना (Strategy) का शाब्दिक अर्थ युद्ध कला या युद्ध कौशल से है। इसके अनुसार युद्ध के लिए सेना को उचित स्थान पर तैनात कर युद्ध में सफल होने का प्रयत्न करना व्यूह रचना कहलाती है। दूसरे शब्दों में व्यूह रचना एक ऐसी कार्य प्रणाली है जिसकी सहायता से कार्य के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है अथवा कार्य इच्छित रूप में भलीभाँति तथा कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है।

शिक्षण की प्रक्रिया मानवीय व्यवहारों में परिवर्तन से जुटी है, अतः यह एक जटिल एवं व्यापक प्रक्रिया है। अध्यापक अपने कार्य को केवल अध्यापन विधि तथा दृश्य-श्रव्य सामग्री की सहायता से ही पूरा नहीं कर सकता। उसकी शैक्षिक क्रियाएं पाठ्य-वस्तु की प्रकृति, विद्यार्थियों का शैक्षणिक स्तर एवं योग्यताएं, शिक्षण उद्देश्य आदि पर आश्रित होती हैं। सीखने के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कार्य विश्लेषण शिक्षण के प्रस्तुतिकरण के लिए आधार प्रदान करते हैं। अध्यापक विद्यार्थियों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने के लिए एक पूर्व नियोजित कार्य-योजना का निर्माण

करता है। इस कार्य-योजना को शिक्षण की व्यूह रचना कहते हैं। शिक्षण व्यूह रचना की कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

स्टोन तथा मोरिस[1]

(E Stones and S Moris)

शिक्षण व्यूह रचना पाठ की एक सामान्यीकृत योजना है जिसमें अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन की संरचना शिक्षण के उद्देश्यों के रूप में होती है तथा इसको लागू करने के लिए आवश्यक शिक्षण-युक्तियां (Teaching tactics) की रूपरेखा सम्मिलित होती है।

डेवीज[2]

(Ivor K Davies)

शिक्षण व्यूह रचना पूर्व शिक्षण नियोजन करता है।"

बी ओ स्मिथ[3]

(B O Smith)

"शिक्षण-व्यूह रचना कार्य के उन रूपों को कहते हैं जिन्हें कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है तथा ये उपस्थित होने वाले व्यवधान से रक्षा करते हैं।"

शिक्षण व्यूह रचना में अध्यापक शैक्षिक तकनीकी का उपयोग इस प्रकार करता है कि छात्रों में वांछित परिवर्तन लाकर शैक्षिक उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सके। यह शिक्षण की एक सामान्य योजना है जिसमें क्रियान्विति के विभिन्न चरण पूर्व निर्धारित कर लिए जाते हैं। इसमें शिक्षण के सभी पक्षों, जैसे सीखने के अनुभव पाठ्यवस्तु, कार्य विश्लेषण विद्यार्थी का मानसिक स्तर और उसकी योजना, रुचि तथा उसकी आयु, शिक्षक शिक्षार्थी अन्तःक्रिया आदि का ध्यान रख उन्हें क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित किया जाता है।

शिक्षण विधियां तथा शिक्षण व्यूह रचना में भेद होते हुए भी शिक्षण विधियां व्यूह रचना में बदली जा सकती हैं। यदि कोई शिक्षण विधि परम्परागत ढंग से विषय-वस्तु को प्रधानता न देते हुए उद्देश्य-आधारित हो तो इसे शिक्षण व्यूह रचना से सम्बोधित करते हैं। शिक्षण विधियों में अध्यापक शिक्षण की प्रविधियों (Instructional Techniques) का उपयोग करता है। यदि वह शिक्षण युक्तियों (Teaching Tactics) का सहारा ले तो यह शिक्षण व्यूह रचना बन जाता है। उदाहरण के लिए व्याख्यान देना एक विधि है यदि कक्षा में अध्यापक विषय वस्तु का प्रस्तुति

1 Stones E & Morris Teaching Practice Problem & Perceptive Methuen & Co Ltd London 1968
2 Davies I K The Management of Learning Mc Graw Hill London 1971
3 Smith B O Towards a Theory of Teaching Arno Bollback Teachers College Press Columbia N Y 1968

करण इस विधि से किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करे तथा शिक्षण की विभिन्न युक्तियों का उपयोग करे तो यह शिक्षण की व्यूह रचना बन जायगी।

शिक्षण की व्यूह-रचना के तत्त्व

(Elements of Teaching Strategy)

शिक्षण-व्यूह रचना के प्रमुख रूप से दो तत्त्व माने गये हैं। ये तत्त्व क्रमशः शिक्षण युक्तियाँ तथा शिक्षण कौशल हैं। चूँकि शिक्षण-व्यूह रचना अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाती है अतः इन दोनों तत्त्वों का इसमें सक्रिय होना आवश्यक है।

शिक्षण-युक्तियों का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition of Teaching Tactics)

शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है, उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षक विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करता है। ये क्रियाएँ वह परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। इस प्रकार शिक्षण-व्यूह-रचना में करणीय शिक्षण क्रियाओं को शिक्षण-युक्तियाँ कहते हैं। शिक्षण की सफलता के लिए ये युक्तियाँ आधार प्रदान करती हैं। शिक्षण युक्ति ठीक उसी प्रकार से है जैसे कि एक कुशल वकील अपने पक्ष को प्रस्तुत करने तथा वाद को जीतने के लिए नई-नई अटकलें लगाता है अथवा एक कुशल शतरंज का खिलाडी बाजी जीतने के लिए नई नई चालों को सोचता रहता है। सफल अध्यापक भी शिक्षण के दौरान आने वाली जटिल परिस्थितियों का हल इन युक्तियों की सहायता से कर लेता है। शिक्षण युक्तियों में शिक्षण विधियों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। जब उनका उपयोग परम्परागत रूप से न कर शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विशिष्ट रूप में किया जाये।

शिक्षण-युक्तियों को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—

ई स्टोन्स और एस मोरिस[1] (E Stones & S Morris)

> शिक्षण-युक्ति उद्देश्य केन्द्रित है तथा यह शिक्षक के व्यवहार को प्रभावित करती है। इसमें शिक्षक द्वारा समय तथा परिस्थितिनुसार किये गये व्यवहार आते हैं जो शिक्षण को सफल बनाने में सहायक हों।'

इस प्रकार शिक्षण युक्तियाँ शिक्षक की उन विभिन्न भूमिकाओं से सम्बन्धित हैं जो शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया से सफलतापूर्वक शिक्षण उद्देश्य प्राप्त करने में मदद प्रदान करें।

शिक्षण-कौशल

(Teaching Skills)

जान पी डिसीको[2] (John P De Cecco) ने कौशल में प्रमुख रूप में तीन तत्त्वों का होना आवश्यक समझा है जो कि अंकित है—

1 Stones E & Morris S / Teaching , Practice Problem & Perceptive London Methuen & Co Ltd 1971

2 John P De Cecco the Psychology of Learning and Instruction Prentice Hall P 277

(1) गत्यात्मक अनुक्रिया श्रृ खला (Chain of Motor response)
(2) आख तथा हाथ की क्रियाओ म समन्वय
(Coordination of hand and eye movements)
(3) श्रृ खलाओ का साद्देश्य व्यवहार (Organisation of Chains)।

किसी भी कौशल के सम्पादन म व्यक्ति को अनक गामक क्रियाएँ (Motor responses) करनी होती ह जसे हाथ, पर, भुजा, आख इत्यादि की गामक क्रियाएँ। कौशल का अथ इन सब गामक क्रियाओ को किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु करना है।

गान[1] (Gagne) एक उदाहरण चालक क कौशल का स्पष्ट करन क लिए निम्न प्रकार स दता है। अपन उदाहरण म वह प्रत्यक गामक क्रिया को उद्दीपन स सम्बन्धित करता है।

उद्दीपक (S) इजन को चालू करना	अनुक्रिया (R) आग पीछे देखना
(S) सडक व्यवधान रहित	(R) गियर न्यूट्रल म हे या नही का परीक्षण
(S) गियर न्यूट्रल	(R) क्लच का दबाना
(S) क्लच रा काय ठीक	(R) प्रथम गियर दबाना
(S) प्रथम गियर सही	(R) एक्सलटर दबाना

उपरोक्त उदाहरण स स्पष्ट ह कि अनुक्रियाएँ (R) गामक क्रियाएँ ह जो कि एक विशिष्ट श्रृ खला म सम्पन्न हो रही ह। यदि इन अनुक्रियाओ का उक्त क्रम म नही किया जावे तो चालक मोटर को चलान म असमथ होगा।

शिक्षण म उद्देश्यो की प्राप्ति क लिए अध्यापक को कक्षा म विभिन्न प्रकार क व्यवहार करन पडते ह। उस इन व्यवहारो के माध्यम से छात्रो में वाछित परिवतन करने होते हैं। यदि उसक प्रयास सुनियोजित, सुव्यवस्थित तथा वज्ञानिक ढग पर आधारित ह तो वह एक सफल शिक्षक बन सकता ह।

एक शिक्षक सफलतापूवक कक्षा म विद्यार्थियो स अन्त क्रिया प्रभावी रूप म किस प्रकार करे कि वह उनम वांछित व्यवहार परिवतन करन म सफल हो सक यह उसकी अध्यापन शिक्षण युक्तिया एव शिक्षण कौशल पर निभर ह।

कक्षागत शिक्षण म शिक्षक शिक्षार्थी अन्त क्रियाएँ प्रमुख ह। फ्लण्डर[2] (Flander) न एक ऐसा प्रतिमान निर्धारित किया है जो कि शिक्षक शिक्षार्थी अनुक्रियाओ का विश्लेषण करन म सहायक है। फ्लैण्डर ने यह प्रतिमान अपन सहयोगी एमिडान की सहायता स तैयार किया।

1 Gagne R M Conditions of Learning New York Holt Rhive Hart Winston Inc P 88
2 Flanders N A Analysis Teaching of Behaviour London Addison Weseley Pub Co 1972

फ्लेण्डर अन्त क्रिया विश्लेषण

एमिडन तथा फ्लेण्डर, 1963 पर आधारित

व्यवहार	प्रभाव	अनुक्रियाएँ
अध्यापक कथन (Teacher Talk)	अप्रत्यक्ष प्रभाव (Indirect Influence)	(1) भावना का स्वीकार करना—छात्रों की भावनाओं को स्वीकार (Accepts feeling) कर उनका सहानुभूतिपूर्वक स्पष्टीकरण देता है। भावनाएँ नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही प्रकार की हो सकती है। भावनाओं का प्रत्यास्मरण भी इसमें सम्मिलित है।
		(2) प्रशंसा या प्रोत्साहित करना (Praises or encourages)—छात्रों के व्यवहार अथवा अनुक्रिया की प्रशंसा कर उन्हें प्रोत्साहित करता है। इसमें छात्रों को अपमानित न करने वाले चुटकुले, सिर हिलाना, हूँ हां की आवाज करना, आगे बढ़ो इत्यादि शब्द अध्यापक कहता है।
		(3) छात्रों के विचारों की स्वीकृति या इनका प्रयोग (Accepts or Uses ideas of students)—छात्र द्वारा प्रकट किये गये विचार या प्रत्यय का स्पष्टीकरना अथवा विकसित करना। अध्यापक छात्र के विचारों में अपने अनुभवों को भी मिश्रित करता है।
		(4) प्रश्न पूछना (Ask questions)—अध्यापक छात्रों से प्रकरण की पाठ्यवस्तु अथवा प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रश्न इस रूप में पूछता है कि छात्र उसका उत्तर दे सकें।
	प्रत्यक्ष प्रभाव (Direct Influence)	(5) व्याख्यान देना (Lectures)—किसी प्रकरण के तथ्यों, प्रक्रिया या पाठ्यवस्तु को स्पष्ट करने के लिए अध्यापक उनकी व्याख्या करता है। स्वयं के विचार शाब्दिक रूप में प्रकट करता है।

व्यवहार	प्रभाव	अनुक्रियाएं
		(6) निर्देश प्रदान करना (Gives directions)—अध्यापक छात्रों को किसी क्रिया को करने के लिए निर्देश, आज्ञा या सलाह देता है।
		(7) आलोचना या अधिकारों की वधता (Criticise or Justifies authority)—छात्रों के उन व्यवहारों को जो कि स्वीकार करने योग्य नहीं हैं को स्वीकार-योग्य में बदलने के लिए निर्देश प्रदान करना। आलोचना करते समय यह बताना कि वह ऐसा क्यों कर रहा है।
		(8) उत्तर देना (Response)—अध्यापक के प्रश्न पूछने पर छात्र उत्तर देता है या कथन प्रस्तुत करता है।
शिक्षार्थी कथन (Student Talk)		(9) स्वय प्रेरित हो बोलना (Initiation)—छात्र स्वय प्रेरित होकर किसी कथन को प्रकट करता है। छात्र स्वय भी प्रश्न पूछ सकता है तथा किन्हीं अस्पष्ट बिन्दुओं पर अध्यापक से स्पष्टीकरण की माग कर सकता है।
		(10) मौन अथवा विभ्रान्ति (Silence or Confusion)—कक्षा मे अध्यापन के समय शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनो चुप हो जाते हैं अथवा ऐसी स्थिति जहा सम्प्रेषण मौन रूप से हो।

उपर्युक्त शिक्षण प्रतिमान से अध्यापन कौशल एव व्यवहार का अवलोकन कर उसमे सुधार लाया जा सकता है। भारत मे बडौदा विश्वविद्यालय मे 1975 मे शिक्षा के उच्च अध्ययन केन्द्र बडौदा मे पासी, मराचाय तथा शाह ने 12 शिक्षण कौशल निम्न प्रकार से दिये हैं[1]—

(1) शैक्षिक उद्देश्यो का लेखन
(2) पाठोपस्थापन
(3) प्रश्न पूछना
(4) जाच-पड़ताल

1 Passi B & Bhatacharya H M Micro Teaching in Teacher Education

(5) व्याख्या करना
(6) उदाहरण या दृष्टांत देना
(7) उद्दीपन-परिवर्तन
(8) अशाब्दिक संकेत
(9) पुनर्बलन
(10) छात्र की सहभागिता को बढ़ाना
(11) श्याम-पट्ट-उपयोग
(12) सपूर्ति ।

महत्त्वपूर्ण शिक्षण कौशल

शिक्षण एक कला है जिसको सुनियोजित ढग से सम्पन्न करने के लिए अध्यापक में कुछ महत्त्वपूर्ण कौशलों का होना आवश्यक समझा गया है। शिक्षक के महत्त्वपूर्ण कौशल निम्न प्रकार से हैं—

(1) पाठोपस्थापन
(2) प्रश्न पूछना
(3) व्याख्यान देना
(4) प्रदर्शन करना
(5) उदाहरण/दृष्टांत देना
(6) व्याख्या करना
(7) विचार विमर्श करना
(8) उद्दीपन परिवर्तन
(9) पुनर्बलन ।

उक्त अध्यापन कौशलों को एक भावी शिक्षक में सफल अध्यापन कला विकसित करने के लिए उन्हें व्यावहारिक रूप सिखाया जाना तथा इनके सैद्धान्तिक पक्ष से अवगत कराना नितान्त आवश्यक है। यदि अध्यापक में ये कौशल प्रभावी रूप से विकसित हो जाते हैं तो वह अध्यापन कार्य को भली प्रकार से सम्पन्न कर सकेगा। इन कौशलों का एक शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी में विकसित करने के लिए 'सूक्ष्म शिक्षण" का उपयोग किया जाता है।

अध्याय 9 (1)

सूक्ष्म-शिक्षण

(Micro-teaching)

एक कक्षा मे पाच बालक बठे है। छात्राध्यापक ने उन्हे एक चित्र दिखाया जिसमे एक भूरे रग की पाच पत्तियो वाली टहनी छात्रो को दूर से दिखाई दे रही थी। जब छात्र कुछ नजदीक आये तो उन्होने यह पाया कि पाच मे से दो पत्तिया वास्तव मे पत्ती नही अपितु तितलिया है। छात्राध्यापक प्रश्नो के द्वारा छात्रो को यह स्पष्ट करना चाह रहा था कि यह प्रक्रिया-अनुकूलन है। छात्रो के पीछे परिवीक्षक बठा कुछ लिख रहा था। वीडियो कमरा इस शिक्षण प्रक्रिया को चित्राकित कर रहा था। यह सब पाच मिनिट तक चला परन्तु इस लघु अवधि मे दो महत्त्वपूर्ण शैक्षिक घटनाए घटी। प्रथम तो यह कि छात्रो को यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि तितलिया पेड पौधो की पत्तियो म बठने पर पहिचानी नही जा सकती और इस प्रकार अपने शत्रुओ से बच जाती हैं। दूसरी यह कि छात्राध्यापक को उत्खनन प्रश्न करने का अवसर मिला तथा उसने परिवीक्षक की देख रेख मे अभ्यास किया। ज्यो ही यह लघु पाठ समाप्त हुआ बालक कक्षा से बाहर चले गये परिवीक्षक ने अध्यापक से अध्यापन के बारे म विचार विमर्श किया, उसे वीडियो फिल्म दिखाई गई ताकि वह अपना शिक्षण स्वय देख कर उसका मूल्याकन कर सके। एक लघु विश्राम के बाद यही प्रक्रिया पुन दोहराई गयी। यहा अध्यापक परिवीक्षक तथा विद्यार्थी तीनो जिस शक्षिक प्रक्रिया म सलग्न है उसे सूक्ष्म शिक्षण' कहते है।

सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षण का एक नूतन प्रत्यय है जिसम छात्राध्यापक को वास्तविक अध्यापन से पूव शिक्षण कौशल का प्रशिक्षण दिया जाता है। सूक्ष्म शिक्षण के द्वारा शिक्षण की जटिल प्रक्रिया को सरल प्रक्रियाओ म विभक्त कर इसकी सहायता से शिक्षक म शिक्षण के वाछित कौशल एक एक कर विकसित किये जाते हैं। अन्त म यह सब कौशल एक साथ जोड कर उसे प्रभावी रूप स शिक्षण करना सिखाया जाता है।

सूक्ष्म शिक्षण कोई ऐसा प्रत्यय नहीं जो कि एकदम नया हो। अपने दैनिक जीवन में बिना इसका अर्थ जानते हुए हम इसे प्रयोग में लाते रहते हैं। उदाहरण के लिए कोई भी व्यक्ति अपनी दुकान पर दर्जी के काम को सीख रहे बालक को पहिले इस काम के विभिन्न कौशल जैसे काज करना, बखिया करना, नाप के अनुसार कपड़ा काटना, मशीन में कपड़ा सीना आदि अलग-अलग सिखाता है। इसमें प्रशिक्षित होने के बाद ही एक दर्जी के रूप में कार्य करता है। अध्यापन भी विभिन्न शिक्षण-कौशलों का योग है। यदि इन कौशलों को एक एक कर छात्राध्यापक को उसमें दक्ष किया जाये तथा बाद में उसे कक्षा में अध्यापन के लिए भेजा जावे तो वह शिक्षण प्रक्रिया को शीघ्र समझ सकेगा तथा दक्षता प्राप्त कर लेगा।

सूक्ष्म-शिक्षण में निम्न अवधारणायें अन्तर्निहित हैं—

(1) यह एक वास्तविक शिक्षण है।

(2) इसमें शिक्षण परिस्थितियों का निर्माण कक्षा की तरह ही किया जाता है।

(3) इस शिक्षण में कक्षा शिक्षण की जटिलता नहीं है।

(4) इससे शिक्षणाभ्यास पर नियन्त्रण किया जाना सम्भव है।

(5) इसमें छात्राध्यापक का पृष्ठपोषण शीघ्रता से किया जा सकता है।

सूक्ष्म-शिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(Historical Background of Micro Teaching)

शिक्षण प्रशिक्षण में व्यापक सुधार लाने के लिए समय-समय पर प्रयोग होते रहे हैं। एक ऐसा ही प्रयोग अमरिका में "स्टेण्डफोर्ड शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम" (Standford Teacher Education Programme) के नाम से प्रारम्भ हुआ जिसमें अध्यापन में दक्षता प्राप्त करने वाले व्यक्ति को विद्यालयों में शिक्षक की देखरेख में अध्यापन करना पड़ता था। यद्यपि इससे छात्राध्यापक लाभान्वित होते थे, परन्तु इसमें निम्नांकित कमियाँ थी—

(1) शिक्षण में अभ्यास करने के लिए अधिक समय लगता था।

(2) छात्राध्यापक की त्रुटियों की जानकारी एवं सुधार करने में अध्यापक को अधिक समय लगता था। पूरे कालांश के समाप्त होने के बाद ही उसे यह बताया जाना सम्भव था।

(3) अध्यापक जो कि पहिले से ही शिक्षा के कार्यों से बोझिल था उस पर शिक्षक प्रशिक्षण का यह एक अतिरिक्त कार्य थोप दिया गया।

उक्त कमियों के कारण एक दूसरा प्रयोग प्रारम्भ किया गया। इसमें शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को आदर्श पाठ प्रदर्शन (Model Lesson Demons.-

tration) का प्रदर्शन किया जाता था। परन्तु एक पाठ का प्रदर्शन मात्र देखने मात्र से छात्राध्यापकों में शिक्षण-कौशल का विकसित होना संभव नहीं था। प्रदर्शन के द्वारा शिक्षण कला को देखा जाना ही संभव था। परन्तु शिक्षण कौशल का विकास देखने मात्र होकर करने में ही संभव था। अतः आदर्श पाठ का प्रदर्शन धीरे धीरे कम होता गया।

शिक्षक प्रशिक्षण का अधिक प्रभावशाली बनाने तथा प्रशिक्षण का वास्तविक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास बीसवीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुआ। 1961 में सर्वप्रथम स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के शोध छात्र केथ एचीसन (Kaeth Acheson) ने डॉ. रॉबर्ट बुश (Robert Bush) और डॉ. डी. डब्लू. एलेन (D Wight W Allen) के निर्देशन में कार्य करते हुए किया। जब एचीसन शोध कार्य में संलग्न था उसे ऐसे वीडियो टेप रिकार्डर के बारे में जानकारी मिली जो कि आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता था। उन्होंने इसका उपयोग शिक्षण कौशल के विकास में किया।

एचीसन ने एक नवीन प्रशिक्षण योजना की संरचना की जिसके अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थियों को संक्षिप्त अध्यापन अभ्यास कराया जाता था। यह संक्षिप्त अध्यापन लघु अवधि अर्थात् 5 6 मिनट का था जिसमें अन्य छात्राध्यापक विद्यार्थी की भूमिका निभाते थे। इनमें एक छात्राध्यापक अच्छे विद्यार्थी की भूमिका, दूसरा कमजोर विद्यार्थी, तीसरा छात्राध्यापक ध्यानमग्न रहने वाला तथा चौथा सब कुछ जानने वाले विद्यार्थी की भूमिका निभाता था। इस प्रकार यह एक अभिनय (Role Playing) था। एचीसन को अपने इस प्रयोग में सफलता प्राप्त नहीं हुई, कारण कि यह सब एक नाटक था जिसमें न तो प्रशिक्षणार्थी को वास्तविक शिक्षण का अवसर मिल पाता था और न ही वह अपनी कमियों को विद्यार्थियों से बनावटी प्रतिक्रिया कर ज्ञात कर पाता था। इससे शिक्षण कौशल को सीखने के बजाय उलझनें अधिक पैदा हुई।

एचीसन ने अपनी योजना में एक परिवर्तन किया उसने प्रशिक्षणार्थी अध्यापक से लघु अवधि के पाठ 5 6 विद्यार्थियों से पढ़वाये तथा इस व्यवहार को वीडियो टेप द्वारा रिकार्ड किया। उसका अनुमान था कि इससे प्रशिक्षणार्थी अध्यापक को उसके कक्षागत व्यवहारों को देखने तथा स्वयं अपनी कमियां निकालने में मदद मिलेगी। पर्यवेक्षक का कार्य भी आसान हो जायगा।

एचीसन ने इस नवीन योजनानुसार छात्र अध्यापकों के शिक्षण व्यवहार में सुधार लाने के लिए प्रयोग शुरू किए। इसमें बीकन लाइट विद्यालय (Beacon Light School) में किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है। इस विद्यालय में प्रशिक्षणार्थी अध्यापकों के अध्यापन पाठों का वीडियो रेकार्डिंग कर यह टेप स्टेनफोर्ड विश्व

विद्यालय में प्राध्यापकों तथा शोध छात्रों को दिखाया जाता था। जो कि प्रशिक्षणार्थी के अध्यापन व्यवहार का विश्लेषण करते थे। इस टेप को प्रशिक्षणार्थी को दे दिया जाता था। जिससे कि वह अपने अध्यापन कार्य का स्वयं देख सके। इस प्रकार यह पाया गया कि अध्यापन व्यवहार में सुधार लाने में वीडियो टेप बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुए।

1963 में प्रथम सूक्ष्म-अध्यापन पाठ प्रारम्भ हुए। प्रारम्भ में प्रशिक्षणार्थी जो चाहे इस विषय या प्रकरण पर एक लघु पाठ साधारण स्तर के विद्यार्थियों को पढ़ता था। पाठ की समाप्ति पर प्रशिक्षणार्थी का पृष्ठपोषण उसकी कमियों को बताते हुए किया जाता था। इस प्रशिक्षणार्थी को यही पाठ दुबारा पढ़ाना होता था। हर बार पाठ के अन्त में उसकी त्रुटियां उसे बताकर उसके शिक्षण व्यवहार में सुधार लाने का प्रयास तब तक किया जाता था जब तक कि वह अच्छे स्तर का अध्यापन न करने लगे।

इसी समय एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य हॉरेस आबर्टिन (Horace Aubertine) ने किया। अब तक किये जा रहे सूक्ष्म-अध्यापन में "कैसे पढ़ावें" से सम्बन्धित ज्ञान परिवीक्षक द्वारा पूर्व में नहीं दिया जाता था। प्रशिक्षणार्थी आदर्श-अध्यापन की स्थिति स्पष्ट न होने के कारण भ्रमित रहते पाये गये। आबर्टिन ने अध्यापन कौशल पर, वास्तविक सूक्ष्म-अध्यापन से एक दिन पूर्व, प्रशिक्षणार्थियों का शिक्षण किया। दूसरे दिन इन्होंने सूक्ष्म अध्यापन किया। उन्होंने अपने शोध-अध्ययन में यह पाया कि प्रशिक्षणार्थियों का ध्यान यदि अध्यापन कौशल पर पूर्व में केन्द्रित कर दिया जावे अथवा उन्हें इसकी जानकारी सूक्ष्म अध्यापन पाठ पढ़ाने से पूर्व में दी जावे तो अध्यापन कौशल का विकास प्रभावशाली रूप से होता है[1]। अतः यह निर्णय लिया गया कि नव प्रशिक्षणार्थियों को वास्तविक अध्यापन से पूर्व शिक्षण कौशल में प्रशिक्षण सूक्ष्म अध्यापन द्वारा दिया जावे।

सन 1967 में सन जोस राज्य विश्वविद्यालय (San Jose State University) में एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग हुआ। यह प्रयोग डब्ल्यू क्लेनबेक (W Kllenbach) ने सूक्ष्म अध्यापन की प्रभावशीलता ज्ञात करने के लिए किया। उसने प्राथमिक स्तर के प्रशिक्षणार्थी अध्यापकों के दो समूह बनाये। एक समूह को सूक्ष्म-अध्यापन-विधि से तथा दूसरे समूह का परम्परागत विधि से प्रशिक्षण दिया गया। यद्यपि इन दोनों प्रशिक्षण-समूहों में अध्यापन-कौशल तथा अध्यापन योग्यता के विकास के स्तर में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया, परन्तु सूक्ष्म-अध्यापन विधि द्वारा समूह के

1 Aubertine Horace E An Experiment in the s t luduction Process in Microteaching Edited by Dwight Alen and Kevin Ryan Addison Wesley Publishing Company 1969 P 13

प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षित करने में बहुत कम समय लगा। इसके विपरीत परम्परागत विधि में प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षण कौशल को सीखने में अधिक समय लगा। लगभग 80 प्रतिशत प्रशिक्षणार्थी सूक्ष्म-अध्यापन विधि से अच्छे स्तर का अध्यापन-कौशल शीघ्र प्राप्त कर सके। इस प्रकार कोलिन वर्क ने सूक्ष्म-अध्यापन विधि को समय बचत दृष्टि से एक प्रभावशाली विधि पाया।

सूक्ष्म अध्यापन की तकनीक जो कि स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय (Stanford University) में 1961 में प्रारम्भ हुई तथा इसका नामकरण 1963 में हुआ, प्रभावशाली विधि पाये जाने के कारण इसका उपयोग अमेरिका तक ही सीमित न रह कर पूरे विश्व में फैल गया। भारत में इस पर प्रयोग 1970 में प्रारम्भ हुआ है। राजस्थान राज्य में इस पर महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य हुए हैं तथा राज्य के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इसका लाभ शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को दिया जा रहा है।

अध्यापन-कौशल

(Teaching Skills)

अध्यापन कौशल से तात्पर्य शिक्षक के उन कक्षागत् व्यवहारों से है जो कि बालक को अधिगम क्रिया को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करते हैं।[1] एक सफल अध्यापन के लिए शिक्षक में कौन कौन से अध्यापन कौशल होने चाहिए, इस दिशा में समय-समय पर अनेक प्रयास हुए हैं। एलन तथा रियान (Allen & Ryan) ने सर्वप्रथम 14 शिक्षण कौशल निम्न प्रकार से वर्गीकृत किए—

(1) नियोजित अभिप्रेरण (Set Induction)

(2) उद्दीपन परिवर्तन (Stimulus Variation)

(3) संपूर्ति (Closure)

(4) मौन तथा अशाब्दिक संकेत (Silence and Non Verbal Cues)

(5) पुनर्बलन (Reinforcement)

(6) खोज प्रश्न (Probing Questions)

(7) पूरक व्यवहार की मान्यता (Recognising Attending Behaviour)

(8) उदाहरण एवं प्रदर्शन का उपयोग (Use of Illustrations and Examples)

(9) व्याख्यान (Lecturing)

(10) नियोजित की पूर्णता (Planned Repetition)

(11) सम्प्रेषण की पूर्णता (Completeness of Communication)

1 Allen D W and Rayan K A Microteaching Addison wesley Reading Massachusetts California 1969

(12) प्रश्नो का प्रवाह (Fluency in Questioning)
(13) अपसारी प्रश्न (Divergent Questions)
(14) उच्च स्तरीय प्रश्नो का उपयोग (Use of Higher Order Questions)।

स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रतिपादित शिक्षण कौशलो का वर्गीकरण केवल विश्वविद्यालय शिक्षको के विचार विमर्श के आधार पर किया गया। इनकी पृष्ठभूमि म कोई तार्किक आधार नही था न ही ये शोध कार्यों पर आधारित थे। एलन तथा रियान का अनुमान था कि ये कौशल शिक्षक के प्रशिक्षण मे महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगे।

ए एन फ्लेण्डर्स (A N Flanders) ने 1955 से 1960 तक "कक्षा-व्यवहार मूल्याकन की दिशा मे महत्त्वपूर्ण प्रयास किये। उसके अनुसार कक्षा मे शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य अधिकतर व्यवहार शाब्दिक होता है जिसमे या तो शिक्षक बोलता है या फिर शिक्षार्थी बोलता है। उसने कक्षा व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन कर सम्पूर्ण शाब्दिक व्यवहार को निम्नाकित तीन भागो म विभक्त किया—

(1) शिक्षक-कथन (Teacher Talk)
(2) शिक्षार्थी-कथन (Pupil Talk)
(3) मौन या विभ्रान्ति (Silence Or Confusion)।

फ्लेण्डस ने 1973 म अन्त क्रिया विश्लेषण के आधार पर उनको शिक्षण म विभाजित किया।

सूक्ष्म-शिक्षण का अर्थ एव परिभाषायें
(Meaning and Definition of Micro Teaching)

सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षण का एक लघु रूप है। यह एक प्रयोगशालीय विधि है जिसके माध्यम से शिक्षक प्रशिक्षणार्थियो म शिक्षण कौशल विकसित किए जाते हैं। शिक्षण को यहा कई शिक्षण कौशलो का योग माना गया है। प्रशिक्षणार्थी को ये शिक्षण कौशल नियन्त्रित वातावरण म एक एक करके सिखाये जाते हैं। वह इन सभी कौशलो को सीख लेता है, तब इन्हे वह आवश्यकतानुसार जोड कर पूरा शिक्षण करता है। यही कारण है कि इसे "अनुक्रम-अवरोही शिक्षण सम्पर्क" (Scaled Down Teaching Encounter) कहा गया है। इससे प्रशिक्षणार्थी को अध्यापन कौशल प्राप्त करने म बडी सहायता मिलती है। इसको विभिन्न शिक्षाविदो ने निम्न प्रकार मे परिभाषित किया है।

(1) एलन[1] (Allen)

> "सूक्ष्म शिक्षण कक्षा आकार, पाठ की विषयवस्तु, समय तथा शिक्षण की जटिलता को कम करने वाली सक्षिप्तीकृत कक्षा शिक्षण विधि है।"

1 Allen Dwight W Microteaching A Description Standford University School of Education Publication 1967

(2) पक व टूकर (Pack & Tucker)

"सूक्ष्म शिक्षण एक व्यवस्थित प्रणाली है जिसमे शिक्षण कौशलो की सूक्ष्मता से पहिचान की जाती है तथा पृष्ठपोषण द्वारा शिक्षण कौशलो का विकास किया जाता है।'

(3) बुश[1] (Bush)

"सूक्ष्म शिक्षण अध्यापन शिक्षा की वह प्रविधि है, जो शिक्षक को स्पष्ट रूप से परिभाषित शिक्षण कौशलो के आधार पर निर्मित लघु पाठ को कुछ छात्रों को पढाने का अवसर प्रदान करती है।"

(4) मक कालम (Mc Collum)

"सूक्ष्म-शिक्षण अध्यापनाभ्यास से पूर्व शिक्षक प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण कौशल को प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है। यह विधि सेवा पूर्व या सेवारत शिक्षको को शिक्षण कौशल के विकास या सुधार करने मे काम मे ली जाती है।"

(5) मक्लीज व अनविन[2] (Mc Cleese and Unwin)

'सूक्ष्म-अध्यापन कृत्रिम वातावरण मे अध्यापन का एक रूप है जो शिक्षण की जटिलताओ का कम करता है तथा पृष्ठपोषण प्रदान करता है।"

सूक्ष्म-शिक्षण मे अन्तर्निहित सिद्धान्त

(Principles Underlying Micro teaching)

सूक्ष्म शिक्षण मूलत इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षण प्रक्रिया को अनेक व्यवहारो म विभक्त किया जा सकता है। इन कक्षागत शिक्षक व्यवहारो को शिक्षण कौशल कहते है। शिक्षण कौशल को नियन्त्रित वातावरण मे विकसित किया जाना सम्भव है। यहा शिक्षण को एक जटिल प्रक्रिया मानते हुए अनेक शिक्षण कौशलो का योग माना गया है।

सूक्ष्म शिक्षण इस तथ्य पर भी आधारित है कि शिक्षण प्रक्रिया को सरल प्रक्रिया मे विभक्त कर उनका एक एक करके वाँछित कौशलो को विकसित किया जा सकता ह। इन सब कौशलो को जब अलग अलग विकसित कर लिया जाता है तब इन्हे एक साथ जोड कर पूर्ण शिक्षण किया जा सकता ह तथा पूर्व निर्धारित शिक्षण उद्देश्यो की प्राप्ति की जा सकती ह।

1 Bush Robert N and Others Microteaching Controlled Practices in the Training of Teachers quoted from Allen & Ryan Microteaching London Addison Wesley Publishing Co 1969 P 123

2 Mc Cleese W R and Unwin D Microteaching A Selective Survey Programmed Learning and Educational Technology Vol 8 1971 P 10—21

यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचा जाय तो सूक्ष्म शिक्षण स्किनर[1] द्वारा प्रतिपादित अधिगम सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अनुकूल व्यवहार प्रदर्शित करता है तथा इस व्यवहार के प्रदर्शन करने के तुरन्त बाद उसका पृष्ठपोषण कर दिया जावे तो व्यवहार के पुन प्रकट होने की सम्भावनाएं बढ जाती है। इसके विपरीत यदि प्रदर्शित व्यवहार को पुनर्बलित नही किया जाता तो प्राणी मे व्यवहार पुन प्रकट करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है तथा धीरे धीरे यह समाप्त हो जाती है। इस सिद्धान्त का उपयोग सूक्ष्म शिक्षण मे प्रशिक्षणार्थी को वीडियो टेप द्वारा अथवा परिवीक्षक द्वारा उसके अध्यापन के तुरन्त बाद किया जाता है। चूँकि यहा पाठ 5 से 10 मिनट का होता है अत व्यवहार के पृष्ठपोषण मे अधिक समय नही लगता।

सूक्ष्म शिक्षण मे प्रशिक्षणार्थी के श्रम एव समय की बचत भी होती है। चूँकि यहा पर शिक्षण-कौशल को अलग-अलग समझाया जाता है तथा उसका अलग से अभ्यास भी कराया जाता है अत वह साधारण शिक्षण अभ्यास की तुलना मे शीघ्र से शिक्षण-कौशलो को अर्जित कर लेता है।

सूक्ष्म-शिक्षण के आधार
(Bases of Micro Teaching)

एलन और रेयन[2] (Allen & Ryan) ने सूक्ष्म शिक्षण के निम्न पाच आधार बताये हैं—

(1) सूक्ष्म शिक्षण वास्तविक शिक्षण है यद्यपि शिक्षण की परिस्थितिया का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि अध्यापक तथा शिक्षार्थी अध्यापन के अभ्यास मे साथ साथ कार्य करते हैं तभी वास्तविक शिक्षण सम्पादित होता है।

(2) सूक्ष्म शिक्षण मे कक्षा का आकार विषय-वस्तु की मात्रा जो कि पढाई जानी है अध्यापक समय आदि को कम करके सामान्य शिक्षण की जटिलताओ को न्यून कर दिया जाता है।

(3) सूक्ष्म शिक्षण के मुख्य केन्द्र विशिष्ट कार्य को पूरा करने का प्रशिक्षण देना है। ये विशिष्ट कार्य शिक्षण कौशल को सीखना किसी अध्यापन विधि का अभ्यास करना, प्रदर्शन करना, सीखना आदि मे से कुछ भी हो सकता है।

(4) इस प्रविधि मे पृष्ठ पोषण का उपयोग किया जाता है। इस साधारण भाषा मे व्यवहार के सही प्रदर्शन करने का ज्ञान देना भी कहते है।

1 Allen D W & Ryan K A Op cit P 2

ज्यों ही प्रशिक्षणार्थी सूक्ष्म-अध्यापन समाप्त करता है उसके साथी अध्यापक तथा निरीक्षक उसके अध्यापन पर चर्चा करते हैं। यदि सम्भव हो तो उसका वीडियो टेप भी दिखाया जाता है जिससे प्रशिक्षणार्थी को अपनी अच्छाइयों एवं त्रुटियों दोनों का ज्ञान होता है।

(5) सूक्ष्म शिक्षण में प्रशिक्षण प्राप्ति के तीन स्तर क्रमशः ज्ञान प्राप्त करने का स्तर, कौशल अर्जित करने का स्तर तथा स्थानान्तरण स्तर हैं। इस प्रविधि में अध्यापन व पुनः अध्यापन की शृंखला चलती है इसमें प्रशिक्षणार्थी में कौशल का स्थानान्तरण शीघ्रता से होता है।

मेयर[1] (Meier) ने सूक्ष्म-अध्यापन के विश्लेषण के निम्न आधार प्रस्तुत किये हैं—

(1) प्रशिक्षणार्थी की क्षमताओं को ध्यान में रख कर उससे अध्यापन-कार्य कराया जाना चाहिये।

(2) प्रशिक्षणार्थी को पढ़ाने के लिए आंतरिक रूप से प्रेरित करना चाहिये।

(3) सूक्ष्म अध्यापन के बाद प्रशिक्षणार्थी के अध्यापन कार्य पर विचार विमर्श करते समय उसकी अच्छाइयाँ तथा कमियाँ दोनों ही बतायी जाना चाहिये।

(4) एक समय में बहुत सारे सुधार प्रशिक्षणार्थी में लाने का प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिये।

(5) प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण व्यवहार में सुधार लाने के लिए उनका सक्रिय होना आवश्यक है।

(6) प्रशिक्षणार्थी को परिणाम की जानकारी देने से वे शीघ्रता से सीखते हैं।

सूक्ष्म-शिक्षण व्यवस्था के पद
(Steps of Micro Teaching)

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, सूक्ष्म शिक्षण में प्रशिक्षणार्थी से सरल तम स्थितियों में अध्यापन कार्य कराया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि कक्षा का आकार छोटा, विषय वस्तु की मात्रा, कम तथा अध्यापन कार्य लघु अवधि के लिए कराया जाता है। सूक्ष्म शिक्षण की प्रक्रिया में निम्नलिखित पद हैं—

(1) सर्वप्रथम अध्यापक प्रशिक्षणार्थियों को सूक्ष्म शिक्षण का अर्थ समझाता है तथा उसका व्यावहारिक ज्ञान देता है।

1 Meier J H Rationale for and Application of Micro training to Improve Teaching Journal of Teacher Education, 19 147 157, 1968

(2) सूक्ष्म-अध्यापन म शिक्षण कौशल का सद्धान्तिक ज्ञान अभ्यास करने से पूर्व दिया जाता है तथा इन कौशलो म अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो को स्पष्ट करता है।

(3) अध्यापक, प्रशिक्षणार्थियो का "आदर्श पाठ" के माध्यम स शिक्षण कौशल व्यवहारो का प्रदर्शन करता है।

(4) इस आदर्श पाठ की कमियो तथा विशेषताओ पर विचार विमर्श किया जाता है।

(5) प्रशिक्षणार्थियो स सूक्ष्म शिक्षण की पाठ-योजनायें प्रत्येक शिक्षण-कौशल के लिए अलग अलग बनाई जाती है।

(6) अध्यापक इन सूक्ष्म पाठ योजनाओ म आवश्यकतानुसार सुधार करता है।

(7) प्रशिक्षणार्थी एक कौशल पर सूक्ष्म पाठ पढाता है जिसे यदि सम्भव हो तो वीडियो टेप कर लिया जाता है। इस शिक्षण पद कहते हैं।

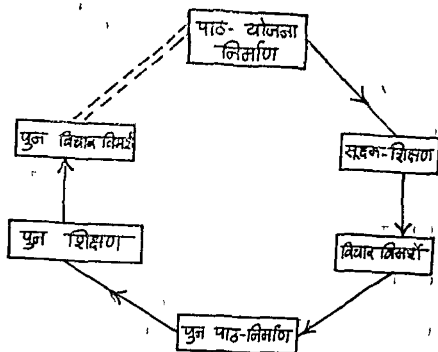
(8) सूक्ष्म पाठ के तुरन्त बाद पढाये गय पाठ पर आपसी विचार विमर्श कर उसकी अच्छाइया तथा कमिया ज्ञात की जाती ह। कमियो को दूर करने क लिए प्रशिक्षणार्थी स पाठ के पुन निर्माण किये जाने हेतु कहा जाता है। यह मूल्यांकन-पद कहलाता है।

इसके बाद प्रशिक्षणार्थी का दुबारा पाठ पढ़ाना पडता ह, उसकी कमिया पुन निकाली जाती हैं तथा प्रशिक्षणार्थी इन कमियो का दूर करने का प्रयास करता ह। यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि वह एक कौशल को पूरा नही सीख लेता। इसके बाद वह दूसरा कौशल सीखता है।

सूक्ष्म-शिक्षण-चक्र

सूक्ष्म शिक्षण का उद्देश्य प्रशिक्षणार्थी का शिक्षण म पूर्ण प्रशिक्षण देना है। यह प्रशिक्षण बिना अभ्यास एव पृष्ठपोषण के सम्भव नही ह। अत जसे ही प्रशिक्षणार्थी पाठ योजना प्रस्तुत करता है, परिवीक्षक तथा अन्य प्रशिक्षणार्थी उसकी कमिया तथा अच्छाइया का लिखत ह। प्रस्तुतिकरण के पश्चात् इस पर खुली चर्चा होती ह। इस चर्चा के आधार पर प्रशिक्षणार्थी का पुन पाठ निर्माण कर उसी समय दुबारा पढाने को कहा जाता है तथा यह क्रम तब तक चलता रहता ह जब तक कि वह शिक्षण कौशल का पूर्ण रूप स अपने अन्दर विकसित न कर ले। इस सूक्ष्म शिक्षण चक्र कहते है।

सूक्ष्म शिक्षण की अवधि कितनी हो, इस सम्बन्ध म अलग अलग मत है, एलन तथा रेयन (Allen and Ryan) के अनुसार एक प्रशिक्षणार्थी को सप्ताह मे



दो बार अध्यापन करने का अवसर मिलना चाहिये। इनके अनुसार सूक्ष्म शिक्षण चक्र में लिये जाने वाला समय निम्न प्रकार से होना चाहिये—

सूक्ष्म शिक्षण	5 मिनट
सूक्ष्म शिक्षण पाठ पर चर्चा	10 मिनट
पाठ का पुन निर्माण	15 मिनट
पुन शिक्षण	5 मिनट
पुन शिक्षण पाठ पर चर्चा	10 मिनट

इस प्रकार सूक्ष्म शिक्षण चक्र का समय 45 मिनट का निर्धारित किया गया है। उपरोक्त लिखित समय विभाजन में परिवर्तन किया जा सकता है।

पासी[1] (Passi) ने सूक्ष्म-अध्यापन-अवधि का निर्धारण निम्न प्रकार से किया है—

सूक्ष्म शिक्षण—5 से 10 मिनट
सूक्ष्म शिक्षण पाठ पर चर्चा—10 से 15 मिनट
पाठ का पुन निर्माण—सुविधानुसार
पुन शिक्षण—5 से 10 मिनट
पुन शिक्षण पर चर्चा—10 से 15 मिनट।

1 Passi B K Becomming Better Teacher Sahitya Mudranalaya Ahmedabad P 33

सूक्ष्म-शिक्षण एव परिवीक्षक
(Micro teaching and Supervisor)

सूक्ष्म शिक्षण म परिवीक्षक आश्यक रूप स एक अध्यापक ही होना चाहिए। चू कि उसका प्रमुख कर्त्तव्य प्रशिक्षणार्थियो म शिक्षण कौशलो का विकास करना तथा उसका परिमार्जन करना हाता है। उसके दोहरे दायित्व हैं। प्रथम तो वह प्रशिक्षणार्थी का कौशल को समझने तथा प्रदर्शित करने म सहायता प्रदान करता है तथा दूसरा यह कि वह उसका मूल्यांकन करता है। प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण-कौशल का सिखाने तथा प्रयोग म लान के लिए उस धयपूवक काय करना होता है।

सूक्ष्म पाठ का मूल्यांकन करते समय परिवीक्षक को यह काय निष्पक्षता पूवक करना चाहिए। शिक्षण-कौशल से सम्बन्धित व्यवहार की उस न केवल जानकारी ही होनी चाहिए अपितु उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि इन कौशलो का कक्षा मे किस प्रकार तथा किस समय उपयोग किया जाता है।

सूक्ष्म-शिक्षण का महत्त्व
(Importance of Micro teaching)

शिक्षण को सीखने के सदभ म ब्राउन[1] (Brown) लिखते है कि जम्बोजेट को हवा म उडाना या हृदय का आपरेशन करने के लिए बहुत से कौशल की आवश्यकता हाती है। कोई भी विद्यालय, महाविद्यालय अथवा प्रशिक्षण केन्द्र आधारभूत कौशल म प्रशिक्षण दिये बिना किसी व्यक्ति को जम्बोजट के उडान या हृदय का आपरेशन करन की अनुमति नही देगा। ठीक उसी प्रकार शिक्षण भी कई कौशलो का समूह है जिनका सिखाया जाना भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है। इस शिक्षण कौशल को अलग अलग रूप म प्रशिक्षणार्थियो को सिखाया जा सकता है।

सूक्ष्म अध्यापन पर हुए शोध कार्यों स यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिक्षको के प्रशिक्षणार्थ यह एक प्रभावी विधि है। पासी और शाह[2] (Passi & Shah) न सूक्ष्म अध्यापन पर हुए शोध कार्यों का एक सर्वे किया। उन्हाने निष्कर्ष रूप म लिखा है कि "विद्यालयो म अच्छे प्रशिक्षित अध्यापको की आवश्यकता है। व यह नही चाहत कि उनके बच्चो के साथ अप्रशिक्षित एव नए अध्यापको द्वारा पशु जसा व्यवहार किया जाव। इनका यह महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति प्रशिक्षण प्रक्रिया रा शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयो म प्रभावी बनाकर किया जा सकता है। सूक्ष्म-अध्यापन इस सन्दभ म उपयोगी सिद्ध हो सकता है।"

---

1 Brown, G Microteaching A Programme of Teaching skills Methuen and Co Ltd London 1975

2 Passi B K and Shah M M Micro teaching in Teacher Education Centre of Advanced Studies in Education Baroda P 29

सूक्ष्म शिक्षण मे अधोलिखित विशेषताएँ है—

(1) शिक्षण कौशल का विधिवत् प्रशिक्षण

सूक्ष्म शिक्षण इस अवधारणा पर आधारित है कि अध्यापन अनेक शिक्षण कौशलो का समूह है। इन कौशलो म यदि एक कौशल का प्रशिक्षण प्रशिक्षणार्थियो को दिया जावे तो वे अच्छे स्तर का शिक्षण कौशल अर्जित कर सकेंगे। सूक्ष्म शिक्षण म प्रत्येक शिक्षण कौशल के बारे म सोचने, समझने तथा उसे व्यवहार म लाने का पूरा-पूरा अवसर प्रशिक्षणार्थी को मिलता है। परम्परागत शिक्षण म प्रशिक्षणार्थी का ऐसा अवसर नही मिलता।

(2) समय की बचत

सूक्ष्म-अध्यापन म शिक्षण-कौशल का अलग अलग सिखाये जाने स प्रशिक्षणार्थी को यह शीघ्रता से समझ म आ जाते है तथा उसकी अधिगम प्रक्रिया म इससे तीव्रता आ जाती है। कलेनबाक तथा गाल[1] (Kallanbach and Gall) ने एक शोध कार्य "सूक्ष्म अध्यापन एव परम्परागत प्रशिक्षण के प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन" किया। इन्होने 19 विद्यार्थियो को सूक्ष्म शिक्षण द्वारा तथा 18 विद्यार्थियो को परम्परागत तरीके से अध्यापन कार्य मे प्रशिक्षण दिया। उन्होने यह पाया कि सूक्ष्म शिक्षण समूह के विद्यार्थी दूसरे समूह की तुलना मे शीघ्रता से अच्छे स्तर का शिक्षण कार्य सीख गये। सूक्ष्म शिक्षण मे प्रशिक्षण के लिए लिया गया समय परम्परागत शिक्षण द्वारा लिए गये समय का मात्र पाचवाँ भाग ही था। यह इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि सूक्ष्म शिक्षण, प्रशिक्षणार्थियो को शिक्षण कला म शीघ्रता से प्रशिक्षित करने वाली विधि है।

(3) प्रतिपुष्टि सम्भव

सूक्ष्म शिक्षण एक लघु पाठ विधि है। इसम शिक्षक प्रशिक्षणार्थी को कम समय मे एक पाठ पढाना होता है। परिवीक्षक तथा अन्य प्रशिक्षणार्थी इस सूक्ष्म पाठ का अवलोकन कर इसका मूल्याकन करते है। सूक्ष्म पाठ देने वाले प्रशिक्षणार्थी को उसकी अच्छाइयो एव कमियो की जानकारी शीघ्र मिल जाती है जिनका वह सुधार कर लेता है। परम्परागत शिक्षक प्रशिक्षण विधि म सब कौशल एक साथ लिए जाते है अत इनका अवलोकन एव प्रतिपुष्टि अपेक्षाकृत जटिल है। प्रतिपुष्टि किये जाने के लिए प्रशिक्षणार्थी द्वारा स्व मूल्यांकन को श्रेष्ठ माना गया है। प्रशिक्षणार्थी अपने पाठ की वीडियो फिल्म को देखकर यदि अपना मूल्यांकन स्वय करें तो यह अन्य प्रकार के मूल्यांकन से अच्छा होता है। टकमेन और ओलिवर[2] (Tuckman and Oliver) द्वारा किए गये शोध कार्य का भी यह शोध निष्कर्ष है।

---

1 Kallenbach W W and Gall M D Micro teaching Versus Conventional Methods in Training Elementary Intern Teachers Journal of Educational Research 63 1-61 41 1969

2 Tuckman B W and Oliver W F Effectiveness of feedback to teachers as a Function of Source Journal of Educational Psychology 59 297 301 1968

(4) नवीन तकनीकी का शिक्षण मे उपयोग

सूक्ष्म शिक्षण नवीन तकनीकी का शिक्षक प्रशिक्षण म पूव उपयाग किये जाने का पूण अवसर प्रदान करता है। सूक्ष्म शिक्षण मे शिक्षण व्यवहार को अलग अलग कौशल म विभक्त कर उस पर पाठ बनाये जाकर उसकी फिल्म बनाई जा सकती है जिसका देखन स प्रशिक्षणार्थी शिक्षण कौशल की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त कर सकते है।

(5) अनवरत प्रशिक्षण का एक साधन

कक्षा म अध्यापन करते करते कुछ वर्षा बाद ऐसा समय भी आता है जब अध्यापक की काय सम्पादन क्षमता म स्थायित्व आ जाता है तथा वह धीरे धीरे परम्परागत शिक्षण विधियों से पढाने लगता है। इसी प्रकार शोध-कार्यों के परिणाम स्वरूप कुछ नई विधिया की खोज हाती हे जिसम अध्यापक को पुन प्रशिक्षित किये जाने की आवश्यकता पडती है। इस पुन प्रशिक्षण क काय का अनेक प्रभावशाली तरीको से किया जा सकता है उसम सूक्ष्म शिक्षण भी एक है। नए अध्यापन कौशल का विकास इसकी सहायता स शीघ्रता से किया जा सकता है।

(6) परिवीक्षण को सरल बनाना

सूक्ष्म शिक्षण के द्वारा परिवीक्षण का काय सरल बन जाता ह। चूँकि सूक्ष्म शिक्षण म शिक्षण कौशल स सम्बन्धित व्यवहार सुपरिभाषित है तथा इसकी जानकारी परिवीक्षक तथा प्रशिक्षणार्थी दोना का है अत अपेक्षित व्यवहार का प्रदशन समयानुकूल एव प्रभावी रूप स अध्यापन के समय प्रशिक्षणार्थी ने किया अथवा नही, यह ज्ञात किया जाना बहुत आसान हो जाता है।

चूँकि सूक्ष्म अध्यापन की अवधि कम समय की हाती है अत इसका परिवीक्षण अधिक वस्तुनिष्ठ तथा ठोस आधार लिए हुए होता है। परिवीक्षक का पाठ का अवलोकन करने म थकान महसूस नही हाती है।

(7) शिक्षण पर शोध किये जाने का उत्तम साधन

सूक्ष्म शिक्षण क अनेक घटक ऐस हैं जा कि इस शिक्षण स सम्बन्धित शोध करने के लिए एक महत्त्वपूण प्रविधि बनाते ह। इस प्रविधि म शोधकत्ता कुछ महत्त्वपूण घटक जसे शिक्षण पर दिया गया समय, पढाये जाने वाली पाठ्य वस्तु की मात्रा, शिक्षण की तकनीक आदि पर नियन्त्रण पाया जा सकता है अर्थात् इनको कम या अधिक किया जा सकता है तथा इससे शिक्षण की जटिलताओ का भली भाँति समझा जा सकता है।

इस प्रकार सूक्ष्म शिक्षण एक महत्त्वपूण प्रशिक्षण विधि है जो प्रशिक्षणार्थियो क प्रशिक्षण तथा कायरत अध्यापको के पुन प्रशिक्षण म महत्त्वपूण भूमिका अदा करती ह।

सूक्ष्म-शिक्षण के लाभ

सूक्ष्म अध्यापन के निम्नलिखित लाभ हैं—

(1) यह अध्यापन व्यवहार पर आधारित विधि है।

(2) सूक्ष्म अध्यापन, विशेष प्रकार से प्रयोग की गई अथवा प्रभावशाली रूप से प्रशिक्षणार्थियों का प्रशिक्षण करती है।

(3) प्रशिक्षणार्थी जब स्वयं द्वारा पढ़ाए गए पाठ की वीडियो फिल्म देखते हैं अथवा उसके बारे में अपने साथियों से सुनते हैं तो उन्हें सन्तोष प्राप्त होता है।

(4) सूक्ष्म-अध्यापन शिक्षण की जटिलता को कम कर देता है।

(5) सूक्ष्म शिक्षण द्वारा प्रशिक्षणार्थी को प्रतिपुष्टि शीघ्रता से होती है।

(6) इस विधि से प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण प्रक्रिया को बारीकी से समझने का अवसर मिलता है।

(7) सूक्ष्म शिक्षण शिक्षण कौशल के विश्लेषण का अवसर प्रदान करता है।

(8) यह एक प्रभावशाली विधि है।

(9) सूक्ष्म शिक्षण की सहायता से परिवीक्षण कार्य व्यवस्थित रूप से करने का अवसर प्राप्त होता है।

(10) यह विधि व्यक्तिगत शिक्षण पर बल प्रदान करती है।

(11) सूक्ष्म शिक्षण से प्रशिक्षणार्थी के श्रम व समय दोनों की बचत होती है।

(12) सूक्ष्म शिक्षण व्यवहार का लेखा-जोखा रखा जाता है जिससे शिक्षण प्रक्रिया का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है।

सूक्ष्म-शिक्षण की सीमायें

सूक्ष्म शिक्षण की निम्नलिखित सीमाएँ हैं—

(1) साधनों का सामान्यतः अभाव होने के कारण सूक्ष्म शिक्षण में वीडियो फिल्म जो कि सर्वाधिक प्रभावी है, का प्रयोग किया जाना सम्भव नहीं है।

(2) सूक्ष्म शिक्षण का उपयोग करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है। ऐसे अध्यापकों की कमी है।

(3) सूक्ष्म शिक्षण के लिए अनेक कक्षा कक्षों की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त सीमाओं के होते हुए भी सूक्ष्म अध्यापन के महत्त्व को अस्वीकारा नहीं जा सकता। इसका उपयोग शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में आवश्यक रूप से किया चाहिए। सूक्ष्म शिक्षण विधि जिसका प्रारम्भ 1961 में हुआ, धीरे धीरे

अत्यधिक लोकप्रिय हो गई। इसकी प्रभावशीलता के बारे में वार्ड[1] (Ward) लिखते हैं कि 1969 तक अमेरिका के 141 महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों में माध्यमिक शिक्षा के प्रशिक्षण में इसका उपयोग प्रारम्भ कर दिया। भारत में भी इस पर महत्त्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं तथा इस विधि को प्रभावशाली प्रशिक्षण विधि पाया गया है। राजस्थान राज्य के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण के लिए इसका उपयोग किया जा रहा है।

सारांश—शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है यदि अध्यापक को इस प्रक्रिया में अन्तर्निहित विभिन्न शिक्षण कौशलों को, अलग-अलग सिखाया जावे तथा इसके उपरान्त इन्हें समग्र रूप से उपयोग में लाये जाने का अभ्यास कराया जावे तो वह इसे शीघ्रता से अर्जित कर सकेगा। सूक्ष्म-अध्यापन इसी सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें शिक्षण के वांछित कौशल एक-एक करके विकसित किए जाते हैं तथा अन्त में इन्हें एक साथ उपयोग करना सिखाया जाता है।

शिक्षण प्रशिक्षण में सुधार लाये जाने हेतु सर्वप्रथम इसका उपयोग स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रारम्भ हुआ। अध्यापक को उसकी विडियो फिल्म दिखाकर उसे अपनी शिक्षण-कला का स्वयं विश्लेषण करने का अवसर दिया गया जो कि शिक्षण व्यवहार में सुधार लाने हेतु बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। सूक्ष्म अध्यापन में इसी प्रयोग का संशोधित रूप में अनुसरण किया जाता है।

सूक्ष्म अध्यापन के समय अध्यापक के सम्मुख एक छोटी कक्षा होती है जिसमें 5 से 10 तक विद्यार्थी या अन्य प्रशिक्षणार्थी होते हैं। अध्यापक (पाठ योजना का निर्माण करने के उपरान्त) किसी एक शिक्षण-कौशल का अभ्यास 5 मिनट की अवधि के लिए करता है। अध्यापन के बाद उसके द्वारा प्रदर्शित कौशल पर विचार विमर्श होता है जिसमें शिक्षक, अन्य प्रशिक्षणार्थी तथा पाठ देने वाला प्रशिक्षणार्थी भाग लेते हैं। सुझावों के आधार पर वह पुनः पाठ-योजना बनाकर पुनः शिक्षण करता है। इसके बाद फिर विचार विमर्श होता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि प्रशिक्षणार्थी शिक्षण-कौशल को पूर्ण रूप से नहीं सीख लेता है।

इस प्रकार सूक्ष्म शिक्षण वास्तविक शिक्षण है जो कि कृत्रिम परिस्थितियों में सम्पन्न होता है परन्तु उसे वास्तविक शिक्षण का अभ्यास करने का यह अवसर प्रदान करता है। सूक्ष्म शिक्षण शिक्षक प्रशिक्षण की एक आधुनिक एवं उपयोगी विधि सिद्ध हुई है इस कारण से इसका उपयोग शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में व्यापक रूप से किया जा रहा है। □

1 Ward B E A Survey of Micro-teaching in Secondary Education Programme of all N C A T E Quoted from B K Passi (Ed) Becoming Better Teacher Baroda

अध्याय 9 (ii)

पाठोपस्थापन-कौशल

(Introducing Skill)

जब कभी भी किसी व्यक्ति से प्रथम भेंट होती है तो मिलने वाले व्यक्ति के बारे में दिये गये परिचय के आधार पर ही उससे वार्तायें होती है। यदि व्यक्ति साहित्यकार है तो उससे साहित्य के सन्दर्भ में, शिक्षाविद है तो शैक्षिक समस्या पर उससे विचार-विमर्श होगा।

कक्षा शिक्षण में भी जब शिक्षक पाठ पढाना प्रारम्भ करना चाहता है तो वह शिक्षार्थियों को पाठ अथवा इकाई जिससे कि यह पाठ सम्बन्धित है, परिचय देता है। इसका प्रथम लाभ यह है कि बालक के ध्यान को अध्यापक पाठ पर केन्द्रित करने मे सफल होता है जिससे कि वे इसके अध्ययन के लिए उत्सुक हो उठते है। द्वितीय यह कि वह पाठोपस्थापन के माध्यम से बालक के पूर्व अनुभवों को जागृत कर देता है।

पाठोपस्थापन का कौशल पाठ के प्रारम्भ करने से सम्बन्धित है। इसका अभिप्राय उन समस्त क्रियाओं से है जो अध्यापक पाठयाभिसूचन से पूर्व कक्षा में छात्रों की मानसिक तैयारी हेतु करता है। शोध कार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि पाठ की सफलता या विफलता एक सीमा तक अध्यापक पाठोपस्थापन कौशल पर निर्भर करती है। उदाहरण प्रस्तुत है—

उदाहरण (1)

विषय सामान्य विज्ञान कक्षा 9

प्रकरण पर्यावरण प्रदूषण।

अध्यापक मनुष्य को जीवित रहने के लिए किन किन पदार्थों की आवश्यकता होती है ?

छात्र मनुष्य को जीवित रहने के लिए हवा की आवश्यकता है।

अध्यापक अन्य पदार्थों के नाम बताइये।

छात्र (1) जल

(अध्यापक सिर हिलाता है)

छात्र (2) भोजन

अध्यापक ये सब पदार्थ हम कहाँ से प्राप्त करते है ?

छात्र प्रकृति से प्राप्त करते है ।

अध्यापक यदि जल, वायु तथा भोजन मे कुछ हानिकारक पदार्थ मिल जाएँ तो ऐसे पदार्थ को हम क्या कहगे ?

छात्र दूषित या विषाक्त पदार्थ ।

अध्यापक यदि मनुष्य इन विषाक्त पदार्थों को ग्रहण करे तो उसके स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पडेगा ?

छात्र वह बीमार हो जायेगा ।

अध्यापक हानिकारक पदार्थों के वातावरण मे मिलने की प्रक्रिया को हम क्या कहगे ?

अध्यापक आज हम पर्यावरण प्रदूषण के बारे म अध्ययन करेंगे ।

उदाहरण (2)

विषय सामान्य विज्ञान कक्षा 9

प्रकरण पर्यावरण प्रदूषण

अध्यापक - मनुष्य को जीवित रहने के लिए वायु, भोजन, जल धूप इत्यादि की आवश्यकता होती है । यह सब वह प्रकृति से प्राप्त करता है । यदि ये स्वच्छ रूप मे प्राप्त होगी तो इनका कोई कुप्रभाव मनुष्य पर नही पडेगा । परन्तु वर्तमान म जनसख्या वृद्धि तथा आवश्यकताएँ बढ जाने के कारण ये पदार्थ शुद्ध रूप म उपलब्ध नही होते । कल-कारखानो का धुआ वायु म मिल रहा है, शहर के गन्दे नाले नदियो के पानी को गन्दा कर रहे है । ईधन की पूर्ति हेतु वनो को काटा जा रहा है ।

अब, बच्चो ! बताओ इस प्रकार पर्यावरण के दूषित होने की क्रिया को हम क्या कहेंगे ?

छात्र मौन ।

अध्यापक आज हम पर्यावरण प्रदूषण के बारे म अध्ययन करेंगे ।

उपरोक्त दोनो उदाहरणो के अवलोकन से यह तथ्य उजागर होता है कि दोनो परिस्थितियो म अध्यापक छात्रो को पाठ का परिचय दे रहे है । परन्तु उदाहरण सख्या (1) म पाठोपस्थापन उदाहरण सख्या (2) की तुलना म अधिक प्रभावशाली रहा है । प्रथम उदाहरण म अध्यापक विभिन्न प्रश्नों के माध्यम से न केवल सूचनाएँ छात्रो से प्राप्त कर रहा है अपितु उन्हें शिक्षण क्रिया म सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए उत्साहित कर रहा है । इसके विपरीत उदाहरण सख्या (2)

मे छात्र केवल मौन रूप स बैठे अध्यापक द्वारा दी गई सूचनाओ को ग्रहण कर रहे है ।

दोना उदाहरणा के तुलनात्मक अध्ययन स यह भी अनुभव किया जा सकता है कि पहला अध्यापक बालको का मानसिक सम्बध पढाय जान वाल प्रकरण से स्थापित करने का प्रयास करता है । इस प्रकार के प्रयत्न जो कि पाठ्यवस्तु से बालक का भावात्मक सामजस्य स्थापित करन मे सफल होते है, पाठोपस्थापन के अन्तगत आते है । यह भी उल्लेखनीय है कि अध्यापक इस प्रकार के सम्बन्धो को स्थापित करते समय सवप्रथम बालको के पूव ज्ञान का परीक्षण करता है ।

पूव ज्ञान का बालक म होना आवश्यक है क्याकि वह अधिगम-प्रक्रिया के लिए आधार प्रस्तुत करता है । यदि बालक म आवश्यक पूव ज्ञान है तो वह पाठ के नवीन प्रत्ययो को भलीभाति समझ सकेगा अन्यथा उसे एसा करने म कठिनाई का अनुभव होगा ।

एक विशेष बिन्दु जो कि पाठोपस्थापन के उदाहरणा म देखन को मिलता है वह है तारतम्यता । अध्यापक के प्रश्न तथा छात्रा के उत्तरा का विश्लेषण करन पर इनम एक विशेष क्रम मिलता है । प्रत्येक विचार जो कि छात्रा के उत्तरो से प्रकट हो रहा है वह उसके पूव व्यवहार स जुडा हुआ है । अध्यापक अपने प्रश्ना को इस प्रकार से व्यवस्थित करता है कि वह छात्र को पूव ज्ञान स प्रकरण के उद्देश्य तक ले जाता है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पाठोपस्थापन प्रक्रिया म अध्यापक

(1) छात्रा के साथ बौद्धिक धरातल पर तादात्म्य स्थापित करन का प्रयास करता है ।

(2) छात्रा के साथ भावात्मक सहज सम्बन्ध स्थापित करन का प्रयास करता है ।

(3) उनम जिज्ञासा-प्रवृत्ति को उभारने का प्रयास करता है ।

(4) शिक्षार्थियो का ध्यान पढाये जाने वाले पाठ या विषय वस्तु की ओर उन्मुख करने का प्रयास करता है ।

(5) छात्रा म पढाये जाने वाली विषय-वस्तु म रुचि उत्पन्न करन का प्रयास करता है जिसस कि वे नवीन ज्ञान को प्राप्त करन के लिए तत्पर हो जायें ।

पाठोपस्थापन की सफलता का छात्रा के शाब्दिक या अशाब्दिक व्यवहारो स आकना सम्भव है । यदि पूछे गये प्रश्ना के उत्तर सही आ रहे है तथा छात्र उत्तर देन के लिए बार-बार उत्सुकतापूवक हाथ उठा रहे हो, उनम उत्तर देने का जोश हो, तो यह समझा जायगा कि पाठोपस्थापन सफल एव प्रभावी रूप स

सम्पन्न हो रहा है। इसके विपरीत यदि छात्र निष्क्रिय हो, उसमें पाठ पढ़ने के जोश का अभाव हो तो पाठोपस्थापन प्रभावहीन समझा जायेगा।

पाठोपस्थापन के कौशल के घटक

(Factors of the Skill of Introduction)

कुशलता के घटक का अध्ययन करने से पूर्व एक उदाहरण विश्लेषणात्मक अध्ययन करने हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है।

कक्षा आठ में "भारत के राष्ट्रपति के चुनाव एवं अधिकार" प्रकरण पर एक अध्यापक द्वारा पाठोपस्थापन निम्न प्रकार से किया गया

(1) अध्यापक—हमारे देश का सर्वोच्च संवैधानिक प्रधान कौन है ?
छात्र—मौन।

(2) अध्यापक—तीनों सेनाओं की सर्वोच्च कमान किसके हाथ में है ?
छात्र—मौन।

(3) अध्यापक—विधान सभा के चुनाव में कौन भाग लेता है ?
छात्र—18 वर्ष की उम्र प्राप्त स्त्री-पुरुष।

(4) अध्यापक—लोक सभा के सदस्यों का चुनाव कौन करता है ?
छात्र—भारत के नागरिक।

(5) अध्यापक—हमारे देश के वर्तमान राष्ट्रपति कौन है ?
छात्र—आर वेंकटरमन।

(6) अध्यापक इनके पूर्व राष्ट्रपति कौन थे ?
छात्र मौन।

(7) अध्यापक हमारे देश के राष्ट्रपति का चुनाव कौन करता है ?
छात्र—मौन।

उपरोक्त पाठोपस्थापन में सात प्रश्न पूछे गये। इनमें से प्रश्न संख्या 3 तथा 4 पाठ के उद्देश्य से असम्बद्ध है। प्रश्नों में परस्पर तारतम्यता नहीं है। अध्यापक ने छात्र के सही उत्तरों का आगामी प्रश्नों को पूछने में उपयोग नहीं किया। छात्र अधिकांशतः मौन ही बैठे रहे। इस प्रकार का पाठोपस्थापन प्रभावी नहीं है।

एक अच्छे किस्म के पाठोपस्थापन में जिन घटकों का होना आवश्यक है उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

(क) पूर्वज्ञान का उपयोग (Using Previous Knowledge)

पूर्वज्ञान से तात्पर्य छात्र के उन अधिगम अनुभवों से है जो कि पाठ को समझने के लिए आवश्यक है। हर्बार्ट का मत है कि प्रत्येक नवीन ज्ञान के ग्रहण का आधार पूर्वज्ञान होता है क्योंकि मानव मस्तिष्क 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' आसानी से कार्य करता है। शिक्षार्थी पूर्वज्ञान का अर्जन कक्षा, कक्षा से बाहर, मित्र मण्डली, समाज, प्रकृति इत्यादि से प्राप्त करता रहता है। यदि नवीन ज्ञान

को उसके इन अनुभवो म जोड़ा जाय तो उसके सीखने की प्रक्रिया म निरतरता बनी रहती है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मस्तिष्क किसी नवीन प्रत्यय को ग्रहण करने म पूर्व यह उस अपने पूर्व अनुभवो की कसौटी पर कसता है। अत मानव मस्तिष्क अधिगम हेतु सक्रिय करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रकरण से सम्बधित पूर्वज्ञान का चेतन मस्तिष्क म लाया जाय। अत अध्यापक को पाठोपस्थापन-योजना बनाने म पूर्व बालक के मानसिक स्तर तथा अधिगम योग्यता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

पूर्व ज्ञान के सम्बन्ध म जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्रोत है जैसे बालक द्वारा पूर्व म पढ़े गये पाठो की जानकारी, बालक के भौतिक एव सामाजिक पर्यावरण की जानकारी, इत्यादि। अध्यापक इनसे प्राप्त तथ्यो या घटनाओ को आधार बना कर पाठोपस्थापन कर सकता है। इस प्रकार अध्यापक म छात्र के पूर्वज्ञान का अनुमान लगाने की क्षमता होनी चाहिए। कक्षा स्तर, आयु-स्तर, मानसिक परिपक्वता-स्तर, आदि ऐसे तथ्य है जो पूर्वज्ञान सम्बधित अनुमान लगाने मे सहायक सिद्ध हो सकते है। पूर्वज्ञान को अनेक प्रकार के उपक्रमो से बालक के चेतना-स्तर पर लाया जा सकता है, उनम कुछ निम्न हैं—

(1) बीती हुई घटना, स्थिति, स्थान, नाम, वस्तु का सदर्भ देकर प्रश्न पूछना।
(2) समसामयिक घटनाओ का सदर्भ।
(3) अधिगम हेतु विशिष्ट परिस्थिति उत्पन्न करके।

(ख) उपयुक्त विधा का उपयोग (Using Appropriate Device)

यहा पर विधा से तात्पर्य उस शिक्षण तकनीक से है जो अध्यापक पाठोपस्थापन के लिए प्रयुक्त करता है। पाठोपस्थापन के लिए अनेक प्रकार की विधाएँ काम म ली जा सकती है परन्तु उसके चयन का आधार उसकी उपादेयता, सुसगतता, छात्रो का मानसिक स्तर आयु रुचि, सास्कृतिक परिवेश, अनुभवो की गहनता और विषयवस्तु की प्रकृति पर निर्भर होता है। पाठोपस्थापन म प्रयुक्त की जाने वाली विधाएँ निम्न प्रकार म ली जा सकती है—

(1) उदाहरण समता एव समानार्थको का उपयोग
(2) प्रश्न पूछना
(3) व्याख्या या सोदाहरण विवरण
(4) कहानी या चुटकुला कहना
(5) नाटक या अभिनय द्वारा
(6) दृश्य श्रव्य-सामग्री का उपयोग
(7) प्रदर्शन या उपयोग करना।

यद्यपि किसी भी विधा का उपयोग एवं प्रभावशीलता अध्यापक की योग्यता पर आधारित है परन्तु पूर्व अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कहानी, चुटकले, दृश्य-श्रव्य सामग्री तथा प्रयोग प्रदर्शन छोटी कक्षा के छात्रों के लिए उपयोगी है। छोटे बालकों का ध्यान रुचिकर उदाहरणों, कहानियों या चित्रों में शीघ्र केन्द्रित हो जाता है तथा वे इनके द्वारा शीघ्र प्रेरित हो जाते हैं। विधाओं के उपयोग के लिए कोई निश्चित नियम बनाया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि इनका सम्बन्ध पाठ के प्रकार, विषय-वस्तु, अध्यापक की अध्यापन योग्यता तथा प्रस्तुतिकरण कला पर निर्भर करता है। एक विधा एक अध्यापक ठीक प्रकार से काम में लाता है तो उसी पाठ को दूसरा अध्यापक दूसरी विधा से अच्छी तरह प्रस्तुत कर सकता है।

कुछ उदाहरण

(अ) प्रश्न पूछना

(अध्यापक साम्प्रदायिकता की समस्याओं के बारे में पाठ कक्षा 9वीं को पढ़ाना चाहता है।)

अध्यापक—हमारे देश में कौन-कौन से धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं ?

छात्र—हिन्दू, सिख, ईसाई, मुसलमान इत्यादि।

अध्यापक—दो सम्प्रदायों के मध्य होने वाले झगड़ों को क्या कहते हैं ?

छात्र—साम्प्रदायिक झगड़े।

अध्यापक—किस सम्प्रदाय या धर्म में दूसरे धर्म के लोगों को नष्ट करने की शिक्षा दी जाती है ?

छात्र—किसी धर्म में नहीं।

अध्यापक—फिर ये दंगे कौन लोग कराते हैं ?

छात्र—कुछ स्वार्थी लोग।

अध्यापक—ये दंगे राष्ट्र के हित में क्या करते हैं ?

छात्र—आपसी मतभेद पैदा करते हैं।

अध्यापक—यदि इन दंगों से बचना हो तो हमें क्या करना होगा ?

छात्र—आपसी प्रेम, भाईचारा, सब धर्मों के प्रति सद्भाव विकसित करना होगा।

अध्यापक—साम्प्रदायिकता से आप क्या समझते हैं ?

(ब) कहानी कथन

करीम चाचा मुन्ना के पड़ोस में रहते थे, जब मुन्ना की माँ उसे पीटती थी तो वह जोरों से चीखता था। करीम चाचा बाहर से टोकते तथा मुन्ना रोता हुआ करीम चाचा की गोद में बैठ जाता तथा खेलने लगता था।

एक दिन दो सम्प्रदायो मे छोटी सी बात पर झगडा हो गया। मोहल्ला दो भागो म बट गया। हल्ला गुल्ला सुनकर मुन्ना भी बाहर आया तथा देखा कि एक ओर उसके पिता थ तो दूसरी ओर करीम चाचा। मुन्ना करीम चाचा के पास गया और बोला "चाचा क्या आज हमारे साथ नही रहोग" चाचा का दिल पसीजा, मुन्ना को उठाया तथा घर चला गया। झगडा स्वत शात हो गया।

बच्चो, आज हम साम्प्रदायिकता की समस्या के बारे म अध्ययन करेंगे।

उपरोक्त उदाहरणो म हम निम्न निष्कष निकालत है

(1) पाठोपस्थापन छात्र के पूव ज्ञान की जाच करता है। ज्ञानाजन एक सतत् प्रक्रिया है जिसका आधार बालक का पूव ज्ञान ह यदि उसम पूव ज्ञान भली प्रकार से मौजूद होगा तो वह नवीन ज्ञान को अच्छी तरह समझ सकेगा अन्यथा नही। उदाहरण के लिए भाग की क्रिया को सीखन के लिए पहाडा, घटान की क्रिया तथा गुणन क्रिया की आवश्यकता होती है। यदि बालक का इनका पूव-ज्ञान नही ह तो वह भाग की क्रिया नही सीख सकेगा। भाग का पाठोपस्थापन इस पूव ज्ञान के परीक्षण से किया जा सकता है।

(2) पाठोपस्थान म जो कुछ अध्यापक छात्रो को बता रहा है या प्रश्न पूछ रहा है उनम एक वैचारिक तारतम्यता का होना आवश्यक है। यह तभी सभव है जब कि पूव कथन म निहित विचार या तथ्य आगामी कथन या प्रश्न स सम्बन्धित हो।

(3) अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नो का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षण उद्देश्य तथा पढाय जान वाले प्रकरण से होना चाहिए।

(4) पाठोपस्थापन म किस प्रकार की तकनीकी प्रयुक्त की जाय यह उस प्रयोग मे लाने वाले अर्थात शिक्षक की योग्यता तथा शिक्षार्थी के मानसिक स्तर पर निभर है। चित्र, चाट, मॉडल इत्यादि का उपयोग छोटे विद्यार्थियो के लिए अधिक प्रभावी रहेगा।

इस प्रकार एक शिक्षक को पाठोपस्थापन के लिए उपयुक्त शिक्षण व्यवहार करने चाहिए।

व्यवहारो को उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता के आधार पर निम्न प्रकार म वर्गीकृत किया जा सकता है।

पाठोपस्थापन हतु उपयुक्त शिक्षण-व्यवहार

(Desirable Teaching Behaviours for Introduction)

उपयुक्त व्यवहार	अनुपयुक्त व्यवहार
(क) पूव ज्ञान का उपयोग	(क) तारतम्यता का अभाव
(ग) शिक्षण की उपयुक्त विधि का उपयोग	(ख) निरथक प्रश्न पूछना।

(ग) प्रश्नों में तारतम्यता एवं सुसम्बद्धता
(घ) समसामयिक घटना का उपयोग।

मूल्यांकन प्रपत्र

छात्राध्यापक का नाम ——— अनुक्रमांक ———
कक्षा ——— विषय ——— दिनांक ———
पाठ्य प्रकरण ———

पाठोपस्थापन-कुशलता के घटक	1	2	3	4	5
1 पूर्व ज्ञान का उपयोग					
2 छात्रों के उत्तरों का उपयोग					
3 तारतम्यता की स्थिति					
4 सुसम्बद्धता					
5 तकनीकी की उपयुक्तता					

नोट (1) उत्तम, (2) बहुत अच्छा, (3) अच्छा, (4) साधारण तथा (5) असंतोषजनक को प्रदर्शित करते हैं। अध्यापक को इन्हें प्रदर्शित करने के लिए ✓ का निशान कौशल के घटक के सम्मुख अंकित कर देना चाहिए।

अध्यापक की टिप्पणी

हस्ताक्षर अध्यापक

सारांश

अध्यापक पाठ्यवस्तु-विवेचन से पूर्व कक्षा में शिक्षार्थियों को पठन के लिए, पाठोपस्थापन-कौशल के द्वारा, मानसिक रूप से तैयार करता है। पाठ की प्रभावशीलता एक सीमा तक अच्छे स्तर के पाठोपस्थापन पर निर्भर करती है। पाठोपस्थापन एक शैक्षिक प्रक्रिया है जिसमें अध्यापक शिक्षार्थियों से तादात्म्य

स्थापित कर उनसे भावात्मक सहज सम्बन्ध बनाता है। उनकी जिज्ञासा को जागृत कर विषयवस्तु म रुचि उत्पन्न करता है।

पाठापस्थापन-कौशल के प्रमुख घटक छात्रा के पूव ज्ञान का उपयाग करना, उनके उत्तरो का उपयोग, तारतम्यता, सुसम्बद्धता तथा ग्रधिगम हेतु विशिष्ट परिस्थिति उत्पन्न करना है। ग्रध्यापक इसके लिए अपनी सूझ प्रयाग म लाता है। विधाए जैसे उदाहरण देना, प्रश्न पूछना, व्याख्या करना, कहानी कहना, नाटक या ग्रभिनय का उपयोग, दृश्य-श्रव्य-सामग्री के द्वारा प्रदर्शन करना आदि के उपयोग से ग्रध्यापक पाठोपस्थापन को प्रभावी बना सकते हैं। ग्रध्यापक को इसमे निरथक व्यवहार जैसे विषय-वस्तु म तारतम्यता न रखना, ग्रथवा निरर्थक प्रश्न पूछना ग्रादि नही करने चाहिए।

□

अध्याय 9 (III)

प्रश्न करना

(Questioning)

प्रश्नों के माध्यम से अपने शिष्य को ज्ञान प्रदान करना कोई नवीन प्रत्यय नहीं है। प्राचीन काल में गुरु अपने शिष्यों को विभिन्न प्रश्नों के द्वारा ही शिक्षा दिया करते थे। सुप्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने एक ऐसी ही विधि विकसित की जिसमें वह अपने शिष्यों से अनेक प्रश्न पूछता था तथा विद्यार्थी उनका उत्तर देते-देते ज्ञानार्जन कर लेता था। आज भी 'प्रश्नोत्तर' को सुकरात विधि (Socratic *Method*) कहते हैं।

प्रश्न पूछने की कला इतनी प्राचीन होते हुए भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है तथा इसका शिक्षण में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। प्रश्नों के माध्यम से अध्यापक शिक्षण-प्रक्रिया तथा शिक्षार्थी से सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कर सकता है जैसे विद्यार्थियों का ज्ञान व अवबोध का स्तर, उनकी विषय के प्रति अभिवृत्ति, ग्रहण किये हुये ज्ञान में त्रुटियां, अध्यापन की प्रभावशीलता आदि। प्रश्नों को शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य एक सम्पर्क सूत्र माना है जो कि 'बेरोमीटर' जैसा कार्य करते हैं अर्थात् शिक्षक शिक्षार्थी अन्तःक्रिया की प्रगति का अन्दाज उनके मध्य चल रहे प्रश्नोत्तरों से किया जा सकता है।

शिक्षण की दृष्टि से प्रश्न करने की कला अध्यापक के लिए एक वरदान है। शिक्षा प्रदान करने के लिए यह एक उत्तम साधन माना गया है। इसके द्वारा अध्यापक विद्यार्थी के निकट आता है और उसको ज्ञान प्रदान करता है। शिक्षण में प्रेरणा का विशेष महत्त्व है परन्तु प्रश्न एक ऐसा माध्यम है जो कि बालक को पढ़ने के लिए प्रेरित भी कर सकता है। इस प्रकार शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रश्न पूछने की कला से सम्बन्धित है।

प्रश्न पूछना एक कला है। यह कला अध्यापक की कुशलता पर निर्भर करती है। यदि एक अध्यापक योग्य है अर्थात् उसकी स्वयं की शैक्षिक उपलब्धि अच्छे स्तर की रही है फिर भी आवश्यक नहीं है कि वह अध्यापक बनने के बाद अच्छे प्रश्न पूछ सके। प्रश्न पूछने की कला को या तो वह स्वयं विकसित कर सकता है अथवा प्रशिक्षण से इसका विकास किया जाता है। स्वयं सीखने की प्रक्रिया 'भूल और प्रयास' पर आधारित है तथा अधिक समय लेती है जबकि प्रशिक्षण में इस कौशल को शीघ्रतापूर्वक तथा आसानी से सिखाया जा सकता है।

प्रश्न का महत्व

(Importance of Question)

प्रश्न पूछने का शिक्षण प्रक्रिया में बहुत अधिक महत्त्व है। प्रश्नों के महत्त्व के बारे में कुछ शिक्षाशास्त्रियों के विचार निम्न प्रकार से प्रस्तुत किये जा रहे हैं

पार्कर (Parker)

"प्रश्न आदत-कौशल-स्तर के बाहर समस्त शैक्षिक प्रक्रिया की कुंजी है।"

रेमण्ड (Raymond)

"प्रश्न करने की एक उत्तम शैली की प्राप्ति निश्चय ही एक युवक शिक्षक की 'आवश्यक महत्त्वाकांक्षा' होनी चाहिए।"

बोसिंग (Bossing)

"प्रश्न करने की कला का महत्त्व स्वीकार बिना कोई भी शिक्षण विधि सफलतापूर्वक लागू नहीं की जा सकती।"

उपरोक्त विचारों से यह प्रकट होता है कि शिक्षण प्रक्रिया में 'प्रश्न करना' एक आवश्यक तत्त्व है। शिक्षक विभिन्न प्रश्नों के माध्यम से छात्रों को उत्तर देने के लिए प्रेरित करता है तथा उनके लिए एक शैक्षिक पर्यावरण का निर्माण करता है। छात्र भी अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए अध्यापक से प्रश्न कर सकता है। दूसरे शब्दों में शिक्षक-शिक्षार्थी अन्तःक्रिया प्रश्न पूछने तथा उत्तर देने से भली प्रकार से सम्पन्न हो सकती है। इसलिए "प्रश्न" को शिक्षण में एक अनिवार्य तत्त्व माना है। यह शिक्षण-विधि को आधार प्रदान करता है। बासिंग[1] (Bossing) ने इसीलिए कहा है कि "प्रश्न कला, आदतों एवं कौशलों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, तथा इसे सभी शिक्षण क्रियाओं की कुंजी माना गया है।"

रायबर्न[2] (Ryburn) ने भी प्रश्न करना अध्यापन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है। इसके अनुसार "यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि एक पाठ के सफल अध्यापन का आधार अध्यापक की प्रश्न कौशल-योग्यता है।" प्रश्न शिक्षार्थी को प्रेरित कर उसके अधिगम की दिशा का निर्धारण करता है। अध्यापन की प्रभावशीलता को उसके द्वारा बनाये गये प्रश्नों के स्तर, प्रकार तथा कौशल से पूर्व में ही ज्ञात किया जा सकता है।

प्रश्न पूछने के उद्देश्य

(Objectives of Questioning)

शिक्षण-प्रक्रिया में प्रश्न पूछने के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं—

(1) शिक्षार्थी का ध्यान शिक्षण बिन्दुओं पर केन्द्रित रखने के लिए।

1 Bossing N L Progressive Methods of Teaching in Secondary Schools

2 Ed S C Parker in Methods of Teaching in High Schools Houghton Mifflin P 466

(2) शिक्षण प्रक्रिया म छात्रा को सक्रिय रखन क लिय ।
(3) विद्यार्थी के पूव ज्ञान तथा अभिरुचि का परीक्षण करन क लिय ।
(4) शिक्षण क दौरान सीखी गई पाठ्यवस्तु का मूल्याकन करने के लिये ।
(5) शिक्षक यह जान सक कि छात्र सीख गय ज्ञान का अ य परिस्थितिया म उपयोग कर सकेंगे या नहो ।
(6) सीखी गई पाठ्यवस्तु की पुनरावृत्ति करन क लिय ।
(7) शिक्षार्थी की विचार अभिव्यक्त करन की शक्ति, स्मृति तथा कल्पना शक्ति को प्रेरित करने के लिय ।

इस प्रकार कक्षा शिक्षण म प्रश्न पूछा जाना अत्यन्त आवश्यक ह । शिक्षाविदा का यह मानना है कि शिक्षण की सफलता अध्यापक की प्रश्न कला पर निभर ह ।

प्रश्न-कौशल के प्रमुख तत्व

प्रश्न-कला के अनक तत्व है । इनम कुछ सरल तथा कुछ जटिल भी है । एस तत्व जा कि प्रश्न के मूल स्वरूप को बनाय रखन म मदद प्रदान करते है, आधारभूत तत्व कहलाते है । जटिल तत्व प्रश्न म रोचकता, सरसता तथा प्रभावशीलता लाने मे सहायक है ।

प्रश्न-कला के मूल तत्त्व

(1) बनावट

प्रश्न का बनावट बोधगम्य तथा सरल व स्पष्ट हानी चाहिए । कक्षा म व्यक्तिगत विभिन्नताए होती है अर्थात् सभी शैक्षिक-स्तर के बालका का शिक्षक का पढाना पडता है । प्रश्न का बनावट इस प्रकार की हानी चाहिए कि कमजार छात्र भी इसका हल ढूँढन म समथ हा । इसके लिए प्रश्न आकार म छाटे, आवश्यक सूचना सहित स्पष्ट होन चाहिय । इनकी भाषा जटिल नही हानी चाहिए ।

(2) केन्द्र

प्रत्यक प्रश्न ज्ञान क एक लघु भाग की आर कद्रित कर पूछा जाता ह । चूँकि ज्ञान का क्षत्र असीमित है तथा उस कुछ प्रश्ना स पूछा जाना सम्भव नही ह, अत प्रश्न एक सीमित क्षत्र पर ही किया जाना चाहिए । इसस उसम वस्तुनिष्ठता बढ़ेगी तथा इसस शिक्षार्थी का ध्यान केवल एक काय पर ही कन्द्रित हागा ।

(3) दिशा

प्रश्न पूछन की दिशा स अभिप्राय "प्रश्न किस प्रकार स पूछा जावे स सम्बधित ह । प्रश्न सवप्रथम पूरी कक्षा क सम्मुख पूछा जाना चाहिए । चद सामान्य रूप र किसी छात्र विशेष की ओर इशारा कर प्रश्न पूछना अधिक प्रभावी

होगा। पूरी कक्षा से प्रश्न पूछने का लाभ यह है कि यह सभी छात्रों को उत्तर सोचने के लिए प्रेरित करता है जबकि प्रारम्भ में ही किसी छात्र का नाम लेकर प्रश्न पूछने से केवल वह छात्र ही क्रियाशील रहेगा।

(4) प्रसार

प्रश्नों का प्रसार कक्षा में चारों ओर आकस्मिक रूप में होना चाहिए। केवल आगे बैठे अथवा चुने हुए विद्यार्थियों से प्रश्न पूछना उत्तम नहीं माना जाता। प्रसार से तात्पर्य प्रश्नों को अधिकतम छात्रों से पूछना है। इससे अधिक से अधिकतम छात्र कक्षा में क्रियाशील होंगे।

(5) प्रश्नकर्त्ता की मुद्रा

प्रश्न करने की उत्तम कला के अन्तर्गत मुद्रा भी एक तत्व माना गया है। प्रश्न को सीधे एवं सरल स्वभाव से पूछा जाना चाहिए। प्रश्न पूछने के बाद दो-तीन सैकण्ड रुक कर छात्रों से उत्तर देने को कहना चाहिए। प्रश्न उत्प्रेरक का कार्य करते हैं जिसके फलस्वरूप बालक में मानसिक क्रिया होती है। इस क्रिया के होने तथा उत्तर देने को 'क्रिया-काल' कहते हैं। अध्यापक को प्रत्येक प्रश्न के बाद यह 'क्रिया-काल' छात्रों को देना चाहिए।

प्रश्नों के प्रकार

चूँकि प्रश्न पूछने की कला में प्रमुख स्थान 'प्रश्न' का है अतः अध्यापक को प्रश्न के प्रकार का भी ज्ञान होना चाहिए। मानसिक प्रक्रिया के आधार पर प्रश्नों को निम्न दो प्रकार में बाँटा जा सकता है

(अ) स्मृति प्रश्न

(ब) विचार-प्रश्न।

स्मृति प्रश्न—ये प्रश्न छात्रों के पूर्व पठित तथ्य, संख्या, परिभाषा, प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित होते हैं तथा इनके उत्तर में शिक्षार्थी को अपनी स्मृति में उपस्थित ज्ञान को उत्तर के रूप में प्रकट करना होता है।

उदाहरण के लिए—

(1) संज्ञा को परिभाषित करें।

(2) संज्ञा के कितने भेद होते हैं?

(3) समुच्चय किसे कहते हैं?

(4) जलवायु की दृष्टि से भारत को कितने क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है?

इस प्रकार के प्रश्न विद्यार्थी द्वारा सीखी गई पाठ्यवस्तु से सीधे सम्बन्धित तथा उसे उसका प्रत्यास्मरण करना होता है।

विचार प्रश्न—इस प्रकार के प्रश्नों में छात्र को नवीन परिस्थिति में ज्ञान का उपयोग करना होता है चूँकि इसके उत्तर देने में छात्र को उच्च मानसिक

स्तर का उपयोग करना होता है अतः ये प्रश्न अधिक कठिन स्तर के माने जाते हैं। उदाहरण के लिए कुछ प्रश्न निम्न प्रकार से हैं—

(1) प्रारम्भ में मानव-सभ्यता का विकास नदियों के किनारे ही क्यों हुआ ?

(2) रेल की पटरियों के बीच जगह क्यों छोड़ी जाती है ?

(3) यदि मांसाहारी जंगली पशु समाप्त हो जायें तो प्राकृतिक सन्तुलन पर क्या प्रभाव पड़े ?

प्रश्नों का वर्गीकरण उनकी शिक्षण प्रक्रिया के सोपान को आधारित कर भी किया गया है। इस प्रक्रिया में दो सोपान क्रमशः शिक्षण तथा मूल्यांकन प्रमुख हैं। प्रश्नों को भी इसी रूप में अर्थात् परीक्षण प्रश्न तथा शिक्षण प्रश्न के रूप में बाँटा जा सकता है।

परीक्षण प्रश्न

परीक्षण प्रश्नों का उद्देश्य विद्यार्थी की प्रगति का मूल्यांकन करना होता है। शिक्षण प्रक्रिया में यह मूल्यांकन निम्नलिखित तीन स्तरों पर किया जाता है—

(1) पाठ आरम्भ करने से पूर्व छात्र के पूर्व ज्ञान का मूल्यांकन।

(2) पाठ के विकास के दौरान विभिन्न उद्देश्यों की सम्प्राप्ति का पता लगाना।

(3) पाठोपरान्त शिक्षण-उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई, पता लगाना।

शिक्षण प्रश्न

अध्यापक शिक्षण के समय पाठ का विकास करने के लिए विद्यार्थी से भिन्न प्रश्न पूछता है तथा इनके माध्यम से वह छात्र को नवीन ज्ञान खोजने में सहायता प्रदान करता है। चूँकि पाठ का विकास शिक्षण बिन्दुओं के अनुसार होता है। अतः ये प्रश्न भी इसी के अनुरूप पूछे जाते हैं। कभी कभी कुछ अध्यापक पाठ के सभी तथ्य प्रश्नों के माध्यम से ही निकलवाना चाहते हैं, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, ऐसे तथ्य जो छात्र प्रश्नों के द्वारा नहीं बता सकते हों, अध्यापक को अध्यापक कथन' द्वारा उन्हें बता देने चाहिए। प्रश्न पाठ के विकास में सहायता करने के साथ-साथ बालक को क्रियाशील बनाते हैं।

अच्छे प्रश्न के गुण

(Characteristics of a Good Question)

यदि हम चाहते हैं कि प्रश्नों में प्रवाह आदि हो तो हमें इनका निर्माण करते समय पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। एक अच्छे प्रश्न में निम्नांकित गुण होते हैं—

(1) उद्देश्य की प्राप्ति

(2) भाषा सरल, शुद्ध व स्पष्ट,

(3) विद्यार्थी अपनी स्मृति, चिन्तन एवं तर्क शक्ति का उपयोग कर सके,
(4) संक्षिप्त एवं प्रत्यक्ष,
(5) प्रश्न का उत्तर निश्चित तथा सदैव एक हो,
(6) क्रियाशीलता उत्पन्न करे,
(7) प्रश्न में तार्किक क्रम हो।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सफल शिक्षण के लिए प्रश्नों का पूछा जाना आवश्यक है। यदि प्रश्न सुनियोजित तथा उत्तम प्रकृति के होंगे तो पाठ का विकास अच्छी प्रकार से हो सकेगा। अतः एक शिक्षक को प्रश्न पूछने की कला तथा कौशल की जानकारी होना आवश्यक है। प्रश्न पूछने की गति भी अलग अलग पाई जाती है। कुछ अध्यापक प्रश्न शीघ्रता से पूछते हैं तथा कुछ प्रत्येक प्रश्न को पूछने के बाद एक या आधा मिनट का समय छात्रों को सोच कर उत्तर देने के लिए देते हैं। दोनों के अधिगम पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ते हैं।" प्रति इकाई समय में पूछे गये प्रश्नों की संख्या को प्रश्नों का प्रवाह (Fluency in Questioning) कहते हैं।

प्रश्नों की शिक्षण प्रक्रिया में उपादेयता को निम्नांकित तीन दृष्टि से सोचा गया है—

(अ) प्रश्न-संरचना (Structures)
(ब) प्रश्न पूछने की प्रक्रिया (Process)
(स) प्रदा (Out Put)।

(अ) प्रश्न-संरचना (Structure)

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रश्न में एक उद्दीपन होता है जो कि बालक को अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है। यदि यह उद्दीपन अपने आप में स्पष्ट है तो बालक की अनुक्रिया भी स्पष्ट होगी। प्रश्न का इसकी बनावट की दृष्टि से विचारा जावे तो प्रथम तथ्य प्रश्न में प्रयुक्त भाषा तथा व्याकरण से सम्बन्धित उभरता है।

(क) प्रश्न की भाषा (Language of Question)—भाषा को सदैव ही विचारों का वाहक माना गया है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को अन्य व्यक्ति तक पहुँचा सकते हैं। प्रश्न के सन्दर्भ में भी भाषा का इतना ही महत्त्व है। प्रश्न में प्रयुक्त भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध तथा उसमें प्रयुक्त शब्द पूछे जाने वाले प्रकरण से सम्बन्धित होने चाहिए। यदि भाषा अस्पष्ट होगी अथवा कठिन स्तर की होगी तो बालक प्रश्न को ठीक प्रकार से समझने में असमर्थ रहेगा। उसे प्रश्न के उत्तर देने में सामान्य से अधिक समय लगेगा तथा 'प्रश्नों का प्रवाह' कम हो जायगा। उदाहरण के लिए कुछ प्रश्न जो कि भाषा की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं, अग्रांकित हैं—

(1) सिकन्दर, जा कि अपने समय मे महान् योद्धा था, ने आक्रमण के लिए भारत को उपयुक्त क्यों समझा ?

(2) आप कहाँ रहते है ?

(3) Who teaches you mathematics ?

(4) न्यूटन न गुरुत्वाकर्षण को सिद्ध करने के लिए कौनसा प्रयोग किया है ?

उपरोक्त प्रश्नों को ठीक प्रकार से निम्न रूप म लिखा जा सकता है—

(1) सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण क्या किया ?

(2) आप किस नगर म रहत हं ?

(3) Who teaches you matehmatics ?

(4) न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्ध करने के लिए कौनसा प्रयोग किया था ?

(ख) सक्षिप्तता (Conciseness)—प्रश्न की सक्षिप्तता से अथ प्रश्न की लम्बाई स है। यदि प्रश्न छाट होगे तथा उनमे अनावश्यक शब्दो का प्रयोग न किया जायेगा तो बालक उनका उत्तर आसानी से दे सकेंगे। कुछ अध्यापक आदतन विशेष शब्दो का प्रयोग अनावश्यक रूप से करते है जैसे 'क्या तुम बता सकते हो, 'क्या तुम म से कोई जानता है' इत्यादि। इस प्रकार के शब्दो के प्रयोग से प्रश्न अनावश्यक रूप से लम्बा हो जाता ह तथा छात्र का समय नष्ट होता है। प्रश्न इस प्रकार से पूछा जाए कि वह नपे-तुले शब्दा का प्रयोग करते हुए छात्र की चिन्तन प्रक्रिया को जाग्रत कर दे।

कुछ प्रश्ना के उदाहरण जिनमे सक्षिप्तता का अभाव है, निम्न प्रकार से है—

(1) मुझे राजस्थान के मुख्यमन्त्री का नाम कौन बता सकता है ?

(2) क्या तुम मे से कोई जानता है कि भाप के इन्जन का आविष्कार किसने किया ?

(3) पहाडे का उपयोग कर मुझे 3 × 2 का मान बताओ ?

(4) Can you tell me what is your name ?

उपरोक्त प्रश्नो म सक्षिप्तता का अभाव है। इनम कुछ ऐसे शब्दा का उपयोग कर लिया गया है जिनका प्रश्न म रखे जाने का कोई औचित्य नही है। उपरोक्त प्रश्ना का शुद्ध एव सक्षिप्त रूप नीचे दिया जा रहा है—

(1) राजस्थान के मुख्यमन्त्री का क्या नाम है'?

(2) भाप के इजन का आविष्कार किसने किया ?

(3) 3 × 2 का मान बताइये।

(4) What is your name ?

संक्षिप्तता का अर्थ यह भी होता है कि प्रश्न इतना छोटा हो जाय कि छात्र प्रश्न को भी न समझ सकें। कभी-कभी अध्यापक सामान्यतः क्योंकि संक्षिप्त प्रश्न इस प्रकार भी बना देते हैं जिससे यह स्पष्ट नहीं होता कि छात्र का क्या करना है तथा किन परिस्थितियों में करना है। उदाहरण के लिए—

आयतन तथा दाब में क्या सम्बन्ध होता है ?

इस प्रश्न में किस प्रकार का आयतन तथा किन परिस्थितियों में सम्बन्ध करना है, स्पष्ट नहीं है। सही रूप में यह प्रश्न इस प्रकार पूछा जायगा

यदि ताप स्थिर रहे तो वायु के आयतन तथा दाब में क्या सम्बन्ध होता है ?

अतः अध्यापक को प्रश्नों का निर्माण करते समय प्रश्न संक्षिप्त रूप में इस प्रकार बनाने चाहिए कि वे स्पष्ट रूप से छात्र को उत्तर देने की पृष्ठभूमि प्रदान कर सकें।

(ग) प्रासंगिकता (Relevance)—प्रश्न पाठ्यवस्तु से सीधा सम्बन्धित होना चाहिए। कभी-कभी अध्यापक ऐसे शब्दों, पदों या प्रत्ययों का उपयोग अपने प्रश्न में कर बैठता है जिनका विद्यार्थियों ने पूर्व में अध्ययन नहीं किया हो। इस प्रकार के शब्द अप्रासंगिक होने पर बालक के सम्मुख कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं। अप्रासंगिक तथ्यों से विद्यार्थी भ्रमित हो जाता है तथा उसका ध्यान इन तथ्यों को समझने में लग जाता है अतः अध्यापक को चाहिए कि वह प्रश्न ऐसे बनाये जो कि सीधे ही पढ़ाई गई पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित हों तथा उस प्रश्न में प्रयुक्त शब्द सरल तथा एक अर्थ वाले हों।

प्रासंगिकता का एक अर्थ यह भी है कि अध्यापक जब मान के एक पक्ष से प्रश्न पूछ रहा हो तो वह अचानक ऐसे प्रश्न न करे जिनका तालमेल इन प्रश्नों से न हो।

उदाहरण

(अध्यापक नक्शा दिखाकर प्रश्न पूछ रहा है)

(1) भूमध्य रेखा कितने डिग्री अक्षांश पर स्थित है ?

(2) यहाँ की जलवायु कैसी है ?

(3) यहाँ के निवासियों का मुख्य धन्धा क्या है ?

(4) अधिक वर्षा के कारण यहाँ की भूमि कैसी है ?

(५) राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में वर्षा कम क्यों होती है ?

(यह प्रश्न अप्रासंगिक है)

(घ) प्रश्न की बनावट—प्रश्न को बनाते समय कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(1) एक प्रश्न में एक ही बात का पूछा जाना उपयुक्त होता है। यदि एक प्रश्न में एक से अधिक उत्तर देने होंगे तो इससे छात्र भ्रमित होगा।

उदाहरण प्रस्तुत है

प्रश्न—मक्खी कौन-कौनस रोग किस प्रकार फैलाती है ?

इस प्रश्न का दो प्रश्नो म इस प्रकार पूछा जा सकता है—

प्रश्न—(1) मक्खी कौन-कौनस रोग फैलाती है ?

(2) मक्खी किस प्रकार रोग फैलाती है ?

(2) अध्यापक को प्रश्नो की बनावट इस प्रकार की नही बनानी चाहिए कि छात्र उसका उत्तर हाँ या नहीं म द। हाँ/नही प्रकार के प्रश्न के उत्तर म बालक का उत्तर का अन्दाज करन की 50 प्रतिशत सम्भावना बनी रहती है। उदाहरण के लिए—

'क्या अशोक न्यायप्रिय सम्राट था ?'

यह प्रश्न यदि "अशोक को न्यायप्रिय सम्राट क्या कहते है ?" रूप स पूछा जावे तो केवल 'हां' या 'नहीं' कहन स उत्तर पूर्ण नही होता है। बालक को वास्तव में अशोक की न्यायप्रियता के बारे म सोचना होगा तथा उदाहरण भी प्रस्तुत करने होगे।

(ङ) वस्तुनिष्ठता (Objectivity)—प्रश्न इस प्रकार का हो कि उसका प्रत्यक स्थिति म केवल एक उत्तर हो। इस प्रकार के प्रश्न पूछन स छात्रो के एक उत्तर ही सही मान जात है। छोटे प्रश्न तथा उनके लघु उत्तरो से पाठ का विकास तेजी स होता है। दूसरे शब्दो म प्रश्नो का प्रवाह बढता है। यदि प्रश्न के कई उत्तर होगे तो अध्यापक को एक प्रश्न को पूरा करन मे ही काफी समय लगगा।

(च) प्रश्न पूछने की प्रक्रिया (Process)

प्रश्न की बनावट उत्तम हो, परन्तु उसका प्रस्तुतिकरण ठीक प्रकार स न हो तो ऐसी स्थिति म वह सही रूप म छात्रो के सामने नही आ पाता है। अध्यापन की प्रक्रिया मे प्रश्न का प्रस्तुतिकरण अध्यापक द्वारा किया जाता है। यदि प्रश्न पूछने की प्रक्रिया भी उत्तम हो तो बालक आसानी म प्रश्न को समझ लेता है तथा उसका उत्तर शीघ्र द देता है। इसमे प्रश्नो का प्रवाह बढ जाने की सम्भावना बनती है।

(1) उपयुक्त प्रश्न गति (Speed of Asking Questions)

प्रश्न पूछने की गति का अपना आप म विशेष महत्व होता है। बालक की सोचने की गति अध्यापक की गति स धीमी होती है। अध्यापक ज्योही एक प्रश्न पूछता है, उसे तुरन्त इसके उत्तर की आशा नही करनी चाहिए तथा प्रश्न पूछन के उपरान्त कुछ क्षण तक रुक कर फिर छात्रो को उत्तर बताने के लिए कहा जाना चाहिए। यदि अध्यापक प्रश्न पूछने के बाद कुछ सैकण्ड नही रुकते तथा तुरन्त उत्तर पूछते है तो छात्र प्रश्न को समझ कर उत्तर देने म कठिनाई का अनुभव करते है। परिणामस्वरूप प्रश्नो का प्रवाह कम हो जाता है।

उदाहरण प्रस्तुत है—

अध्यापक—एक सप्ताह में कितने दिन होते हैं ?

(कुछ देर इधर-उधर देख कर, रवि की ओर इशारा करता है)

रवि—एक सप्ताह में सात दिन होते हैं।

अध्यापक—सप्ताह के प्रथम दिन का नाम क्या है ?

(पुनः इधर-उधर देख कर, किसी की ओर इशारा करता है)

(2) अध्यापक-व्यवहार (Teacher behaviour)

प्रश्न पूछते समय अध्यापक का व्यवहार सीधा-सादा व प्राकृतिक रूप में होना चाहिए। उसकी वाणी में मधुरता तथा तीव्रता होनी चाहिए। धीमी आवाज से पूछे गये प्रश्नों को छात्र पूर्णतः समझ नहीं पावेंगे परिणामस्वरूप उसका उत्तर देने में असमर्थ होंगे।

अध्यापकों में ऐसी भी आदत देखी गई है कि वे या तो प्रश्नों को दो बार बोलते हैं या छात्रों के उत्तरों को दोहराते हैं। दोनों प्रकार की क्रियाएँ समय को नष्ट करने वाली होती हैं तथा इसमें दोहरा समय लगता है। अध्यापक को चाहिए कि वह केवल पुनर्बलन (Reinforcement) करने के लिए ही छात्र के उत्तर को दोहराये अन्यथा नहीं।

कभी अध्यापक प्रश्न के अधूरे वाक्य बोलता है तथा छात्र 'स्थान पूर्ति' करते हैं। इसमें कुछ छात्रों को पूरा प्रश्न समझ में आता है तथा कुछ अधूरे प्रश्न को नहीं समझ पाते हैं। अतः अध्यापक को प्रश्न पूछते समय कक्षा में पूरा वाक्य बोलना चाहिए जिससे कि बालक उसे समझ सकें।

जैसे 'दिल्ली राजधानी है ... किस देश की ?'

इसे सही रूप में निम्न प्रकार से पूछना चाहिए

दिल्ली किस देश की राजधानी है ?

(स) प्रदा (Out put)

जिस प्रकार शिक्षण का सम्बन्ध बालक के समग्र विकास से है उसी प्रकार प्रश्न का सम्बन्ध बालक के उत्तर से है। यदि बालक सही उत्तर नहीं दे पाता तो प्रश्न के स्वरूप पर प्रश्नचिह्न लग जाता है अतः प्रश्नों के निर्माण के समय बालक के मानसिक स्तर का ध्यान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि प्रश्न का स्तर उनके मानसिक स्तर के अनुकूल है तो छात्र उसका उत्तर शीघ्रतापूर्वक दे सकेंगे।

अध्यापन में बालक की रुचि अपना विशेष महत्त्व रखती है। प्रश्नों की विषयवस्तु घिसी पिटी या परम्परागत रूप में छात्रों के सामने प्रस्तुत की जाती है तो यह उनके ध्यान को अधिक समय तक केन्द्रित नहीं कर पायगी। इसलिए यह आवश्यक है कि बालकों से पूछे जाने वाले प्रश्न रोचक हों तथा कुछ नवीनता लिए हुए हों।

इस प्रकार प्रश्न-कौशल विकसित करने के लिए अध्यापक को प्रमुख रूप से प्रश्न-संरचना, प्रश्न प्रक्रिया तथा प्रदा का ध्यान रखना चाहिए।

प्रश्न पूछने का तरीका (Style of Questioning)

अध्यापक प्रश्न किस प्रकार पूछे, यह उसके विवेक तथा कक्षा की परिस्थिति पर निर्भर करता है। फिर भी कुछ सुझाव दिये जा रहे है जिनको अपना कर वह अपने प्रश्न पूछने के तरीके को अधिक प्रभावशाली बना सकता है

(1) प्रश्न किसी एक विशेष छात्र को लक्ष्य करके पूछने के स्थान पर समस्त कक्षा से पूछे जाने चाहिए।

(2) प्रश्न पूछते समय अध्यापक को अपनी वाणी शान्त तथा सयत रखनी चाहिए। न तो अधिक धीमा और न ही अधिक ऊँची आवाज से प्रश्न पूछना चाहिए।

(3) प्रश्न को-सख्या बोलकर जैसे पहला प्रश्न, दूसरा प्रश्न आदि नही पूछना चाहिए।

(4) समस्त कक्षा को प्रश्न पूछने के बाद यथासभव बालक का नाम लेकर उत्तर पूछना चाहिए।

(5) प्रश्न कक्षा के विभिन्न स्थानो पर बैठे छात्रो से पूछे जाने चाहिए।

(6) प्रश्न पूछते समय अध्यापक को कक्षा मे टहलना नही चाहिए।

(7) प्रश्न पूछते समय उपयुक्त गति से विराम देते हुए बोलना चाहिए।

(8) अध्यापक को ऐसा प्रश्न नही पूछना चाहिए कि प्रश्न की भाषा मे ही इसका उत्तर मौजूद हो।

अध्यापक के कक्षा व्यवहार मे प्रश्न पूछने की कला का विशेष स्थान है यदि वह प्रश्नो का निर्माण ठीक प्रकार से करता है तथा विद्यार्थियो के स्तर रुचियो आदि का ध्यान रखते हुए प्रश्नो को ठीक प्रकार से पूछता है तो उसके अध्यापन मे सुधार लाया जा सकता है। साराशत यह कहा जा सकता है कि प्रश्न करने की कला का महत्त्व स्वीकारे बिना कोई भी अध्यापक कक्षा मे सफलतापूर्वक अध्यापन नही कर सकता। प्रश्न-कला शिक्षण के अन्य कौशलो से महत्त्वपूर्ण मानी गयी है

प्रश्न कौशल का मूल्याकन प्रपत्र

(Observation Schedule for Skill of Questioning)

अध्यापक का नाम	रोल न
प्रकरण	कक्षा
दिनाक	समयावधि

अध्यापक निम्न रेटिंग स्केल पर प्रश्न कौशल का मूल्याकन करेगा (1) उत्कृष्ट (2) बहुत अच्छा, (3) अच्छा (4) सामान्य तथा (5) असतापजनक को प्रकट करता है। इसे प्रकट करने हेतु W का निशान लगावें।

कुशलता के घटक	1	2	3	4	5
1 व्याकरणिक शुद्धता					
2 प्रकरण से सुसम्बद्धता					
3 संक्षिप्तता					
4 उचित गति एवं विराम					
5 सुश्रव्यता					
6 अनावश्यक आवृत्ति					
7 उत्तरों की अनावश्यक आवृत्ति					
8 प्रश्न संख्या की पर्याप्तता					

निरीक्षक की टिप्पणी—

हस्ताक्षर

प्रश्न कौशल पर आधारित लघु पाठ

प्रकरण—देशाटन

अध्यापक—(समाचार पत्र को दिखाते हुए) आज समाचार पत्र में प्रमुख समाचार यह है कि सरकार विदेशी पर्यटकों को देश में अधिक से अधिक आकर्षित करना चाहती है।

पर्यटक का क्या अर्थ है? (अध्यापक चारों ओर देखता है फिर राम की ओर इशारा करता है)

राम—व्यक्ति जो कि अपनी रुचि के स्थान देखने के लिए किसी देश में भ्रमण करता है, पर्यटक कहलाता है।

अध्यापक—विदेशी पर्यटक से क्या अभिप्राय है? (इधर-उधर घूमकर) सुदेश।

सुदेश—यह व्यक्ति बाहरी देश से भ्रमण करने आता है।

अध्यापक—हमारे देश में एक विदेशी पर्यटक किस प्रकार के स्थान देखना पसन्द करते हैं? (कुछ रुक कर) सुधा।

सुधा—पुराने शहर, पुराने भवन।

अध्यापक—पुराने शहर तथा पुराने भवन से आपका क्या आशय है? मोहन।

मोहन—ऐसे शहर तथा भवन जो कि ऐतिहासिक महत्त्व के हों।

अध्यापक—किस प्रकार के भवन पर्यटक देखना पसन्द करते हैं?

(कुछ समय चुप रह कर) मजीद।

मजीद—मन्दिर, मकबरे, किले, महल इत्यादि।

अध्यापक—शाबाश परन्तु सब पर्यटक भवन की ओर ही आकर्षित नहीं

हाते। इसके अलावा और किस प्रकार की वस्तुएँ पयटकों का ध्यान केंद्रित करती हैं ?

(पूरी कक्षा निरुत्तर)

अध्यापक—यदि आपके शहर भरतपुर म कोई मित्र-पयटक आय तो आप उसे क्या दिखाना चाहेंगे ? (चारो ओर देखता है) साधना।

साधना—मैं उसे अभयारण्य दिखाना चाहूँगी।

अध्यापक—साधना का उत्तर बहुत अच्छा है। आप भी उसस सहमत होंगे (रुक कर) राम।

राम—हा, श्रीमान् मैं भी सहमत हूँ।

अध्यापक—क्यों ?

राम—भरतपुर के अभयारण्य म काफी सख्या म बाहर के भिन्न किस्म के पक्षी आते हैं तथा वे प्राकृतिक वातावरण म रहते है।

अध्यापक—(सिर हिलाते हुए) हां, मैं भी साधना के विचार म सहमत हू।

पयटन से हमारे देश को आर्थिक लाभ क्या ह। (थोडा रुक कर) रूपा।

रूपा—विदेशी पयटक यहा रहकर बहुत सा धन खच करते हैं इससे हम विदेशी मुद्रा मिलती है जिसस विदेशी मुद्रा-कोष बढ़ता ह।

(पाठ इसी प्रकार आगे चलता है)

साराश

प्रश्नो को शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य एक सम्पर्क-सूत्र माना गया है। शिक्षा प्रदान करने के लिए यह एक उत्तम साधन है। इस कला के बिना कोई भी शिक्षण विधि सफलतापूवक लागू नही की जा सकती। शिक्षक शिक्षार्थी अन्त क्रियाओ म प्रश्न गति प्रदान करते हैं।

अच्छे स्तर के प्रश्न म उद्देश्य प्राप्ति का प्रयास, भाषा सरल, शुद्ध एव स्पष्ट, सक्षिप्त एव प्रत्यक्ष, प्रश्न वस्तुनिष्ठ, क्रियाशीलता उत्पन्न करने वाले तथा एक तार्किक क्रम म होने चाहिए। प्रश्न पूछते समय अध्यापक को उपयुक्त गति और विराम देना चाहिए। प्रश्न-कौशल के प्रमुख तत्त्व व्याकरणिक शुद्धता, सुसम्बद्धता, सक्षिप्तता, उचित गति एव विराम, सुश्रव्यता, अनावश्यक आवृत्ति न होने देना, उत्तरो का न दोहराना तथा प्रश्नो की सख्या की पर्याप्तता ह।

अध्यापन के समय पूछे गये प्रश्न विद्यार्थी की नवीन परिस्थिति मे सीखे हुए ज्ञान का उपयोग करने से सम्बन्धित भी होन चाहिए। इसमे उनम तार्किक स्तर क चिन्तन का विकास होगा। परन्तु ऐसे प्रश्न पाठ के प्रारम्भ म नही पूछे जान चाहिए। प्रश्न पूछने की उत्तम कला सफल अध्यापन की कुन्जी है।

अध्याय 9 (IV)

व्याख्यान देना

(Lecturing)

व्याख्यान देना शिक्षण की सबसे प्राचीन विधि है। व्याख्यान के अन्तर्गत अध्यापक का स्थान प्रमुख माना गया है। वह पाठ्य-सामग्री के प्रत्येक भाव को सरल एवं बोधगम्य भाषा में विद्यार्थियों को स्पष्ट करता है। कठिन प्रत्ययों को उदाहरण द्वारा सरल करके समझाया जाता है तथा विश्लेषण कर विद्यार्थियों को स्पष्ट किया जाता है।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को व्याख्यान विधि से पढ़ाये जाने का अक्सर विरोध किया जाता रहा है जिसका प्रमुख कारण व्याख्यान का यान्त्रिक तरीके से नीरस-प्रायोजन रहा है। चूँकि इस विधि से अध्यापक को पाठ्यक्रम पूरा करने में आसानी रहती है तथा कम समय लगता है, इसके अधिक उपयोग ने इसे लोकप्रिय बना दिया है। इसके उपरान्त भी व्याख्यान विधि आज भी कक्षा शिक्षण में काम में लाई जाती है।

व्याख्यान का अर्थ

(Meaning of Lecture)

व्याख्यान का अर्थ शिक्षक द्वारा छात्रों को ज्ञान की मौखिक व्याख्या करने से है। यह शिक्षण का वह रूप है जिसमें शिक्षक, पाठ्यवस्तु को छात्रों को स्पष्ट करने के लिये लगातार बोलता रहता है। पाठ की प्रभावशीलता अध्यापक की विचार व्यक्त करने की योग्यता (Expression power) पर निर्भर करती है। अध्यापक इस योग्यता में जितना निपुण होगा, वह उतना ही भली प्रकार से व्याख्यान दे सकेगा।

व्याख्यान को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

थामस एम रिस्क[1] **(Thomas M Risk)**

"व्याख्यान उन तथ्यों, सिद्धांतों या अन्य सम्बन्धों का स्पष्टीकरण है, जिनको शिक्षक चाहता है कि उसके सुनने वाले समझें।"

---

1 Thomas M Risk Principle and Practices of Teaching in Secondary Schools P 249

व्याख्यान विधि का उद्देश्य विषयवस्तु तथा उससे संबंधित तथ्यों को प्रस्तुत करना है जो किसी निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता देता है ।

व्याख्यान देने की प्रणाली का उपयोग करने अथवा न करने के पक्ष में विभिन्न तर्क दिये जाते हैं । व्याख्यान विधि की कुछ विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है तथा कक्षा-शिक्षण के लिये इसे उपयुक्त नहीं माना है । रेन[1] (Wren) के अनुसार "व्याख्यान देना" कभी-कभी शिक्षण की प्रणाली कहा जाता है । जब शिक्षक व्याख्यान देता है, तब वह शिक्षण नहीं करता । ' रेन के कहने का अभिप्राय यह है कि व्याख्यान देने में छात्र को केवल सूचनाएँ प्रदान की जाती है। इस प्रक्रिया में छात्र सूचनाओं को चुपचाप बैठा, श्रोता के रूप में, ग्रहण करता रहता है तथा अध्यापक व्याख्यान के माध्यम से उन्हें प्रस्तुत करता रहता है। दूसरे शब्दों में ज्ञान का प्रवाह एकतरफा अर्थात् शिक्षक से शिक्षार्थी की ओर ही होता रहता है । यही कारण है कि व्याख्यान को वह शिक्षण नहीं मानता है ।

व्याख्यान देने में क्रियाशीलता का अभाव पाया जाता है । जैसा कि पिछले अध्यायों में स्पष्ट किया जा चुका है कि "करके सीखने (Learning by doing) में विद्यार्थियों को अपनी मानसिक योग्यता का उपयोग करने का अवसर मिलता है, वह प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर ज्ञानार्जन करता है जबकि व्याख्यान सुनते समय वह स्वयं कोई प्रायोगिक कार्य नहीं करता तथा एक निष्क्रिय बालक के रूप में कक्षा में बैठा रहता है । इससे उसमें मानसिक थकान शीघ्रता से हो जाती है ।

व्याख्यान देने के सम्बन्ध में यह भी दोष लगाया जाता है कि इस प्रकार की विधि में यह ज्ञात किया जाना कठिन है कि बालक पाठ्यवस्तु को समझ रहा है अथवा नहीं । साथ में अध्यापक के लिए यह निर्णय लेना भी कठिन रहता है कि बालक कक्षा में मानसिक रूप से उपस्थित है अथवा वह बैठा बैठा अन्य बातों पर मन ही मन चिन्तन कर रहा है । उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्याख्यान विधि का उपयोग शिक्षण में कम से कम किया जाना चाहिए ।

परन्तु कुछ शिक्षाविदों का यह मानना है कि व्याख्यान देना भी एक उत्तम कौशल है जो कि सही प्रकार से उपयोग में लाया जाना चाहिए । इस विधि के विरोध करने वालों का भी यह मानना है कि इस प्रणाली के अनेक लाभ जैसे व्याख्यान सुनकर उपयोगी तथ्यों को लिखना, सुने गये तथ्यों को अपनी भाषा में प्रकट करना इत्यादि का प्रशिक्षण इस विधि में ही विद्यार्थी को प्राप्त होता है । जो कि भावी जीवन में बहुत उपयोग में आ सकता है। लडन ने इस

1 Wren Percival The Indian Teacher s Guide p 98

प्रणाली का समर्थन करते हुए यहां तक कहा है कि "कुछ सीमा तक प्रत्येक पाठ में इसकी आवश्यकता होती है और अनेक पाठ मुख्य रूप से इस पर निर्भर करते है।"

पीयर्स तथा लार्बर[1] (Pierce and Lorber) ने तो व्याख्यान देने को एक अच्छे शिक्षक का उत्तम कौशल माना है। इनके अनुसार "एक अच्छा व्याख्यान बालकों में ज्ञानप्रद शिक्षण अनुभव पैदा करता है, परन्तु यह अध्यापक की योग्यता पर निर्भर करता है।" एक व्याख्यान देने के लिए अध्यापक यदि पूर्व-तैयारी करता है तथा पाठ्यवस्तु को अनुभवाश्रित कर सरल भाषा में विद्यार्थियों को स्पष्ट करता है तो इससे वे निश्चित ही लाभान्वित होगे। परन्तु एक सफल एवं प्रभावी व्याख्यान की तैयारी के लिए अध्यापक को पूर्व चिन्तन करना आवश्यक है। इसके अभाव में व्याख्यान असफल रहेगा।

व्याख्यान-विधि का शिक्षण में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। यदि इस विधि को प्रभावी बनाना है तो "व्याख्यान देने" के कौशल का शिक्षक में विकास करना होगा। "व्याख्यान देने" के कौशल में निम्नलिखित प्रमुख तत्व हैं

(1) विन्यास प्रेरण
(2) विचार व्यक्त करने की क्षमता
(3) वाणी की विविधता
(4) अन्त क्रिया में परिवर्तन
(5) पाठ की गति
(6) व्याख्यान समापन।

(1) विन्यास-प्रेरण

व्याख्यान प्रारम्भ करने के कौशल को विन्यास प्रेरण कहते हैं। यदि व्याख्यान का प्रारम्भ रुचिकर तथा प्रेरणादायक है तो अध्यापक विद्यार्थियों के ध्यान को पाठ्य-बिन्दुओं पर आसानी से केन्द्रित कर सकेगा। विन्यास प्रेरण के लिए शिक्षार्थियों के दैनिक जीवन के अनुभव, पूर्व घटित घटनाएं, ऐतिहासिक घटनाएं इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

(2) विचार व्यक्त करने की क्षमता

व्याख्या देने के कौशल में अध्यापक की विचार व्यक्त करने की क्षमता अत्याधिक महत्त्व रखती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अध्यापक पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतिकरण में उच्च एवं जटिल शब्दों का प्रयोग करें। अध्यापक का मानसिक स्तर बालकों से उच्च स्तर का होता है यदि वह अपनी योग्यता एवं मानसिक

1 Pierce W D and Lorber M A Objectives and Method for Secondary Teaching Prentice Hall Inc 1977 P 93

स्तरानुसार ही भाषा का प्रयोग करता है तो विचारों को छात्रों तक पहुँचाने में असमर्थ रहेगा। अध्यापक की भाषा यदि बालकों के स्तरानुसार है तथा वह उनके अनुभवों को आधार बनाकर उन्हीं की भाषा में पाठ्यवस्तु को स्पष्ट करता है तो उसके व्याख्यान में बालक रुचि प्रदर्शित करेंगे।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि अध्यापक को व्याख्यान देते समय उच्चारण संबंधी त्रुटियाँ अथवा व्याख्यान के दौरान श्यामपट्ट पर लिखते समय वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ नहीं करनी चाहिये। बालक अध्यापक को सदैव आदर्श मानता है। यदि अध्यापक का उच्चारण त्रुटिपूर्ण है तो बालक उसे आदर्श मान कर वैसे ही शब्दों को बोलने लगेगा। अतः व्याख्यान देते समय अध्यापक को शब्दों के सही उच्चारण पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(3) वाणी की विविधता

व्याख्यान देने में अध्यापक की वाणी उत्तेजक का कार्य करती है। वाणी शब्दों की वाहक है यदि वह मधुर एवं कर्णप्रिय है तो यह निश्चित है कि बालक व्याख्यान को ध्यानपूर्वक सुनेंगे। अधिक धीमी आवाज या अधिक तेज आवाज दोनों ही व्याख्यान देने के कौशल को अप्रभावी बनाती है। यदि अध्यापक धीमी आवाज में व्याख्यान देता है तो पीछे बैठे विद्यार्थियों को व्याख्यान सुनाई नहीं देगा अथवा सुनने में उन्हें कठिनाई का अनुभव होगा। इसके विपरीत यदि अध्यापक तेज आवाज से कक्षा में व्याख्यान देता है तो यह बालकों में थकान शीघ्र उत्पन्न करेगा।

व्याख्यान में एक जैसी वाणी या हाव भाव व्याख्यान को नीरस बनाते हैं। इसके विपरीत व्याख्यान में समावेशित भावों के अनुकूल अध्यापक भी अपनी मुद्राएं बनाकर उनको प्रकट करता है तथा उसी के अनुरूप वाणी में उतार-चढ़ाव लाता है तो इस प्रकार का व्याख्यान अधिक प्रभावी होगा। अतः एक प्रभावी व्याख्यान के लिए इन तत्त्वों को इसमें समावेशित किया जाना चाहिए।

(4) अन्तःक्रिया में परिवर्तन

शिक्षण का प्रमुख रूप से शिक्षक शिक्षार्थी अन्तःक्रिया माना गया है यदि अध्यापक व्याख्यान में स्वयं ही बोलता रहता है तथा विद्यार्थियों को उनकी शंकाओं के समाधान हेतु अवसर प्रदान नहीं करता है तो इस प्रकार व्याख्यान एक-तरफा हो जाता है जिसमें अध्यापक सक्रिय परन्तु विद्यार्थी निष्क्रिय हैं। व्याख्यान के उत्तम कौशल के लिए यह आवश्यक है कि समय समय पर विद्यार्थियों से प्रश्नों को आमंत्रित करना चाहिए ताकि विषयवस्तु को उन्हें और अधिक स्पष्ट किया जा सके।

(5) पाठ की गति

पाठ की गति से यहां तात्पर्य पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतिकरण की गति से है। व्याख्यान देने में पाठ्यवस्तु जिस गति से विद्यार्थियों को दी जा रही है, यदि उसी गति से विद्यार्थी उसे ग्रहण कर रहे हैं तो यह एक उत्तम स्थिति है। परन्तु विद्यार्थियों में व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती हैं। सभी विद्यार्थियों के सीखने की गति एक जैसी नहीं होती। कुछ विद्यार्थी तीव्र गति से, कुछ धीमी गति से तथा अधिकांश औसत गति से सीखते हैं। अध्यापक को चाहिए कि वह व्याख्यान देते समय औसत छात्रों की सीखने की गति से पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतिकरण करे।

(6) व्याख्यान समापन

व्याख्यान का समापन भी एक कौशल है। यदि कोई व्याख्यान अचानक समाप्त हो जाता है तो यह उत्तम प्रकृति का व्याख्यान नहीं माना जाता। व्याख्यान-समाप्ति सामान्यतः जो कुछ पूरे व्याख्यान में स्पष्ट किया गया है, उसके सार-संक्षेप से की जानी चाहिए।

व्याख्यान पाठ के लिए सूक्ष्म पाठ योजना

विषय सामाजिक ज्ञान कक्षा 9वीं

समय 10 मिनट प्रकरण राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्त्व

अध्यापक—विद्यार्थियो, आपने आजकल समाचार पत्रों में पढ़ा होगा कि कुछ समाज विरोधी तत्त्व लूटमार, आगजनी, तोड़फोड़ एवं हत्याएं करने में लगे हैं। प्रत्येक दिन हम ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं। ये लोग भाषा या सम्प्रदाय के आधार पर देश के टुकड़े करना चाहते हैं। आज हम ऐसी ही अनेक समस्याओं के बारे में विचार करेंगे जो हमारी राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं।

पहली प्रवृत्ति जो कि राष्ट्रीय एकता में बाधक है वह है साम्प्रदायिकता—(अध्यापक श्यामपट्ट पर इसे लिखता है)

अध्यापक—राष्ट्रीय एकता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा साम्प्रदायिकता की भावना है। इसके कारण विभिन्न सम्प्रदायों के लोग एक दूसरे से द्वेष व घृणा करते हैं और इसी कारण उनमें आपस में कभी कभी संघर्ष हो जाता है।

(दो जातियों में हुए झगड़े का समाचार पत्र में से चित्र प्रदर्शित करते हुए)

अध्यापक—आप लोग देखिए कि किस प्रकार निर्दोष लोगों के घर जलाए जा रहे हैं जाति, धर्म और भाषा के जहर से ये कुछ स्वार्थी लोग किस प्रकार हत्याएँ कराते हैं। आप सोचिए कि क्या हमारी रगों में बहने वाला खून अन्य जाति के खून से भिन्न है? ईश्वर ने सबको एक जैसा बनाया है। ये अन्तर मानव निर्मित हैं।

यदि हम राष्ट्रीय एकता बनाये रखनी है तो साम्प्रदायिकता की भावना को हमारे देश म नही पनपने देना ह ।

उपरोक्त पाठ म सम्पूर्ण कथन अध्यापक द्वारा दिया जा रहा है । विविधता लाने के लिये वह श्यामपट्ट पर लिखता है, चित्र दिखाता है तथा वाणी म उतार चढ़ाव लाता ह । व्याख्यान के अन्त म वह व्याख्यान का सार सक्षेप म प्रस्तुत करता ह ।

व्याख्यान-कौशल की निरीक्षण सूची

छात्राध्यापक का नाम ——— रोल नम्बर—
कक्षा — — विषय — कालाश
दिनाक ——— प्रकरण —
समयावधि — — —

व्याख्यान-कौशल के घटक	1	2	3	4	5
1 विन्यास प्रेरण					
2 भाषा का स्तर					
3 विचारो की तारतम्यता					
4 शब्दो का उच्चारण					
5 रुचिकर युक्तियो का प्रयोग					
6 अन्त क्रिया म परिवर्तन					
7 वाणी की तीव्रता					
8 पाठ की गति					
9 वाणी म विविधता					
10 पाठ का साराश					

नोट 1 उत्तम, 2 बहुत अच्छा, 3 अच्छा, 4 साधारण तथा 5 असतोषजनक को प्रदर्शित करते है । अध्यापक को इसे प्रदर्शित करने के लिये ✓ का निशान कौशल के घटक के सम्मुख अकित कर देना चाहिए ।

अध्यापक की टिप्पणी—

हस्ताक्षर अध्यापक

साराश

माध्यमिक स्तर पर व्याख्यान विधि से पढाये जाने का सामान्यत विरोध किया जाता है जिसका मूल कारण विधि न होकर इसका यान्त्रिक तरीके से नीरस उपयोग है । यदि इसे विधिवत प्रयोग म लाया जावे तो यह विधि माध्यमिक स्तर पर भी लाभप्रद सिद्ध हो सकती है ।

व्याख्यान विधि में शिक्षक व्याख्यान द्वारा तथ्यों, सिद्धान्तों तथा अन्य सम्बन्धित प्रत्ययों की व्याख्या रोचक ढंग से करता है। इसमें कम समय में अधिक मात्रा में पाठ्यवस्तु का पढ़ाया जाना सम्भव है। इसके प्रयोग किये जाने व न किये जाने के बारे में अलग-अलग मत हैं।

व्याख्यान विधि का शिक्षण में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। इस विधि की प्रभावशीलता शिक्षक के व्याख्यान देने के कौशल पर निर्भर है। व्याख्यान कौशल के प्रमुख तत्त्व विन्यास प्रेरणा, विचार व्यक्त करने की क्षमता, वाणी की विविधता, अन्त क्रिया में परिवर्तन, पाठ की गति और व्याख्यान समापन हैं। इनका उपयोग करने से शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है।

□

अध्याय 9 (v)

प्रदर्शन-कौशल

(Skill of Demonstration)

रूसा, कामनियस और पस्टालाजी ने एसी शिक्षा की कल्पना की थी जिसम ज्ञान का मौखिक रूप स या पुस्तक द्वारा किय जान की बजाय उस प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा किया जाव। इनस भी पूव ग्रीक तथा रामनवासियो न सूचनाओ के आदान प्रदान के लिए चित्र एव वस्तुओ का उपयोग किया। रूसा का यह मानना है कि यदि बालक को प्रत्यक्ष अनुभव कराय जाए तो य अधिक ज्ञानवधक होग। यदि बालक की दृष्टि से सोचा जाये, तो यह तथ्य सामने आता है कि वह स्वय अनुभव करना अधिक पसन्द करता ह। ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अर्जित ज्ञान अन्य से रूप से ग्रहण किये गये ज्ञान से अधिक स्थाई माना गया है।

मनोवैज्ञानिको का यह मानना ह कि बालक प्रमुख रूप स 5 ज्ञानेन्द्रियो स ज्ञानार्जन करता ह इसम वह सुनन तथा देखन स 86 प्रतिशत ज्ञान प्राप्त करता ह जबकि केवल सुनन स 6 प्रतिशत। कक्षा शिक्षण की वतमान स्थिति जहा अध्यापक केवल व्याख्यान देता ह तथा चित्र, चाट या माडल का उपयोग नही करता है, उतनी प्रभावी नही ह जितनी कि वह इनको उपयोग म लाते हुए करता है। इसस यह निष्कष निकलता ह कि शिक्षण म शिक्षण सामग्रिया लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

प्रश्न उठता ह कि माडल, चाट या किसी उपकरण द्वारा प्रयोग किस प्रकार छात्रो क समक्ष प्रस्तुत किय जायें? कुछ विषय जसे विज्ञान एव भूगोल एस है, जिसम इनका अधिकतर उपयोग किया जाता है। इसम भी ऐसे प्रकरण जिसम किसी सिद्धान्त की यथार्थता सिद्ध करनी हो, यह कौशल अध्यापक को प्रभावी प्रदर्शन करन म सहायक हो सकती ह। कभी कभी एसी भी स्थिति आती ह जिसम यदि बालक को सीधा ही प्रयोग करन को द दिया तो वह यन्त्र को ताड द या खराब कर द, ऐसी स्थिति म अध्यापक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सवप्रथम उस प्रयोग को छात्रो के सम्मुख प्रदशन करे एव उनम यन्त्र को काम म लाने का

कौशल उत्पन करे। इस प्रकार प्रदशन करना एक प्रभावी तथा शिक्षणोपयोगी कौशल है। जिसे एक शिक्षक प्रशिक्षणार्थी को जानना चाहिए। इसके महत्त्व को मेक्कलसकी[1] (Mc Clusky) ने इन शब्दो म प्रकट किया है —"श्रव्य दृश्य शिक्षण शाब्दिकता का प्रतिकार है। सीखने वाला के देखे गये अनुभवो को सुने गये अनुभवो स सम्बन्धित करके अध्यापक शिक्षण को अथपूण बना सकते हैं।"

प्रदर्शन-कौशल का महत्त्व

(Importance of Skill of Demonstration)

निम्नाकित बिन्दु इस कौशल के महत्त्व का स्पष्ट करत ह

(1) प्रत्यक्ष अनुभव देने मे सहायक

यदि अध्यापक म सहायक सामग्री का प्रभावी रूप स प्रदर्शित करने का कौशल ह ता वह इसके द्वारा विद्यार्थियो का प्रत्यक्ष रूप से वज्ञानिक तथ्यो की यथाथता का अवलोकन करने का अवसर प्रदान कर सकता है। य अनुभव प्रत्यक्ष होग तथा बालक के मस्तिष्क मे ज्ञान को स्थायित्व प्रदान करेंगे। इसके विपरीत यदि केवल शाब्दिक व्याख्या की जाती ह तो बालक वैज्ञानिक तथ्यो का मूत रूप प्रदान करने म असमथ रहेगा।

(2) उत्सुकता मे वृद्धि

अध्यापक द्वारा मौलिक रूप स की जाने वाली व्याख्या की तुलना म प्रत्यक्ष प्रयाग कर दिखाना विद्यार्थियो म अधिक उत्सुकता उत्पन्न करता है। प्रदशन कौशल के द्वारा शिक्षक अपनी कक्षा के विद्यार्थियो म इस प्रकार का वातावरण सफलता से उत्पन्न कर सकता ह।

(3) शिक्षार्थियो मे निरीक्षण करने की क्षमता का विकास

प्रदशन करना एक कला है। यदि अध्यापक यन्त्रवत् प्रदशन करता ह तथा मुख्य भागा या प्रक्रियाओ पर छात्रो का ध्यान केन्द्रित कर उन्हे उसे भली भाति देखने को कहता ह तो इसस बालको म निरीक्षण करने की योग्यता का विकास होगा जो कि भावी जीवन म उनके लिए लाभप्रद सिद्ध होगी।

(4) व्यावहारिक

अध्यापक को प्रदशन करत समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उसका स्वरूप व्यावहारिक हो।

प्रदर्शन-कौशल को विकसित करने के चरण

एक अध्यापक प्रदशन को किस प्रकार प्रभावी बनाय उसके लिए उस अग्राकित बिन्दुओ का ध्यान म रखना चाहिए—

1 Mc Clusky F Dean Basic Values in Visual Sensory Instruction Education 55 P 65 70 October 1934

(क) प्रदशन त्रिया का विश्लेषण—प्रदशन एक सम्पूण प्रत्रिया है जिसका विश्लेषण अध्यापक को कर लेना चाहिए। उसको अलग अलग भागा म बाट लेना श्रेयस्कर होगा। इसके उपरान्त अध्यापक को अधिगम की दृष्टि से यह तय करना चाहिए कि कौन-सा भाग या त्रिया का प्रदशन पहिले तथा किस बाद म करना है। उदाहरण के लिए दिन रात के बनने का प्रदशन करने से पूव पृथ्वी का माडल, सूय को दर्शाने वाला बल्ब, पृथ्वी की दनिक गति, वार्षिक गति, पृथ्वी का झुका होना इत्यादि इसके भाग है। अधिगम प्रक्रिया म प्रत्येक का स्थान निश्चित है। अत इनके प्रदशन का त्रम पूव निर्धारित कर लिया जाना आवश्यक है जिससे कि बालक दिन रात के बनने की क्रिया एव कारण का भली भाति समझ ले।

(ख) समय सीमा निर्धारण—कोई भी प्रदशन एक कक्षा म एक निश्चित समय तक ही किया जाना चाहिए। सामान्यत एक कालाश 40 मिनट की अवधि का होता है। अध्यापक को इसम एक प्रकरण पढाना होता है। प्रदशन स पूव उपकरण का परिचय तथा प्रदशन के उपरान्त छात्रा से इसके सम्बन्ध म प्रश्न पूछ कर उनके द्वारा अर्जित अनुभवा को सगठित करने के लिए भी समय की आवश्यकता होती है। अत प्रदशन का समय एक कालाश म 20 से 25 मिनट से अधिक नही होना चाहिए। कुछ प्रदशन पाठ के एक लघु भाग से ही सम्बन्धित होते हैं। अत इनका समय इनके सोपक्षिक महत्त्व के अनुसार लघु अवधि का हो सकता है।

(ग) प्रदशन के दौरान प्राप्त अनुभवो को अकित करना—प्रदशन के समय अध्यापक अनेक प्रकार की त्रियाए करता है। वह माडल का दिखाकर छात्रो से प्रश्न पूछता है तथा इसमे प्राप्त शिक्षण बिदुओ को श्याम पट्ट पर लिखता है। आवश्यकता पडने पर श्यामपट्ट पर चित्र भी बनाता है। इन त्रियाओ का प्रदर्शन कौशल म महत्त्व है। वह इनके द्वारा बालका के ध्यान को केंद्रित करन म सफल होता है तथा इसस बालका की निरीक्षण शक्ति और अधिक विकसित होती है।

(घ) विद्यार्थियों का सहयोग—यदि अध्यापक स्वय ही किसी प्रयोग को करता रहे तो ऐसी स्थिति म बालक केवल मूक दशक ही रहते है तथा उनमे त्रियाशीलता का अभाव बना रहता है। प्रदशन को अधिक क्रियाशील बनाने के लिए वह छात्रो को बुलाकर उनसे भी कुछ प्रायोगिक काय अपने मार्ग-दशन म करने को कह सकता है। इससे उनम कौशल का विकास होगा तथा प्रायोगिक कार्य को करने की प्रेरणा को बढावा मिलेगा।

(ङ) प्रयोग करते समय बैठक व्यवस्था—प्रदर्शन-कौशल में प्रयोग करने का कौशल सबसे महत्त्वपूर्ण है। अध्यापक को बैठक-व्यवस्था इस प्रकार रखनी चाहिए कि प्रदर्शित की जाने वाली वस्तु या प्रयोग का अवलोकन छात्र ठीक प्रकार से कर सकें। यदि इस हेतु प्रयोग कक्षा की टेबिल कुछ ऊँचे स्थान पर हो तथा बालक अंग्रेजी के 'यू' के आकार में बैठे हों तो सभी बालकों को प्रयोग आसानी से दिखाई देगा।

(च) सावधानियों/विशिष्टताओं का उल्लेख—अध्यापक द्वारा प्रदर्शन कौशल में सावधानियाँ तथा प्रयोग या मॉडल की विशिष्टताएं बताना एक महत्त्वपूर्ण कला है। कुछ उपकरण नाजुक होते हैं जिनमें प्रयोग करते समय कुछ सावधानियाँ बरती जानी आवश्यक है। इसी प्रकार कुछ पदार्थ हानिकारक होते हैं जिनके चखने या स्पर्श करने से बालक को क्षति हो सकती है। प्रयोग करते समय अध्यापक को इन सबका ब्योरा देना चाहिए। इसी प्रकार उन उन अवसरों का उल्लेख भी करना चाहिए जो कि बालक के अधिगम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

(छ) निष्कर्ष निकालना– प्रयोग या प्रदर्शन के दौरान कार्य-कारण-सम्बन्ध (Cause Effect Relationship) पाये जाते हैं। अध्यापक को इनके प्रकट होते ही इन पर छात्रों का ध्यान केन्द्रित करना चाहिए तथा प्रदर्शन का सारांश इनके आधार पर श्यामपट्ट पर लिखा जाना चाहिए। सारांश लिखते समय छात्रों से प्रश्न पूछ कर उनके उत्तरों को सारांश के रूप में लिखा जाना चाहिए।

(ज) कुशलता का विकास—प्रदर्शन की कुशलता अध्यापक की स्वयं की कुशलता पर निर्भर करती है। यदि अध्यापक स्वयं प्रयोग को ठीक प्रकार से करना जानता है तथा उपकरण को प्रयोग में ला सकता है तभी वह ठीक प्रकार से प्रदर्शन कर सकेगा। अतः अध्यापक को उपकरण को ठीक प्रकार से समझ लेना चाहिए।

प्रदर्शन हेतु सामग्री चयन का सिद्धान्त

(Principle for Selection of Demonstration Material)

पूर्व में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रदर्शन एक उपयोगी विधि है तथा इसमें शिक्षण सामग्री अथवा किसी प्रयोग का शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों का प्रदर्शन किया जाता है। यदि शिक्षण सामग्री का चुनाव शिक्षक ठीक प्रकार से नहीं करता है तो प्रदर्शन से होने वाले लाभ विद्यार्थियों को नहीं होंगे अतः यह आवश्यक है कि

विद्यार्थियो के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाली वस्तु या उपकरण का चुनाव सावधानी-पूर्वक किया जाय। इन बरती जाने वाली सावधानियो म से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

(क) प्रदशन हेतु सामग्री के चुनाव का सिद्धान्त

(1) प्रदर्शित किये जाने वाली वस्तु या प्रयोग का पाठ्यवस्तु से सीधा सम्बन्ध होना चाहिये। यह केवल छात्रा के लिये मनोरजन का साधन न बने अपितु उनके द्वारा पाठ्यक्रम की विषयवस्तु को समझने मे सहायक हो।

(2) शिक्षण-सामग्री का स्तर छात्रो की मानसिक आयु के अनुकूल होना चाहिये। इससे प्रदत्त अनुभव इस प्रकार के हो कि बालक इसे आसानी से ग्रहण कर सके। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि ये अनुभव बहुत अधिक सरल हो। इनका स्तर ऐसा हो कि ये छात्र के लिय नवीन हो परन्तु वह इन्हे समझने मे कठिनाई का अनुभव न करे।

(3) शिक्षण-सामग्री बाल मनोविज्ञान के अनुरूप हो अर्थात छोटे बालको मे वह रोचकता तथा मनोरजन के साथ ज्ञानवधन करे जबकि बडी कक्षाओ मे चिन्तन स्तर तार्किक योग्यता म वद्धि करने वाला हो।

(4) अध्यापक प्रदशन के समय सरल एव बोधगम्य भाषा का प्रयोग करे।

(5) प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री वास्तविक वस्तु का सही प्रतिनिधित्व करने वाली हो। दूसरे शब्दो म यह सामग्री विश्वसनीय होनी चाहिये। उदाहरण के लिये यदि अध्यापक छात्रो को "कगारू" का चित्र दिखा रहा है तो उस चित्र म कगारू की आकृति वास्तविक आकृति हो।

(6) प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री मे अनेक शैक्षिक सूचनायें होनी चाहिये। वह माडल जो कि केवल एक शिक्षण बिन्दु या सामान्य जानकारी को छात्रो को प्रदर्शित कर रहा है, उत्तम नही माना जाता। उदाहरण के लिए रेगिस्तान के छात्रो को ऊँट का चित्र प्रदर्शित किया जाना तर्क सगत नही है।

(7) प्रदर्शित किये जाने वाला प्रयोग या शिक्षण सामग्री प्रेरणादायक होनी चाहिये। इसके अभाव म शिक्षण नीरस रहेगा।

(8) पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित प्रदर्शित किये जाने वाली सामग्री का चुनाव इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि यह शीघ्र सुलभ हो सके।

...त सामग्री का शिक्षण में उपयोग का सिद्धान्त

...iple of Use of Demonstration Material)

(1) अध्यापक को प्रदर्शित किए जाने वाली सामग्री की पूर्व जानकारी कर लेनी चाहिए। यदि वह किसी प्रयोग को कर रहा है तो वह सावधानी पूर्वक उन उपकरणों को देख ले कि वे उपयोग में लाये जा सकते हैं या बेकार पड़े हैं।

(2) प्रदर्शन का उद्देश्य केवल वस्तु या प्रयोग को छात्रों को दिखाने मात्र में नहीं है। इसका असली उद्देश्य विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना है अत अध्यापक को पूर्व योजना बना लेनी चाहिये कि वह प्रदर्शन करते समय किन क्रियाओं अथवा बिन्दुओं पर विशेष बल प्रदान कर छात्रों का ध्यान केन्द्रित करेगा।

(3) प्रदर्शन में विद्यार्थियों के सहभागीत्व को अधिकतम करने के लिये अध्यापक को छात्रों को पूर्व में बता देना चाहिए कि उन्हें किन किन बातों का अवलोकन बारीकी से करना है। उन्हें प्रश्न पूछने तथा विचार विमर्श करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

(4) प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री का उपयोग इस प्रकार से हो कि वह टूटे नहीं या उसका कोई भाग नष्ट न हो।

(5) शिक्षण में बार बार काम में आने वाली शिक्षण सामग्री या उपकरण चालू हालत में रखी जानी चाहिये।

प्रदर्शित किये जाने वाली सामग्री के प्रकार

(Types of Demonstration Material)

प्रदर्शित किये जाने वाली सामग्री को निम्न तीन भागों में बाटा जा सकता है—

(अ) दृश्य सामग्री—चार्ट चित्र, मॉडल, फिल्म, स्लाइड, विज्ञान के प्रयोग, रेखाचित्र, ग्राफ इत्यादि।

(ब) श्रव्य सामग्री—रेडियो ग्रामोफोन, टेपरिकार्ड आदि।

(स) दृश्य श्रव्य सामग्री—फिल्म, टेलीविजन आदि।

(द) क्रियाशील सामग्री—चिड़ियाघर, अजायबघर, बाग बगीचे।

प्रदर्शन का क्रियान्वयन

शिक्षक की भूमिका प्रदर्शन में प्रधान रहती है। ऐसा कहा जाता है कि शिक्षण सहायक सामग्री कितनी ही अच्छी तथा आकर्षक क्यों न हो, वह बिना अध्यापक के छात्रों को शिक्षित नहीं कर सकती। अध्यापक इस सामग्री को सजीव कर उसमें निहित ज्ञान को विद्यार्थियों तक पहुँचाता है। जैसा अध्यापक होगा वैसा

ही उसका प्रदर्शन होगा। अगर वह योग्य है तो प्रदशन अच्छे स्तर का करेगा। इसके विपरीत यदि वह अयोग्य है तो वही शिक्षण सामग्री प्रभावहीन होगी। अतः शिक्षण में शिक्षण सामग्री का प्रभावी प्रदशन अध्यापक की सूझ बूझ तथा योग्यताओं पर निर्भर करता है।।

शिक्षक जिस सिद्धान्त के स्पष्टीकरण हेतु प्रदर्शन करना चाहता है वह उससे सम्बन्धित उपकरण आदि एक कालांश पूर्व अपने कक्ष में प्रदशन हेतु मेज पर व्यवस्थित कर लेता है। कक्षा के विद्यार्थियों को इस प्रकार बैठाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी प्रदर्शन का अवलोकन भली प्रकार से कर सके। यदि आवश्यक हो तो वह किन्हीं दो या तीन विद्यार्थियों की सहायता प्रदर्शन में ले सकता है।

शिक्षक प्रदशन से पूर्व आवश्यक प्रस्तावना देगा। उसके उपरान्त प्रदशन प्रारम्भ करेगा। प्रदशन के मुख्य मुख्य शिक्षण बिन्दुओं की ओर विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करेगा। यदि आवश्यक हुआ तो वह विद्यार्थियों से प्रश्न भी पूछेगा। विद्यार्थियों को भी प्रश्न करने के लिये प्रेरित करेगा। प्रदर्शनोपरान्त अध्यापक छात्रों से आवृत्ति के प्रश्न भी पूछेगा।

प्रदशन शैक्षिक दृष्टि से तभी महत्त्वपूर्ण माना जायगा जबकि उसके द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों में पाठ्यवस्तु का ज्ञान एवं अवबोध उत्पन्न कर सके। ज्ञान के संगठन के लिये यह आवश्यक है कि अध्यापक प्रदशन के अन्त में विद्यार्थियों से समीक्षात्मक प्रश्न पूछे। इन प्रश्नों के अतिरिक्त वह विद्यार्थियों को प्रेरित करेगा कि वे भी प्रकरण से सम्बन्धित प्रश्न पूछें तथा आपस में भी विचार विमर्श करें। प्रदशन के अन्त में अध्यापक प्रदशन द्वारा पढाई गई पाठ्य वस्तु का सारांश छात्रों को देगा।

एक छात्राध्यापक में प्रदशन कौशल का विकास करने हेतु उसके द्वारा पाठ योजना का निर्माण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

उदाहरण—पाठ योजना प्रदशन-कौशल—

अध्यापक का नाम अनुक्रमांक
विषय कक्षा
प्रकरण

अध्यापन बिन्दु	अध्यापक क्रिया	छात्र क्रिया
कुछ धातुओं के ऑक्साइड जल में विलय होने पर अम्ल बनाते हैं।	(लिटमस पत्र दिखाते हुए) प्रश्न—यदि नीले लिटमस को अम्ल में डालें तो इसके रंग में क्या परिवर्तन होगा ?	यह लाल हो जायगा।

अध्यापन बिन्दु	अध्यापक क्रिया	छात्र क्रिया
	प्रश्न—अम्ल की एक पहिचान बताओ (अध्यापक निम्न प्रयोग का प्रदर्शन करता है) वह उसका चम्मच लेता है तथा छात्रों के सम्मुख गन्धक का प्रज्वलित करता हुआ [illegible] जार में ले जाता है।	[illegible] होता है।
	प्रश्न—गन्धक के हवा में जलने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं? अध्यापक इस जार में पानी डाल कर हिलाता है।	यह ऑक्सीकरण कहलाता है।
	प्रश्न—नीले लिटमस का इस [illegible] पर डालने पर उसके रंग में हुए परिवर्तन का [illegible] क्या [illegible] लिटमस के रंग में क्या परिवर्तन हुआ (अध्यापक [illegible] तथा [illegible])	नीला लिटमस [illegible] रंग का हो जाता है। [illegible] लिटमस [illegible] कर रहे हैं।
	अध्यापक कथन— [illegible]	
	[illegible]	[illegible]

मूल्यांकन-प्रपत्र

अध्यापक का नाम अनुक्रमांक

कक्षा विषय दिनांक

प्रकरण

प्रदर्शन कौशल के घटक	1	2	3	4	5
1 उपकरण की स्थिति					
2 उपकरण की उपयुक्तता					
3 अध्यापक द्वारा पूर्व-कथन का स्तर					
4 प्रदर्शन के उपकरण के उपयोग का स्तर					
5 विद्यार्थियों का प्रदर्शन में सहयोग					
6 प्रदर्शन में मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना					
7 प्रदर्शन में अध्यापक द्वारा उद्दीपन परिवर्तन					
8 भाषा की स्पष्टता					
9 अध्यापक के हाव भाव की स्थिति					
10 प्रदर्शन का औचित्य					
11 अध्यापक द्वारा समीक्षा					

अध्यापक टिप्पणी—

हस्ताक्षर अध्यापक

साराश

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अर्जित ज्ञान अन्य रूप से ग्रहण किये गये ज्ञान से अधिक स्थायी प्रकृति का माना गया है। प्रदर्शन में बालक को ज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाता है अतः यह अधिक ज्ञानवर्धक है। अतः इसका उपयोग शिक्षक को शिक्षण करते समय करना चाहिये।

कक्षा में प्रदर्शन करना एक कला है। इसमें प्रमुख तत्त्व प्रदर्शन क्रिया का विश्लेषण करना, समय सीमा का निर्धारण, विद्यार्थियों का सहयोग लेना, विद्यार्थियों की बैठक व्यवस्था, निष्कर्ष निकालना आदि होना आवश्यक हैं।

प्रदर्शन-सामग्री इस कला को प्रभावित करती है अतः प्रदर्शित किये जाने वाली सामग्री पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित, मनोरंजक, मानसिक आयु के अनुकूल तथा आकर्षक होनी चाहिए। इससे बालक को वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। प्रदर्शन केवल मूक क्रिया नहीं है। अध्यापक को बालक के ज्ञान को संगठित करने के लिए प्रदर्शन के समय समस्यात्मक प्रश्न पूछने चाहिए तथा अन्त में पाठ्यवस्तु का सारांश भी देना चाहिए। प्रदर्शन-कौशल का होना एक अच्छे अध्यापक में आवश्यक गुण है।



अध्याय 9 (vi)

उदाहरण देने का कौशल

(Skill of Illustration)

उदाहरण की सहायता से शिक्षक पाठ्यसामग्री को रोचक, बोधगम्य तथा स्पष्ट बना सकता है। इसीलिए इसका अध्यापन प्रक्रिया में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है, बालक ज्ञानार्जन इंद्रियों के माध्यम से आसानी से करता है, ये अनुभव जितने यथार्थ होंगे, ज्ञान उतनी ही शीघ्रता एवं प्रभावी रूप में बालक द्वारा अर्जित किया जा सकेगा। उदाहरण द्वारा शिक्षक किसी स्थूल वस्तु के प्रयोग को कर नवीन प्रकार की वस्तुएँ अथवा प्रत्ययों का ज्ञान करा देता है।

अध्यापक शिक्षण के दौरान अनेक प्रकार की शिक्षण परिस्थितियों का सामना करता है। कभी कभी अध्यापक यह अनुभव करता है कि उसके मस्तिष्क में किसी वस्तु घटना या प्रत्यय का जैसा चित्र है वैसा चित्र वह मौखिक रूप से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने में अपने आपको असमर्थ पा रहा है अथवा वैसा ही चित्र छात्र अपने मस्तिष्क में नहीं उतार पा रहे हैं, तब वह उदाहरणों का सहारा लेता है। उदाहरण के लिए अध्यापक "पृथ्वी की आकृति" का चित्रण करने के लिए यदि नारंगी का उदाहरण देता है तो वह यह स्पष्ट करने में सफल हो पाता है कि सिरों पर पृथ्वी चपटी तथा मध्य में गोलाकार है।

यदि समुच्चय का अर्थ बालकों को समझाना हो तो अध्यापक निम्न प्रकार के उदाहरणों का प्रयोग कर आसानी से इस प्रत्यय को समझा सकता है।

अध्यापक—कक्षा कक्ष को ध्यान से देखें (रुक कर) कक्षा-कक्ष में लकड़ी से बनी वस्तुएँ कौन कौन सी है?

छात्र—(1) किवाड़

छात्र—(2) खिड़की

छात्र—(3) टेबल, स्टूल

(अध्यापक और अधिक वस्तुओं के नाम बताने को प्रेरित करता है)।

छात्र—(4) श्यामपट्ट

अध्यापक—इन सभी वस्तुओं में क्या गुण समान है ?

छात्र—ये लकड़ी की बनी है ।

अध्यापक—आइये, इनके नाम समझ लें, ब्रेकिट में लिखें

(किवाड, खिडकी, टेबल, स्टूल, श्याम-पट्ट)

अध्यापक-कथन—समझ लें कि ब्रेकिट में लिखे इस रूप को "कक्षा कक्ष में लकडी की बनी वस्तुओं" का समुच्चय कहते हैं ।

अध्यापक—कक्षा में 12 वर्ष से अधिक उम्र के बालकों के नाम बताओ ।

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि अध्यापक गणित अध्यापन के दौरान समुच्चय जैसे प्रत्यय को उदाहरणों के माध्यम से बालकों को समझाने में सफल हुआ है । इसी प्रकार शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए अध्यापक कुछ शिक्षाप्रद दृष्टांतों का उपयोग भी कर सकता है । इनका शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इनकी सहायता से बालक ज्ञान को सरलता से ग्रहण कर लेते है । इनके अभाव में शिक्षण कार्य को आगे बढाने में अध्यापक को कठिनाई का सामना करना पडेगा । अतः एक शिक्षक को उद्योतन एवं उदाहरण के प्रयोग के कौशल को जानना आवश्यक है ।

उदाहरण कौशल का अर्थ

(Meaning of Skill of Illustration)

साधारण भाषा में उदाहरण का अर्थ "प्रकाश डालना" या "स्पष्ट करना" है । जब कोई बात किसी व्यक्ति के समझ में नहीं आती है तो उसे कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट किया जाता है । शिक्षा के क्षेत्र में उदाहरण का अर्थ उपमा, चित्र, पूर्वानुभव आदि का प्रयोग कर ज्ञान को इस प्रकार से स्पष्ट करने से है कि विद्यार्थी उसे सरलता से समझ ले ।

अध्यापन में उपयोग में लाये जाने वाले ऐसे कई उदाहरण हैं जो कि शिक्षण को प्रभावी, स्पष्ट एवं रुचिकर बना देते हैं । ये शिक्षण में सहायक है, इस कारण शिक्षक इनका उपयोग प्रत्येक स्तर के शिक्षण में तथा हर आयु स्तर के विद्यार्थियों के लिए करता है ।

(1) थियोडोर स्ट्रक[1] (F Theodore Struck)

उदाहरण देने से अभिप्राय पाठ्यवस्तु को चित्र, तुलना, उपमा, रेखाचित्र, ग्राफ इत्यादि से स्पष्ट कर बोधगम्य बनाने से है ।'

1 F Theodore Struck Creative Teaching New York John Wiley and Sons Inc 1948 P 352

(2) लेण्डन[1] (Landon)

"उदाहरणो म न केवल स्पष्ट करन की क्षमता ही होती है अपितु यह ज्ञान को स्थायी भाव प्रदान करन म भी सहायक है।"

उदाहरण का प्रस्तुतिकरण किस विवरण, वणन अथवा व्याख्या को अधिक स्पष्ट एव प्रभावोत्पादक बनाकर वालक के लिए बोधगम्य बना देता है। इसके द्वारा अमूर्त एव जटिल प्रत्यय सरल एव स्पष्ट वा जाते हैं। इसके द्वारा शिक्षक बेजान वस्तुओ म जान डाल कर उसके प्रति बालक की रुचि जागृत करने म सफल हो उठता है। वालक का ध्यान विषय वस्तु पर और अधिक एकाग्रता स केन्द्रित होता है जिस कारण उसकी अवलोकन एव निणय शक्ति का विकास तीव्रता स होने लगता है।

उदाहरण कई वार "वास्तविक वस्तु" के प्रदशन म भी अधिक लाभप्रद माने गये हैं। उदाहरण स्वरूप यदि किसी स्टीम इन्जिन का प्रदशन किया जाव तो बालक उसके कई ऐस भागो को नही देख पायगा जा कि इन्जन के अन्दर क भाग म छिपे हैं। वह इसके स्थान पर चित्र का उपयोग कर उसके प्रत्येक भाग को स्पष्ट कर सकता है। इसी प्रकार सूक्ष्म वस्तुओ का वालक प्रत्यक्ष अवलोकन कर किसी प्रकार का निष्कष नही निकाल पाते है जसे, जीव विज्ञान म जीवाणु। यदि इनका बडा चित्र प्रस्तुत किया जावे तो बालक इसक बारे म ज्ञान शीघ्रता से प्राप्त कर सकेगा।

उदाहरणो का शिक्षण म उपयोग कोई विवादास्पद प्रत्यय नही है। उपमा के रूप म अनेक उदाहरण साहित्य म देखने को मिलते हैं। इन सबका अध्यापक शिक्षण म किस प्रकार उपयोग करे, यह उसके कौशल पर निभर करता है। एक उदाहरण जो कि सटीक है, एक अध्यापक द्वारा प्रभावी रूप स उपयोग में लाया जा सकता है जबकि दूसरा अध्यापक उसका प्रयोग करके अपने शिक्षण को रुचिकर बनाने म असमथ पाता है।

उदाहरणो की उपयोगिता

उदाहरणो का शिक्षण म कई प्रकार स उपयोग किया जा सकता है। इसके अनेक लाभ हैं, उनम से कुछ प्रमुख लाभ निम्न प्रकार स है—

(1) उदाहरण वालक म उत्सुकता जाग्रत कर उसे विषय वस्तु को पढने के लिए तत्पर करते है।

(2) विषय वस्तु को यह रुचिकर एव आकषक बनाने म सहायता प्रदान करते हैं।

(3) वालको का ध्यान वडी आसानी से उदाहरणो के द्वारा पाठ के शिक्षण-बिन्दुओ पर केन्द्रित किया जा सकता है।

1 Lardon Joseph 'The Principles and Practice of Teaching', P 136

(4) बालको की अधिगम कठिनाइया या अवराध को दूर करने म सहायक पाय गय ह । कठिन तथ्या को उनाे अनुभव आधारित उदाहरण द्वारा आसानी स स्पष्ट किया जा सकता है ।

(5) नानाजन की प्रक्रिया म उदाहरण बालका को मूत चिन्तन करन का अवसर प्रदान करता ह ।

(6) उदाहरण द्वारा बालको म निरीक्षण परीक्षण, तुलना एव स्वय निणय करने की शक्ति का विकास शीघ्रता से होता ह ।

(7) उदाहरण द्वारा समय की बचत हाती ह । अध्यापक किसी वस्तु को समझ ने के लिए अनेक प्रकार स व्याख्या करता है उसम समय अधिक लगता ह जबकि उसका उदाहरण दन पर अधिक व्याख्या की आवश्यकता नही रहती है ।

(8) उद हरण बालक के ज्ञान को यथाथ एव निश्चित बनात ह ।

(9) इसस बालक की कल्पना शक्ति जागत होती है, इससे उनम चिन्तन एव तक शक्ति विकसित होती ह ।

(10) उदाहरण कक्षा क वातावरण का रोचक तथा खेल खेलने जसा बना देता है इसस बालक का शीघ्र थकान नही होती ह ।

उदाहरणो के प्रकार

(Types of Illustrations)

उदाहरण शिक्षण म अनेक प्रकार स काम म लाय जाते है जसे रखाचित्र बनाना, दनिक जीवन म काम म आन वाली वस्तुआ स किसी वस्तु की तुलना करना, इत्यादि । इन सब का उद्देश्य नान का स्पष्ट रूप स विद्यार्थिया के समक्ष प्रस्तुत करन से है । यदि उदाहरणा का विद्यार्थिया क सामन रखे जाने की दृष्टि स साचा जाय, तो इनको प्रमुख रूप स दा निम्नलिखित भागा म बाटा जा सकता है—

(क) वाचिक रूप उदाहरण (Verbal Illustration)

(ख) प्रदशनात्मक उदाहरण (Visual Illustration) ।

वाचिक-रूप उदाहरण

इस प्रकार के उदाहरणा म शब्दा का प्रयाग अधिक किया जाता ह । अध्यापक किसी घटना की मौखिक व्याख्या करता है अथवा किसी वस्तु का शाब्दिक वणन करता ह । उदाहरण के लिए नन्हे बालक एकता म बल है इस प्रत्यय को भली प्रकार स नही समझ पात । इस स्पष्ट करन के लिए अध्यापक 'लकडहार की कहानी जिसम वह अपने तीनो पुत्रो का लकडी के बण्डल का बधे हुए रूप म तोडने को कहता है' का वणन करता है । इस प्रकार क उदाहरणा स बालक अमूत विचारों को भी ठीक प्रकार से समझ लेता है ।

कई बार अध्यापक किसी प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए किसी पहाड़ का उदाहरण, मुख की सुन्दरता के लिए चन्द्रमा का उदाहरण देते हैं।

शाब्दिक उदाहरणों में अध्यापक उपमा का भी प्रयोग कर सकता है जैसे सत्य पर अटल रहने के भाव को हरिश्चन्द्र का उदाहरण देकर कहा जा सकता है कि "राजा हरिश्चन्द्र पर्वत के समान सत्य पर अटल रहे।" शाब्दिक उदाहरणों में दो व्यक्तियों या वस्तुओं की तुलना भी की जा सकती है परन्तु इसके लिए तुलना में प्रयुक्त वस्तु की पूर्ण जानकारी बालक को होना आवश्यक है जैसे सजीव की तुलना निर्जीव से विद्यार्थियों से उदाहरण देकर कराई जा सकती है।

वाचिक उदाहरणों को अनेक प्रकार से अध्यापक बालकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है इनमें बालक द्वारा सुनने एवं समझने की क्रिया आवश्यक मानी गई है। इसके अन्तर्गत कहानी, घटना, वृत्तान्त, नीति, श्लोक, उपमा इत्यादि आते हैं। इनमें से प्रमुख वाचिक उदाहरणों को आगे स्पष्ट किया जा रहा है—

(अ) उपमा—दो वस्तुओं में जब आपस में गुणों की दृष्टि से समानता होती है तो एक की उपमा दूसरे से की जाती है। उदाहरण के लिए पृथ्वी की आकृति की उपमा अक्सर नारंगी से इसलिए दिया करते हैं कि दोनों में आकृति की दृष्टि से समता है। जब अध्यापक किसी वस्तु के गुण या क्रिया का वर्णन करता है उस समय उसका ध्येय यह रहता है कि वह वस्तुगत वर्णन के द्वारा बालक के मस्तिष्क में सही चित्र अंकित करे। यदि वर्णन किये जाने वाली वस्तु उपलब्ध न हो अथवा अधिक बड़ी या सूक्ष्म हो तो ऐसी स्थिति में वह किसी ऐसी वस्तु का चयन करता है जो कि वर्णन किये जाने वाली वस्तु के समान गुण रखती हो तो बालक उससे पूर्व परिचित हो। उपरोक्त उदाहरण में अध्यापक पृथ्वी की आकृति के वर्णन के लिए नारंगी चुनता है क्योंकि बालक नारंगी की आकृति से परिचित है तथा वह इसके द्वारा पृथ्वी की आकृति के बारे में आसानी से समझ जायगा।

क्रिया में समता प्रदर्शन करने के लिए भी उपमा का प्रयोग किया जाता है जैसे वर्षा होने की प्रक्रिया की समता उबलते पानी के बर्तन के ढक्कन पर लगी बूँदों से अथवा पृथ्वी की दैनिक गति की समता लट्टू के घूमने से की जा सकती है। दोनों उदाहरणों में जो उपमायें दी गई हैं उनसे बालक पूर्व परिचित है तथा इनकी सहायता से वह पाठ्यवस्तु को आसानी से समझ लेगा।

तुलना

अधिगम की दृष्टि से तुलना किया जाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तुलना करने के लिए चिन्तन एवं मनन करना आवश्यक है। इसके उपरान्त बालक तर्क के आधार पर दो वस्तुओं के गुण या प्रक्रिया के मध्य तुलना करता है। तुलना करते समय बालक समता एवं विषमता दोनों का वर्णन करता है। उदाहरण के लिए

इतिहास के अध्यापन के दौरान अध्यापक अशोक और अकबर, नागरिक शास्त्र के पढ़ाने के दौरान मूल कर्त्तव्य एवं मूल अधिकार विज्ञान में ठोस, द्रव और गैस के गुणों की तुलना कराना, ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं। अध्यापक को तुलना करने का उपयोग अध्यापन में पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए इससे बालक अन्य वस्तु, जिसके कि वह तुलना करता है से सीखी जाने वाली पाठ्यवस्तु का सम्बन्ध स्थापित करता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी स्मरण शक्ति अधिक समृद्ध हो जाती है।

दृष्टांत

किसी पाठ्यवस्तु को स्पष्ट करने के लिए कभी-कभी अध्यापक किसी घटना का उल्लेख करता है। उसकी इस क्रिया को "दृष्टांत देना" कहते हैं। उदाहरण के लिए न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम पढ़ाते समय बगीचे में फल का नीचे की ओर गिरना" या वायु प्रदूषण को पढ़ाते समय भोपाल आइसोसाइनाइड दुर्घटना" का ब्यौरा देकर पाठ्यवस्तु को अधिक रोचक बना सकता है। नीति सम्बन्धित पाठों को पढ़ाते समय पंचतंत्र की कहानियों का उल्लेख छात्रों के समक्ष किया जा सकता है।

वाचिक उदाहरणों के प्रयोग में सावधानियाँ

(1) वाचिक उदाहरण विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुकूल होने चाहिए।

(2) उदाहरण पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित तथा उसे स्पष्ट करने वाला होना चाहिए।

(3) अध्यापक को उदाहरण प्रस्तुत करते समय अपनी वाणी को प्रभावी रखना चाहिए।

(4) उदाहरण बालक के दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटना से सम्बन्धित होना चाहिए तथा इसमें प्रयुक्त पात्रों से वह परिचित हो, तब ही वह उदाहरण समझ सकेगा।

(5) यथासम्भव उदाहरण मनोरंजक हो। ऐसा उदाहरण जो कि शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक दोनों गुणों से युक्त हो बालक पर स्थायी प्रभाव डालता है।

(6) उदाहरण को स्पष्ट करने में प्रयुक्त भाषा सरल एवं सार्थक होनी चाहिए। जटिल भाषा के उपयोग से वह अर्थ नहीं समझ सकेगा।

(7) उदाहरण व्यक्तिगत न हो, यदि किसी व्यक्ति का उदाहरण दिया जाय तो वह उसका अपमान करने वाला न हो।

(8) उदाहरण का उपयोग पाठ के विकास में उचित अवसर आने पर ही दिया जाना चाहिए अन्यथा उदाहरण का प्रभाव नहीं होगा।

सरल शब्दा म इसका अथ वस्तुओ को प्रदर्शित कर विद्यार्थियो को किसी तथ्य, प्रत्यय, कथन या भाव आदि का स्पष्ट करने स है। य वस्तुएँ मस्तिष्क को ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। इन वस्तुओ मे प्राकृतिक अथवा कृत्रिम किसी भी प्रकार की वस्तु ली जा सकती है।

ज्ञानाजन के सम्बन्ध म शोध निष्कष निम्न प्रकार स ह—
बालक अधिगम निम्न प्रकार से करता है—

1 0 प्रतिशत स्वाद के द्वारा
1 5 प्रतिशत छून से
3 5 प्रतिशत सूघन के द्वारा
11 0 प्रतिशत सुनन से
83 0 प्रतिशत देखन स

वस्तु के प्रदशनात्मक उदाहरण म बालक उक्त तालिका के अनुसार 94 00 प्रतिशत अधिगम प्रभावी रूप से कर लेता है क्योकि वह वस्तु को दख भी रहा ह तथा उसके बार म अध्यापक की व्याख्या का सुन भो रहा है। इस प्रकार के उदाहरण स छात्र को प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता ह जा कि शिक्षक द्वारा दिय गये मौखिक उदाहरण स अधिक श्रेयस्कर है।

प्रदर्शित किय जाने वाली वस्तुओ म चाट, मॉडल, चित्र, फोटो, पोस्टर, ग्राफ इत्यादि कुछ भी हो सकते ह। शिक्षाविदो का यह मानना ह कि प्रदशनात्मक उदाहरण अपन आप म सरल, सादा तथा स्पष्टता लिए हुए होना चाहिए। ग्रीन व बरचेना[1] (Green and Brichenough) ने इस सदभ म लिखा है—'चित्र जितना सरल होगा, उतना ही अधिक उसका प्रभाव पडेगा।" यदि प्रदशनात्मक उदाहरण जटिलता लिए हुए है ता बालक उसकी जटिलता म उलझ जायेगा तथा विषय वस्तु का ठीक प्रकार स नही समझ पायेगा।

अध्यापक जब उदाहरण अशाब्दिक माध्यम स प्रस्तुत करना चाहता है ता वह किसी मॉडल, चाट, नक्शा इत्यादि को विद्यार्थिया के समक्ष प्रस्तुत करता ह। इन सब का प्रदशन विद्यार्थिया को पाठ्यवस्तु को शीघ्रता स समझने म सहायक होता है। इनम कुछ का वणन निम्न प्रकार स है।—

वस्तु

कभी-कभी विषय-वस्तु को स्पष्ट करन के लिए छात्रा का वास्तविक वस्तु दिखाना अनिवाय हा जाता है जस जीव विज्ञान म पत्तियो के बारे म पढ़ात समय इनका वास्तविक प्रदशन छात्रा को इनके विभिन्न भागो की बनावट एव कार्यों का

---

1 Green & Birchenough A primer of Teaching Practice P 214

समझने में सहायता प्रदान करता है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञान में सादरिल पम्प, थर्मामीटर, स्टार इत्यादि, भूगोल में मिट्टी के विभिन्न प्रकार के नमूने आदि विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इनके द्वारा वास्तविक वस्तु दिखाकर अध्यापक विभिन्न प्रश्न पूछ कर इनमें ही वस्तु से सम्बन्धित ज्ञान का विकसित कर लेता है।

मॉडल

कई बार अध्यापन में ऐसी स्थितियां आती हैं जबकि पढ़ाये जाने वाली वस्तु बहुत बड़ी या बहुत छोटी होती है यदि अध्यापक किसी कक्षा को रेल का इन्जिन पढ़ा रहा हो तो वह उन्हें कक्षा में इसे नहीं दिखा सकता। इसी प्रकार यदि वस्तु इतनी छोटी हो कि उसके भागों को छात्र आसानी से न देख सकें तो ऐसी स्थिति में उसका मॉडल तैयार किया जाता है। मॉडल वस्तु के सभी भागों का सही प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। अध्यापक को माडल का प्रदर्शन करते समय इसके विभिन्न भागों के कार्यों का उल्लेख करना चाहिए।

चार्ट्स

जब किसी वस्तु का माडल उपलब्ध न हो तो ऐसी स्थिति में अध्यापक को उस वस्तु के चित्र का उपयोग करना चाहिए। कभी-कभी तुलनात्मक अध्ययन के लिए गणितीय चित्रों का उपयोग जैसे स्तम्भाकार ग्राफ, रेखाचित्र इत्यादि का उपयोग किया जाता है। जैसे जनसंख्या की वृद्धि को दिखाने के लिए वर्षवार स्तम्भाकार ग्राफ द्वारा किसी स्थान की जनसंख्या दिखाई जा सकती है। इसे देखकर बालक जनसंख्या में वृद्धि की स्थिति एवं दर का पता लगा सकता है।

भूगोल इतिहास अर्थशास्त्र आदि के शिक्षण में देश के नक्शों का उपयोग लाभप्रद रहता है। अध्यापक को इन मानचित्रों का उपयोग ठीक प्रकार से करना चाहिए। मानचित्र में विषय वस्तु से सम्बन्धित बातों को स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना चाहिए तथा छात्रों को भी इन्हें देखकर पढ़वाना चाहिए।

प्रायोगिक प्रदर्शन

विज्ञान एवं भूगोल आदि के शिक्षण में प्रायोगिक प्रदर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विज्ञान में ऐसे अनेक नियम एवं अभिक्रियाएं हैं जिनको यदि शाब्दिक रूप से व्यक्त किया जावे तो विद्यार्थी उसे भली प्रकार से नहीं समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए द्रव्य की अविनाशिता के नियम के अनुसार कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता है। यदि इसका प्रायोगिक प्रदर्शन किया जावे तो बालक स्वयं इस नियम की सत्यता के बारे में निर्णय ले सकता है। इसी प्रकार यदि अध्यापक पेड़ पौधों की वृद्धि में सूर्य के प्रकाश के महत्त्व को दर्शाना चाहे तो वह प्रयोग द्वारा इसे दिखा सकते हैं। प्रायोगिक प्रदर्शन में बालक अभिक्रिया का अवलोकन कर उसे वास्तविक रूप में देखता है अतः इससे प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है।

उदाहरण देने का कौशल

अध्यापक अध्यापन में उदाहरणों का उपयोग किस प्रकार तथा किस रूप में करे, यह उसके अध्यापन कौशल पर निर्भर करता है। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उदाहरण मुख्यतः दो प्रकार के अर्थात् वाचिक तथा प्रदर्शनात्मक उदाहरण, होते हैं। शिक्षार्थी की आयु, परिपक्वता स्तर, मानसिक स्तर, रुचियों आदि को ध्यान में रखते हुए इनका चुनाव करना तथा उनके समक्ष प्रभावी रूप से प्रस्तुत करना, यह सब अध्यापक की कुशलता पर निर्भर करता है। ऐसा देखने में आता है कि एक अच्छे मॉडल के होते हुए भी कुछ अध्यापक उसका शिक्षण में प्रभावी उपयोग नहीं कर पाते हैं इसके विपरीत कुछ ऐसे भी अध्यापक पाये जाते हैं जो कि साधारण उपकरण की सहायता से अच्छा शिक्षण कर लेते हैं। अतः अध्यापन का यह कौशल शिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

उदाहरण देने के कौशल में प्रमुख रूप से सरलता, उपयुक्तता, पर्याप्तता, सुसंगति, रोचकता एवं छात्र सहयोग का होना आवश्यक समझा गया है, इनका वर्णन निम्न प्रकार से है—

उद्योतन एवं उदाहरण के कार्य

(Functions of Illustration with Examples)

इस प्रकार के शिक्षण कौशल के निम्नांकित कार्य हैं—

(1) ज्ञान को सुगम बनाना

उदाहरण या किसी घटना का सटीक वर्णन करने से कठिन तथ्य भी बालक को आसानी से समझ में आ जाता है।

(2) ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत करना

उद्योतन एवं उदाहरण में छात्र को अनेक प्रकार की वस्तुएं देखने को मिलती हैं अथवा विभिन्न रोचक अनुभव सुनने को मिलते हैं। इससे बालक के ज्ञान में वृद्धि होती है।

(3) एकाग्रचित्तता का विकास

पाठ को कई दृष्टि से पढ़ने एवं सुनने से बालक का चिन्तन स्तर उच्च स्तर का हो जाता है और वह एकाग्रचित्त होने लगता है।

(4) ज्ञान का स्थायी होना

उदाहरणों के द्वारा छात्र को सुनने, देखने, छूने व समझने का पर्याप्त अवसर मिलता है अतः ज्ञान स्थायी होता है।

(5) तर्क-शक्ति का विकास

बालक निरीक्षण द्वारा अनेक तथ्यों को एकत्रित करता है तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन कर तर्क शक्ति को विकसित करता है।

डमविल[1] (Dumville) ने उदाहरणो का शिक्षण में महत्व निम्नांकित शब्दो म स्वीकार किया है-"प्रत्येक शिक्षक जो इस नाम के योग्य है, अपने मौखिक वर्णना की कमियो को उदाहरण का प्रयोग कर पूर्ण करता है।"

निष्कर्ष रूप म यह कहा जा सकता है कि छात्र पाठ्यवस्तु को तभी ग्रहण कर सकता है, जब वह उसके लिए आकर्षक हो। कोई भी पाठ्यवस्तु तब आकर्षक होती है तब वह बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता से जुडी हो। बालक स्वभाव से जिज्ञासु होता है। यदि उसकी जिज्ञासा का उपयोग कर उसे रोचक एव उपयुक्त उदाहरणो के माध्यम से पढाया जाय तो वह शीघ्रतापूर्वक पाठ्यवस्तु को समझ सकेगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक सरल एव सरस उदाहरणो का उपयोग करे। अध्यापन म छात्रो को सक्रिय रखने के लिए उनका सहयोग लिया जाना आवश्यक है। अत उदाहरण प्रस्तुत करते समय बालको से विभिन्न प्रश्न पूछे जावें। यदि किसी प्रयोग का प्रदर्शन किया जावे तो भी उनका सहयोग प्रयोग करवा कर लिया जा सकता है।

सरलता

सीखने की क्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि बालक के जीवन म निरन्तर चलती रहती है। इसका अर्थ यह है कि बालक विद्यालय म कोरा नही आता अपितु अपने साथ कुछ पूर्व ज्ञान या पूर्वानुभव साथ लेकर आता है। अध्यापक को इन पूर्वानुभवो पर आधारित उदाहरणो का प्रयोग शिक्षण मे करना चाहिए।

बालक के ज्ञानार्जन के अनेक स्रोत है जैसे पुस्तक, गाँव या पडौस का वातावरण, मित्र मण्डली तथा प्राकृतिक पर्यावरण आदि। वह इनसे जो अनुभव प्राप्त करता है व मूलभूत अनुभव है, अन्य अनुभवो को इन प्रत्यक्ष अनुभवो के आधार पर ग्रहण करता है। शिक्षक को उदाहरणो का चुनाव बालक के इन प्रत्यक्ष अनुभवो म से करना चाहिए। इस प्रकार अनुभव बालक की दृष्टि से सरल एव बोधगम्य होंगे।

उदाहरणो की सरलता का सीधा सम्बन्ध सीखने वाले की आयु, मानसिक परिपक्वता कक्षा संस्कृति तथा सामाजिक स्तर से है। उदाहरणो का चुनाव इन सब बातो को ध्यान मे रख कर किया जाता है तो वह बालक के लिए सरल होगा अन्यथा जटिल।

यह किस प्रकार प्रकट हो सकेगा कि अध्यापक जिस उदाहरण का शिक्षण म उपयोग कर रहा है वह जटिल है या सरल ? यह एक विचारणीय बिन्दु है। अध्यापक इसके लिए छात्रो के उत्तरो को मापदण्ड के रूप म काम म ले सकता है। यदि बालक उदाहरण को ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं तो इससे सम्बन्धित प्रश्नो का उत्तर सही रूप से दे रहे हैं त्रुटियो की दर लगभग शून्य है तो यह माना जायेगा

1 Dumville Benjamin Teaching Its Na u e & Varieties P 399

कि शिक्षण म प्रयुक्त उदाहरण प्रभावी एव सरल है तथा बालक इसकी सहायता स समझाये जाने वाले जटिल प्रत्यय को समझत जा रहे है।

सरलता शब्द जटिलता का विलोम है अर्थात् उदाहरण का स्तर बालक के मानसिक स्तर क अनुकूल होना चाहिए। सरल उदाहरण का साधारण शब्द म अथ उस उदाहरण से लिया जाता है जो कि बालक क पूव ज्ञान से सम्बधित हो। जब बालक पूव-अर्जित ज्ञान पर आधारित किसी उदाहरण को सुनता है तो वह इस शीघ्र समझ लेगा। अत अध्यापक को चाहिए कि वह ऐसे उदाहरणो का चुनाव करें जो कि बालक के पूर्व ज्ञान स सम्बन्धित हो। इसके लिए अध्यापक विभिन्न स्रोत जसे पिछली कक्षा की पाठ्यपुस्तक, बालक का सामाजिक, सांस्कृतिक एव प्राकृतिक पर्यावरण, पत्र-पत्रिकाए आदि को पढ़ कर उनम से रुचिकर उदाहरणो का चयन कर सकता है। चयन करते समय अध्यापक को स्वय के विवेक को काम म लेना होगा।

यह जानने के लिए कि अध्यापक द्वारा कक्षा म दिया गया उदाहरण सरल है या नही, बालकों द्वारा प्रश्नो के दिये गये उत्तरो को आधार बनाया जा सकता है। यदि उदाहरण सरल है तो छात्रो के अधिकाश उत्तर सही होगे। यदि उदाहरण प्रभावी नही है तो छात्र उत्तर देने म त्रुटिया करेंगे। अध्यापक भी पढाते समय कुछ शब्दो का उपयोग, जसे पिछली कक्षा म आपने पढा था कि अथवा "आप जानते ही हैं कि ", का उपयोग कर सकता है।

इस प्रकार के कौशल म एक प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए अध्यापक सीधे सादे उदाहरणो का प्रयोग निम्न प्रकार से कर सकता है—

प्रत्यय—प्रशसा

अध्यापक—मैं आपको निम्न स्थितियो का वणन कर रहा हूँ। इनको पढकर बताए कि प्रशसा का अथ क्या है?

(अ) एक बालक यह सुनकर प्रसन्न हो गया जब अध्यापक ने उसकी परीक्षा म सर्वाधिक अक प्राप्त करने पर प्रशसा की तथा उसकी पीठ थपथपाई।

(ब) गावस्कर ने पाकिस्तान से भारत को क्रिकेट मैच म जिताने के लिए सर्वाधिक रन बनाये। समाचार पत्रो में आज उसके इस प्रयत्न की काफी प्रशसा छपी है।

(स) विद्यालय के फुटबाल के खिलाडी जब जिला स्तरीय प्रतियोगिता मे प्रथम आये तो प्रधानाध्यापक ने उन सब को प्रार्थना सभा मे सम्मानित कर उनके खेल खेलने की प्रशसा की।

उपरोक्त उदाहरणो में अध्यापक ने साधारण उदाहरणो का प्रयोग किया है अत बालक प्रशसा शब्द का अर्थ स्वत्र ज्ञात कर सकते हैं। नियमो को भी साधारण उदाहरणो स सरल बनाकर समझा जा सकता है।

अध्यापक—गत कक्षा में हमने ठोस तथा द्रवों के गुणों का अध्ययन किया। आज हम गैस के गुणों का अध्ययन करेंगे। ठोस की क्या विशेषता है ?

मोहन— इनकी आकृति निश्चित होती है।

अध्यापक—द्रव की आकृति किस पर निर्भर करती है ?

सीता— द्रव की आकृति बर्तन पर निर्भर करती है जैसे बर्तन में हम इसे लेंगे उस द्रव की वैसी ही आकृति हो जायेगी।

अध्यापक—(एक बोतल लेता है जिसमें हवा भरी है। बोतल पर 500 मि. लीटर लिखा है) इस बोतल में कितनी हवा भरी है ?

राम— 500 मि. लीटर।

(अध्यापक एक गुब्बारा इसके मुँह पर बाँध कर इसे गर्म पानी में रखता है)

अध्यापक—गुब्बारा क्यों फूलता जा रहा है ?

मोहन— हवा के गर्म होने से यह आयतन में बढ़ रही है।

अध्यापक—यदि हवा को और अधिक गर्म करें तो क्या होगा ?

राम— यह और अधिक बढ़ेगी।

(अध्यापक बोतल को ठण्डे पानी में रखता है)

अध्यापक—बोतल पर बंधा गुब्बारा क्यों सिकुड़ रहा है ?

सीता— हवा ठण्डी होने पर सिकुड़ती जा रही है।

अध्यापक—श्यामपट्ट पर लिखता है।

(1) हवा गर्म आयतन का बढ़ना

(2) आयतन का घटना ठण्डा हवा

उपरोक्त उदाहरण सरल एवं बालक के दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरणों से सम्बन्ध रखते हैं। इनसे वह हवा के आयतन तथा ताप के बढ़ने या घटने में सम्बन्ध ज्ञात कर नियम की व्याख्या कर सकता है।

उदाहरण प्रस्तुत करने का एक उदाहरण

अध्यापक हिन्दी व्याकरण में सन्धि नियमों का ज्ञान छात्रों को देना चाहता है। वह इनका अ + इ=ए का ज्ञान निम्न उदाहरणों से कराता है—

अध्यापक—सुरेन्द्र शब्द सुर + इन्द्र से बना है। र के अ तथा इन्द्र के इ के स्थान पर ए की मात्रा बनती है।

अध्यापक—सुरेश शब्द किन शब्दों से बना है।

छात्र— सुर तथा ईश से बना है।

अध्यापक—इसमें र के अ तथा ईश के ई से कौनसी मात्रा बनती है ?

छात्र— अ तथा ई से ए की मात्रा बनती है।

अध्यापक—देव + इन्द्र को मिलाने पर क्या शब्द बनेगा ?

छात्र—देवेन्द्र ।

अध्यापक—अ तथा ई की मात्राओ से नई मात्रा बनने का नियम प्रकट करने हेतु रिक्त स्थान भरो—

(श्यामपट्ट पर लिखता है)

अ + ई=

छात्र—अ + ई=ए

इस प्रकार अध्यापक सरल उदाहरणो की सहायता से बालको से नियम प्रतिपादित करा सकता है । उदाहरण यदि बालक के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होगा तो वह सरल होगा । उपरोक्त उदाहरण मे यदि बालक शब्द देवेन्द्र, सुरेश, सुरेन्द्र इत्यादि से परिचित है तब ही ये उदाहरण उनके लिए सरल होगे अन्यथा नही ।

विज्ञान विषय मे "गर्मी पाकर ठोस आयतन मे बढते है" का प्रयोग छात्रो के सामने किया जाकर उन्हें आसानी से यह समझाया जा सकता है । इसके लिए एक साधारण उपकरण लिया जाता है जिसमे धातु की एक छड होती है । इस छड की लम्बाई गर्म करने से पूर्व तथा गर्म करने के उपरान्त नापी जाती है । गर्म करने के बाद की लम्बाई गर्म करने से पूर्व की लम्बाई से अधिक होने पर बालक समझ लेते हैं कि गर्मी पाकर छड लम्बाई मे बढती है । ऐसे ही कुछ उदाहरण जैसे रेल की पटरियो के बीच जगह का छोडा जाना, बिजली के तारो को खम्बे पर ढीला बाधना इत्यादि उन्हे पढाते समय दिये जा सकते हैं ।

उपयुक्तता

उपयुक्तता से तात्पर्य यह है कि उदाहरण इस प्रकार का होना चाहिए कि यह बालक मे इतनी समझ पैदा कर दे जिसकी सहायता से वह पढ़ाये जाने वाले नियम या प्रत्यय को समझ ले । यदि उदाहरण उपयुक्त नही है तो यह बालक को अधिगम मे सहायता करने के स्थान पर व्यवधान उत्पन्न करेगा । कई बार अध्यापक ऐसे भी उदाहरण प्रस्तुत कर देते हैं जो कि दो नियमो की व्याख्या एक साथ करते हो । इस प्रकार के उदाहरण विद्यार्थी को भ्रम मे डालने वाले होते है अत उदाहरण इस प्रकार से होना चाहिए कि वह दिये गये प्रत्यय को भली भाति समझने के लिए उपयुक्त हो ।

अध्यापक को अध्यापन मे ऐसे उदाहरणो का प्रयोग करना चाहिए जो कि पढ़ाये जाने वाले प्रकरण से सीधा सम्बन्ध रखते हो । इससे छात्रो को प्रकरण को आसानी से समझने मे सहायता मिलेगी । यदि अध्यापक द्वारा प्रयुक्त उदाहरण प्रकरण से सम्बन्धित नही है तो विषय-वस्तु को समझने के बजाय वह उसमे भ्रान्तिया उत्पन्न कर देगा ।

उदाहरण

अध्यापक छात्रों को यह बताना चाहता है कि पदार्थ के जलने अथवा दहन के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है वह एक मधुकोश मच को पानी की नाद में रखकर उस पर एक जलती मोमबत्ती रखता है तथा फिर एक खाली गैस जार ढक देता है। मोमबत्ती कुछ देर जलती है तथा फिर बुझ जाती है। गैस जार में कुछ पानी चढ़ जाता है। अध्यापक इस प्रयोग को दिखाने के पश्चात् निम्न प्रश्न पूछता है—

अध्यापक— खाली जार में कौनसा पदार्थ था?

छात्र—हवा।

अध्यापक—मोमबत्ती के गैस जार में बुझने का क्या कारण था?

छात्र—निरुत्तर।

अध्यापक गैस जार में बची हवा में जलती हुई तीली ले जाता है, वह बुझ जाती है।

अध्यापक—तीली इस बची हवा में क्यों नहीं जल पाई?

छात्र—इसमें आक्सीजन नहीं बची।

अध्यापक—गैस जार की हवा की ऑक्सीजन कहाँ चली गई?

छात्र—यह मोमबत्ती के जलने के काम में आ गई।

अध्यापक—दहन में किस गैस की आवश्यकता होती है?

छात्र—ऑक्सीजन।

अध्यापक नियम, तथ्य या सिद्धान्त को पढ़ाते समय यदि इनको स्पष्ट करने वाले उपयुक्त उदाहरणों का चुनाव करता है तो इससे विषय वस्तु को छात्र आसानी से समझ लेता है। उपरोक्त उदाहरण में मोमबत्ती का जलना एक दहन क्रिया है। अध्यापक प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित करता है कि मोमबत्ती उसी समय तक जलती है जब तक कि उसे आक्सीजन मिलती रहती है। आक्सीजन के न मिलने पर यह बन्द हो जाती है।

उदाहरण

प्रकरण—सजीव एवं निर्जीव में भेद—

(विद्यार्थियों को अपने पर्यावरण का अवलोकन करने के लिए अध्यापक इस प्रकार कहता है)

अध्यापक—निर्जीव पदार्थों के उदाहरण आपकी पुस्तक, टेबल डेस्क, कमरा, मकान, पत्थर इत्यादि है। आप भी निर्जीव पदार्थों के नाम बताइये।

छात्र—लकड़ी, कोयला हवा

अध्यापक—आज हम सजीव एवं निर्जीव के मध्य अन्तर समझेंगे। सर्वप्रथम सजीव का एक गुण लें—श्वसन तथा दोनों में अन्तर बतावें।

छात्र—सजीव श्वसन क्रिया करते है तथा निर्जीव श्वसन किया नही करते है।

अध्यापक—सजीव का और कोई गुण तलाश करें। आज स 5 वष पूव और अब म तुम्हारे शरीर के आकार म क्या परिवतन हुआ ?

छात्र—हमारा शरीर आकार म बढ गया।

अध्यापक—इस बढ़ने को 'वृद्धि" कहते है। सजीव और निर्जीव म वृद्धि की दृष्टि से क्या अन्तर है ?

छात्र—सजीव वृद्धि करते हैं परन्तु निर्जीव वृद्धि नही करते।

उपरोक्त उदाहरण म अध्यापक सजीव व निर्जीव म अन्तर स्पष्ट करने के लिए उन उदाहरणो को चुनता है जो विद्यार्थी क पूर्वानुभवा से सम्बधित होने क साथ-साथ प्रकरण से सीधा सम्बन्ध रखते हैं, अत उपयुक्त हैं।

पर्याप्तता

किसी भी प्रत्यय या सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए दिया गया उदाहरण यदि उसके एक अश को ही स्पष्ट करना है तो वह पर्याप्त नही है। यदि उदाहरण इस प्रकार का है कि वह पूण सिद्धान्त की व्याख्या करने म मदद प्रदान कर सकता है तो इसे पर्याप्त कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि भूगोल विषय म चन्द्र ग्रहण तथा सूय ग्रहण को समझाने के लिए चन्द्रमा की पृथ्वी के चारो ओर गति, तथा पृथ्वी की सूय के चारों ओर घूमने की गति को मॉडल द्वारा प्रस्तुत किया जावे तो ग्रहण के बारे म पर्याप्त ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

पर्याप्तता से अभिप्राय उदाहरण का पाठ्य वस्तु की समग्रता स सम्बन्धित होना है। एक उदाहरण से यदि पाठय-वस्तु को आसानी से समझाया जा सके तो इस प्रकार का उदाहरण पर्याप्त माना जाता है। अध्यापक इस प्रकार के उदाहरणो का चयन अपने विवेक का उपयोग करके कर सकता है।

उदाहरण के लिए अध्यापक यह समझाना चाहता है कि पदाथ भिन्न अवस्थाओं म रह सकता है जसे ठोस, द्रव और गैस इसको समझाने के लिए वह पानी का उदाहरण लेकर निम्न प्रकार से समझा सकता है—

अध्यापक—बफ, पदाथ का कौनसा रूप है ?

छात्र—यह ठोस रूप है।

अध्यापक—बफ को गम करने पर क्या प्राप्त होगा ?

छात्र—पानी प्राप्त होगा।

अध्यापक—पानी पदार्थ का कौनसा रूप है ?

छात्र—यह पदार्थ का द्रव रूप है।

अध्यापक—पानी को गर्म करने पर पदार्थ का कौनसा रूप प्राप्त होगा?

छात्र—पानी को गर्म करने पर गैसीय रूप प्राप्त होगा।

अध्यापक—निम्न चित्र श्यामपट्ट पर अंकित करता है

बर्फ ——गर्म——→ पानी ——गर्म——→ भाप
(ठोस) (द्रव) (गैस)

इसके उपरान्त निम्न रेखाचित्र बनाता है,

भाप ——ठंडा——→ पानी ——ठंडा——→ बर्फ
(गैस) (द्रव) (ठोस)

उपरोक्त उदाहरण पदार्थ के तीनो रूपो म परिवर्तित करने को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

सुसंगति

पाठ्यवस्तु के अनुरूप यदि उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है तो ऐसे उदाहरण को सुसगत कहते हैं। अध्यापक यदि पाठ्यवस्तु से असगत उदाहरण प्रस्तुत करेगा तो इसका प्रभाव ज्ञानोपयोगी नही होगा। इसी प्रकार उदाहरण बालक की आयु एव मानसिक स्तर के अनुकूल होना चाहिए। वह उदाहरणो के रूप म कहानी घटना माडल, चित्र, चार्ट, ग्राफ आदि का उपयोग कर सकता है। इनम कुछ उदाहरण छोटे बच्चो के अनुकूल हैं जैसे कहानी, घटना, माडल आदि। छोटे बच्चे रोचक कहानियां तथा चित्र पसन्द करते हैं अत इनका उपयोग सुसगत उदाहरण कहलायेगा। बडी उम्र के बालको को वैज्ञानिक उपयोग या जटिल उपकरणो के माडल दिखाये जा सकते हैं।

उदाहरण का पाठ्यवस्तु के अनुकूल होना उसकी उपयोगिता को बढाता है। यदि यह पाठ्यवस्तु क अनुकूल है ... लको के ... स्तर क उपयुक्त है तो इसका प्रभाव अधिक होगा। ... होगे। अत एक अध्यापक के लिए यह आवश्य... इस प्रकार से कर कि वह बालक तथा पाठ्यवस्तु ...

रोचकता

(Interestir...

जिज्ञासा ...
द्वारा प्रदर्शि...
दौरान बा...

को दर्शाता है। रोचकता का सम्बन्ध बालक की आयु, मानसिक स्तर तथा उदाहरण के प्रकार से है। छोटे बच्चे छोटी छोटी कहानियों को सुनने में रुचि लेते हैं। इसी प्रकार विद्यार्थी किसी प्रयोग का प्रत्यक्ष देखकर उससे प्राप्त निष्कर्षों का उत्सुकता से ग्रहण करते हैं।

छात्र-सहयोग

(Pupil's Cooperation)

एक अच्छे स्तर के अध्यापन में छात्रों का सहयोग लिया जाना आवश्यक है। बालक स्वभाव से चेतना-सम्पन्न प्राणी है। उसे सक्रियता में आनन्द मिलता है यदि अध्यापक शिक्षण के समय बालक का सक्रिय सहयोग लेता है तो उसका ज्ञान विकसित होने के साथ साथ उसमें ज्ञान के प्रति जिज्ञासा एवं रुचि बनी रहती है। अतः अध्यापकों को उदाहरणों का उपयोग इस रूप में करना चाहिए कि बालक का मन पाठ में लगा रहे।

उदाहरण के लिए अंग्रेजी में वर्तनी (Spelling) याद करना एक रूखा और कठिन कार्य है। यदि अध्यापक शब्द निर्माण का खेल कक्षा में कराता है जिसमें वह कुछ नियम भी बताता है तो छात्रों में नए नए शब्दों की वर्तनी याद करने की होड लग जाती है तथा यह कठिन कार्य उनके लिए सरस और सरल बन जाता है इसी प्रकार यदि अध्यापक कोई प्रयोग कक्षा में कर रहा हो तथा कुछ बालकों को बुलाकर इस प्रयोग के छोटे छोटे अंशों को उनसे पूरा कराये तो उनमें सक्रियता बढ़ती है।

प्रश्न करना अध्यापन की एक महत्त्वपूर्ण कला है। इसके द्वारा बालकों को सक्रिय रखकर उनसे सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। जब अध्यापक किसी उदाहरण को प्रस्तुत करे तो वह इससे सम्बन्धित प्रश्न सभी प्रकार के विद्यार्थियों से पूछकर कक्षा में पाठ्यवस्तु का विकास कर सकता है।

अध्यापन विधि एवं छात्र सहयोग एक दूसरे से सम्बन्धित है। यदि अध्यापक छात्रों का अधिकतम सहयोग प्राप्त करना चाहता है तो वह पाठयवस्तु का विकास निगमन विधि से कर सकता है। इसमें वह छात्रों से भिन्न प्रश्न पूछ कर उन्हीं से पाठ्यवस्तु विकसित कराता है। जब कभी भी किसी नए सिद्धान्त को पढ़ाया जाय तो अध्यापक निगमन विधि का उपयोग कर सकता है। इसमें छात्रों का सक्रिय सहयोग होता है व इसे ठीक प्रकार से समझ सकेंगे।

उदाहरण प्रस्तुत करने की युक्तियां

(Approach of Presenting Examples)

प्रश्न उठता है कि उदाहरण को कब और किस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए। उदाहरण को सामान्यतः दो प्रकार से प्रस्तुत कर काम में लाया जा सकता है, जो कि अग्रांकित प्रकार से हैं—

(क) नियम उदाहरण उपागम (Ruleg System)—इस उपागम का अर्थ है कि पहले किसी नियम को विद्यार्थियो को समझाना चाहिए तथा बाद म इस नियम को स्पष्ट करने के लिए उदाहरणा का प्रयोग किया जाना चाहिए'। इस प्रकार का उपागम अनवीन प्रत्यया को प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है जिसका पूव ज्ञान लगभग नगण्य सा हो। उदाहरण के लिए जब छात्रा को परमाणु विखण्डन का सिद्धान्त बताना हो तथा विद्यार्थी के लिये इसे उदाहरणो की सहायता से समझाना हो तब अध्यापक सवप्रथम परमाणु विखण्डन के सिद्धान्त को समझायेगा तथा बाद मे इससे सम्बन्धित उदाहरणो को प्रस्तुत करेगा। गणित विषय म भी इसका उपयोग किया जाता है। यदि बालक को भाग की क्रिया सिखानी ह तो सवप्रथम उसे यह सिखा दिया जायगा तथा फिर उदाहरणो के द्वारा अभ्यास कराया जावेगा।

इस प्रकार के उपागम मे अध्यापक का अधिक मेहनत नही करनी पडती है तथा पाठ्यक्रम को शीघ्रता से पूरा किया जा सकता है। परन्तु इसम सबस बडी कमी यह है कि छात्र को सोचने एव तर्क करन का अवसर कम मिलता ह। वह केवल अनुसरण करता है इस कारण उसम मौलिकता का विकास नही हो पाता।

(ख) उदाहरण नियम उपागम (Egrul System)—यह उपागम अधिक बोध गम्य एव शिक्षण की दृष्टि स प्रभावी माना जाता है। इसमे छात्र का नियम या प्रत्यय को प्रारम्भ म न बताकर उस कई उदाहरण दिये जाते हैं। अध्यापक इन उदाहरणो को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि बालक स्वय ही नियम को स्पष्ट कर बता देता है। इस प्रकार बालक को इस उपागम द्वारा मौलिक चिन्तन एव मनन का अवसर मिलता है। चूँकि वह ज्ञान की खाज स्वय करता है, अत उसके द्वारा अर्जित ज्ञान स्थायी होता है। उदाहरण के लिए यदि अध्यापक अनुपात के नियम का स्पष्ट करना चाह तो पहले वह छात्रा से अनेक प्रयोग कराता है, उसके उपरात वह नियम उन्ही से प्रतिपादित कराता है।

उदाहरण

प्रत्यय = π का मान $\frac{22}{7}$ हाता है।

अध्यापक अलग अलग आकृति के वृत्त लेकर अग्रांकित तालिका छात्रा स भरवाता है

क्र स	वृत्त का व्यास	वृत्त की परिधि	परिधि / व्यास	परिणाम
(1)				
(2)				
(3)				
(4)				
(5)				

निष्कर्ष—परिधि तथा व्यास के अनुपात का मान $\frac{22}{7}$ आता है जिस पर वृत्त की आकृति का कोई प्रभाव नही पडता। इसे ग्रीक भाषा के अक्षर π से प्रकट करते हैं।

उदाहरण—नियम-उपागम छात्र की दृष्टि से उत्तम उपागम है अध्यापक का इस प्रयोग म लाने के लिए पर्याप्त मेहनत एव अनुभव की आवश्यकता होती है।

निरीक्षण प्रपत्र—उदाहरण देने का कौशल

अध्यापक का नाम कक्षा
विषय विद्यालय
प्रकरण

क्र स	कुशलता के घटक	1	2	3	4	5
(1)	सरलता					
(2)	उपयुक्तता					
(3)	पर्याप्तता					
(4)	सुसगति					
(5)	रोचकता					
(6)	छात्र सहयोग					

निरीक्षक की टिप्पणी—

हस्ताक्षर निरीक्षक

उदाहरण देकर स्पष्ट करना—कौशल पर आधारित लघु पाठ

अध्यापक—इस चित्र में दो हाथी दिखाये गये हैं। (विद्यार्थी चित्र को उत्सुकता से देखते हैं) बच्चो, यह बताओ कि यह हाथी क्या कर रहा है?

सुरेन्द्र—यह लकड़ी के लट्ठों को खींच रहा है।

अध्यापक—ठीक है, दूसरा हाथी क्या कर रहा है?

पंकज—यह अपनी सूँड से लट्ठे को ऊपर उठा रहा है।

अध्यापक—क्या चित्र में खड़ा आदमी इस लट्ठे को आगे सरका सकता है?

मनीष—नहीं।

अध्यापक—हाथी जो कुछ कर रहे हैं उसे मनुष्य के लिए क्या कहेंगे? (रुक कर) पंकज।

पंकज—वह मनुष्य को सहायता दे रहा है।

अध्यापक—(दूसरा चित्र दिखाते हुए) यह गधा क्या कर रहा है?

मीरा—यह लकड़ियों का गट्ठर अपनी पीठ पर लादे जा रहा है।

अध्यापक—चित्र में दिखाया गया लड़का क्या इतने बोझ को अपनी पीठ पर ले जा सकता है?

मीरा—नहीं।

अध्यापक—तब गधा क्या कर रहा है? मीरा।

मीरा—गधा बालक की मदद कर रहा है।

अध्यापक—बहुत अच्छा (तीसरा चित्र दिखाते हुए) यह ऊँट क्या कर रहा है?

अशोक—यह रहट को घुमा रहा है जिससे कि पानी कुएं में से बाहर आ रहा है।

अध्यापक—चित्र में दिखाई गई औरत क्या इस रहट को घुमा सकती है?

अशोक—नहीं।

अध्यापक—तब बताइये ऊँट क्या कर रहा है?

अशोक—यह औरत की मदद कर रहा है।

अध्यापक—बहुत अच्छा, हमने यह देखा कि जानवर मनुष्य की मदद करते हैं। जब मनुष्य इनका इस रूप में उपयोग करते हैं यह कहा जाता है कि मनुष्य जानवरों की शक्ति का उपयोग कर रहा है। जानवर की शक्ति का मनुष्य द्वारा उपयोग के अन्य उदाहरण दो।

मीरा—ऊँट द्वारा गाड़ी खींचना।

मनीष—बैलों द्वारा हल खींचना।

पंकज—घोड़े द्वारा तांगा खींचना।

अध्यापक—बहुत अच्छा, ये सब जानवरों की शक्ति के उदाहरण हैं।

साराश

उदाहरण शिक्षण को रोचक एव बोधगम्य बनाते है इसक द्वारा जटिल प्रत्यय को भी सरलता स स्पष्ट किया जा सकता है अत शिक्षण के समय उदाहरण दिया जाना नितान्त आवश्यक ह। अध्यापक उदाहरणा को किस प्रकार प्रस्तुत करे यह उसके उदाहरण-कौशल पर निभर करता है। उदाहरण स अभिप्राय उपमा, तुलना अथवा वस्तु के द्वारा विषय-वस्तु को स्पष्ट, सरल एव बोधगम्य बनाने से है। उदाहरणो को दो प्रकारो अर्थात वाचिक रूप उदाहरण तथा प्रदशनात्मक उदाहरण म विभक्त किया जाता है। वाचिक रूप म शब्दा का अधिक प्रयाग किया जाता है जसे कहानी या घटना का वृत्तात सुनाना आदि। मूत वस्तुएँ जैस—चित्र मॉडल, चाट आदि भी उदाहरणा के रूप म काम मे लाई जा सकती हैं।

उदाहरणा का शक्षिक प्रभाव उदाहरण के स्तर एव प्रकृति पर निर्भर करता हं। उदाहरण यदि सरल, उपयुक्त, पर्याप्त, सुसगत रोचक एव जागरूकता उत्पन्न करने वाला होगा तो यह अधिक प्रभावशील होगा। इसे दो प्रकार स अर्थात् नियम उदाहरण अथवा उदाहरण नियम उपागम द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण नियम उपागम म उदाहरणो स प्रत्यय को विकसित करते हैं। नए प्रत्यय के निर्माण के लिए यह उपागम श्रेष्ठ है। कौशल का शिक्षक प्रशिक्षण म विकसित किया जाना आवश्यक है। इससे शिक्षक विषय वस्तु का वालक की मनोवज्ञानिक आवश्यकताओ स जोड सकेगा।

अध्याय 9 (vii)

विचार-विमर्श का कौशल

(Skill of Discussion)

प्रजातान्त्रिक शिक्षण-नीतियो म विचार विमश भी सम्मिलित किया जाता है। चूँकि प्रज तन्त्र म प्रत्यक व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करन के लिए स्वतन्त्र है, अत विचार विमश बालको से कक्षा कक्ष म कराया जाना उन्ह प्रजातान्त्रिक नीतियो एव विधियो क लिए तयार करना ह। अध्यापन की दृष्टि स विचार विमश किया जाना विशेष महत्त्व रखता है। किसी भी शक्षिक समस्या का जब बालक अपने, अपन दृष्टिकाण स सोचत है तो उन्ह इस प्रक्रिया म विषय वस्तु की गहराई तक सोचना पडता ह, समस्या का बारीकी स विश्लेषण कर उस तार्किक क्रम म प्रस्तुत करना होता ह य सब शक्षिक क्रियायें उसे उच्च मानसिक स्तर का प्रशिक्षण प्रदान करती है। अत कुछ प्रकरणो मे यदि विचार विमश क माध्यम स बालको म अन्त क्रिया कराई जाव तो यह लाभप्रद रहेगी। अध्यापक शिक्षण प्रक्रिया को दिशा प्रदान करता है अत उस इस बात का पूण ज्ञान होना आवश्यक है कि विचार विमश कक्षा मे किस प्रकार कराया जाये?

विचार विमश कोई नवीन प्रत्यय नही ह। घरो म अथवा सामाजिक अवसरो पर अक्सर विचार विमर्श किया जाता है। उदाहरण के लिए "समाज म दहेज प्रथा कैसे समाप्त करें" प्रकरण पर अक्सर सामाजिक विचार विमश चलता रहता ह। विद्यार्थी भी समय-समय पर अपनी समस्याओ से निपटने क लिए आपस म तथा अपन स बडो क साथ विचार विमश करते रहत ह। ऐतिहासिक दृष्टि स सोचा जाय तो विचार विमर्श आदि काल स चल आ रह ह। सुकरात अपन अनुयायियो म विभिन्न प्रश्न पूछता था, व उन पर अपन विचार व्यक्त करत थ तथा आपस म विचारो क आदान प्रदान से ही उसक अनुयायी ज्ञान की प्राप्ति कर लेते थे। आश्रम भी विचार विमश के केन्द्र थ। आचाय अपने शिष्यो क साथ ज्ञान बिन्दुओ पर विचार विमश करत थे। परन्तु आश्रमो क समाप्त होने पर यह तकनीक भी शिक्षण स धीरे धीरे समाप्त हो गई।

प्रजातन्त्र शासन प्रणाली क प्रारम्भ होन स पुन विचार विमश-तकनीक को बल मिला। विद्यार्थियो की समस्याओ स सम्बन्धित विचारो का प्रकट करने तथा

मुनन के लिए अवसर प्रदान किया जाने लगा। इससे विचार विमर्श करने का अवसर कक्षा-कक्ष में मिलने लगा।

विचार विमर्श कक्षा-कक्ष के वातावरण को सजीव एवं रोचक बना देता है। यदि अध्यापक लगातार व्याख्यान देता रहे तो शिक्षार्थी उसे सुनते-सुनते थक जाते हैं। उनकी स्थिति केवल एक मूक दर्शक के रूप में होती है। इसके विपरीत यदि वह शिक्षण में विचार विमर्श-तकनीक का प्रयोग करता है तो उसमें कक्षा के अधिकतम शिक्षार्थी भाग लेते हैं तथा विचार व्यक्त करते हैं। विचार व्यक्त करने तथा दूसरों के विचारों का ध्यान से सुनने आदि से कक्षा में क्रियाशीलता बढ़ती है।

विचार-विमर्श का अर्थ

(Meaning of Discussion)

विचार विमर्श साधारण बातचीत से भिन्न है। साधारण बातचीत का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता है जबकि विचार विमर्श एक सोद्देश्य क्रिया है। गुड[1] (Good) के शब्द कोष के अनुसार "विचार विमर्श किसी प्रकरण या समस्या से सम्बन्धित एक ऐसी प्रविधि है जिसमें शिक्षार्थी आपसी विचार विमर्श के उपरान्त एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इसका उपयोग सामान्यतः समाजवादी समाज में किया जाता है।" यह प्रविधि वाद विवाद से भिन्न है क्योंकि इसमें भाग लेने वाला व्यक्ति समस्या के मूल स्रोत की तलाश करता है जबकि वाद विवाद में वह सत्य की खोजने का प्रयास करने की अपेक्षा बहस के द्वारा अपने पक्ष को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करता है।

क्लार्क और स्टार[2] (Clark and Star)

> 'विचार विमर्श में किसी व्यक्ति के अहं की सन्तुष्टि के लिए कोई स्थान नहीं है न ही इसमें किसी को अपने विचार अन्य व्यक्तियों पर थोपने का अवसर दिया जाता है। न ही यह व्याख्यान अथवा विमोचन का पर्याय वाची है।'

मोर्स तथा मेक्स विन्गो[3] (Morse and Max Wingo)

> 'विचार विमर्श के समूह के प्रत्येक सदस्य का निश्चित समस्या पर सक्रियता से विचार विमर्श करने का अवसर मिलता है तथा इसमें प्राप्त निष्कर्ष सबके लिए अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं।"

उपरोक्त विवेचन से, यह स्पष्ट है कि विचार विमर्श में शिक्षार्थी अधिक सक्रिय रहते हैं तथा शिक्षक उनको आवश्यकतानुसार निर्देश प्रदान करता है।

1 Good Dictionary of Education
2 Clark and Star Op cit P 132.
3 Morse W C and Max Wingo G Psychology and Teaching, Taraporevala Sons & Co Bombay 1952 p 314

शिक्षार्थी केन्द्रित शिक्षण प्रविधि है जो कि अध्यापक के कुशल मार्ग-दर्शन में सम्पन्न होती है। अत एक अच्छे अध्यापक को विचार-विमर्श भली प्रकार से आयोजित करने की पूर्ण जानकारी तथा इससे सम्बन्धित कौशल होना चाहिए।

विचार-विमर्श के चरण (Steps of Discussion)

विचार विमर्श के प्रमुख चरण निम्नानुसार हैं

(क) पूर्व तैयारी—विचार विमर्श की प्रक्रिया समुचित वातावरण में ही सम्पन्न हो सकती है। यह वातावरण स्वतन्त्र होना चाहिए जिसमें बालक बिना किसी भय के अपने विचारों को प्रकट कर सकें। वातावरण इस हेतु जितना अनुकूल होगा, विचार विमर्श उतना ही प्रभावी रूप से सम्पन्न हो सकेगा।

वातावरण के अन्तर्गत बालकों की बैठक व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण है। यह ऐसी होनी चाहिए कि बालक एक दूसरे को देख सकें। इसके लिए अर्द्ध चन्द्राकार बैठक व्यवस्था सर्वोत्तम मानी गई है। शिक्षक का स्थान बीच में इस प्रकार होना चाहिए कि वह लगभग सभी बालकों को देख सके तथा उनके विचारों को भली भांति सुन सकें।

कक्षा कक्ष में जिसमें विचार विमर्श किया जाना है, रोशनी तथा हवा की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें एक श्यामपट्ट भी हो जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर उसका भी उपयोग किया जा सके। प्रत्येक बालक का बैठने का स्थान आरामदायक हो ताकि वह अधिक समय तक आराम से बैठ सके।

विचार विमर्श में मुख्यत विद्यार्थी भाग लेते हैं। अत शिक्षक विद्यार्थियों को प्रस्तावना द्वारा प्रकरण की जानकारी देता है तथा उन्हें स्वाध्याय हेतु प्रेरित करता है। यदि विद्यार्थी समस्या से सम्बन्धित साहित्य का पूर्व में अध्ययन कर लेते हैं, तो विचार विमर्श आसानी से होता रहता है। इस सम्बन्ध में अध्यापक को निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) अध्यापक को पाठ्यवस्तु एवं समस्या को सम्बन्धित करना चाहिए।

(2) प्रकरण से सम्बन्धित सूचनाएं शिक्षार्थियों को सुलभ हों।

(3) पाठ के वे अंश जो कि विचार विमर्श से सम्बन्धित हैं ध्यानपूर्वक पढ़ने के लिए निर्देश प्रदान करने चाहिए।

(4) यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त सूचनाएं प्रदान करने के लिए पत्र पत्रिकाएं आदि उपलब्ध करानी चाहिए।

(5) अध्यापक को प्रकरण के सभी पक्षों पर प्रकाश डालना चाहिए।

(ख) विचार विमर्श का सचालन—विचार विमर्श की प्रक्रिया का प्रारम्भ अध्यापक या शिक्षार्थी किसी के भी द्वारा किया जा सकता है। जैसा कि अपने आप में स्पष्ट है यदि प्रारम्भ रोचक ढंग से किया जाता है तो यह अधिक रुचिपूर्ण बन जाता है। अध्यापक प्रकरण की प्रस्तावना किसी कहानी, घटना अथवा उदाहरण से

कर सकता है। उदाहरण के लिए वायु प्रदूषण पर विचार विमर्श भोपाल गस दुघ टना का उदाहरण देकर प्रारम्भ कर सकता है।

विचार विमश को उद्देश्यपूर्ण तथा अधिक विस्तृत बनाने के लिए अध्यापक प्रकरण का एक-एक पक्ष लेता है जिस पर शिक्षार्थी खुल कर चर्चा करते हैं। अध्यापक अथवा समूह का सचालक आवश्यकतानुसार बीच-बीच में प्रश्न कर विचार विमश की धारा को उद्देश्यपूर्ण दिशा की ओर मोड़ता रहता है।

कुछ तथ्य ऐसे भी होते हैं जिनका स्पष्टीकरण किया जाना आवश्यक होता है। अध्यापक सुविधानुसार इन तथ्यों को स्पष्ट करता है तथा उनका विश्लेषण किये जाने में यदि आवश्यक हो तो, सहायता भी प्रदान करता है।

विचार-विमश में अन्त में कोई न कोई निष्कर्ष निकाला जाता है। यह निष्कर्ष छात्रों द्वारा अध्यापक के मार्ग-दर्शन में प्राप्त किया जाता है। यदि आवश्यक हो तो अध्यापक पूरे विचार विमश का साराश भी प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार विचार विमश में निम्नांकित बिन्दु सम्मिलित किये जाते हैं

(1) प्रस्तावना
(2) विश्लेषण
(3) व्याख्यान
(4) साराश।

विचार विमश के समय कक्षा का आकार क्या हो ? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यदि कक्षा का आकार बडा है तो सभी बालकों द्वारा विचार विमश में भाग लिया जाना सम्भव नही है। ऐसी परिस्थिति में कक्षा को छोटे छोटे समूहों में विभाजित कर देना चाहिए। ये उप समूह अपने सदस्यों में विचार विमश कर पूरे दल के सम्मुख प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं जहा पुन विचार विमर्श किया जाता है।

(ग) मूल्यांकन—विचार विमश सोद्देश्य किया है जिसमें यह ज्ञात करना भी आवश्यक है कि शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई। यह मूल्यांकन मौखिक तथा साक्षात्कार के माध्यम से किया जा सकता है।

विचार-विमर्श कराने का कौशल
(Skill of Discussion)

अध्यापक कक्षा में होने वाले सभी शैक्षिक क्रियाकलापों का मार्ग दर्शन प्रदान करता है। शिक्षण के समय कभी कभी ऐसे प्रकरण आते हैं जिसमें शिक्षार्थी की अन्तर्दृष्टि को जागृत करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी स्थिति में अध्यापक विद्यार्थियों में विचार विमश कराता है। अध्यापक इस कौशल में जितना अधिक कुशल होगा विचार विमर्श उतना ही अधिक व्यापक तथा अर्थपूर्ण होगा। यदि अध्यापक इस कौशल से परिचित नही है तो छात्र प्रकरण पर विचार विमर्श करने के लिए प्रेरित नही होंगे तथा न ही रुचि प्रदर्शित करेंगे।

विचार विमर्श कौशल के अधोलिखित उप कौशल है,

(1) तत्पर करना (Creating Set)

(2) दिशा प्रदान करना (Giving Directions)

(3) विद्यार्थियों की सहभागिता का प्रोत्साहित करना (Encouraging Pupil Participation)

(4) मौन होना (Pausing)।

(1) तत्पर करना

विचार विमर्श करने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी मानसिक एवं भावात्मक रूप से प्रकरण पर विचार करने हेतु तयार हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक समस्या का चुनाव ठीक प्रकार से करे। समस्या जिस पर विचार विमर्श कराया जाना है, में निम्न तीन गुणो का होना आवश्यक है

(अ) बालको के मानसिक स्तरानुसार तथा उनके द्वारा पढे गये ज्ञान पर आधारित हो।

(ब) समस्या अधिकतम विचार विमर्श के योग्य हो।

(स) समस्या विद्यार्थियो की रुचि एवं आवश्यक्ता से जुडी हो।

अध्यापक विद्यार्थियो को समस्या पर विचार विमर्श करने हेतु दो प्रकार से तत्पर कर सकता है। यदि समस्या नई हो तो वह समस्या से सम्बन्धित ज्ञान देकर फिर उनके सामने विचार किये जाने हेतु कुछ प्रश्नों को प्रस्तुत करता है। यदि समस्या से बालक पूर्व परिचित है तो ऐसी स्थिति मे अध्यापक बालकों के पूर्व ज्ञान का नवीनीकरण कर समस्या प्रस्तुत करता है। समस्या प्रस्तुत कर विद्यार्थियो को प्रेरित करना एक कौशल है अतः अध्यापक इस हेतु कहानी, घटना बालकों की आवश्यक्ता आदि का सहारा ले सकता है।

विचार विमर्श के लिए कुछ प्रकरण निम्नांकित है

(1) विद्यालय के वातावरण को स्वच्छ कैसे बनावें ?

(2) यदि आप देश के शिक्षा मन्त्री बन जावें

(3) यदि पृथ्वी का तापक्रम कुछ बढ जावे

(4) क्या प्रजातन्त्र हमारे देश के लिए उपयुक्त है?

(5) यदि हिमालय पर्वत न हो तो देश की जलवायु पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

(6) मुद्रा स्फीति को कैसे रोका जाय ?

(7) पेड अपना आहार कैसे बनाते है ?

(8) जल प्रदूषण की रोकथाम।

(9) जनसंख्या-वृद्धि के प्रभाव।

उदाहरण

अध्यापक—विद्यार्थियो, अभी हाल में ही एक भारतीय अभियान दल अन्टार्टिका में सफलतापूर्वक पहुंच गया। वहा चारों ओर बर्फ ही बर्फ है। यदि वहा कोई मनुष्य रहना चाहे तो क्या यह उसके लिए सम्भव होगा ?

छात्र—हां/नही (अनिश्चित वातावरण)

अध्यापक—आज हम इस सम्भ वना पर विचार विमर्श करें कि क्या मनुष्य अन्टार्टिक म रह सकता है अथवा नही।

विद्यार्थी, उपरोक्त उदाहरण म प्रकरण क सम्बन्ध म विविध विचार रखते हैं। वे अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत करेंग तथा उसके समथन म तक भी देंगे। यदि अध्यापक का यह पूर्वाभास हो कि विद्यार्थी किसी प्रकरण से पूव म ही प्रभावित होकर तत्पर हैं तो ऐसी स्थिति में वह श्यामपट्ट पर प्रकरण लिख कर विचार विमश प्रारम्भ कर देगा।

दिशा प्रदान करना

विद्यार्थियो म चिन्तन प्रक्रिया प्रारम्भ करना तथा एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति हेतु विचार विमश करान, अध्यापक की प्रश्न कला पर आधारित है। प्रश्न का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। चिन्तन की दष्टि से प्रश्न दो प्रकार के अर्थात् उच्च स्तरीय एव निम्न स्तरीय होते है। उच्च स्तरीय (High Order) विद्यार्थी की स्मृति पर आधारित न होकर अपसारी प्रकृति (Divergent Thinking) के चिन्तन से सम्बन्धित होते हैं जबकि निम्न स्तरीय प्रश्न (Low Order) अभिसारी प्रवृत्ति के चिंतन या स्मृति-आधारित होते हैं। उदाहरण के लिये "टापू किसे कहते है?" निम्न स्तरीय प्रश्न तथा यह स्मृति आधारित है जबकि प्रश्न "मरुस्थल म पाये जाने वाली वनस्पति अच्छी जलव यु वाले प्रदेशो की वनस्पति से किस प्रकार भिन्न है?' चिन्तन आधारित प्रश्न है। अध्यापक को विचार विमर्श प्रारम्भ करत समय तथा समय समय पर उच्च स्तरीय प्रश्नो को विद्यार्थियो से करते रहना चाहिये। यदि विचार विमश के दौरान विद्यार्थी प्रकरण स भटक जावें तो अध्यापक को उन्ह बीच बीच म टोक कर सावधान कर देना चाहिये।

अध्यापक को विचार विमश म विद्यार्थियो की सहभागिता बढाने के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिय—

(1) अध्यापक को विचार विमश क दौरान कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिये।

(2) विचार विमश हतु प्रेरित किये जाने वाले प्रश्न लम्बे तथा चिन्तन हेतु उत्प्रेरक का काय करन वाल हो।

(3) छात्रो को बोलने के लिए प्रेरित करें तथा उनक उत्तरो पर अन्य छात्र को प्रतिक्रिया व्यक्त करने हेतु कहे।

(4) यथासभव प्रश्नो को अन्यत्र स्थानान्तरित करें।

(5) स्वय किसी समस्या का हल प्रस्तुत न करें अन्यथा छात्र विचार-विमर्श नही करेंगे।

(6) किसी भी उत्तर का अध्यापक अस्वीकृति प्रदान न करे, उस पर अन्य बालकों की प्रतिक्रिया आमन्त्रित करें।

उपरोक्त बिन्दुओं की सहायता से अध्यापक अपेक्षित दिशा में विचार विमर्श करा कर उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेगा।

विद्यार्थियों को सहभागिता के लिए प्रोत्साहित करना

विचार विमर्श प्रारम्भ करने के पश्चात यह आवश्यक है कि विद्यार्थी उसमें अधिक समय तक भाग लें। इस हेतु अध्यापक दो प्रकार से अर्थात शाब्दिक तथा अशाब्दिक रूप में या दोनों व्यवहारों को मिश्रित रूप में प्रयुक्त कर विद्यार्थियों की सहभागिता को बढ़ावा दे सकता है। जब कभी भी विद्यार्थियों के विचार या प्रतिक्रियाएं सही हों तो अध्यापक, बहुत अच्छा, सही है, आदि उत्प्रेरक शब्दों का प्रयोग कर सकता है। अशाब्दिक रूप में सिर हिला कर स्वीकृति प्रदान करना, पीठ थपथपाना, मुस्करा कर स्वीकृति देना आदि विचार विमर्श को गति प्रदान करते हैं।

कभी कभी ऐसी भी परिस्थिति आ सकती है जब बालक द्वारा दिये गये विचार सत्य न हों, ऐसी स्थिति में अध्यापक 'दुबारा सोचें", "मुझे प्रसन्नता है कि आपने प्रतिक्रिया व्यक्त की, और अधिक गहराई से सोचें आदि शब्दों से विद्यार्थियों को प्रेरित किया जा सकता है। अध्यापक की आवाज बालक को विचार विमर्श के लिये प्रेरित करने वाली होनी चाहिये यदि आवश्यक हो तो अध्यापक उत्खनन प्रश्न भी कर सकता है।

बालकों की सहभागिता को बढ़ावा देने के लिये अध्यापक का निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिये—

(1) बालकों के सही उत्तरों की प्रतिपुष्टि की जाय।

(2) यदि कुछ एक छात्र बार बार बोल रहे हों तो उन्हें कुछ समय के लिये बोलने का अवसर न देते हुए अन्य छात्र जो चुप बैठे हैं को बोलने का अवसर दें।

(3) ऐसा व्यवहार छात्रों के साथ न करें जो कि उन्हें कष्ट पहुँचाने वाला या अपमान करने वाला हो।

(4) छात्रों के उत्तरों को बार बार न दोहरायें।

(5) छात्र अन्त क्रिया को कक्षा में प्रोत्साहित करें।

मौन होना

अध्यापक कभी कभी विचार विमर्श को गति प्रदान करने के लिए कक्षा में मौन हो जाता है अथवा पूरी कक्षा में शांत वातावरण कर देता है। जब कक्षा में अध्यापक के प्रश्न के बाद शांति हो जाती है तो यह बालकों को विचार व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती है। बालक सोचने एवं विचार विमर्श के लिये तैयार होने में

मानसिक रूप से धीरे धीरे तयार हो पाते हैं। उन्हें समस्या पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में कुछ समय लगता है अत अध्यापक को प्रश्न पूछ कर कुछ समय चुप हो जाना चाहिए तथा उसके बाद किसी एक विद्यार्थी को इशारा कर बोलने के लिये कहना चाहिये। इस प्रकार से कक्षा का चुप होना उन्हें समस्या से संबंधित विचारों को एकत्रित करने में सहायक होता है।

अध्यापक विचार विमर्श को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिये उपरोक्त वर्णित घटकों कौशलों का उपयोग कर इसे अधिक प्रभावशाली ढंग से पूरा करा सकता है। इसमें जितनी अधिक छात्र प्रतिक्रियाएँ होंगी, विचार विमर्श उतना अधिक अच्छे स्तर का होगा।

निरीक्षण प्रपत्र विचार विमर्श-कौशल

अध्यापक का नाम रोल नं

प्रकरण कक्षा

दिनांक कालांश

क्र म	कौशल के घटक	1	2	3	4	5
(1)	कक्षा को विचार विमर्श के लिये तैयार करना					
(2)	शाब्दिक उत्प्रेरकों का प्रयोग					
(3)	अशाब्दिक उत्प्रेरकों का प्रयोग					
(4)	छात्रों के सही उत्तरों की प्रतिपुष्टि					
(5)	छात्रों का विचार विमर्श में भाग लेना					
(6)	मौन होकर प्रश्न पूछना					
(7)	मुख्य बिन्दु पर छात्रों का ध्यान केन्द्रित करना					

परिवीक्षक की टिप्पणी—

हस्ताक्षर परिवीक्षक

साराश

विचार विमश एव साधारण प्रक्रिया है जिसका उपयोग बालक अपने सामाजिक पर्यावरण म होते हुए देखता है एव स्वय भी करता ह । यह एक प्रजातात्रिक पद्धति है जिसका उपयोग शिक्षण म भी किया जा सकता ह । साधारण बातचीत तथा विचार विमश म प्रमुख अन्तर यह ह कि साधारण बातचीत का कोई निश्चित उद्देश्य होना आवश्यक नही ह परन्तु विचार विमश मे समूह एक निश्चित उद्देश्य से प्रभावित रहता है ।

विचार विमश का अनेक अर्थों मे प्रकट किया गया है । शिक्षण की दृष्टि स इसमें समूह के प्रत्येक सदस्य शैक्षिक समस्या पर सक्रियता स विचार करते हैं तथा यह निष्कप उनके लिय ज्ञानवधक होते हैं । विचार विमश का आयोजन एक कला है जिसके लिय अध्यापक मे "कौशल" का होना आवश्यक ह । अध्यापक कक्षा म होने वाली सभी क्रियाओ का केन्द्र है । अत उसम इन समस्त शैक्षिक क्रिया कलापो को सही मागदर्शन करने की क्षमता होनी आवश्यक है ।

विचार विमर्श कौशल म प्रमुख घटक विद्यार्थियो को तत्पर करना, विचार विमश को दिशा प्रदान करना, सहभागिता के लिय प्रोत्साहित करना तथा आवश्यकतानुसार मौन की स्थिति कक्षा म उत्पन्न करना आदि ह । इन घटको का आवश्यकतानुसार उपयोग कर अध्यापक शिक्षण को प्रभावशाली बना सकता है ।



अध्याय 9 (viii)

स्पष्ट करने का कौशल

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उसे अन्य व्यक्तियों से बातचीत अथवा विचार विमर्श करने का अवसर मिलता है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए वह उपयुक्त शब्दों का प्रयोग कर प्रत्यय से सम्बन्धित उदाहरण भी देता है। अपने विचारों को एक तार्किक क्रम में व्यवस्थित कर प्रस्तुत करता है तथा आवश्यकतानुसार हाव भाव भी प्रकट करता है। उसके यह सारे प्रयत्न उसे अपने भाव अन्य व्यक्ति को समझाने में सहायता करते हैं तथा वह भली भांति दूसरे व्यक्ति को अपने विचार सम्प्रेषित कर देता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जो कि अपने मन की बात को ठीक प्रकार से व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं। प्रथम प्रकार के व्यक्ति अपने को स्पष्ट करने की कला के कारण दूसरे प्रकार के व्यक्ति से अधिक आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

कक्षा का ही उदाहरण लें, ऐसे अध्यापक जो कि पाठ्यवस्तु को बोधगम्य भाषा एवं प्रभावशील हाव भाव के द्वारा प्रस्तुत कर विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से समझा देते हैं, विद्यालय में लोकप्रिय अध्यापक का दर्जा प्राप्त कर लेते हैं। विद्यार्थी न केवल उनके अध्यापन में सन्तुष्ट रहते हैं, अपितु उनसे अधिक से अधिक पढ़ना चाहते हैं। इसके विपरीत ऐसे अध्यापक चाहे वे विषय के कितने ही अधिक ज्ञाता क्यों न हों, यदि पाठ्यवस्तु को विद्यार्थियों के समक्ष स्पष्ट करने में असमर्थ रहते हैं, विद्यार्थी उनके अध्यापन से सन्तुष्ट नहीं होते। न ही वे उनके अध्यापन का लाभ ज्ञानार्जन में ले पाते हैं। अतः एक योग्य अध्यापक बनने के लिये शिक्षक में स्पष्ट करने का कौशल होना नितान्त आवश्यक है।

स्पष्ट करने के कौशल का अर्थ एवं परिभाषा

स्पष्ट करने का कौशल क्या है? इस प्रकरण पर विभिन्न दृष्टिकोण हैं। अधिक विस्तार में वर्णन करते हुए स्पष्ट करने के कौशल से सम्बन्धित कुछ परिभाषायें अग्रांकित हैं—

काहल[1]

"स्पष्ट करने का कौशल विद्यार्थियों को विषय वस्तु को सरल रूप में समझने में सहायता प्रदान करता है।"

ब्राउन[2]

"अच्छे स्तर का स्पष्ट करने का कौशल एक तराक की तरह की पोशाक के समान है जो कि सुन्दर, संक्षिप्त परन्तु सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों को भली भाँति सम्पन्न करने में समर्थ है।"

पासी[3]

"प्रश्न करने के कौशल के अन्तर्गत अध्यापक द्वारा शिक्षणोपयोगी व्यवहार में वृद्धि करना तथा अनुपयोगी व्यवहार को त्यागना सम्मिलित है जिससे कि पाठ्य वस्तु को वह सही रूप में विद्यार्थियों को स्पष्ट कर सके।"

सामान्यत जब एक शिक्षक कक्षा में किसी प्रकरण से सम्बन्धित 'क्या', 'क्यों' तथा 'कैसे' को समझा रहा है, उसका यह कार्य स्पष्ट करने के कौशल से सम्बन्धित है। कोई प्रक्रिया घटना अथवा प्रत्यय सही अर्थों में क्या है, यह कैसे घटित हो रही है तथा कौन कौन से घटक इसे किस प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं अथवा यह सब क्यों है आदि प्रश्नों के उत्तर सरल भाषा में अध्यापक छात्रों को इस प्रकार देता है कि वह इसे भली प्रकार से समझ लें तो यह माना जावेगा कि अध्यापक स्पष्ट करने के कौशल को प्राप्त कर चुका है। परन्तु किसी प्रकरण पर केवल मात्र सूचनाएं प्रदान करना स्पष्ट करने की प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि विद्यार्थी प्रश्न करे कि भारत की प्रथम महिला प्रधानमन्त्री कौन थी? अध्यापक द्वारा इसका उत्तर देना मात्र एक कथन होगा न कि स्पष्ट करने की क्रिया। परन्तु यदि बालक यह जानना चाहे कि गन्दे पानी को साफ किस प्रकार करते हैं? अध्यापक ऐसी स्थिति में पानी को साफ करने की प्रक्रिया तथा विधियों को स्पष्ट करेगा।

स्पष्ट करने की कला के अन्तर्गत अध्यापक की उन समस्त कक्षान्तर्गत क्रियाओं अथवा प्रयत्नों को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो कि विद्यार्थी के ज्ञान के क्षेत्र में उत्पन्न अवरोधों अथवा अज्ञान को हटाकर उसमें विषय-वस्तु की समझ को समृद्ध कर दे। जब विद्यार्थी कोई नवीन प्रत्यय सीखना चाहता है तो सामान्यत वह उस अपने पूर्वानुभवों से सम्बन्धित करने का प्रयास करता है। अध्यापक अपने इस कौशल के माध्यम से बालक के पूर्व ज्ञान तथा नवीन पाठ्य वस्तु के मध्य तारतम्यता की स्थिति निर्मित करता है। दूसरे शब्दों में वह बालक को

---

1 Kahl R Studies in Explaination Prentice Hall 1963

2 Brown George Micro Teaching—A Programme of Teaching Skills' London Methuen & Co Ltd 2nd Ed 1978

3 Passi B K Becoming Better Teacher Ahmedabad Sahitya Mudranalaya 1976

ान रूपी क्षेत्र में पुराने एवं नए अनुभवों के मध्य नवीन सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता प्रदान करता है।

स्पष्ट करते समय अध्यापक किसी प्रक्रिया, घटना परिणाम, स्थितियों आदि से सम्बन्धित कारणों को स्पष्ट करता है तथा इनसे उत्पन्न ज्ञान के विभिन्न चरणों की व्याख्या करता है। इन सब के लिए वह विभिन्न तर्क प्रस्तुत कर प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। इस प्रकार स्पष्टीकरण की आवश्यकता किसी घटना, क्रिया अथवा स्थिति के उदय होने से उत्पन्न होती है तथा जब बालक इन्हें ठीक प्रकार से समझ लेते हैं तो यह स्वतः ही समाप्त हो जाती है।

स्पष्ट करने के कौशल के आवश्यक तत्त्व

अध्यापक कक्षा में पढ़ाते समय विभिन्न प्रकार के प्रयत्न करता है। वे प्रयत्न जो कि बालक के अधिगम में सहायक सिद्ध होते हैं, अध्यापक-व्यवहार कहलाते हैं। जैसे छात्रों के पूर्व ज्ञान को आधार बनाते हुए सीखे जाने वाली पाठ्य वस्तु का व्याख्या करना, अधिगम-अवरोधों को दूर करना, पाठ का प्रारम्भ रोचक तरीके से करना तथा पाठ के अन्त में इसका सारांश दोहराना आदि। परन्तु कभी-कभी वह अवांछनीय व्यवहार जैसे अपूर्ण अथवा असंगत व्याख्या करना, विचारों अथवा वाक्यों में तालमेल न होना, असंतुलित वाक्य प्रवाह, अनुपयुक्त शब्दों का विषय-वस्तु को स्पष्ट करते समय उपयोग करता है। इससे पाठ्य-वस्तु स्पष्ट होने के स्थान पर जटिल बन जाती है तथा बालक इसे भली प्रकार न समझ नहीं पाता। अतः अध्यापक को एक कुशल शिक्षक बनने के लिए उसमें पाठ्य वस्तु को स्पष्ट करने के कौशल होना नितान्त आवश्यक है। इस कौशल के तत्त्व निम्नानुसार हैं—

(1) पाठारम्भ एवं समाप्ति करने का कौशल

पाठ का प्रारम्भ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह छात्र को पाठ्य वस्तु सीखने के लिए तत्पर करता है। प्रारम्भ में अध्यापक इस प्रकार से व्याख्या करता है कि वह बालकों का ध्यान पढ़ाये जाने वाले प्रकरण पर केन्द्रित कर उन्हें पढ़ने हेतु प्रेरित कर दे।

उदाहरण के लिए अध्यापक संघनन पर पाठ प्रारम्भ करते समय निम्नानुसार पाठ का प्रारम्भ कर सकता है।

(आइये, हम सब समझें संघनन क्रिया क्या है)

, , आपने यह अनुभव किया होगा कि जब किसी बर्तन में पानी गर्म करते हैं तो उसके ढक्कन के नीचे पानी की कुछ बूँदें जमा हो जाती हैं। इसी प्रकार गिलास में बर्फ भरने पर इसकी बाहरी दीवार पर पानी की बूँद दिखाई देती है। प्रश्न उठता है कि ये पानी की बूँद किस प्रकार उत्पन्न हुई ? आइये हम इस प्रक्रिया पर विचार करें।

उपरोक्त उदाहरण में यह स्पष्ट है कि अध्यापक संघनन की क्रिया से सम्बन्धित ऐसे उदाहरणों को विद्यार्थियों के सामने स्पष्ट कर रहा है जो कि उनके

पूर्वानुभवों से सम्बन्धित है। इससे बालक पाठ को पढ़ने के लिए अवश्य ही प्रेरित होंगे। पाठ के प्रारम्भ में दिये गये स्पष्टीकरण इस प्रकार के हों कि वे बालक को अधिगम हेतु तत्पर कर उसके सम्मुख एक प्रश्नवाचक चिन्ह उपस्थित कर दें। इससे उनमें जिज्ञासा प्रवृत्ति स्वतः ही उत्पन्न हो जावेगी।

कभी कभी पाठ के प्रारम्भ में स्पष्टीकरण बहुत विस्तृत कर दिये जाते हैं। इस प्रकार के स्पष्टीकरण बालक में मानसिक थकान उत्पन्न कर सकते हैं। अतः अध्यापक को इसे अलग-अलग भागों में बाँट कर प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि बालक समस्या के भिन्न भिन्न पहलुओं की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें।

पाठ की समाप्ति पर पाठ का सारांश दिया जाना विद्यार्थियों के लिए ज्ञान वर्धक माना गया है। इस सम्बन्ध में ब्राउन[1] का विचार है— 'पाठ का सारांश प्रभावी स्पष्टीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण है।" सारांश प्रस्तुत करते समय अध्यापक पढ़ाये गये मुख्य मुख्य बिन्दुओं को एक तार्किक क्रम में व्यवस्थित कर संक्षेप में विद्यार्थियों के समक्ष रखता है।

(2) प्रस्तुतिकरण के तत्त्व

पाठ्य वस्तु का प्रस्तुत करते समय अच्छे स्तर का स्पष्टीकरण आवश्यक है यदि अध्यापक को प्रस्तुतिकरण स्पष्ट एवं प्रभावी बनाना है तो उसे निम्न तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए—

(क) स्पष्टता—इस बिन्दु से सम्बन्धित अनेक शिक्षक व्यवहार सम्भावित हैं। तथ्यों अथवा विषय वस्तु को सरल, बोधगम्य एवं सुसंगत भाषा के माध्यम से अध्यापक को अपने विचार प्रस्तुत करने चाहिए। आवश्यकतानुसार किसी उदाहरण के माध्यम से वह विद्यार्थियों का ध्यान अध्यापन के दौरान भी आकर्षित कर सकता है। किसी मुख्य बिन्दु का स्पष्ट करते समय वह विशिष्ट भाव मुद्रा का भी उपयोग कर सकता है। इन सब कार्यों का उद्देश्य अध्यापक द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली पाठ्य वस्तु में स्पष्टता लाना है।

(ख) हाव भाव या वाणी में विविधता—छात्र अधिक समय तक एक सी मुद्रा में रहने पर थक जाते हैं। अतः प्रभावी रूप में स्पष्ट करने के लिए बालकों की इस प्रकार की मुद्रा में विविधता लाना आवश्यक है। अध्यापक वाणी में विविधता लाकर अथवा स्वयं प्रकरण के अनुरूप मुख मुद्रा बनाकर स्पष्टीकरण की प्रक्रिया को प्रभावी बना सकता है। यदि आवश्यक हो तो मुख्य बिन्दु या परिभाषा को बताते समय अपनी वाणी कुछ तीव्र तथा करुणा आदि भावों को व्यक्त करते समय वाणी कुछ धीमी कर भाव प्रदर्शित कर सकता है।

(ग) क्रिया सम्बन्ध शब्द अथवा सूचक का उपयोग—स्पष्ट करने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने के लिए अध्यापक क्रिया-सम्बन्ध शब्द जैसे—परिणाम स्वरूप, इसलिए इस कारण आदि का उपयोग कर सकता है जैसे—

1 Brown G A Micro Teaching A Programme of Teaching Skills London Methuen & Co Ltd 1975 P 98

(1) प्रजा राजा का अनुसरण करती है। जब राजा भी भ्रष्ट हो गये परिणामस्वरूप प्रजा म अनतिक कार्यों की वृद्धि हो गई।

(2) अम्ल नील लिटमस का लाल करता है। यदि हम सल्फ्यूरिक अम्ल म लाल लिटमस डालेंगे ता इसके रग पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

अध्यापक ध्यान केन्द्रित करने क लिए पाइटर या सूचक का भी उपयोग कर सकता है।

(घ) तारतम्यता—विचारो म स्पष्टता बनाए रखन क लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक विषय वस्तु को एक क्रम-बद्ध तरीके म व्यवस्थित कर विद्यार्थियों के समक्ष उसी क्रम म प्रस्तुत कर। अध्यापक द्वारा निर्धारित क्रम का तर्क-सगत होना आवश्यक ह। इन विभिन्न बिन्दुओ को एक-दूसरे से भी सम्बन्धित किया जाना चाहिए। अध्यापक के कथन भी, पूव म दिय कथनो से सम्बन्धित होने चाहिए।

अध्यापक कई बार अध्यापन काय करत समय पूर्वानुभवो से सम्बन्धित किए बिना ही पाठ पढ़ा देते हैं। इस प्रकार के पाठ अस्पष्ट व अप्रभावी होते हैं। उदाहरण के लिए—

'दो रेल-पटरियों के बीच जगह छोड़ी जाती है। यह क्यों छोडी जाती है? तुमने पढ़ा होगा कि गस, द्रव व ठोस गम करने पर फलत ह। उनके बढ़ने क लिए कुछ स्थान चाहिए। यदि रल पटरियों के मध्य जगह नहीं छोडेंगे तो यह टेढ़ी हो जायेंगी तथा रेल नहीं चल पायेगी।"

यहाँ अध्यापक प्रकरण को बालक के पूव ज्ञान से सम्बन्धित कर रहा ह परन्तु 'ताप-वृद्धि से ठोसो म प्रसार" से ठीक प्रकार से सम्बन्धित कर स्पष्ट नहीं कर पा रहा है।

(ङ) अर्जित ज्ञान का पुनर्बलन—अध्यापन करत समय यह भी आवश्यक ह कि अध्यापक समय समय पर बालक द्वारा अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन कर उसके सही होने की स्थिति म स्वीकृति प्रदान कर पुनर्बलित कर तथा दोषपूर्ण होने पर उस बिन्दु को और अधिक स्पष्ट कर। ऐसा करने से बालक के ज्ञान का आधार सुदृढ़ होगा तथा वह नवीन तथ्यों को और अधिक स्पष्टता से ग्रहण कर सकेगा। इसी प्रकार वह समय-समय पर बालकों के ज्ञान के मूल्यांकन के परिणाम के आधार पर अध्यापन क्रियाएँ जसे विषय वस्तु का प्रस्तुतिकरण, पाठ पढ़ाने की गति, भाषा का स्तर, उदाहरणों की उपादेयता आदि पर विचार कर उन्ह इस प्रकार नियन्त्रित कर सकेगा कि पाठ्य वस्तु और अधिक स्पष्ट रूप से छात्रों का प्रस्तुत की जा सक।

कौशल विकसित करने हेतु ध्यातव्य सिद्धान्त

(1) अध्यापक को पाठ योजना का निर्माण करत समय यह ध्यान देना चाहिए कि उसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले कथन स्पष्ट, सुग्राह्य एव रोचक ह अथवा नहीं।

(2) अध्यापक द्वारा प्रस्तुत वर्णन बालक की आयु, योग्यता एवं रुचि के अनुरूप होना चाहिए।

(3) ऐसे उदाहरणों अथवा कथनों का उपयोग करना चाहिए जो कि पाठ्य वस्तु से सीधा सम्बन्ध रखते हों।

(4) अध्यापक को कक्षागत सामयिक मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों के अनुरूप शिक्षण की प्रकृति में सुधार लाना चाहिए।

उक्त बिन्दुओं का ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करने से शिक्षण में अधिक स्पष्टता आयेगी। इस प्रकार 'स्पष्ट करने का कौशल' का तात्पर्य अध्यापक के वांछनीय व्यवहारों में वृद्धि तथा शिक्षण की दृष्टि से अवांछनीय व्यवहारों में कमी लाना है जिससे कि अध्यापन शिक्षार्थी के लिए अधिक बोधगम्य, सुग्राह्य, सरल एवं प्रभावी बन सके।

मूल्यांकन प्रपत्र—स्पष्ट करने का कौशल

अध्यापक का नाम | रोल नं

प्रकरण | कक्षा

दिनांक | अवधि

क्र सं	कौशल के घटक	मूल्यांकन 1	2	3	4	5
(1)	स्पष्टीकरण में तारतम्यता					
(2)	प्रारम्भिक वाक्यों का उपयोग					
(3)	सारांश का प्रस्तुतिकरण					
(4)	विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान का सामयिक मूल्यांकन					
(5)	भाषा का बोधगम्य होना					
(6)	उदाहरणों की स्पष्टीकरण में उपयुक्तता					
(7)	भाषायी शुद्धता					
(8)	ध्यान केन्द्रित करना।					

अध्याय 9 (IX)

उद्दीपन में परिवर्तन लाने का कौशल

(Skill of Stimulus Variation)

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएं करता है, जैसे प्रश्न पूछना, छात्रों के उत्तरों में आवश्यकतानुसार सुधार करना आदि। अध्यापक विद्यार्थियों का ध्यान विषय वस्तु पर केन्द्रित रखने के लिए अनेक प्रयास करता है। इसलिए आवश्यक है कि विद्यार्थी यदि ध्यान केन्द्रित रख पाते हैं तो वे पाठ को आसानी से समझ लेते हैं। इस हेतु वह कक्षा में शाब्दिक एवं अशाब्दिक व्यवहार करता है जैसे हाथ का सोद्देश्य हिलाना, शब्द 'ध्यान दें', 'इधर देखिए', "यह क्या हो रहा है" आदि कक्षा में कहता है। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक शाब्दिक एवं अशाब्दिक व्यवहार दोनों एक साथ करता है ताकि छात्रों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो सके। उसके समस्त व्यवहार जो कि विद्यार्थियों के ध्यान को विषय वस्तु अथवा किसी शैक्षिक घटना की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से किये जाते हैं, अध्यापक के उद्दीपन परिवर्तन के कौशल से सम्बन्धित हैं।

उद्दीपन का अर्थ

(Meaning of Stimulus)

उद्दीपन का अर्थ व्यक्ति के वातावरण में परिवर्तन से है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति अनुक्रिया या व्यवहार करने लगता है उदाहरण के लिए, बालक के सम्मुख मिठाई एक उद्दीपन है तथा उसकी प्राप्ति हेतु उसके द्वारा किये गये प्रयत्न बालक के नवीन व्यवहार हैं। उद्दीपन को व्यवहार परिवर्तन में सहायक माना गया है तथा व्यवहारगत परिवर्तन को अधिगम माना गया है। अतः उद्दीपन को भी अधिगम प्रक्रिया का मूल तत्त्व भी माना गया है। उद्दीपन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

टेबर (Taber)[1] ग्लेसर (Glaser) और शेफर (Schaeffer)

'कोई परिस्थिति, घटना अथवा वातावरण में परिवर्तन से यदि विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन होता है तो उसे उद्दीपन कहते हैं।'

1 Taber, Julian I Glaser R and Schaeffer H H Learning and Programmed Instruction Reading Mass Addison Wesley Publishing Co Inc 1965

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में उद्दीपन एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। यदि अध्यापक कक्षा में एक ही प्रकार की अनुक्रिया करता है तो इस एक जैसी क्रिया को बार-बार करने से विद्यार्थियों में मानसिक थकान उत्पन्न हो जाती है। अतः इनमें समय-समय पर परिवर्तन लाना आवश्यक होता है।

शिक्षक का कक्षागत व्यवहार छात्र छात्राओं के लिए उद्दीपन का कार्य करता है। सामान्यतः अध्यापक कक्षा में बोलना, लिखना, हाथ हिलाना, इधर उधर घूमना आदि व्यवहार करता है यदि अध्यापक इन व्यवहारों में से केवल एक जैसा व्यवहार ही लगातार करता रहे जैसे लगातार श्यामपट्ट पर लिखता ही रहे, तो उसका यह कार्य विद्यार्थियों को मानसिक रूप में थका देने वाला होगा तथा उनका ध्यान अधिक समय तक शिक्षक द्वारा पढाई जाने वाली पाठ्यवस्तु पर केन्द्रित नहीं रहेगा। इसके विपरीत यदि वह अपने कक्षागत व्यवहार में आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाता रहे तो वह छात्र-छात्राओं का विषय वस्तु पर ध्यान अधिक प्रभावी रूप से तथा अधिक समय के लिए केन्द्रित कर सकेगा। प्रश्न उठता है कि अध्यापक कक्षा में यह व्यवहार किस प्रकार करे? यह उसके उद्दीपन में परिवर्तन लाने के कौशल से सम्बन्धित है।

उद्दीपन मे परिवर्तन लाने का कौशल

(Skill of Stimulus Variation)

अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी अपना ध्यान पाठ्यवस्तु पर केन्द्रित करें। उनका ध्यान केन्द्रित करने के लिए अध्यापक विभिन्न प्रयत्न करता है जैसे श्यामपट्ट पर लिखना, चित्र दिखाना, हाथ या पाइंटर से किसी स्थान विशेष का इंगित करना आदि। यदि अध्यापक इस प्रकार की क्रियाओं में समय समय पर परिवर्तन करता रहता है तो बालकों में विषय वस्तु को समझने की रुचि एवं उत्सुकता बनी रहती है। नीचे अध्यापन के दो प्रकार का वर्णन किया जा रहा है।

प्रथम प्रकार का अध्यापन

(अध्यापक कक्षा में प्रत्येक छात्र को गुलाब का एक एक फूल देकर पुष्प का निरीक्षण करते रहने को कहता है।)

अध्यापक—पुष्प का कौन सा भाग टहनी से जुड़ा है?

छात्र—पुष्प का निचला भाग।

अध्यापक—इस निचले भाग को क्या कहते हैं?

छात्र—(सम्भवतः मौन)।

अध्यापक—ध्यान दें इस पुष्प वृन्त कहते हैं?

(अध्यापक कक्षा में घूम कर एक एक छात्रों में पुष्प वृन्त को छूने को कहता है।)

अध्यापक—डण्डी से जुडे भाग म क्या दिखाई दे रहा है ?

छात्र—पाच छ हरी पत्तिया।

अध्यापक—(अपना स्थान बदलत हुए) हरी पत्ती के घेरा का क्या कहत ह ?

छात्र—(निरुत्तर)।

अध्यापक—(वाणी म उतार लात हुए) इस "बाह्यन्दल पुज" कहत ह।
(अध्यापक छात्रा को, श्यामपट्ट पर बन चित्रा का अपनी उत्तर पुस्तिका म नोट करन के लिए कहता है।)

द्वितीय प्रकार का अध्यापन

अध्यापक धारा प्रवाह छात्रो का पुष्प के विभिन्न भागा के बार म बताता ह।

उपरोक्त दाना अध्यापन स्थितिया म पर्याप्त अन्तर ह। प्रथम प्रकार क अध्यापन म अध्यापक छात्रो से विभिन्न अनुक्रियाए कराता है, अध्यापक भी भिन्न भिन्न प्रकार स बालक क अधिगम वातावरण म परिवतन लाता है जस—पुष्प के भाग को छूना, कक्षा म घूमना, वाणी म उतार चढ़ाव लाना आदि। इस सबसे अध्यापन में सरसता आती ह जबकि द्वितीय प्रकार के अध्यापन म अध्यापक एक ही प्रकार की अनुक्रिया अथात् व्याख्यान देन म सलग्न ह। दोनो अध्यापको क कौशल म पर्याप्त अन्तर है। उद्दीपन परिवतन का कौशल अध्यापन का अधिक प्रभावी बनान म सहायक है।

उद्दीपन म परिवतन लाने हेतु अध्यापक विभिन्न प्रकार के प्रयत्न कर सकता है। इनम प्रमुख निम्न प्रकार स ह

(1) कक्षा म घूमना या अग चालन (Movements)

(2) हाव भाव (Gestures)

(3) वाणी म उतार चढाव (Change in Speech Pattern)

(4) ध्यान केन्द्रित करना (Focussing)

(5) मौन (Pausing)

(6) अन्त क्रिया वाणी म विविधता (Change in interaction styles)

(7) शाब्दिक अशाब्दिक माध्यमा म सक्रमण (Oral visual switching)।

(1) कक्षा मे घूमना या अग चालन (Movements)

कक्षा म अध्यापक पढ़ाते समय खडा होकर पढ़ाया करता ह। उसके खडे रहने की अनेक स्थितियो म प्रमुख रूप स तीन स्थितिया बनती ह। पहली स्थिति म वह केवल एक स्थान पर खडा रह कर अध्यापन काय करता रहे तथा कक्षा म इधर उधर न घूम। इस प्रकार के अध्यापक टेबल के सहारे लगातार खडे-खडे पढाते रहते है। दूसरी स्थिति म अध्यापक पूरी कक्षा मे घूमता रहता है। वह पढाता

भी है परन्तु बिना बात टहलता रहता है। उसका कक्षा में घूमना बिना किसी उद्देश्य के है। तीसरी स्थिति में अध्यापक आवश्यकतानुसार श्यामपट्ट की ओर चलता है अथवा कभी कभी अपने स्थान या टेबल के किनारे से दूसरे किनारे तक स्वयं को विश्राम देने की दृष्टि से भी बदल लेता है। तीनों स्थितियों में यदि प्रथम प्रकार पर विचार किया जाये तो इस प्रकार के शिक्षण में अध्यापक एक स्थान पर खड़ा है। छात्र लगातार एक ही स्थान की ओर देख रहे हैं। इससे उनमें थकान उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है। छोटे बालक एक दिशा में लगातार देखने में असमर्थ होते हैं अतः अध्यापक का एक स्थान पर खड़ा होकर पढ़ाना अधिगम की दृष्टि से उचित नहीं है। दूसरी स्थिति में अध्यापक लगातार कक्षा में चारों ओर घूम रहा है जो कि ध्यान को केन्द्रित करने में व्यवधान उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया है। अध्यापक द्वारा सोद्देश्य घूमना या कभी-कभी अपना स्थान परिवर्तन करना छात्रों के लिए लाभप्रद है। कक्षा में बालक अध्यापक की ओर देखते हैं। यदि वह यदा कदा स्थान में परिवर्तन करता है तो उनकी देखने की दिशा में परिवर्तन होता रहता है जिससे वे अपना ध्यान अधिक समय तक केन्द्रित रख पाते हैं।

(2) हाव भाव

कक्षा में अध्यापन के दौरान अध्यापक विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए कुछ हाव-भाव जैसे सिर, हाथ या शरीर को हिलाकर करता है। इससे अध्यापन गतिशील बनता है। वैसे अध्यापक द्वारा शाब्दिक सम्प्रेषण किया जा सकता है परन्तु यह सम्प्रेषण बिना हाव भाव के प्रभावहीन माना जाता है। अध्यापन को प्रभावशाली बनाने के लिए मौखिक अभिव्यक्ति के साथ साथ कुछ हाव भाव भी करने चाहिए।

उदाहरण

प्रकरण—राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्त्व।

अध्यापक—राष्ट्रीय एकता देश की अखण्डता के लिए आवश्यक है परन्तु (टेबल पर हाथ पटकते हुए) आज अनेक ऐसे तत्त्व हैं जो कि इसमें बाधा पहुँचा रहे हैं। बताए ये तत्त्व कौन कौन से हैं?

छात्र—क्षेत्रीयतावाद।

अध्यापक—शाबास, (हाथ हिलाते हुए स्वीकृति प्रदान करता है) अन्य कोई बाधक तत्त्व का नाम बताइये—

छात्र—आतंकवादी, पंजाब में लूट-पाट कर रहे हैं।

अध्यापक—राष्ट्रीय एकता में इससे सम्बन्धित बाधक तत्त्व का नाम बताये।

छात्र—आतंकवाद।

अध्यापक—(हाथ से गोलाकार आकृति बना कर) विश्व में आतंकवाद और कहाँ अशान्ति पैदा कर रहा है?

छात्र—निरतर।

अध्यापक—(नक्शे म लका की ओर इशारा करत हुए) लका म भी आतक वादी अशान्ति उत्पन्न कर रह हैं।

अध्यापक विषय वस्तु की व्याख्या करते हुए अपने हाव भाव से इसे अधिक प्रभावशाली बनाता है।

(3) वाणी मे उतार-चढ़ाव

मनुष्य के अन्य प्राणियो की तुलना म श्रेष्ठ होने के अनक कारणो म से एक उसका विकसित वाणी यन्त्र है। वह अपन भावा की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम मे कर सकता ह। यदि वह विचारो की अभिव्यक्ति करत समय अपनी वाणी का भावानुकूल व्यवस्थित कर लेता ह अथात् गुस्सा प्रकट करत समय वाणी ऊँची करुणा रस की अभिव्यक्ति करते समय आवाज मन्द तथा दर्द भरी, हर्ष व्यक्त करते समय वाक्यो को प्रसन्न मुद्रा मे कहता ह तो उसकी इस प्रकार की अभिव्यक्ति उसके शिक्षण को प्रभावशाली बना देती है।

कक्षा मे बालक अध्यापक की आवाज को सुनते है। एक जैसी आवत्ति वाली आवाज शन शन उनम नीरसता उत्पन्न कर देती है। आवाज म यथोचित परिवतन स उनके ध्यान का वे अधिक समय तक केन्द्रित रख पाते ह। साथ म शब्दो के द्वारा भावाभिव्यक्ति शिक्षक के शब्दो को प्रभावशाली बना देती है।

उदाहरण

अध्यापक—(बुलन्द आवाज मे)

अरे घास री रोटी ही,
जद बन बिलावडो ले भाग्या।
(धीमी पर करुण आवाज म)
नान्हो सो अमरो चीख पड्या,
राणा रा सोया दुख जाग्यो।

(4) ध्यान केन्द्रित करना

अध्यापन के दौरान कभी कभी ऐसी परिस्थितिया आती है जबकि अध्यापक को छात्रो का ध्यान किसी विशेष शिक्षण बिन्दु या किसी वस्तु के विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण भाग पर केन्द्रित करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए भारत की खनिज सम्पदा पढाते समय अध्यापक बालको का ध्यान नक्शे मे उन विशिष्ट स्थानो पर केन्द्रित करता है जहा कि ये पाये जात हैं अथवा किसी रासायनिक परिवतन का दिखाने क लिए अध्यापक परखनली म हो रही रासायनिक क्रियाओ का ध्यान स देखन को कहते हैं। ध्यान केन्द्रित करने के तीन प्रकार के माध्यम हो सकत हैं जैसे मौखिक रूप मे वाक्य 'इसे ध्यान से देखे', 'देखो, और बताओ कि क्या हो

रहा है", "देखो और बताओ कि इस क्रिया के फलस्वरूप कौन सा नया पदार्थ बन रहा है" आदि ।

कभी-कभी अध्यापक शब्दों का प्रयोग न करके केवल इशारे से द्वारा छात्रों को किसी विशिष्ट भाग को ध्यानपूर्वक देखने को कहता है। उदाहरण के लिए भारत के नक्शे को दिखा कर अध्यापक भारत के पड़ोसी देशों के नाम पूछता है। उसके इशारे से बालक नक्शे को ध्यानपूर्वक देखते हैं। इसी प्रकार अध्यापक किसी सूत्र या सिद्धान्त की ओर इशारा कर बालकों का ध्यान उसके उपयोग में लाने हेतु आकर्षित करते हैं। जीव विज्ञान में चार्ट आदि द्वारा शिक्षण करते समय भी आवश्यक भागों की ओर अध्यापक संकेत किया करते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि अध्यापक केवल मौखिक या इशारों से ही ध्यान केन्द्रित करे। यदि आवश्यक हो तो वे इन दोनों के मिश्रण से भी काम चला सकते हैं। उदाहरण के लिए अध्यापक कहता है कि इस मॉडल को ध्यान से देखो" तथा साथ में वह मॉडल की ओर इशारा भी करता है। यहां मौखिक तथा अशाब्दिक दोनों प्रकार से वह छात्रों का ध्यान केन्द्रित कर रहा है।

(5) मौन

अध्यापन के समय अध्यापक छात्रों से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता है। बालक प्रश्न सुनने के पश्चात् उसके उत्तर को सोचते हैं जिसमें उसे कुछ समय लगता है। यदि अध्यापक प्रश्न पूछने के तुरन्त बाद उसका उत्तर चाहता है तो यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है। प्रश्न पूछने के बाद उसे कुछ क्षण रुकना चाहिए अथवा मौन हो जाना चाहिए। इससे छात्रों को चिन्तन करने का पर्याप्त समय मिल जायेगा तथा वे तत्परता में उत्तर दे सकेंगे। इस प्रकार 'मौन' प्रश्न उत्तर प्रक्रिया में एक आवश्यक अध्यापकीय गुण है।

लगातार प्रश्न करना विद्यार्थियों को मानसिक रूप से थका देने वाला होता है। यदि प्रश्न लगातार किये जाते हैं तथा बीच-बीच में अध्यापक मौन होकर उन्हें विश्राम नहीं देता है तो वे थकान का अनुभव कर ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को प्रश्नों के मध्य कुछ क्षण विश्राम देने हेतु अध्यापक को उद्दीपन-परिवर्तन मौन होकर करना चाहिए। इस प्रकार के उद्दीपन परिवर्तन से वे अधिक समय तक अपना ध्यान विषयवस्तु पर केंद्रित कर सकेंगे।

(6) अन्त क्रिया-वाणी में विविधता

अन्त क्रियाओं का कक्षा शिक्षण में विशेष महत्त्व है ये तीन प्रकार से अर्थात् अध्यापक तथा कक्षा-समूह के मध्य, अध्यापक तथा किसी एक विद्यार्थी के बीच या विद्यार्थी विद्यार्थी के मध्य हो सकती हैं। अध्यापक-कक्षा समूह के मध्य अन्त क्रिया में अध्यापक पूरी कक्षा के समक्ष प्रश्न करता है तथा कई विद्यार्थियों से उस प्रश्न का उत्तर पूछता है। इसमें सभी विद्यार्थी सक्रिय रहते हैं।

अध्यापक—नागरिक के कुछ मौलिक अधिकार हैं। ये अधिकार उसे सविधान द्वारा दिये गये हैं। किसी एक मौलिक अधिकार का नाम बताओ ?

छात्र— समता का अधिकार।

अध्यापक—मोहन तुम क्या सोचते हो क्या और कोई मौलिक अधिकार है ?

मोहन— स्वतन्त्रता का अधिकार

अध्यापक—सोहन क्या और कोई मौलिक अधिकार तुम्हारी समझ मे है ?

सोहन— जी हा शोषण के विरुद्ध अधिकार।

कक्षा-अध्यापन के समय कुछ परिस्थितिया ऐसी बनती हैं जब अध्यापक तथा किसी एक विद्यार्थी के मध्य वार्तालाप चलता है। यह वार्तालाप छात्र द्वारा किसी प्रश्न का आशिक उत्तर देने के कारण होता है तथा अध्यापक कई पूरक प्रश्न कर विद्यार्थी से पूरा उत्तर निकलवाता है। विद्यार्थी विद्यार्थी के मध्य चलने वाले वार्तालाप म अध्यापक किसी प्रश्न के माध्यम से चर्चा प्रारम्भ करता है तथा विद्यार्थी आपस म एक के बाद दूसरे उत्तरो को स्वत ही प्रकट करते रहते हैं।

एक ही प्रकार की अन्त क्रिया विद्यार्थियो को कुछ समय बाद थकाने वाली होती है। यदि अध्यापक इनमे समय-समय पर परिवर्तन करता रहे अर्थात कभी विद्यार्थी विद्यार्थी, शिक्षक विद्यार्थी अथवा शिक्षक समूह अन्त क्रिया चलती रहे तो इस परिवर्तन से बालक म उत्साह बना रहता है।

(7) शाब्दिक-अशाब्दिक माध्यमो मे सक्रमण

कक्षागत अध्यापक छात्र अन्त क्रिया को यदि ध्यान म रक्खा जावे तो अध्यापक शाब्दिक अथवा अशाब्दिक रूप से छात्रो का पाठ्यवस्तु प्रस्तुत करता है तथा छात्र उससे अनुक्रिया करते है। शाब्दिक रूप म अध्यापक विद्यार्थियो को किसी वस्तु या घटना का वर्णन प्रस्तुत करता है। आवश्यकता पडने पर वह उन्हे चित्र, मॉडल नक्शे आदि भी दिखाता है। इस प्रकार वह छात्रो का ध्यान विषयवस्तु पर केन्द्रित करता है। यदि इस अन्त क्रिया का विश्लेषण किया जावे तो प्रमुख रूप से दो तथ्य इसमे उभर कर आते हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं

(1) शाब्दिक व्याख्या

(2) प्रदर्शन।

यदि वर्णित की दृष्टि से इनके जोडे बनाये जावें तो वे निम्न प्रकार से बनते हैं

(1) शाब्दिक व्याख्या प्रदर्शन

(2) प्रदर्शन शाब्दिक व्याख्या

(3) शाब्दिक व्याख्या

(4) प्रदर्शन।

केवल शाब्दिक व्याख्या या प्रदर्शन शिक्षण को प्रभावी बनाने में सहायक नहीं हो सकता है जैसे किसी पाठ्य-वस्तु की लगातार व्याख्या करना या केवल प्रदर्शन करना। प्रभावी शिक्षण के लिए दोनों का होना आवश्यक है।

(1) शाब्दिक-व्याख्या-प्रदर्शन

इस प्रकार के शिक्षण में पहले व्याख्या की जाती है तथा उसके उपरान्त प्रदर्शन किया जाता है। यह उस स्थिति में उचित है जबकि पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु बिलकुल नहीं हो। उदाहरण के लिए यदि आप यह बताना चाहते हैं कि नींबू अम्लीय गुण रखता है तो पहले छात्रों को यह मौखिक रूप से बताना होगा कि अम्ल में नीला लिटमस लाल हो जाता है, तदोपरान्त नींबू के रस में नीला लिटमस डालकर यह प्रयोग प्रदर्शित करना होगा। उसी प्रकार यदि अध्यापक भारत की जलवायु के बारे में छात्रों को ज्ञान देना चाहता है तो पहले उसे जलवायु को प्रभावित करने वाले घटकों को बताकर उसे भारत का मानचित्र प्रदर्शित करना होगा। मौखिक व्याख्या से वे प्रदर्शित किये जाने वाली विषय वस्तु को ठीक प्रकार से समझ सकेंगे।

(2) प्रदर्शन-शाब्दिक व्याख्या

अध्यापक के सम्मुख कई बार ऐसी परिस्थितियाँ भी आती हैं जब वह विषय वस्तु का विकास छात्रों की सहायता से करना चाहता है। ऐसी स्थिति में वह बालकों के सामने वस्तु चित्र या मॉडल आदि प्रदर्शित करता रहता है अथवा कोई प्रयोग करता रहता है तथा उससे सम्बन्धित प्रश्न पूछ पूछकर उन्हीं से पाठ्य वस्तु विकसित कराता है। इस प्रकार के शिक्षण में छात्रों का सक्रिय सहयोगी होना आवश्यक है चूँकि छात्र स्वयं किसी नियम या सिद्धान्त को खोजते हैं। अतः इस प्रकार उनके द्वारा अर्जित ज्ञान अधिक स्थायी होता है। वे इसमें रुचि अधिक लेते हैं तथा उनकी अन्तर्दृष्टि का विकास भी होता है।

अध्यापक को अपने शिक्षण को रुचिकर एवं प्रभावी बनाने के लिए दोनों प्रकारों का उपयोग करना चाहिए इससे उसकी दृष्टि में गति एवं चिन्तन करने के विभिन्न अवसर प्राप्त होते हैं। चूँकि उसे बार-बार किसी वस्तु या चार्ट के विभिन्न क्षेत्रों को देखना होता है। अतः उसमें थकानें उत्पन्न नहीं होती है।

उदाहरण

अध्यापक—पानी के विभिन्न स्रोत क्या हैं?
छात्र—पानी कुएं से प्राप्त करते हैं।
(अध्यापक श्याम पटट पर कुआ लिखता है।)
अध्यापक—पानी और कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं?
छात्र—नदी से प्राप्त कर सकते हैं।
(अध्यापक नदी शब्द श्याम-पटट पर लिखता है।)

अध्यापक—नदियो मे पानी कहा से आता है ?

छात्र—वर्षा से आता है।

अध्यापक—वर्षा साल भर नही होती है परन्तु कुछ नदिया म साल भर पानी आता है। ऐसा कसे होता ह ?

छात्र— मौन।

(अध्यापक एक पहाड का चित्र प्रस्तुत करता है जिस पर बफ जमी ह।)

अध्यापक—पहाड पर बफ पिघलने पर क्या बनगा ?

छात्र—पानी।

अध्यापक—अब बताइये पहाडो से आने वाली नदिया पानी कहा से प्राप्त करती हैं ?

छात्र—पहाड़ पर बफ़ पिघलने स प्राप्त करती हैं।

उपरोक्त उदाहरण म अध्यापक शाब्दिक व्याख्या प्रदशन तथा प्रदशन शाब्दिक व्याख्या दोना का प्रयोग कर रहा है। यदि अध्यापक चाहता तो वह सीधा ही बता सकता था कि नदियो म बफ के पिघलने से भी पानी आता है। परन्तु उसन ऐसा न कर पहले प्रदशन किया तथा छात्रो से ही इस तथ्य को निकलवाया। इस प्रकार के शिक्षण से प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है क्योकि बालक ज्ञान को स्वय खोजकर प्राप्त करत हैं। विद्यार्थियो को कभी दृश्य तथा कभी शब्द सुनने को मिलने से अन्त क्रिया मे विविधता आती ह तथा व अधिक एकाग्रचित्त रहते है।

मूल्याकन हेतु प्रपत्र—उद्दीपन म परिवतन लाने का कौशल

अध्यापक का नाम, — रोल न

विषय — कक्षा

प्रकरण

क्र म	कुशलता क घटक	1	2	3	4	5
(1)	कक्षा म घूमना या अग चालन					
(2)	हाव भाव					
(3)	वणी म उतार चढाव					
(4)	ध्यान केन्द्रित करना					
(5)	मौन					
(6)	अन्त क्रिया-वर्गों म विविधता					
(7)	शाब्दिक-अशाब्दिक माध्यमो मे सक्रमण					

निरीक्षक की टिप्पणी—

हस्ताक्षर कक्षाध्यापक

उद्दीपन परिवर्तन कौशल पर आधारित एक लघुपाठ

विषय—अंग्रेजी कक्षा—8वीं

प्रकरण – बकरी और चीता की कहानी।

अध्यापक—इस चित्र को ध्यान से देखें (चित्र की ओर इशारा करता है फिर कक्षा की ओर मुड़ कर)
आप चित्र में कौन-कौन से जानवर देख रहे हैं ?
(अध्यापक कुछ जांच करता है।)

नीनू— यह चीता है।

अध्यापक—(मुस्करा कर सिर हिलाता है) नीलू, क्या तुम चीते का वर्णन कर सकती हो ?

नीलू— हां, यह मांसाहारी जानवर है, इसके शरीर पर काली पट्टियों के निशान हैं।

अध्यापक—बहुत अच्छा नीलू (वह लौटकर चित्र तक जाता है, चीते पर उंगली रखता है और फिर कक्षा की ओर मुड़ता है) क्या आप चीते को अपने बगीचे में रखना चाहेंगे (रुक कर) अशोक।

अशोक— नहीं, मैं उसे नहीं रखना चाहूँगा।

अध्यापक—(कुछ आगे बढते हुए) क्यों नहीं अशोक ?

अशोक— वह मुझे खा जायेगा (बच्चे उसके उत्तर पर हँसते हैं।)

अध्यापक—हां, वह हमें खा जायेगा (वह इन शब्दों का डर व्यक्त करते हुए धीरे धीरे कहता है) क्या हमारे बगीचे में चीता पाया जाना सम्भव है ?
(वह 'पाया जाना' शब्द पर जोर लगा कर कहता है—अशोक तथा चीते की ओर इशारा करता है।)

रेनू— नहीं, चीता जंगल में पाया जाता है।

अध्यापक—रेनू, तुम ठीक कहती हो (वह कुछ समय रुकता है।)
(बच्चो, मैं आज आपको एक ऐसे ही चीते की कहानी कहने जा रहा हूँ जो कि जंगल में रहता था)
(वह कहानी प्रारम्भ करता है।)

साराश

उद्दीपन का अर्थ बालक के वातावरण में परिवर्तन लाये जाने से है। परिवर्तन लाने से बालक व्यवहार करता है जितना अधिक व्यवहार वह करेगा, सीखना उतना ही अधिक अनुभवाश्रित होगा। अतः यह आवश्यक है कि अध्यापन के समय अध्यापक को उद्दीपन में परिवर्तन लाने चाहिए ताकि बालक की अधिगम प्रक्रिया प्रभावशाली रूप से सम्पन्न हो सके।

प्रश्न उठता है कि अध्यापक कक्षा में उद्दीपन परिवर्तन किस प्रकार करें? यह अध्याय में उद्दीपन-परिवर्तन कौशल से सम्बन्धित है। उद्दीपन परिवर्तन कौशल की प्रमुख विधियाँ कक्षा में अध्यापक का घूमना या अंग चालन, हाव भाव प्रदर्शन, बोलते समय वाणी में उतार चढ़ाव लाना, बालकों का ध्यान किसी शिक्षण बिन्दु पर केन्द्रित करना, बीच-बीच में चुप होकर कक्षा में मौन की स्थिति उत्पन्न करना, शिक्षक शिक्षार्थियों के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया में परिवर्तन लाना आदि है।

उद्दीपन परिवर्तन से विषय-वस्तु में रोचकता बनी रहती है तथा बालकों को थकान का अनुभव नहीं हो पाता। वे विषय वस्तु पर अधिक समय तक ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। अतः शिक्षण में उद्दीपन परिवर्तन का ज्ञान एवं उपयोग करना एक शिक्षक के लिए आवश्यक है।



अध्याय 9 (x)

पुनर्बलन का कौशल
(Skill of Reinforcement)

मानव की यह प्रवृति है कि वह सुखद अनुभवों को याद रख बार-बार प्राप्त करना चाहता है जबकि दुःखानुभूति से वह दूर रहना चाहता है। शिक्षण में भी इन अनुभूतियों का उपयोग थार्नडाइक (Thorndike), स्किनर (Skinner), हल (Hull) आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया। प्रारम्भ में थार्नडाइक का यह मानना था कि दण्ड ऋणात्मक प्रेरक का कार्य करता है परन्तु बाद में उसने अपनी धारणा में परिवर्तन किया और कहा कि किसी प्रतिक्रिया में अवरोधन के अलावा दण्ड का और कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है।

स्किनर का यह मानना है कि पुनर्बलन का दैनिक जीवन की गतिविधियों में देखा जा सकता है। एक व्यक्ति यदि भूखा है तथा किसी स्थान पर "भोजनालय" लिखा देखता है तो वह उस ओर स्वतः ही आकर्षित होता है। भोजन प्राप्त करने पर उसे सन्तोष मिलता है। यदि पुनः उसे भूख लगती है तो वह उस स्थान को स्वतः ही चल देता है। मानव व्यवहार की यह विशेषता है कि वह साधारण घटनाओं से प्रभावित होता है। स्किनर ने सर्वप्रथम इसका उपयोग शिक्षण में किया। उसके अनुसार 'किसी विद्यार्थी को उसके सही होने के ज्ञान को देना उसको पुनर्बलित करना है। यदि प्राणी को भोजन देने व उसके द्वारा लीवर दबाने में चन्द सेकण्ड की देरी हो जाय तो इस देरी से भोजन का उसकी अनुक्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव में कमी आ जाती है।"[1]

बालक के लिए अनेक प्रेरक हैं जिनको प्राप्त कर वह आनन्द की अनुभूति करता है जैसे परीक्षा में अच्छे अंक या श्रेणी प्राप्त करना, अच्छी उपाधि प्राप्त करना आदि। इसी प्रकार विद्यालय या समाज द्वारा उसके कार्यों की प्रशंसा स्वरूप कोई मेडल, इनाम, पुरस्कार आदि प्रदान करना भी उस और अधिक अच्छे कार्य को करने के लिए प्रेरित करता है। यह सब बालक के अच्छे कार्य को पुनर्बलित करते हैं।

1 Skinner B F Why We Need Teaching Mechanics Harvard Education Review 31 1961 P 377 398

पुनर्बलन की परिभाषा
(Definition of Reinforcement)

सामान्य रूप म पुनर्वलन का अथ उस होन वाल परिणाम स है जो कि किसी प्राणी के व्यवहार का बल प्रदान करता है। यदि एक बालक किसी दिय हुए काय को ठीक प्रकार से कर लेता है तथा अध्यापक इस कारण उसकी प्रशसा सब छात्रो के सामन करे तो इसके परिणामस्वरूप वह बालक और अधिक काय करने का प्रेरित होगा। दूसर शब्दो म अध्यापक के शब्दो न उसके पूर्व व्यवहार को बल प्रदान किया है। अध्यापक द्वारा बालक की प्रशसा पुनर्वलन का एक उदाहरण ह। पुनर्वलन को अनेक मनोवज्ञानिका न परिभाषित किया है। इनम स कुछ निम्न प्रकार से हैं

(1) लीडहम और अनविन (Leedham and Unwin)

"विद्यार्थियो को उनकी प्रगति का ज्ञान देना उनका पुनर्बलित करता ह। इसस उनके व्यवहार को उसके द्वारा पुन प्रकट करन की सभावना बढ जाती ह।'

(2) हल (Hull)

"पुनर्वलन वह प्रक्रिया ह जिसस व्यक्ति म उत्पन्न चालक की सन्तुष्टि होती है।"

(3) हल्सी, डीसी एव एडिट (Hulse, Deese and Edeth)

'पुनर्बलन एक उत्तजक घटना है जो कि एक प्रतिक्रिया क सम्बन्ध म काल सामीप्य म घटित होती है, प्रतिक्रिया शक्ति अथवा उत्तजना प्रतिक्रिया-सम्बन्ध का स्थापित करती है।"

पुनर्बलन का शिक्षण पर प्रभाव
(Effect of Reinforcement on Teaching)

शोध कार्यों द्वारा यह तथ्य सामने आया ह कि पुनर्वलन विद्यार्थियो क शिक्षण म अनुकूल प्रभाव डालता ह। वर्मा न 1977 म एक शोध काय किया जिसम कक्षा 11 के छात्रा का पढात समय पुनर्वलित किया गया। उसन यह पाया कि पुनर्वलन म इन छात्रा की शक्षिक उपलब्धि पर अच्छा प्रभाव पडा अर्थात् इसम वृद्धि हुई। इसी प्रकार के निष्कष प्रसाद (1977), जन (1978) आदि न प्राप्त किये। इन सबसे यह प्रतीत होता है कि यदि अध्यापक अध्यापन के समय छात्रा का पुनर्वलन, किसी न किसी प्रकार से करता रहे, तो उसक द्वारा किया गया शिक्षण काय अधिक प्रभावी हो सकता है।

पुनर्वलन का प्रयोग शिक्षक अपन शिक्षण कौशल म किस प्रकार कर ? यह एक ऐसा प्रश्न ह जो कि अध्यापक क व्यक्तित्व और अध्यापन कला स सम्बन्धित ह।

यदि अध्यापक बालकों को प्रोत्साहित करता है तथा उनके द्वारा किये गये अनुकूल व्यवहारों का सही समय पुनर्बलन कर देता है तो इससे बालक के सीखने की क्रिया अधिक तीव्र गति से तथा प्रभावशाली रूप में होगी। इसके विपरीत वह यदि ऐसा नहीं कर पाता है, तो बालक को सही तथा गलत अनुक्रिया के मध्य भेद स्पष्ट नहीं हो सकेगा तथा वह शीघ्र थक जायेगा।

पुनर्बलन के कौशल का अर्थ

शिक्षण द्वारा शिक्षार्थी में व्यवहारगत परिवर्तन लाया जाता है। स्किनर ने प्राणी के व्यवहार में इच्छित परिवर्तन लाने के लिए पुनर्बलन का विवेकपूर्ण उपयोग सुझाया है। अध्यापक कक्षा में शिक्षण के दौरान छात्रों से विभिन्न क्रियाएं कराता है ज्योंही बालक किसी इच्छित व्यवहार का प्रदर्शन करता है, अध्यापक उसे शाब्दिक या अशाब्दिक स्वीकृति प्रदान कर पुनर्बलित कर देता है। इससे बालक की प्रतिक्रिया शक्ति को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिए यदि अध्यापक कक्षा में बालक द्वारा सही उत्तर देने पर उसे एक टाफी भेंट करता है तो उसके द्वारा यह भेंट बालक को पुनर्बलित करती है अथवा बालक से दुबारा प्रश्न पूछने पर सही उत्तर दिये जाने की सम्भावना बढ़ जाती है।

पुनर्बलन कई प्रकार से किया जाना सम्भव है। स्किनर का यह मानना है कि अध्यापक द्वारा छात्र की प्रशंसा करना, उत्तर को स्वीकार करना अथवा सिर हिलाने मात्र से ही बालक का पुनर्बलन सम्भव है। यह सब कार्य अध्यापक द्वारा उस समय किया जाता है जब बालक सही अनुक्रिया कर रहा हो। यह अध्यापक के अध्यापन कौशल पर निर्भर है कि किस व्यवहार को किस समय तथा किस प्रकार से पुनर्बलित किया जावे।

सीखने का अर्थ प्रतिक्रिया शक्ति को बढ़ाना है। प्रतिक्रिया शक्ति का अभिप्राय किसी प्रश्न के उत्तर को देना या हल करने से है। यदि एक विद्यार्थी से शब्द कलम, स्याही तथा ऋतु 10 बार लिखाये जावें तथा वह क्रमश 10, 3 व 0 बार सही लिखता है तो उस विद्यार्थी के लिए कलम शब्द की प्रतिक्रिया शक्ति 10, स्याही के लिए 3 तथा ऋतु के लिए यह शक्ति शून्य है। यदि अध्यापक विभिन्न उपाय कर स्याही तथा ऋतु को भी 10 बार ही सही लिखना सिखा देता है तो यह कहा जा सकता है कि इन शब्दों की प्रतिक्रिया शक्ति बढ़ी है।

स्किनर इस शक्ति की पुनर्बलन के माध्यम से बढ़ने की सम्भावना को व्यक्त करता है। उसके अनुसार 'पुनर्बलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रतिक्रिया के फौरन बाद किसी उद्दीपक को यदि उपस्थित किया जाय तो प्राणी की प्रतिक्रिया शक्ति बढ़ती है।' उसने प्रयोगों के आधार पर निम्न चार निष्कर्ष निकाले हैं—

(1) पुनर्बलन से सीखने की क्रिया शीघ्र होती है।

(2) पुनर्बलन प्रतिक्रिया के तुरन्त बाद उपस्थित उद्दीपक द्वारा होता है।

(3) प्रतिक्रिया तथा उद्दीपक के मध्य समयान्तराल बहुत कम होना चाहिये।

(4) अनुकूल के लिए पुनर्वलन का होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए एक अध्यापक एक बालक को एक छोटी सी कविता याद कराना चाहता है। वह प्रयत्न करता है, तथा ज्योंही बालक कविता को सही रूप में बोलता है, वह उसे शाबाशी देता है। यह क्रिया वह कई बार दोहराता है। बालक प्रारम्भ में कविता को सही रूप में बोलने में अधिक समय लेता है तथा, बार बार दोहराने पर उसका यह समय कम होता जाता है। यहाँ पर (1) अध्यापक द्वारा बालक को शाबाशी देना उद्दीपक का कार्य करता है, (2) बालक द्वारा कविता का बोलना प्रतिक्रिया है, (3) बालक को प्रत्येक सही उच्चारण के तुरन्त बाद शाबाशी दी जा रही तथा है (4) शाबाशी दिये जाने के कारण वह शीघ्रता से सीखता जा रहा है। अध्यापक द्वारा सही अनुक्रिया को बिना समय नष्ट किये सराहना या पुरस्कृत करना अध्यापक के पुनर्वलन के कौशल को प्रदर्शित करता है।

प्रतिक्रिया—कविता का सही उच्चारण } पुनर्वलन का कौशल
पुनर्वलन —शाबाशी }

पुनर्वलन दो प्रकार से सम्भव है—प्राथमिक तथा द्वितीयक (Secondary)। प्राथमिक पुनर्वलन में उद्दीपक की उपस्थिति में प्राणी की प्रतिक्रिया बलवती होती है जैसे किसी बालक के सही उत्तर लिखने पर उसे टाफी इनाम के रूप में देना या शाबाशी देना आदि। ये उद्दीपक प्राणी की आवश्यकता से सीधे सम्बन्धित हैं। द्वितीयक पुनर्वलन में प्राथमिक उद्दीपक के साथ साथ कोई अन्य उद्दीपक भी प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि यह उद्दीपक भी प्राथमिक उद्दीपक की तरह ही अनुक्रिया कराने में सफल हो सके। जैसे, अध्यापक यदि बालक द्वारा सही उत्तर देने पर उसको तुरन्त शाबाशी देता है तथा विद्यार्थी तालियां बजाते हैं तो तालियों की ध्वनि उसके लिए द्वितीयक उद्दीपक का कार्य करती है।

पुनर्वलन का उसके प्रभाव की दृष्टि से भी दो भागों में अर्थात् सकारात्मक पुनर्वलन (Positive Reinforcement) तथा नकारात्मक पुनर्वलन (Negative Reinforcement) के रूप में विभक्त किया जा सकता है। अध्यापक द्वारा विद्यार्थी की प्रशंसा करना, उसे पुरस्कार देना आदि सकारात्मक पुनर्वलन के कुछ उदाहरण हैं जो कि उसे और अधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देते हैं जबकि नकारात्मक पुनर्वलन के उदाहरण डाँटना, फटकारना, दण्ड देना आदि हैं। शोध कार्यों के परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि नकारात्मक पुनर्वलन बालक के अधिगम को प्रभावित नहीं करता है। इसका अधिक प्रयोग करने से उसमें कुण्ठाओं के उत्पन्न होने की सम्भावना है। अतः अध्यापक को इसका प्रयोग यथासम्भव नहीं करना चाहिये।

सही प्रतिक्रिया का सकारात्मक पुनर्बलन किया जाना चाहिये तथा त्रुटि करने पर उसमें अध्यापक द्वारा शांतिपूर्वक सुधार किया जाना चाहिये।

पुनर्बलन के उपयोग करने के सामान्य सिद्धान्त

(General Principles for Using Reinforcement)

पुनर्बलन का शिक्षण में उपयोग करने के लिए अध्यापक को पूर्ण विवेक से कार्य करना चाहिये। उसे निम्न सामान्य बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(1) उत्साहवर्धक

पुनर्बलन का सम्बन्ध बालक के उत्साहवर्धन से होता है। अध्यापक को पुनर्बलन का प्रयोग उचित समय प्रभावकारी रूप से करना चाहिये जिससे कि बालक स्वयं को सम्मानित एवं गौरवान्वित महसूस करे। इससे उसमें अतिरिक्त ऊर्जा जन्म लेगी तथा उसकी कार्य करने की शक्ति प्रबल होगी। यदि पुनर्बलन अविवेकपूर्ण तरीके से किया जाता है तो बालक पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा न ही इससे उसमें कार्य करने का उत्साह पैदा होगा। उदाहरण के लिये यदि कोई बालक किसी शब्द का सही अर्थ बताता है तथा उसके द्वारा बताये अर्थ को अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख उसकी प्रशंसा करता है तो इससे बालक का उत्साह बढ़ेगा।

(2) पुनर्बलन की विविधता

एक ही प्रकार के पुनर्बलन का उपयोग करने पर शनैः शनैः यह प्रभावहीन हो जाता है जैसे सही उत्तर देने पर बार बार अध्यापक शाबाशी दे तो उसके द्वारा दी गई शाबाशी का कालान्तर में कोई विशेष प्रभाव छात्रों पर नहीं पड़ेगा। इसलिये अध्यापक को विभिन्न प्रकार के पुनर्बलन का उपयोग कक्षा शिक्षण में करना चाहिये।

(3) पुनर्बलन की आवृत्ति

प्रश्न उठता है कि अध्यापक किस समय तथा कब पुनर्बलन का उपयोग करे। यदि अध्यापक बालक के प्रत्येक उत्तर का पुनर्बलन करता है तो इस प्रकार से किया गया पुनर्बलन प्रभावहीन हो जायगा। इसके स्थान पर केवल विशेष उत्तरों अथवा अवसरों पर यदि वह पुनर्बलन का उपयोग करता है तो इस प्रकार का पुनर्बलन बालक में उत्साह उत्पन्न करेगा।

(4) पुनर्बलन एवं प्रतिक्रिया के मध्य समय

अध्यापन के दौरान अध्यापक को बालक की सही अनुक्रिया का पुनर्बलित करना होता है। यदि प्रतिक्रिया तथा पुनर्बलन के मध्य समय अधिक होना

ह तो पुनबलन का प्रभाव कम हो जाता है। बी एफ स्किनर का मानना है कि चद सक्विण्ड क समय की देरी स पुनवलन का बालक के अधिगम पर प्रभाव कम हो जाता ह। अत अध्यापक को विना कोई समय खोये बालक की सही अनुक्रिया का तुरन्त पुनबलन करना चाहिय।

(5) पुनर्बलन की उपयुक्तता

पुनर्बलन का सीधा सम्बन्ध बालक म उत्साह पदा करने स ह। इसका उपयोग करत समय विद्यार्थी की आयु लिंग, शक्षिक स्तर आदि का ध्यान रखा जाना चाहिए। कम उम्र क विद्यार्थियो म उत्साह अधिक समय तक जागृत नहीं रहता है। अत उन्ह जल्दी-जल्दी पुनवलित किया जाना आवश्यक ह। इसी प्रकार वडे विद्यार्थी कवल प्रशसा स ही पुनवलित हो जात ह जबकि छाटे बालक वस्तुओ का प्राप्त कर आसानी स पुनवलित होत ह।

पुनर्बलन-कौशल के आवश्यक तत्त्व

(Important Elements of Skill of Reinforcement)

पुनवलन-काशल का सामान्यत शाब्दिक एव अशाब्दिक पुनवलन क रूप म बाटा जाता है। शाब्दिक पुनवलन म शब्द का उपयोग जस विद्यार्थी की प्रशसा करना, उसक उत्तर को अध्यापक द्वारा दोहराना, शाबाशी दना आदि आते ह। अध्यापक बालक क उत्तरा का पुनवलन अशाब्दिक विधि जस सिर हिलाकर उस स्वीकृति प्रदान करना, उसक उत्तर दन पर पीठ थपथपाना आदि स प्रदान कर सकता ह।

पुनबलन किय जान क कई तरीक हा सकत ह यह अध्यापक क व्यक्तित्व तथा विद्यार्थियो क स्तर क अनुसार भिन्न भिन्न हा सकत है। सिअस तथा हिलगाड[1] (Sears and Hilgard) क अनुसार 'अध्यापक क ागत अधिगम परिस्थितियो का निमाता हान क कारण दण्ड और पुरस्कार प्रदान करन वाला प्रशासक ह वह दण्ड इस रूप म प्रयुक्त करता ह जिसस कि अधिगम अधिक प्रभावशाली हो।"

शिक्षण की दृष्टि स पुनबलन अत्यधिक महत्वपूर्ण कौशल है। अध्यापक इस कौशल का निम्न छ प्रकार म सम्पादित करता ह

(1) मौखिक स्वीकृति (Positive Verbal Acceptance)

(2) हाव भाव स्वीकृति (Gestural Acceptance)

(3) समीपता (Proximity)

(4) स्पश (Contact)

---

1 Sears Paul S and Hilgard E R The Teacher s Role in the Motivation of the L arner Theories of Learning and Instruction The Sixty third Year book N S S E Part I Chicago 1964 P 200

(5) छात्र-उत्तरों का प्रयोग (Using Pupils Answers)
(6) अतिरिक्त अर्थ सकेत (Extra Meaningful Information)।

(1) मौखिक स्वीकृति (Positive Verbal Acceptance)

अध्यापन के समय विद्यार्थी पूछे गये प्रश्न का सही उत्तर देता है, अध्यापक इस सही अनुक्रिया को पुनर्बलित करने के लिए विद्यार्थी को "बहुत अच्छा" 'हाँ', 'बहुत खूब' इत्यादि कह सकता है। इसके अतिरिक्त वह बालक द्वारा दिये गये उत्तर को पुनः दोहरा सकता है। बालक का उत्साह बढ़ाने की दृष्टि से वह उस विवेकपूर्ण उत्तर' 'बहुत सोच समझकर दिया गया उत्तर' अथवा 'बुद्धिमतापूर्ण उत्तर' आदि भी कह सकता है। अध्यापक द्वारा विद्यार्थी के उत्तर की सराहना उसे संतोष प्रदान कर उसकी अनुक्रिया को पुनर्बलित करने में सहायक होती है।

(2) हाव-भाव द्वारा स्वीकृति (Gestural Acceptance)

अध्यापक द्वारा शब्दों से स्वीकृति प्रदान किये जाने के बजाय वह केवल मुस्करा देता है अथवा सिर हिलाता है तो अध्यापन का यह कार्य विद्यार्थी के उत्तरों का पुनर्बलित करने में सहायक है। अध्यापक विद्यार्थी के लिए एक आदर्श है। जब उस अध्यापक से सराहना प्राप्त होती है तो वह इसे एक उपलब्धि मानता है। कभी कभी अध्यापक कुछ इशारे जैसे हाथ का हिलाना, आदि इस प्रकार करता है जिससे उसकी स्वीकृति प्रकट होती है तथा बालक को इससे प्रोत्साहन मिलता है।

(3) समीपता

अध्यापक विद्यार्थियों की प्रगति में रुचि कई प्रकार से प्रदर्शित कर सकता है इसमें एक तरीका विद्यार्थी के सही उत्तर देने पर उसके समीप जाना अथवा उसके निकट खड़ा होना अथवा उसको समीप बुला प्रशंसा करना है। अध्यापक की इस क्रिया से बालक को प्रोत्साहन मिलता है कारण कि अध्यापक विद्यार्थी के लिए एक आदर्श व्यक्ति है उसके समीप जाने अथवा पास खड़े होने पर, उसे गौरव का अनुभव होता है जो कि उसमें पुनर्बलन किये जाने हेतु पर्याप्त है। उसके पास अध्यापक का होना उसके लिए सम्मान का विषय है।

(4) स्पर्श

स्पर्श से अभिप्राय अध्यापक द्वारा विद्यार्थी की सही अनुक्रिया करने पर उसकी पीठ थपथपाना या सिर पर हाथ फेरना विद्यार्थी का हाथ कक्षा में ऊँचा करना आदि से है। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि भारतीय समाज में लड़कियों की पीठ थपथपाना आदि पुरुष अध्यापक के लिए समाजोचित नहीं है अतः उसको ऐसा नहीं करना चाहिए।

पीठ का थपथपाना या सिर पर हाथ फेरना अध्यापक द्वारा छात्र के उत्तर की स्वीकृति को प्रदर्शित करता है। इससे उसे आत्म सताप प्राप्त होता है तथा उसका उत्साह बढ़ता है। विशेष कर छोटे बालको पर इसका प्रभाव अधिक होता है।

(5) छात्र के उत्तरो का प्रयोग

कभी-कभी कक्षा म ऐसी स्थिति आती है कि अधिकाश छात्र किसी प्रश्न का उत्तर नही दे पाते। ऐसी स्थिति म यदि कोई छात्र सही उत्तर देता है तो अध्यापक को उसके कथन का दोहराना चाहिए। इसके दो प्रभाव पडते है। प्रथम तो यह उस बालक के सही उत्तर का पुनर्बलित करता है तथा दूसरा अन्य छात्रो को प्रश्न का सही हल सुनने को द्वितीय अवसर प्राप्त होता है। यदि उत्तर देने वाला छात्र आशिक रूप से सही उत्तर दे पाता हो तो अध्यापक उस और अधिक पूछकर पुनर्बलित कर सकता है। इसके अतिरिक्त अध्यापक द्वारा छात्र के उत्तर को श्यामपट्ट पर लिखना उसके उत्साह म वृद्धि कर पुनर्बलन प्रदान करता है।

(6) अतिरिक्त अर्थ-सकेत

अधिगम प्रक्रिया म छात्र-अध्यापक अन्तःक्रिया होना स्वभाविक है। जब कभी भी कोई छात्र अधूरा उत्तर देता है उस समय अध्यापक अतिरिक्त अर्थपूर्ण सकेत देते हुए उसके उत्तर को भी मान्यता प्रदान करता है।

उदाहरण—

अध्यापक—गुब्बारे गर्मी पाकर क्यो फूटते हैं ?

अशोक—गर्मी से उनम भरी हवा फलती है।

अध्यापक—हाँ, देखो अशोक ठीक ही कहता है। हवा का यह गुण है कि गर्मी पाकर उसका आयतन बढता है। गुब्बारा कमजोर रबड का बना होता है, वह इस बढे आयतन के दबाव को सहन नही कर पाता है। अतः फूट जाता है। शाबाश अशोक !

अध्यापक छात्र द्वारा दिये गये उत्तर का स्वीकार करते हुए अतिरिक्त सूचनाए प्रदान कर रहा है। इससे छात्र के उत्तर का पुनर्बलन होता है।

पुनर्बलन-कौशल के प्रयोग मे सावधानियाँ

पुनर्बलन एक उत्तम कौशल है जिसकी सहायता से अध्यापक बालक की अधिगम अनुक्रिया को प्रभावित कर उसे स्थायी ज्ञान प्रदान कर सकता है तथा उसमे व्यवहारगत परिवर्तन ला सकता है। इस प्रकार पुनर्बलन अध्यापन प्रक्रिया मे सहायक सिद्ध हो सकता है। परन्तु इसका उपयोग परिस्थिति के अनुसार ही अध्यापक को करना चाहिए अन्यथा यह प्रभावहीन हो जायगा। अध्यापक को अग्रांकित सावधानियां बरतना आवश्यक है—

(1) सीमित उपयोग न करना

अध्यापक को पुनर्बलन प्रक्रिया का सीमित उपयोग नहीं करना चाहिए। सीमित उपयोग का अर्थ कक्षागत शिक्षण के दौरान कुछ विशेष छात्रों के उत्तरों को ही पुनर्बलित करना है। यदि अध्यापक ऐसा करता है तो इसका कुप्रभाव अन्य छात्रों पर पड़ेगा। वे इन चुने हुए छात्रों को अध्यापक का कृपा पात्र मान बैठेंगे। चूँकि अध्ययन क्रिया में सभी छात्र भाग ले रहे हैं अतः अध्यापक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वह सभी छात्रों को उत्तर देने का अवसर प्रदान करे तथा यथासम्भव अधिकांश छात्रों का पुनर्बलन करे। इससे सभी छात्र पढ़ने के लिए प्रेरित होंगे। अतः पुनर्बलन का उपयोग असीमित छात्रों पर बारी-बारी से किया जाना चाहिए।

(2) पुनर्बलन का उपयोग आवश्यकतानुसार

कभी-कभी अध्यापक छात्र के हर उत्तर के बाद शाबाश, बहुत अच्छा आदि कहना शुरू कर देते हैं। यह पुनर्बलन का अत्यधिक उपयोग है। हर उत्तर के पुनर्बलन से इसका प्रभाव धीरे धीरे घटने लगता है तथा आगे चलकर यह प्रभावहीन हो जाता है। अतः अध्यापक को कभी कभी अथवा किसी विशेष परिस्थिति में ही इसका उपयोग करना चाहिए।

(3) पुनर्बलनों के परिवर्तन में विविधता

एक ही प्रकार का पुनर्बलन कक्षा शिक्षण में नीरसता उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए अध्यापक हर बार 'शाबाश' शब्द का उपयोग ही पुनर्बलन के लिए करे, तो यह शिक्षण की दृष्टि से प्रभावी नहीं होगा। अध्यापक को यथासम्भव अलग अलग शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार उसे कभी शाब्दिक तो कभी अशाब्दिक पुनर्बलन का प्रयोग शिक्षण के समय करना चाहिए। इससे पुनर्बलन अधिक प्रभावशाली ढंग से हो सकेगा। इस प्रकार की विविधता लाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता क्योंकि इनका उपयोग परिस्थिति के अनुसार ही किया जाता है, फिर भी अध्यापक पाठ के प्रारम्भ में शाब्दिक पुनर्बलन तथा बाद में दोनों प्रकार के पुनर्बलन का उपयोग विविधता लाते हुए कर सकता है।

(4) पुनर्बलन का उपयोग स्वाभाविक रूप में

अध्यापक को पुनर्बलन का उपयोग कक्षा में इस प्रकार करना चाहिए कि यह स्वाभाविकता लिए हुए हो अर्थात् इसमें बनावटीपन जरा सा भी प्रकट न हो। स्वाभाविक पुनर्बलन का प्रभाव ही स्थायी होता है।

(5) सभी प्रकार के छात्रों का पुनर्बलन

कक्षा में कुछ छात्र ही बुद्धिमान या प्रतिभाशाली होते हैं। अध्यापक यदि कमजोर तथा औसत प्रकार के छात्रों की ओर भी ध्यान दे तथा उनके उत्तरों का

भी पुनर्बलित करे तो इससे पूरी कक्षा के विद्यार्थियों में विषय के प्रति रुचि जागृत होगी तथा सभी प्रकार के छात्र ठीक प्रकार से सीख सकेंगे। अत अध्यापक को न केवल प्रतिभावान, अपितु सभी प्रकार के छात्रों के उत्तरों को पुनर्बलित करने का प्रयास करना चाहिए।

उपरोक्त तथ्यों का ज्ञान होना एक अध्यापक के लिए आवश्यक है। यदि वह इस कौशल को ठीक प्रकार से सीख लेता है तो इसका प्रभाव उसके शिक्षण पर पड़ेगा। पुनर्वलन का आवश्यकतानुसार उपयोग कर वह अपने अध्ययन को अधिक प्रभावी बना सकेगा।

मूल्यांकन प्रपत्र—

नाम अध्यापक रोल न

विषय कक्षा कालांश

प्रकरण

क्र स	कौशल के घटक	1	2	3	4	5
(1)	मौखिक स्वीकृति					
(2)	हाव भाव स्वीकृति					
(3)	समीपता					
(4)	स्पर्श					
(5)	छात्र उत्तरों का प्रयोग					
(6)	अतिरिक्त अव संकेत					
(7)	पुनर्वलन की उपयुक्तता					
(8)	पुनर्वलन की आवृत्ति					

निरीक्षक की टिप्पणी—

हस्ताक्षर निरीक्षक

पुनर्वलन कौशल पर आधारित एक लघुपाठ—

विषय भूगोल कक्षा 7

प्रकरण नहरें

अध्यापक—नहर किसे कहते है ?

मीरा— इसमें नदी की तरह पानी बहता है।

अध्यापक—ठीक है मीरा, नहर में नदी की तरह पानी बहता है। परन्तु इनमें क्या अन्तर है ?

राम— नदी प्राकृतिक होती है जबकि नहर का निर्माण मनुष्य के द्वारा किया जाता है।

अध्यापक—मनुष्य के द्वारा निर्मित (अध्यापक जोर देते हुए धीरे धीरे शब्दों को दोहराता है) हम उस व्यक्ति को जो कि नहर निर्मित करता है किस नाम से पुकारेंगे ?

अशोक— नहर बनाने वाला।

अध्यापक—हां, अशोक उनको नहर बनाने वाले भी कह सकते हैं। परन्तु इनके लिए एक विशेष शब्द का प्रयोग करते हैं। यह शब्द क्या है ?

नीता— नहर का अभियन्ता।

अध्यापक—बहुत अच्छा नीता यदि तुम नहर के अभियन्ता हो तथा तुम्हें नहर बनाने का काम सौंपा जाय तो कार्य का प्रारम्भ करने हेतु सर्वप्रथम क्या करोगी ?

नीता— मैं सबसे पहले भूमि का सर्वे करूंगी।

अध्यापक—ऊं ऊं क्यों ?

नीता— नहर का निर्माण समतल या लगभग समतल भूमि पर किया जाता है।

अध्यापक—बच्चो बताओ, नीता नहर निर्माण के लिए समतल भूमि का होना आवश्यक क्यों समझती है ?
(नीता की ओर देखते हुए)

ऊषा— पहाड़ या ऊंचे स्थल पर पानी ले जाना कठिन होगा।

अध्यापक—अच्छी कल्पना है ऊषा, अब तुम ही बताओ कि यदि तुम अभियन्ता हो तथा रास्ते में पहाड़ी आ जाए तो नहर बनाने के लिए क्या करोगी ? (उत्साह बढ़ाने को मुस्कराता है)

ऊषा— या तो मैं पहाड़ी के किनारे किनारे नहर बनाऊंगी अथवा सुरंग बनाऊंगी।

अध्यापक—बहुत ठीक, इसीलिए नीता ने प्रारम्भ में ही कहा था कि नहर बनाने के लिए सर्वे किया जाना जरूरी है। (नीता के उत्तर का पुनर्बलन)।
(पाठ लगातार)

सारांश

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि ऋणात्मक प्रेरक शिक्षण के लिए उपयुक्त नहीं है जबकि धनात्मक प्रेरक प्रभावी एवं उपयोगी है। अध्यापक को इनका उपयोग शिक्षण में इस प्रकार से करना चाहिए कि बालक और अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित हों। शिक्षण में पुनर्बलन कौशल का यही अर्थ है। अध्यापक शिक्षण के समय

छात्रा स विभिन्न अनुक्रियाए कराता है। ज्योही बालक किसी अपेक्षित व्यवहार का प्रदशन करे, अध्यापक उसे शाब्दिक अथवा अशाब्दिक स्वीकृति प्रदान कर उसकी प्रतिक्रिया शक्ति को बढाता है। मनाविज्ञान की भाषा म इसे पुनर्बलन कहत ह।

अध्यापक बालक की सही अनुक्रिया का पुनर्बलन अनक तरीका स कर सकता है। इनका दो प्रकार अर्थात शाब्दिक या अशाब्दिक पुनर्बलन म बाटा जा सकता है। पुनर्बलन के तरीके हैं—मौखिक स्वीकृति, हाव भाव से स्वीकृति, समीपता स्पश, छात्र क उत्तरा का उपयोग तथा अतिरिक्त अथ सकेत देना आदि।

अध्यापक को पुनर्बलन का उपयोग सीमित मात्रा म इस प्रकार करना चाहिए कि सभी स्तर के बालक इससे लाभान्वित हो सकें। यह काय उसके विवक तथा कौशल के उपयोग म विविधता लाने की कला पर निभर करता ह। एक सफल अध्यापक बनने के लिए उसे इस कौशल को सीखना आवश्यक है।

☐

अध्याय 10

मापन एव मूल्याकन

(Measurement and Evaluation)

मूल्याकन का प्रत्यय कोई नवीन प्रत्यय नही है, यह प्राचीन काल मे ही चला आ रहा है। गुरुकुलो मे शिष्या को दीक्षा उनका पूण मूल्याकन किये जाने के उपरान्त ही दी जाती थी। आज के युग म भौतिक प्रगतिया के कारण, इसका महत्व और भी अधिक बढ गया है तथा इस प्रक्रिया की जीवन एव दशन के प्रत्येक क्षेत्र मे आवश्यकता रहती है। शिक्षा के ही क्षेत्र को लें अक्सर मूल्याकन म सम्बधित प्रश्न सुनने को मिलते हैं जसे—

राजीव के विज्ञान म कसे अक आय ?
भौतिक विज्ञान की कौन सी किताब अच्छी ह ?
राधेश्याम जी गणित कैसी पढाते ह ?
अग्रेजी माध्यम की कौन सी स्कूल सबसे बढिया है ?

ये सभी प्रश्न किसी वस्तु व्यक्ति अथवा सस्था क मूल्याकन मे जुडे ह। मूल्याकन से हम इस नतीजे पर पहुँचते हे कि कौन सी चीज अच्छी है अथवा बुरी। इस प्रकार दनिक जीवन मे व्यक्ति विभिन्न प्रकार से मूल्याकन करता रहता है। रेमस एव गेज[1] (Remmers & Gage) ने इस सन्दभ मे ठीक ही कहा है मूल्याकन म यह विचार अन्तर्निहित है कि व्यक्ति अथवा समाज अथवा दोना की दृष्टि मे क्या अच्छा अथवा वाछनीय है।'

शिक्षा क क्षेत्र म मूल्याकन का विशेष महत्त्व है। शिक्षण के माध्यम स अध्यापक बालका म व्यवहारगत परिवतन लाना चाहता है य व्यवहारगत परिवतन व्यक्तित्व के तीना पक्ष–ज्ञानात्मक पक्ष, भावात्मक पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष म होते है। परिवतन किस सीमा तक हो पाये तथा उनका स्तर क्या रहा इस सम्बध म निणय मूल्याकन द्वारा ही लिया जा सकता है। इसक अभाव म शिक्षक को उसके द्वारा किये गय शक्षिक प्रयत्ना की प्रभावशीलता ज्ञात न हो सकगी तथा वह शिक्षण

1 Remmers and Gage Educational Measurement and Evaluation New York Harper and Brothers 1955

की दिशा निर्धारित न कर सकेगा। अत यह कहा जा सकता है कि मूल्याकन शिक्षण प्रक्रिया का एक प्रमुख अग है। इसका उद्देश्य केवल छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि के बारे म जानकारी करना ही नही, अपितु इसके अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया म सुधार लाना भी है। जे डब्ल्यू राइटस्टोन (J W Wrightstone) ने इस सदभ म ठीक ही कहा है 'मूल्याकन एक नवीन तकनीकी पद है जिसका उपयोग परम्परागत परीक्षा तथा जाच की अपेक्षा अधिक व्यापक रूप म किया जाता है।"

मूल्याकन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारत के सदर्भ मे
(Historical Prospective of Evaluation Movement in India)

भारत म बाह्य परीक्षा के रूप म मूल्याकन की शुरुआत अग्रेजो के शासन म हुई। चूंकि इन परीक्षाओ का उद्देश्य अग्रेजी शासन को चलाने के लिए भारतीय कमचारी व अफसरो का चुनाव करना था, इन परीक्षाओ में अग्रेजी विषय पर अधिक बल दिया गया। सन् 1832 म भारतीयो का आई सी एस मे चयन करने हेतु प्रथम लिखित परीक्षा लन्दन विश्वविद्यालय मे ली गई। इस प्रकार अग्रेजी शासन काल में शिक्षा, परीक्षा और नौकरी मे सम्बन्ध स्थापित हुआ।

शिक्षण के क्षेत्र में सन् 1857 में कलकत्ता, बम्बई व मद्रास विश्वविद्यालयो में प्रवश परीक्षा (Entrance Examination) प्रारम्भ की ताकि विश्वविद्यालय म प्रमाणित योग्यता के विद्यार्थी ही प्रवेश पा सके। सन् 1865 व 1872 में क्रमश मिडिल क्लास एग्लो वर्नाक्यूलर परीक्षा तथा मिडिल क्लास वर्नाक्यूलर परीक्षाए प्रारम्भ हुई। 1892 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा पहली बार स्कूल फाइनल परीक्षा निम्नाकित विषयो म प्रारम्भ की गई (1) अग्रेजी दो प्रश्न पत्र, (2) द्वितीय भाषा—दो प्रश्न पत्र, (3) गणित—दो प्रश्न-पत्र, (4) इतिहास (5) भूगोल, (6) रसायन विज्ञान व (7) चित्रकला।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पिछली सदी में भारत में विद्यालय स्तर की बाह्य एव सार्वजनिक परीक्षा का एक विधिवत् व सुस्पष्ट स्वरूप उभर कर शिक्षा के क्षेत्र में आया। बीसवी सदी मे परीक्षा सुधार आन्दोलन के अन्तगत 1902 में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने बाह्य परीक्षाओ की सख्या घटाने पर बल दिया तथा माध्यमिक विद्यालयो की परीक्षाओ पर विश्वविद्यालयो के प्रभाव को कम करने का सुझाव दिया। परिणामस्वरूप 1907 से शिक्षा विभाग द्वारा "स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट परीक्षा" प्रारम्भ हुई। 1939 मे उत्तर प्रदेश की शिक्षा म सुधार के लिए आचाय नरेन्द्र देव समिति ने पाठ्य-पत्रो के निर्माण व परीक्षण-विधियो पर काय करने के लिए एक सस्था का गठन करने का सुझाव दिया। 1944 मे सार्जेंट समिति ने परीक्षा को अधिकाधिक विश्वसनीय बनाने का सुझाव दिया।

स्वतन्त्रता के बाद मूल्यांकन पद्धति में सुधार

सन् 1949 में डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग ने लिखा है "यदि हम विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार के लिए केवल एक सुझाव देने को कहा जाय तो वह है इसकी परीक्षा पद्धति में सुधार।" अतः इस आयोग ने सुझाव दिया कि परीक्षाओं को वैध, विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ बनाने की शीघ्रातिशीघ्र आवश्यकता है।

सन् 1953 में डा. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा पर परीक्षा के प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखा था कि 'परीक्षा के फालतू भार ने अध्यापक की पहल को कुचल दिया तथा घिसी पिटी, यन्त्रवत जीवनहीन अध्यापन विधियों को बढ़ावा दिया है।"

अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने 1955 में एक समिति का गठन किया जिसने निम्न बातों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

(1) प्रश्नों में सुधार।
(2) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को लागू करना।
(3) प्रयोगात्मक परीक्षा।
(4) आवधिक जाँचें।
(5) परीक्षाओं की आवृत्ति।
(6) परीक्षा संचालन।
(7) प्रमाणिक उपलब्धि परीक्षणों का निर्माण।

सन 1957 का वर्ष मूल्यांकन में सुधार लाने हेतु महत्त्वपूर्ण वर्ष है। शिकागो विश्वविद्यालय के परीक्षकों के बोर्ड के अध्यक्ष डा. ब्लूम ने यहाँ की शैक्षिक समस्याओं का हल करने हेतु गहन अध्ययन किया। इन्होंने भारत के दस अधिकारियों को संयुक्त राज्य अमरिका में मूल्यांकन का प्रशिक्षण दिया। इस दल ने भारत लौट कर निम्नांकित कार्य किए

(1) मूल्यांकन पर 15 पुस्तकें प्रकाशित कीं यथा मूल्यांकन की संकल्पना परीक्षा परिणामों का विश्लेषण विद्यालय के विभिन्न विषयों में मूल्यांकन आदि की प्रशिक्षण गोष्ठियाँ आयोजित कीं।
(2) अध्यापकों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम।
(3) परीक्षण सामग्री तैयार करना।
(4) अध्ययन एवं शोध।
(5) राज्यों का सहयोग।

सन 1966 में कोठारी शिक्षा आयोग ने परीक्षाओं में सुधार लाने के लिए महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नांकित रूप में दिये

(1) परीक्षाओं को नए ढंग से आयोजित कर वैध और विश्वसनीय बनाना।

(2) आन्तरिक मूल्यांकन का व्यापक उपयोग।

(3) बाह्य सार्वजनिक परीक्षाओं की संख्या कम करना।

(4) प्रश्न-पत्र निर्माता और परीक्षकों की तकनीकी क्षमता में वृद्धि करना।

सन 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मूल्यांकन को निरन्तर और व्यापक (Continuous and Comprehensive) बनाने पर बल दिया गया है। इस नीति के अन्तर्गत निम्न सुझाव दिये गये

(1) मूल्यांकन लक्ष्य-आधारित हो।

(2) मूल्यांकन का स्वरूप व्यापक हो अर्थात् इसके अन्तर्गत निम्नांकित मूल्यांकन योग्य पहलुओं को शैक्षिक प्रयोगों की सीमा में लाया जायेगा

(क) व्यक्तित्व एवं सामाजिक गुण।

(ख) रुचियाँ।

(ग) वांछनीय मनोवृत्तियाँ।

(घ) स्वास्थ्य का स्तर।

(ङ) पाठ्येतर कार्यक्रमों में निपुणता।

(3) मूल्यांकन निरन्तर किया जावे। सामयिक परख, गृह कार्य का मूल्यांकन तथा अर्द्ध वार्षिक एवं वार्षिक परीक्षा ली जावे।

(4) शिक्षण एवं परीक्षा में इकाई विधि तथा, इकाई परख का व्यवस्थित उपयोग।

(5) प्रश्न पत्र निर्माण में अध्यापकों को गहन प्रशिक्षण।

ऐतिहासिक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि छात्र छात्राओं के समग्र व्यापक और अनवरत मूल्यांकन के लिए समय समय पर प्रयास होते रहे हैं। राजस्थान में राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने इस दिशा में अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं। 1963 में तत्कालीन अध्यक्ष श्री लक्ष्मी लाल जोशी के नेतृत्व में परीक्षा सुधार की पंचवर्षीय योजना बनी जिसके अन्तर्गत नये प्रकार के प्रश्न पत्र लागू करना, प्रश्न पत्र निर्माताओं का प्रशिक्षण मूल्यांकन सामग्री का निर्माण आदि कार्य किये जाने के सुझाव दिये गये। बोर्ड इन्हें कुशलतापूर्वक कर रहा है। इसके अतिरिक्त राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर (S I E R T Udaipur) में मूल्यांकन प्रभाग अलग से मूल्यांकन में सुधार लाने के लिए प्रयास कर रहा है।

मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषा

मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है। निर्णय लेते समय गुण अवगुण आदि का व्यक्ति अध्ययन करता है। उदाहरण के लिए एक डॉक्टर दवाई का मूल्यांकन उसके मरीजों पर प्रभाव को देखकर करता है जबकि एक मूर्तिकार मूर्ति का मूल्यांकन उसमें निहित कला आदि को आधार बनाकर करता है। शिक्षा का सम्बन्ध

वालक के सर्वा गीण विकास से है जो कि शैक्षिक उद्देश्या को भली भांति प्राप्त कर किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा की दृष्टि से मूल्यांकन शक्षिक उद्देश्यो पर आधारित रहता है।

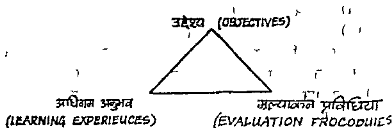
राष्ट्रीय शक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण संस्थान नई दिल्ली के "कन्सेप्ट आफ इवेल्यूएशन" के अनुसार 'मूल्याकन प्रक्रिया में निम्नांकित बातो बारे मे निणय किया जाता है

(अ) शिक्षण उद्देश्या की प्राप्ति किस सीमा तक हुई ?

(ब) शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने का तरीका कितना प्रभावी रहा ?

(स) कक्षागत अधिगम अनुभव कितने प्रभावी उत्पादक रहे ?

उपरोक्त तीनो बिन्दु मिलकर मूल्यांकन चक्र को पूरा करते हैं। इस निम्नांकित चित्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है



उपरोक्त चित्र से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षण-उद्देश्य प्राप्त करना। का अन्तिम उद्देश्य है जिसके लिए बालकों को विभिन्न अधिगम अनुभव, साधन भी कह सकते है दिए जाते है। ये उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुए साधन इन्हे प्राप्त करने म कहा तक सफल रहे, इस साक्षी (Evidence) के मूल्याकन किया जाता है। इस प्रकार ये तीनो आपस म जुडे हुए हैं। यह जा सकता है कि मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यवहार वर्ती विषयक साक्षियों का सकलन किया जाता है तथा इसमे परिवर्तनो ... तथा स्तर के सम्बन्ध म निणय दिया जाता है।

उदाहरण के लिए कक्षा 6 के छात्रा का 'सजीव एव निर्जीव म ... (उद्देश्य) सिखाना चाहता है। इसके लिए बालक को आगमन विधि से विभिन्न उदाहरण देकर अध्यापक अन्तर स्पष्ट करता है (अधिगम अनुभव) बालक सजीव व निर्जीव के मध्य अन्तर किस सीमा तक समझ पाये, यह परीक्षा (मूल्यांकन) ... चाहे मौखिक हो या लिखित, अध्यापक पता कर सकता है। ... बातें वह ... पाया उन्हे पुन समझा कर प्रयत्न करता है।

उपरोक्त विचार विमर्श के बाद मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट करने के सम्बन्ध में तीन प्रमुख बिन्दु उभर कर आते हैं—

(क) मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया (Continuous Process) है।

(ख) इस प्रक्रिया द्वारा उन साक्षियों (Evidence) का संकलन किया जाता है जो यह प्रमाणित करती है कि व्यवहार में वांछित परिवर्तन हुए या नहीं।

(ग) मूल्यांकन का प्रयोजन साक्षियों के संकलन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य यह निर्णय करना भी है कि परिवर्तन किस सीमा तक हुआ है ? उन परिवर्तनों की दिशा तथा स्तर क्या है ?

इस प्रकार मूल्यांकन का अर्थ मूल्य निर्धारण से है अर्थात् सीखने के अनुभवों से बालक में किस सीमा तक अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन हुए, इसका "मूल्यांकन कर निर्णय देना है।

मूल्यांकन की परिभाषा

मूल्यांकन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है—

(1) टारगेर्सन तथा एडम्स[1] (Torgerson and Adams)

'किसी प्रक्रिया या वस्तु का मूल्य निश्चित करना मूल्यांकन है। शिक्षा में मूल्यांकन से अभिप्राय शिक्षण प्रक्रिया अथवा सीखने की क्रियाओं से उत्पन्न अनुभवों की उपयोगिता के बारे में निर्णय देना है।"

(2) क्विलेन तथा हन्ना[2] (Quillen and Hanna)

"मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जो विद्यालय द्वारा विद्यार्थी को दिये गये अधिगम अनुभवों के फलस्वरूप हुए व्यवहारगत परिवर्तनों के सम्बन्ध में साक्षियों का संकलन कर उसकी व्याख्या करती है।'

(3) ई बी वेस्ले (E B Wesley)

'मूल्यांकन एक समावेशित धारणा है जो किये गये प्रयत्न के स्तर, मूल्य एवं प्रभावशीलता के बारे में संकेत प्रदान करती है। यह वस्तुनिष्ठ प्रमाण तथा आत्मनिष्ठ निरीक्षण का सम्मिश्रण है।'

(4) डाडेकर[3] (Dandekar)

मूल्यांकन हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक किन उद्देश्यों को प्राप्त किया है।"

---

1 Torgerson T L and Adam G S Measurement and Evaluation for the Elementary Education New York John Willey & Sons 1955

2 Quillen and Hanna Education for Social Competence Chicago Scoth Freshman Co 1948 P 343

3 Dandekar, Evaluation in Schools Poona Shri Vidya Prakashan 1971

मापन तथा मूल्यांकन में अन्तर

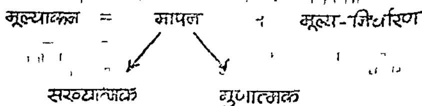
(Difference between Evaluation and Measurement)

मापन क्रिया में भी व्यवहारगत परिवर्तन से सम्बन्धित साक्षियों का संकलन किया जाता है, ऐसी स्थिति में मापन तथा मूल्यांकन में अक्सर लोग अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। इससे पूर्व कि इनमें अन्तर स्पष्ट किया जावे, मापन के विचार को भलीभांति समझ लेना उपयुक्त होगा।

मापन किसी वस्तु का संख्यात्मक अनुमान है। जैसे मोहन का वजन 40 किलो है, सोहन की बुद्धिलब्धि 120 है, आदि। दूसरे शब्दों में मापन से यह पता चल सकता है कि कोई वस्तु या गुण कितना है (How much)। शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक बालक के गुणों का मापन करता रहता है।

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि शिक्षण के फलस्वरूप बालक में जो व्यवहारगत परिवर्तन होते हैं, उनका मापन किया जा सकता है। इस संबंध में थार्नडाइक और मैकाल (E L Thorndike and William A Mc Call) ने कहा है—"कोई भी वस्तु या गुण जो कहीं भी विद्यमान है, निश्चित परिमाण में होता है और जिस वस्तु या गुण का परिमाण होता है उसका मापन किया जा सकता है।" मापन द्वारा किसी वस्तु या गुण का प्रतीक निर्धारित किया जाता है ताकि परिमाण का सही बोध हो सके। जैसे परीक्षा में प्राप्तांक बालक की उस विषय में उपलब्धि का सूचक है।

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मापन वह क्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न योग्यताओं अथवा गुणों के परिमाण के सम्बन्ध में बताया जाता है। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं होता। शिक्षक को यह भी देखना होता है कि मापन द्वारा प्राप्त अंकों का स्तर क्या है? अर्थात् प्राप्तांक कितने अच्छे है (How good)। इन प्रतीकों के संबंध में मूल्य निर्धारित करना मूल्यांकन के अन्तर्गत आता है। इससे यह आशय निकलता है कि मापन मूल्यांकन का ही भाग है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन में मापन निहित है। सूत्र द्वारा इस संबंध को निम्नानुसार प्रदर्शित किया जा सकता है—



मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी की उपलब्धियों के सम्बन्ध में निर्णय दिया जाता है। निर्णय देने के लिए हम उपलब्धि का स्तर ज्ञात होना आवश्यक है। उपलब्धि का स्तर मापन प्रक्रिया द्वारा ज्ञात किया जाता है।

मापन की परिभाषा

(Definition of Measurement)

मापन के बारे में विभिन्न लेखकों के मत निम्नांकित हैं—

(1) ई बी वेस्ले[1] (E B Wesley)

"मापन मूल्यांकन का वह भाग है जो प्रतिशत, मात्रा, अंकों, मध्यांक तथा माध्य द्वारा व्यक्त किया जाता है।"

(2) समरफील्ड[2] (Summerfield)

सक्षेप में मापन द्वारा परिमाणात्मक निर्णय लिये जाते है, जब कि मूल्यांकन में गुणात्मक निर्णय लिए जाते हैं।"

(3) राइट स्टोन (Wright Stone)

"मापन में पाठ्य वस्तु या विशेष कुशलताओं और योग्यताओं की उपलब्धि पर बल दिया जाता है जबकि मूल्यांकन में व्यक्तित्व सम्बन्धी परिवर्तनों पर बल प्रदान किया जाता है।"

(4) रेमर्स, गेज और रूमल[3] (Remmers, Gage and Rummel)

"मापन से यह पता चलता है कि कोई वस्तु कितनी है जबकि मूल्यांकन यह बताता है कि वस्तु कितनी अच्छी है।"

उक्त विवेचन के आधार पर मापन तथा मूल्यांकन का अन्तर सक्षेप में निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

मापन	मूल्यांकन
1 मापन द्वारा किसी योग्यता अथवा गुण की मात्रा ज्ञात की जाती है, यह सख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों होती है।	1 मूल्यांकन द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि किसी योग्यता अथवा गुण की सख्यात्मक तथा गुणात्मक मात्रा उपयुक्त है या नहीं।

1 Wesley E B Teaching Social Studies in Elementary School P 402
2 Summerfield R E The High School Journal Vol 48 No 7 April 65 P 434 38
3 Remmers Gage and Rummel A Practical Introduction to Measurement and Evaluation ' Delhi Universal Book Stall 1965

मापन तथा मूल्यांकन में अन्तर

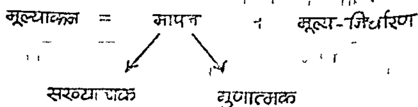
(Difference between Evaluation and Measurement)

मापन क्रिया में भी व्यवहारगत परिवर्तन से सम्बन्धित साक्षियों का संकलन किया जाता है, ऐसी स्थिति में मापन तथा मूल्यांकन में अक्सर लोग अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। इससे पूर्व कि इनमें अन्तर स्पष्ट किया जाये, मापन के विचार को भलीभांति समझ लेना उपयुक्त होगा।

मापन किसी वस्तु का संख्यात्मक अनुमान है। जैसे मोहन का वजन 40 किलो है, सोहन की बुद्धिलब्धि 120 है, आदि। दूसरे शब्दों में मापन से यह पता चल सकता है कि कोई वस्तु या गुण कितना है (How much)। शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक बालक के गुणों का मापन करता रहता है।

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि शिक्षण के फलस्वरूप बालक में जो व्यवहारगत परिवर्तन होते हैं, उनका मापन किया जा सकता है। इस संबंध में थार्नडाइक और मैकाल (E L Thorndike and William A Mc Call) ने कहा है—"कोई भी वस्तु या गुण जो कहीं भी विद्यमान है, निश्चित परिमाण में होता है और जिस वस्तु या गुण का परिमाण होता है उसका मापन किया जा सकता है।" मापन द्वारा किसी वस्तु या गुण का प्रतीक निर्धारित किया जाता है ताकि परिमाण का सही बोध हो सके। जैसे परीक्षा में प्राप्तांक बालक की उस विषय में उपलब्धि का सूचक है।

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मापन वह क्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न योग्यताओं अथवा गुणों के परिमाण के सम्बन्ध में बताया जाता है। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं होता। शिक्षक को यह भी देखना होता है कि मापन द्वारा प्राप्त अंकों का स्तर क्या है? अर्थात् प्राप्तांक कितने अच्छे हैं (How good)। इन प्रतीकों के संबंध में मूल्य निर्धारित करना मूल्यांकन के अन्तर्गत आता है। इससे यह आशय निकलता है कि मापन मूल्यांकन का ही भाग है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन में मापन निहित है। सूत्र द्वारा इस संबंध को निम्नानुसार प्रदर्शित किया जा सकता है—



मूल्याकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी की उपलब्धियो के सम्बन्ध मे निर्णय दिया जाता है। निर्णय देने के लिए हम उपलब्धि का स्तर ज्ञात होना आवश्यक है। उपलब्धि का स्तर मापन प्रक्रिया द्वारा ज्ञात किया जाता है।

मापन की परिभाषा

(Definition of Measurement)

मापन के बारे मे विभिन्न लेखको के मत निम्नांकित है—

(1) ई बी वेस्ले[1] (E B Wesley)

'मापन मूल्यांकन का वह भाग है जो प्रतिशत, मात्रा, अंको मध्यांक तथा माध्य द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(2) समरफील्ड[2] (Summerfield)

सक्षेप मे मापन द्वारा परिमाणात्मक निर्णय लिये जाते है, जब कि मूल्याकन मे गुणात्मक निर्णय लिए जाते हैं।

(3) राइट स्टोन (Wright Stone)

"मापन मे पाठ्य वस्तु या विशेष कुशलताओ और योग्यताओ की उपलब्धि पर बल दिया जाता है जबकि मूल्याकन मे व्यक्तित्व सम्बन्धी परिवर्तनो पर बल प्रदान किया जाता है।"

(4) रेमर्स, गेज और रूमल[3] (Remmers, Gage and Rummel)

मापन से यह पता चलता है कि कोई वस्तु कितनी है जबकि मूल्यांकन यह बताता है कि वस्तु कितनी अच्छी है।'

उक्त विवेचन के आधार पर मापन तथा मूल्याकन का अन्तर सक्षेप मे निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

मापन	मूल्याकन
1 मापन द्वारा किसी योग्यता अथवा गुण की मात्रा ज्ञात की जाती है यह सख्यात्मक तथा गुणात्मक दानो होती है।	1 मूल्यांकन द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि किसी योग्यता अथवा गुण की सख्यात्मक तथा गुणात्मक मात्रा उपयुक्त है या नही।

1 Wesley E B Teaching Social Studies in Elementary School P 402

2 Summerfield R E The High School Journal Vol 48 No 7 April 65 P 434 38

3 Remmers Gage and Rummel A Practical Introduction to Measurement and Evaluation Delhi Universal Book Stall 1965

मापन	मूल्याकन
2 मापन का सम्बध इस प्रकार का उत्तर ज्ञात करने स है कि "कितनी मात्रा म है ?"	2 मूल्याकन का सम्बध इस प्रश्न का उत्तर देने से है कि "कितना अच्छा है ?"
3 बिना मापन के मूल्याकन का काय वज्ञानिक नही हो सकता ।	3 मूल्याकन काय को वज्ञानिक ढग स करने के लिए मापन का सहारा लना अत्यत आवश्यक है परन्तु मापन कर लेना ही पर्याप्त नही है । मापन का शक्षणिक लाभ मूल्याकन द्वारा ही सम्भव है ।
4 मापन एकागी है ।	4 मूल्याकन बहुमुखी है ।
5 मापन उद्देश्य निरपेक्ष होता है ।	5 मूल्याकन उद्देश्य सापेक्ष होता है ।

उपरोक्त तुलना स यह स्पष्ट होता हे कि मापन एक साधन ह जिसस छात्र को प्रगति को प्राप्ताको या ग्रेडो म बताया जा सकता है । यह मात्र सख्यात्मक प्रदशन ह । परन्तु मूल्याकन म छात्र की प्रगति की जाच भी की जाती है कि उसने कितनी प्रगति की या उसकी प्रगति कितनी अच्छी है। इस प्रकार मूल्याकन म मापन तथा गुणात्मक विश्लेषण दोनो सम्मिलित है ।

परीक्षा और मूल्याकन मे अन्तर

(Difference between Evaluation and Examination)

परीक्षा शब्द इतना प्रचलित हो गया है कि यह शब्द मूल्याकन का पर्यायवाची बन गया ह । जबकि दोनो शब्द भिन्न भिन्न अर्थ रखत ह । इन दोनो क मध्य अन्तर का अग्राकित तालिका स स्पष्ट किया गया है—

क्रम	बिन्दु	परीक्षा	मूल्यांकन
(1)	आवृत्ति की दृष्टि से	परीक्षा सत्र में निश्चित समय के पश्चात् ही आयोजित की जाती है जैसे अर्द्ध-वार्षिक परीक्षा सत्र के मध्य में तथा वार्षिक परीक्षा सत्र के अन्त में, पूरक परीक्षा अगले सत्र के प्रारम्भ में।	मूल्यांकन एक सतत् एवं क्रमिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया सत्र पर्यन्त अनवरत रूप से चलती रहती है वैसे ही मूल्यांकन भी अनवरत रूप से होते रहना चाहिए।
(2)	अन्तर्वस्तु की दृष्टि से	परीक्षा शिक्षार्थी की मात्र अकादमिक उपलब्धियों के मान निर्धारण तक ही सीमित होती है।	मूल्यांकन का सम्बन्ध उन सभी उपलब्धियों से होता है जो व्यवहार के तीनों पक्षों ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक में होता है।
(3)	विधियों की दृष्टि से	परीक्षाओं में मुख्यतः तीन विधियाँ प्रचलित हैं— (क) लिखित प्रश्न पत्र पर आधारित लिखित परीक्षाएँ (ख) मौखिक परीक्षा (ग) प्रायोगिक परीक्षा	मूल्यांकन में विविध विधियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या की जाती है।

क्रम	बिन्दु	परीक्षा	मूल्यांकन
(4)	उपयोग की दृष्टि से	परीक्षा का उपयोग क्रमोन्नति तथा वर्गीकरण आदि के लिए किया जाता है। इनका उपयोग बहुत सीमित है।	उनका उपयोग शैक्षणिक कमियों का निदान करने, विद्यार्थियों का मार्ग-दर्शन करने तथा भविष्य का मार्ग निश्चित करने के लिए किया जाता है।
(5)	शिक्षण-सुधार की दृष्टि से	परीक्षाएँ शिक्षण प्रक्रिया को अति संकुचित बना देती हैं। अध्यापक तथा विद्यार्थी इनके कुप्रभाव में इतने फँस जाते हैं कि शिक्षण परीक्षा-अभिस्थापित हो जाता है। परीक्षा पास करना ही एक मात्र उद्देश्य बन जाता है।	मूल्यांकन की कल्पना इतनी व्यापक एवं विस्तृत है कि शिक्षण प्रक्रिया परीक्षा अभिस्थापित नहीं बनती। वास्तव में मूल्यांकन प्रक्रिया शिक्षण प्रक्रिया को उद्देश्य अभिस्थापित करने में सहायक होती है।

मूल्यांकन की विशेषतायें
(Characteristics of Evaluation)

मूल्यांकन की विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) व्यापक प्रक्रिया (Comprehensive Process)

मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक है यह परीक्षा की तरह मात्र ज्ञानात्मक पक्ष से ही सम्बन्धित नहीं है। व्यवहार की दृष्टि से देखा जाय तो मूल्यांकन द्वारा बालक के तीनों पक्षों अर्थात् ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक में हुए परिवर्तनों का मूल्य निर्धारण किया जाता है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन द्वारा बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक तथा संवेगात्मक पक्षों में होने वाले व्यवहारगत परिवर्तनों की जाँच की जाती है। इस प्रकार मूल्यांकन विद्यार्थी के व्यक्तित्व विकास के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित है।

(2) उद्देश्य निष्ठता (Objectivity)

मूल्यांकन उद्देश्यनिष्ठ प्रक्रिया है। मूल्यांकन द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि शिक्षण द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो पायी है तथा इन उपलब्धियों का स्तर क्या रहा है ?

(3) बाल-केन्द्रित (Child Central Evaluation)

शिक्षण के द्वारा बालकों में अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन लाये जाने का प्रयत्न किया जाता है। मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा इन व्यवहारगत परिवर्तनों का मान निर्धारण का मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन प्रक्रिया में बालक सदा केन्द्र बिन्दु रहता है।

(4) सामाजिक प्रक्रिया (Social Process)

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि मूल्यांकन में व्यक्तित्व के समस्त पक्षों की जाँच की जाती है। चूँकि शिक्षा द्वारा बालक को एक योग्य नागरिक बनाना भी एक उद्देश्य है अतः मूल्यांकन प्रक्रिया इस बात की भी जाँच करती है कि शिक्षण कार्य समाज की आकांक्षा आदर्श एवं आवश्यकता के अनुरूप हो रहा है या नहीं। इस प्रकार मूल्यांकन एक सामाजिक प्रक्रिया भी है।

(5) अनवरत प्रक्रिया (Continuous Process)

परीक्षा एक विशेष समय समाप्त होने के पश्चात् ली जाती है जबकि मूल्यांकन प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। मूल्यांकन का शिक्षण उद्देश्यों से गहरा सम्बन्ध है चूँकि शिक्षण रोजाना होता है अतः यह ज्ञात करने के लिए कि बालकों में वांछनीय अधिगम अनुभव उत्पन्न हुए या नहीं, मूल्यांकन भी प्रतिदिन किया जाता है। इस प्रकार शिक्षण को समुन्नत करने एवं बालक का सन्तुलित विकास करने के लिए मूल्यांकन अनवरत रूप से करना आवश्यक है।

प्रकार से किया जाना चाहिए। इनका चयन करते समय बालको की रुचिया, योग्यताओ एव आवश्यकताओ, व्यक्तित्व व पक्ष ग्रहण करने की क्षमता आदि का ध्यान मे रक्खा जाना चाहिए। चूँकि शिक्षण द्वारा बालक म सामाजिक आदर्शों एव नैतिक मूल्यो को भी विकसित करना होता है। अत शिक्षण उद्देश्य इन मूल्यो मे भी सम्बधित होने चाहिए।

(2) उद्देश्यो को व्यवहार-परिवर्तन के रूप मे लिखना

(Writing Educational Objective in Behavioural Terms)

उद्देश्यो के चयन के उपरान्त उनको व्यवहारगत परिवतन के रूप म सुपरिभाषित किया जाता है। कोई भी शिक्षण उद्देश्य केवल उसी समय तक साधक है जब उसे पूर्ण रूप से परिभाषित कर दिया जाता है अथवा जब तक वह यह न स्पष्ट करे कि उसके द्वारा बालक के व्यवहार म कौन-कौन से परिवतन किस किस क्षेत्र म लाये जाने हैं। उदाहरण के लिए बालक का रसायनशास्त्र म साबुन बनाना सिखाना चाहते है—

व्यवहारगत परिवतन निम्न प्रकार से हो सकते है—

(1) साबुन के विभिन्न तत्त्वा के नामो का प्रत्यास्मरण कर सकेगा।

(2) साबुन को उसके गुणो के आधार पर पहिचान सकेगा।

(3) साबुन की तुलना सफ आदि से कर सकेगा।

(4) साबुन का दनिक जीवन म सही उपयोग कर सकेगा।

(5) घर पर स्वय साबुन बना सकेगा।

इस प्रकार ज्ञान उद्देश्य, कौशल उद्देश्य अभिवृत्ति उद्देश्य रुचि उद्देश्य आदि के रूप म उद्देश्यो का परिभाषीकरण किया जायेगा। इसका विस्तृत स्पष्टीकरण प्रारम्भ के पाठो म किया जा चुका है।

(3) अधिगम-परिस्थितियो की पहिचान

(Identification of Learning Situations)

मूल्याकनकर्ता को उन अधिगम-परिस्थितियो की पहिचान भी करनी चाहिए जिनम बालक का अपेक्षित व्यवहारगत परिवतन हुआ है। मूल्याकन करते समय भी बालक को ऐसी परिस्थिति म रक्खा जाना चाहिए जिसमे कि वह वाछित व्यवहार की अभिव्यक्ति कर सके।

(4) परीक्षणो का चुनाव (Construction of Devices)

बालक म हुए व्यवहारगत परिवतनो का मूल्याकन करने लिए अध्यापक को ऐसी प्रविधियो का निर्माण करना चाहिए जो व्यावहारिक परिवतनो के सम्बन्ध म साक्षिया (Evidences) प्रस्तुत कर सकें इसके लिए अध्यापक को सूझ से काम लेना होगा तथा स्वय से अग्राकित प्रश्न पूछने होग—

(6) सहकारी प्रक्रिया (Cooperative Process)

मूल्याकन प्रक्रिया म बालक स सम्बन्धित सभी व्यक्तियो का सहयोग आवश्यक है। यदि अध्यापक यह चाहे कि वह स्वय ही बालक का मूल्याकन कर लेगा तो यह सही नही है। बालक के विकास का सही मूल्याकन करने के लिए अध्यापक को अन्य साथी अध्यापक बालक के मित्र, माता पिता या अभिभावक आदि स भी सम्पर्क करना होगा। उनके सहयोग के अभाव म यह कार्य असम्भव सा हो है। इस प्रकार मूल्याकन एक सहकारी प्रक्रिया है।

(7) अन्तर क्रियात्मक प्रक्रिया (Inter Connected Process)

जैसा कि पूर्व म स्पष्ट किया जा चुका है कि शिक्षण के तीन प्रमुख तत्त्वो म मूल्याकन भी एक है। अन्य दो तत्त्व शिक्षण उद्देश्य तथा अधिगम-अनुभव हैं। मूल्याकन इन दोनो तत्त्वो को प्रभावित करता है अर्थात् यह न केवल यह बताता है कि शिक्षण उद्देश्यो की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है अपितु यह भी देखता है कि अध्ययन-अध्यापन सस्थितियाँ कितनी प्रभावी रही। इस प्रकार मूल्याकन दोनो तत्त्वो स सबधित है। दूसरे शब्दो म इन तीनो की परस्पर अंतरक्रिया से ही शिक्षण प्रक्रिया उन्नत होती है।

(8) निर्णयात्मक प्रक्रिया (Decisive Process)

मूल्याकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है इसके द्वारा शिक्षण विधि शिक्षण अधिगम सस्थितियाँ, शिक्षण द्वारा उद्देश्यो की प्राप्ति सीखने के अनुभवो की प्रभावशीलता आदि के बारे म निर्णय दिया जाना सम्भव है।

(9) विश्लेषण-सश्लेषणात्मक (Analitical Synthesis)

किसी भी उपलब्धि का स्तर निर्धारित करने के लिए उसकी स्पष्ट व्याख्या आवश्यक है। इसके लिए उद्देश्यो को परिभाषित किया जाता है ताकि मूल्याकन के अन्तर्गत उद्देश्यानुरूप विधि अपनायी जा सके। यह विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। विश्लेषण के पश्चात् उद्देश्य से सम्बन्धित विशिष्टियो का ध्यान म रखकर एसी परिस्थितियो का चुनाव किया जाता है कि उद्देश्य प्राप्ति के सम्बन्ध म उपयुक्त साक्षियाँ सकलित हो सकें। इतना ही नही इन साक्षियो की व्याख्या तथा साराशीकरण भी किया जाता है। यह सश्लेषणात्मक प्रक्रिया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मूल्याकन विश्लेषण सश्लेषणात्मक प्रक्रिया है।

मूल्याकन प्रक्रिया के सोपान
(Steps in the Process of Evaluation)

मूल्याकन प्रक्रिया के निम्नलिखित सोपान होते हैं—

(1) शैक्षिक उद्देश्यो का चयन (Selection of Educational Objectives)

शिक्षण उद्देश्य शिक्षण को दिशा प्रदान करते हैं अत इनका चयन भी

प्रकार से किया जाना चाहिए। इनका चयन करते समय बालकों की रुचियों, योग्यताओं एवं आवश्यकताओं, व्यक्तित्व के पक्ष, ग्रहण करने की क्षमता आदि को ध्यान में रखा जाना चाहिए। चूँकि शिक्षण द्वारा बालक में सामाजिक आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों का भी विकसित करना होता है। अतः शिक्षण उद्देश्य इन मूल्यों से भी सम्बन्धित होने चाहिए।

(2) उद्देश्यों को व्यवहार-परिवर्तन के रूप में लिखना
(Writing Educational Objective in Behavioural Terms)

उद्देश्यों के चयन के उपरान्त उनको व्यवहारगत परिवर्तन के रूप में सुपरिभाषित किया जाता है। कोई भी शिक्षण उद्देश्य केवल उसी समय तक सार्थक है जब उसे पूर्ण रूप से परिभाषित कर दिया जाता है अथवा जब तक वह यह न स्पष्ट करे कि उसके द्वारा बालक के व्यवहार में कौन कौन से परिवर्तन किस किस क्षेत्र में लाये जाने हैं। उदाहरण के लिए बालक को रसायनशास्त्र में साबुन बनाना सिखाना चाहते हैं—

व्यवहारगत परिवर्तन निम्न प्रकार से हो सकते हैं—

(1) साबुन के विभिन्न तत्त्वों के नामों का प्रत्यास्मरण कर सकेगा।

(2) साबुन को उसके गुणों के आधार पर पहिचान सकेगा।

(3) साबुन की तुलना सर्फ आदि से कर सकेगा।

(4) साबुन का दैनिक जीवन में सही उपयोग कर सकेगा।

(5) घर पर स्वयं साबुन बना सकेगा।

इस प्रकार ज्ञान उद्देश्य, कौशल उद्देश्य, अभिवृत्ति उद्देश्य, रुचि उद्देश्य आदि के रूप में उद्देश्यों का परिभाषीकरण किया जायेगा। इसका विस्तृत स्पष्टीकरण प्रारम्भ के पाठों में किया जा चुका है।

(3) अधिगम-परिस्थितियों की पहिचान
(Identification of Learning Situations)

मूल्यांकनकर्त्ता को उन अधिगम-परिस्थितियों की पहिचान भी करनी चाहिए जिनमें बालक वांछित, अपेक्षित, व्यवहारगत परिवर्तन हुआ है। मूल्यांकन करते समय भी बालक को ऐसी परिस्थिति में रखा जाना चाहिए जिसमें कि वह वांछित व्यवहार की अभिव्यक्ति कर सके।

(4) परीक्षणों का चुनाव (Construction of Devices)

बालक में हुए व्यवहारगत परिवर्तनों का मूल्यांकन करते लिए अध्यापक को ऐसी प्रविधियों का निर्माण करना चाहिए जो व्यावहारिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में साक्षियाँ (Evidences) प्रस्तुत कर सकें इसके लिए अध्यापक को सूझ से काम लेना होगा तथा स्वयं से अप्रांकित प्रश्न पूछने होंगे—

(1) मेरे द्वारा निर्मित प्रविधि कौन कौन से शिक्षक उद्देश्यों की जाच कर रही है ?

(2) इस प्रविधि के द्वारा शिक्षक उद्देश्यों का मूल्यांकन किस रूप में करूंगा ?

(3) क्या निर्मित प्रविधि द्वारा वांछित व्यवहार के सम्बन्ध में प्रमाण अथवा साक्षियाँ उपलब्ध हो रही है ?

(4) क्या इस प्रविधि को सरलता से विद्यार्थी समझ सकेंगे ?

(5) इस प्रविधि का यदि अलग अलग व्यक्ति प्रयोग में लावें तो क्या इससे एक ही प्रकार के निष्कर्ष आवेंगे ?

(6) क्या यह प्रविधि वही मूल्यांकन कार्य करेगी जिसे मैं चाहता हूँ ?

(5) प्रविधि का प्रयोग एवं प्रमाणों का लेखा

(Application of the Technique and Recording of the Evidence)

जब शिक्षक किसी प्रविधि का प्रयोग बालकों पर मूल्यांकन के लिए करे तो बालक द्वारा दिये गये उत्तरों अथवा व्यवहार प्रदर्शन का लिखित लेखा तैयार कर लेना चाहिए। यदि परीक्षा लिखित रूप में नी जा रही है तो ऐसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी क्योंकि बालक स्वयं अपने उत्तर लिखित में देता है जिनकी जाच की जा सकती है। यदि अलिखित परीक्षा से साक्षात्कार, निरीक्षण आदि प्रविधियों का उपयोग किया जाय उस स्थिति में शिक्षक को बालक की समस्त प्रतिक्रियाओं को लिख लेना चाहिए अन्यथा विश्लेषण करते समय कुछ प्रतिक्रियाएं भूल भी सकता है।

प्राप्त प्रमाणों की व्याख्या

(Interpretations of Collected Evidence)

प्राप्त साक्षियों को ध्यान में रखते हुए अध्यापक को यह निर्णय लेना चाहिए कि बालक में हुए व्यवहारगत परिवर्तन शिक्षण उद्देश्यों के अनुसार है या नहीं। यदि शिक्षण उद्देश्यों के अनुरूप है तो किस सीमा तक है अथवा कौन कौन से उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाई। इन सब बातों को ध्यान में रखकर अध्यापक बालक द्वारा दिये गये उत्तरों का निर्णय [illegible] करता है।

इसी प्रकार बालक ने किसी विषय में अंक प्राप्त किये हैं तो केवल अंक उसके भविष्य के लिए ठोस आधार प्रस्तुत नहीं करते जब तक कि उसके अंकों का तुलनात्मक अध्ययन न किया जावे। इसके लिए निम्न बातों के आधार पर तुलना करनी होगा—

(1) कक्षा में उच्चतम एवं निम्नतम प्राप्तांक क्या है ?

(2) कक्षा के सभी बालकों के प्राप्तांकों का औसत क्या है ?

(3) अमुक बालक की स्थिति क्या है तथा क्या उसने अपनी पूर्व स्थिति से कुछ अच्छा प्रदर्शन किया है ?

उपरोक्त आधार पर परिणामों की व्याख्या की जानी चाहिए तथा परीक्षा-फल को इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि बालक की कमजोरियाँ तथा उपलब्धियों का सही पता चल सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत व्यापक मूल्यांकन योजना

(Comprehensive Evaluation Plan Under National Educational Policy 1986)

इस नवीन योजना के अन्तर्गत मूल्यांकन को व्यापक, लक्ष्य आधारित एवं निरन्तर प्रक्रिया माना गया है।

व्यापकता—व्यापक मूल्यांकन में ऐसी परीक्षाओं की व्यवस्था की जायेगी जिसकी सहायता से व्यक्तित्व के निम्नांकित मूल्यांकन योग्य सभी पहलुओं एवं क्षेत्रों को शैक्षिक-मूल्यांकन व प्रयोग के क्षेत्र में लाया जा सके

(क) व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुण जैसे नियमितता, समय की पाबन्दी, सफाई की आदत, सहयोग, उत्तरदायित्व की भावना, नेतृत्व, समाज सेवा भाव आदि।

(ख) रुचियाँ (संगीत, कला, साहित्य आदि।)

(ग) वांछनीय मनोवृत्तियाँ जैसे धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, राष्ट्रीय एकता की भावना, विद्यालय सम्पत्ति एवं कार्यक्रमों के प्रति स्वस्थ प्रवृत्ति, शिक्षकों के प्रति आदर आदि।

(घ) स्वास्थ्य स्तर (ऊँचाई, वजन, वक्ष विस्तार रोगों से मुक्त स्वास्थ्य आदि)।

(ङ) पाठ्यान्तर कार्यक्रमों में निपुणता जैसे वाद विवाद, नाटक, भाषण, क्लब, खेलकूद, तैराकी, स्काउटिंग, जूनियर रेड क्रास आदि।

नीति में यह सुझाव है कि व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों में नियमितता और समय निष्ठा, तथा सफाई की आदत एवं सह पाठ्यक्रमीय क्रियाओं में खेलकूद को आवश्यक मूल्यांकन के विषय बनाये जावें। अन्य पक्षों को साधन की उपलब्धता के आधार पर ऐच्छिक मूल्यांकन के लिए रखा जा सकता है।

नई शिक्षा नीति ने इकाई शिक्षण-पद्धति एवं इकाई मूल्यांकन पर भी बहुत बल दिया है। इसके द्वारा यह सिफारिश की गई है कि वर्ष भर में बालक की तीन आवधिक परखें तथा दो परीक्षा अर्थात् अर्द्ध वार्षिक एवं वार्षिक परीक्षा हों। बालक के कक्षा-कार्य एवं गृह-कार्य का मूल्यांकन भी समय समय पर किया जावे। माध्यमिक स्तर पर प्रस्तावित शैक्षिक मूल्यांकन तालिका संख्या-1 में दिखाया गया है।

मूल्यांकन की उपयोगिता
(Uses of Evaluation)

मूल्यांकन प्रक्रिया को विधिवत आयोजित करने में अनेक लाभ होते हैं। कुछ लाभ निम्न प्रकार से हैं

(1) पाठ्यक्रम को प्रभावोत्पादकता की जांच
(Effectiveness of the Syllabus)

पाठ्यक्रम की प्रभावोत्पादकता की जांच करने की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसका कारण यह है कि ज्ञान का विस्फोट हो रहा है तथा इस विस्फोट के प्रभाव स्वरूप पाठ्यक्रम हर स्तर पर बोझिल होता जा रहा है। पाठ्यक्रम को हर स्तर पर, चुनौतीपूर्ण एव जीवनोपयोगी बनाना आवश्यक है, इसके लिए पाठ्यक्रम की विस्तृत जांच करना आवश्यक है। मूल्यांकन द्वारा पाठ्यक्रम की प्रभावोत्पादकता की जांच की जा सकती है।

(2) जब कभी भी कोई नया प्रयोग या प्रायोजना, विद्यालय में प्रारम्भ की जाती है तो उसके पीछे कुछ धारणाएं होती हैं। मूल्यांकन द्वारा इन धारणाओं की वैधता की जांच की जा सकती है। कुछ धारणाओं के नमूने निम्नांकित हो सकते है

(क) प्रार्थना सभा के विधिवत आयोजन से छात्रों मे नैतिकता का विकास किया जा सकता है।

(ख) गृह कार्य नियमित रूप से देने से छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित की जा सकती है।

(ग) महापुरुषों की जयन्तियां मनाने से छात्रों में उन गुणों का विकास किया जा सकता है जिसके लिए महापुरुष प्रसिद्ध है।

(घ) छात्र परिषद् का विद्यालय में गठन करने से उनको जनतन्त्र का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

मूल्यांकन द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि उक्त वर्णित धारणाएं कहां तक सही है।

(3) शिक्षण मे उद्देश्यनिष्ठता (Objectivity in Instruction)

मूल्यांकन प्रक्रिया का एक अनुकूल प्रभाव शिक्षण को उद्देश्यनिष्ठ बनाना है। शिक्षण उद्देश्य आधारित होता है। इसका अभिप्राय यह है कि अध्यापक उद्देश्य प्राप्ति हेतु शिक्षण क्रियाएँ करता है। यदि अध्यापक ने शिक्षण के दौरान उद्देश्य प्राप्ति हेतु प्रयास ही न किया हो तो उसके शिक्षण का प्रभाव स्वरूप उद्देश्य का प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में मूल्यांकन करना व्यर्थ होगा क्योंकि मूल्यांकन द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है। मूल्यांकन द्वारा शिक्षण को उद्देश्यनिष्ठता की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

(4) चुनौतीपूर्ण उद्देश्यों का चुनाव (Selecting Challenging Objectives)

मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा विषय शिक्षण की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण उद्देश्यों का चुनाव करने में सहायता मिलती है। वास्तव में, चुनौतीपूर्ण उद्देश्य निश्चित करने पर ही विद्यार्थी को उन्हें प्राप्त करने का उत्प्रेरण मिलता। चुनौतीपूर्ण उद्देश्य वे हैं, जो सामान्य प्रयासों से प्राप्त नहीं किये जा सकते, परन्तु जिन्हें थोड़ा विशेष प्रयास करके प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई विद्यार्थी डेढ़ मीटर ऊँचा कूद सकता हो तो $1\frac{3}{4}$ मीटर कूदना उसके लिए चुनौतीपूर्ण होगा। चुनौतीपूर्ण उद्देश्य न तो बहुत सरल तथा न ही बहुत कठिन होता है। मूल्यांकन द्वारा इस तथ्य का सही अनुमान लगाया जा सकता है कि कोई उद्देश्य छात्र विशेष की दृष्टि में कितना चुनौतीपूर्ण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा हमें चुनौतीपूर्ण उद्देश्यों का चुनाव करने में सहायता मिलती है।

(5) अधिगम के लिए प्रेरणा (Motivation for Learning)

मूल्यांकन प्रक्रिया स्वयं विद्यार्थी को अधिगम अर्जित करने के लिए अभिप्रेरित करती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बी. एफ. स्किनर ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि विद्यार्थी को हर कदम पर अपने प्रयास का परिणाम ज्ञात हो जाय तो उसे और अधिक अच्छा प्रयास करने की अभिप्रेरणा मिलती है।

(6) शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)

शैक्षिक निर्देशन के लिए यह ज्ञात करना आवश्यक है कि विद्यार्थी की जन्मजात प्रतिभाएँ कौन कौनसी हैं? विद्यार्थी की रुचियाँ तथा अभिवृत्तियाँ क्या हैं? तथा उनके विकास की गति एवं दिशा क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर मूल्यांकन द्वारा ही ज्ञात हो सकता है। इनके उत्तर ज्ञात होने पर विद्यार्थी को अपनी योग्यता एवं रुचि के अनुसार उपयुक्त विषय चुनने में सहायता की जा सकती है।

(7) चुनाव (Selection)

मूल्यांकन की विविध तकनीकों के द्वारा कार्य की प्रकृति के अनुसार व्यक्तियों का चयन किया जा सकता है। आधुनिक युग में इसकी आवश्यकता निरन्तर अधिकाधिक हो रही है। यदि व्यक्ति को अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार व्यवसाय मिल जाता है तो वह जीवन में सन्तोष अनुभव करता है तथा वह उस व्यवसाय को भी उन्नत करने में सफल होता है। इसके विपरीत चयन की तकनीक नहीं होने पर यह भी सम्भव है कि व्यक्तियों को ऐसे कार्य करने पड़ें जो उनकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार न हों।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल्यांकन के अनेक उपयोग हैं।

सारांश

मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है। इसमें यह ज्ञात किया जाता है कि (1) शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई (2) बालक के अधिगम-अनुभव कितने प्रभावी रहे तथा (3) शिक्षण उद्देश्य प्राप्त करने का तरीका कितना प्रभावी

रहा।' इस प्रकार मूल्यांकन से अभिप्राय शिक्षण प्रक्रिया अथवा सीखने कि क्रियाओं मे उत्पन्न अनुभवों की उपयोगिता के बारे में निर्णय लेना है।

मापन मूल्यांकन का ही एक भाग है। मापन में परिमाणात्मक निर्णय लिए जाते हैं। यह इस बात को बताता है कि बालक में योग्यता अथवा कुशलता का विकास कितना हुआ है। मापन द्वारा किसी वस्तु या गुण का प्रतीक निर्धारित किया जाता है ताकि परिमाण का सही बोध हो सके।

मापन एव मूल्यांकन का सम्बन्ध निम्न समीकरण से व्यक्त कर सकते हैं—

मूल्यांकन=मापन + मूल्य निर्धारण

मूल्यांकन प्रक्रिया की कुछ विशेषताएँ हैं। यह एक उद्देश्यनिष्ठ, सतत एव व्यापक प्रक्रिया है। यह शिक्षण उद्देश्य एव बालक के अधिगम अनुभव दोनों को प्रभावित करती है तथा इनके प्रभावी होने के बारे में निर्णय लिए जाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में व्यापक आन्तरिक मूल्यांकन योजना प्रस्तुत की गई है। छात्रों के अन्तर्गत बालकों का मूल्यांकन न केवल शैक्षिक उपलब्धि का, अपितु व्यक्तित्व एव सामाजिक गुण रुचियाँ, वांछनीय राष्ट्रीय एव सामाजिक प्रवृति के विकास तथा पाठ्येतर कार्यक्रमों के विकास के बारे में भी किया जावेगा। इस नई शिक्षा नीति में इकाई मूल्यांकन तथा ग्रेड प्रदत्त किये जाने पर बल प्रदान किया गया है।

शिक्षण में मूल्यांकन अत्यन्त उपयोगी है। इससे पाठ्यक्रम की प्रभावोत्पादकता की जाँच की जाकर शिक्षण को उद्देश्यनिष्ठ बनाया जा सकता है। बालक को उसकी प्रगति की जानकारी देकर अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। शैक्षिक निर्देशन एव उपचारात्मक शिक्षण दोनों में मूल्यांकन उपयोगी है। अतः एक शिक्षक को मूल्यांकन का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है।

□

अध्याय 11

लिखित परीक्षाएँ एव अध्यापक-निर्मित परख

(Written Examinations Its Type & Teacher Made Test)

ज्ञान प्रदान करने एव अर्जित करने की प्रक्रिया प्राचीनकाल से चली आ रही है चूँकि ज्ञान का परीक्षण ज्ञानार्जन के स्तर को आकने के लिए आवश्यक था, अत यह एक निर्विवाद सत्य है कि परीक्षण भी इतना ही पुराना है। परन्तु प्राचीनकाल मे परीक्षण मौखिक हुआ करते थे। लिखित परीक्षा का प्रचलन बहुत बाद मे प्रारम्भ हुआ। कुओ (Kuo) के अनुसार सम्राट शून (Shun) ने 2205 ई पू मे अपने कर्मचारियो को पदोन्नति देने के लिए लिखित परीक्षाएँ आरम्भ की थी। सार्वजनिक रूप से परीक्षा का आयोजन सर्वप्रथम चीन मे सरकारी पदो पर नियुक्ति देने हेतु प्रतियोगिता परीक्षा के रूप मे किया गया। धीरे-धीरे इन परीक्षाओ का प्रचलन इतना अधिक हो गया कि आज प्रत्येक स्तर पर परीक्षाओ का आयोजन होता है।

परीक्षा का लिया जाना महत्त्वपूर्ण है। इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वाकर एच हिल (Walker H Hill) लिखते है कि 'किसी भी स्तर या शैक्षिक ग्रेड की समाप्ति पर आन्तरिक अथवा बाह्य परीक्षा लिया जाना आवश्यक एव महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इससे विद्यार्थी की सम्पूर्ण उपलब्धि का ज्ञान नही हो पाता फिर भी यह उसकी प्रगति का सूचक है।'[1]

परीक्षा एक प्रक्रिया है जिसमे प्रश्नो के द्वारा किसी व्यक्ति या व्यक्तियो के समूह की योग्यता, ज्ञान, कौशल, रुचि आदि की जाच की जाती है। इसे अग्राकित प्रकार से परिभाषित किया गया है—

1 Walker H Hill Tools of Evaluation Specialist in Testing and Evaluation Columbia University, Teacher s College Team in India Report

(1) फ्रीमैन (Freeman)

"शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसका निर्माण ज्ञान समूह के मापने हेतु किया जाता है।"

(2) सी वी गुड[1] (C V Good)

"परीक्षण एक व्यापक शब्द है जो विद्यालय या विद्यालय पद्धति में मूल्यांकन करने वाली प्रक्रिया का समग्र रूप में लागू करने वाली किसी संगठित योजना की ओर निर्दिष्ट करता है। इसमें परीक्षाओं का चयन, प्रशासन, अंकन तथा व्याख्या निहित है।"

साधारणतः परीक्षाओं को दो रूप में बाटा जा सकता है जो कि निम्न प्रकार से हैं—

(1) निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay Type Examinations)

(2) वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं (Objective TypeTest)

निबन्धात्मक परीक्षण (Essay Type Examination)

यह परीक्षण सबसे अधिक प्रचलित परीक्षण है। इसके अन्तर्गत परीक्षार्थी को आठ या दस प्रश्नों का प्रश्न पत्र दिया जाता है। उसमें कुछ आंतरिक तथा कुछ बाह्य विकल्प होते हैं। उसे 5 या 6 प्रश्न हल करने पड़ते हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर सविस्तार देना होता है। सामान्यतः समय सीमा ढाई से तीन घण्टे होती है।

विशेषताएं —

(1) निबन्धात्मक परीक्षण में विद्यार्थी को किसी समस्या पर स्वतन्त्रता पूर्वक तथा प्रभावकारी ढंग से विचारों को संगठित कर व्यक्त करने का अवसर मिलता है। डगलस तथा टालमैन ने अध्ययन करके यह पता लगाया कि विद्यार्थी परीक्षा के लिए सामान्यीकरण और प्रवृत्तियों का अध्ययन व समीक्षा करते हैं।

(2) मेयर ने परीक्षार्थियों पर अध्ययन कर पता लगाया कि निबन्धात्मक प्रश्न ज्ञान सामग्रियों के अधिगम और ग्रहण किये हुए ज्ञान को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण साबित हुए हैं।

(3) निबन्धात्मक प्रश्नों के माध्यम से, छात्र की कल्पना शक्ति निर्णय शक्ति, स्मरण शक्ति तथा व्यक्तित्व के बारे में पता चलता है।

(4) इस प्रकार के परीक्षण में प्रश्न आसानी से बनाया जा सकता है।

(5) परीक्षा प्रणाली, जो कि निबन्धात्मक परीक्षण पर आधारित हो, कम समय तथा कम समय में पूरी की जा सकती है।

1 Good C V Dictionary of Education P 313

(6) निबन्धात्मक परीक्षण मे बालक की विचार व्यक्त करने की क्षमता की जानकारी मिलती है।

(7) इसके निर्माण हेतु शिक्षक का सामान्य स्तर के प्रशिक्षण की ही आवश्यकता होती है।

उपरोक्त विशेषताओ के कारण ही निबन्धात्मक परीक्षण का उपयोग अधिक किया जाता है।

निबन्धात्मक परीक्षाओ के दोष

(Demerits of Essay Type Examinations)

यह परीक्षा निम्न दोषो से युक्त है—

(अ) रटने के पक्ष पर बल (Encourage Cramming)— निबन्धात्मक परीक्षा मे स्मरण शक्ति पर विशेष बल दिये जाने के कारण बालक विषयवस्तु को प्राय रटते रहते हैं। इसमे अधिकाशत ऐसे भी प्रकरण आते हैं जिसमे बालक को सूचनाए तथा तथ्य उत्तर देते समय देने होते है जिन्हे वे रट कर ही दे पाते है। इसे अधिक सक्षम बनाने के लिए निम्नलिखित प्रयास किये जा सकते है—

(1) शैक्षिक उद्देश्यो का चयन एव परिभाषीकरण।

(2) प्रश्न-पत्र निर्माण मे प्रत्येक शैक्षिक उद्देश्य को भार प्रदान करना।

(3) उद्देश्यो के अनुरूप विभिन्न प्रकार के प्रश्नो का प्रश्न पत्र मे सम्मिलित करना।

उपरोक्त प्रयत्नो से निबन्धात्मक परीक्षा का स्तर सुधारा जा सकता है।

(ब) व्यक्तिनिष्ठता (Subjectivity)—निबन्धात्मक परीक्षा मे व्यक्ति का प्रभाव स्पष्टत झलकता है। इसमे प्रश्नो की सख्या सीमित होने से यह प्रश्न पत्र निर्माण पर निर्भर करता है कि वह कौन कौन से पाठो मे से प्रश्नो का चयन करे। इसी प्रकार परीक्षक की मनोवृत्ति तथा स्वभाव भी निबन्धात्मक परीक्षा मे झलकता है। कुछ प्रश्न-पत्र निर्माता सरल हृदय होते है। इस कारण आसान प्रश्न देते है जबकि कुछ कठोर प्रकृति के प्रश्न-पत्र निर्माता इसे कठिन स्तर का बना देते है। चूँकि निबन्धात्मक परीक्षा मे अकन की निश्चित अक-तालिका नहीं होती, इनका अकन भी व्यक्ति के स्वभावाश्रित होता है।

(स) अकन मे अधिक समय (More time Requred for Scoring)—निबन्धात्मक प्रश्न का निर्माण, करना सरल है परन्तु इसके अकन के लिए परीक्षक को लम्बे उत्तरो को पढना पडता है। इससे उसका समय एव श्रम अधिक लगाना पडता है। स्टालनेकर[1] (Stalnaker) ने इस सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है 'निबन्धात्मक प्रश्न का सही मूल्याकन एक कठिन कार्य है।'

1 Stalnaker J M The Essay Type Evaluation—Educational Measurement, P 502

(द) विश्वसनीयता का अभाव—निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तरों में दिये गये अंकों पर विश्वास बहुत कम किया जा सकता है। यदि छात्रों का किसी एक प्रश्न पत्र से मूल्यांकन किया जाय तथा कुछ समय बाद पुनः इस प्रश्न-पत्र से मूल्यांकन किया जाय (Test Retest Method) तो दोनों से प्राप्त अंकों में विविधता पाई गई है। इसी प्रकार एक ही परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएं यदि कई परीक्षकों द्वारा जाँची जावें तो उनके अंकन में भी अन्तर पाया गया है। एक ऐसा ही प्रयोग स्टार्च और इलियट (Starch and Illiot) ने किया। उसने 142 शिक्षकों से अंग्रेजी की उत्तर-पुस्तिकाओं का बण्डल बार-बार जँचवाया। उसने यह पाया कि उनके द्वारा दिये गये अंकों में 50 से 98 के मध्य अन्तर था अर्थात् अंकों में विविधता थी। भारत में भी एन. सी. ई. आर. टी. नई दिल्ली ने भी एक प्रयोग "नब्बे द्वारा नब्बे का मूल्यांकन" (Ninety Examined Ninety) किया गया जिसमें इतिहास की 90 उत्तर-पुस्तिकाएं 90 परीक्षकों द्वारा जाँची गई। अंकों में भारी अन्तर पाया गया।

(य) वैधता का अभाव (Lack of Validity)—इन परीक्षाओं का उद्देश्य निश्चित न होने के कारण इनमें वैधता का अभाव पाया जाता है। वैधता का यही अर्थ है कि परीक्षण उन्हीं कुशलताओं, तथ्यों, अनुभवों, गुणों आदि की परीक्षा करे जिसकी परीक्षा करना ध्येय है। निबन्धात्मक परीक्षा में भाषा, अभिव्यक्ति, लेखन, क्षमता आदि की जाँच की जा सकती है परन्तु इससे उस विषय के सभी उद्देश्यों की जाँच करना असम्भव सा है।

निबन्धात्मक परीक्षा में भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता तो लगभग नहीं के बराबर होती है। एक विद्यार्थी एक परीक्षा में अच्छे अंक लेकर पास हो जाता है तो दूसरी परीक्षा में फेल भी होता पाया गया है।

(र) प्रतिनिधित्व की कमी (Limited Sampling)—इस परीक्षा में प्रश्नों की संख्या सीमित होती है। उदाहरण के लिए तीन घण्टे के एक प्रश्न पत्र में विद्यार्थी को छः प्रश्न हल करने को कहा जाय तो इससे पाठ्यक्रम के सभी महत्त्वपूर्ण भागों पर प्रश्न बनाकर इसमें सम्मिलित नहीं किए जा सकते हैं। परिणाम यह होता है कि कई बार पाठ्यक्रम के अनेक प्रश्न छूट जाते हैं। इस प्रकार यह प्रश्न पत्र व्यापक नहीं होता है। परीक्षार्थी की दृष्टि से भी इस प्रकार की परीक्षा सीमित अध्ययन के लिए बढ़ावा देती है। वह सीमित पाठों की तैयारी कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है।

निबन्धात्मक परीक्षण में सुधार के उपाय

(Suggestions for Improvement in Essay Type Tests)

इस प्रकार की परीक्षा में सुधार हेतु अग्रांकित सुझाव प्रस्तुत हैं—

(1) प्रश्न पत्र, में प्रश्नों की संख्या अधिक तथा उनके उत्तरों को सीमित रूप में लिया जाना चाहिए। इससे प्रश्न-पत्र में पाठ्यवस्तु का व्यापक प्रतिनिधित्व हो सकेगा।
उदाहरण मुगलों के पतन के कोई चार कारण लिखें। अथवा 1857 की क्रान्ति का प्रमुख कारण क्या था? अथवा कठोर पानी को साफ करने की प्रमुख विधियों का नाम लिखकर परम्यूटित विधि का वर्णन करें।

(2) प्रश्न-पत्र में व्यक्ति के प्रभाव को दूर करने के लिए इसमें वस्तुनिष्ठता बढ़ाने का भी प्रयास किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए—
पर्यावरण का अर्थ समझाइये। निम्न के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए—
(अ) अणु विस्फोट
(ब) औद्योगीकरण।
(स) वनों का कटाव।

(3) प्रश्न-पत्र में सभी प्रश्न अनिवार्य होने चाहिए। विकल्प यदि दिया जाना आवश्यक हो तो उसे आन्तरिक विकल्प के रूप में दिया जाना चाहिए।

(4) उत्तर पुस्तिकाओं के अंकन से पूर्व प्रत्येक प्रश्न के संभावित सही उत्तर एवं उन पर दिये जाने वाले अंकों का पूर्व निर्धारण कर लिया जाना चाहिए तथा प्रत्येक पद के अलग-अलग अंक प्रदत्त किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए—

कठोर पानी एवं भारी पानी का अर्थ बताइये। इनमें अन्तर स्पष्ट करने हेतु दो बिन्दु लिखिए — कुल अंक 4

उत्तर-तालिका

संभावित उत्तर	अंक भार
अर्थ स्पष्ट करना—	
(अ) भारी पानी	1
(ब) कठोर पानी	1
दोनों में अन्तर स्पष्ट करने के लिए प्रति बिन्दु एक अंक	2

वस्तुनिष्ठ-परीक्षा

(Objective Type Tests)

आजकल वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं बहुत लोकप्रिय होती जा रही हैं। इन पाय

लोग नई प्रकार की परीक्षा भी कहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी में लिखित परीक्षाओं का प्रचलन व्यापक रूप से होने लगा।

आजकल कक्षाओं में छात्र संख्या बढ़ जाने के कारण निबंधात्मक प्रश्न पत्रों में लम्बे-लम्बे उत्तरों का जाँचने में अध्यापक का कार्य भार बढ़ जाता है, तथा इनके द्वारा प्रदत्त अंकों में विश्वसनीयता भी कम पाई गई है। वस्तुनिष्ठ प्रश्न में छात्र के उत्तर छोटे होते हैं, अर्थात छात्र को बहुत कम लिखना पड़ता है, अध्यापक का इन्हें जाँचने में कम समय लगता है, इसके साथ-साथ इन पर प्राप्त अंकों में विश्वसनीयता अधिक है। यही कारण है कि वस्तुनिष्ठ परीक्षा अधिक प्रचलित हो रही है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तुनिष्ठ परीक्षण के प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है।

वस्तुनिष्ठता का अर्थ

वस्तुनिष्ठता का सामान्य अर्थ है प्रश्न, के उत्तर, एवं मूल्यांकन में एकरूपता। एक उत्तम परीक्षा में ये दोनों गुण होने आवश्यक हैं। वस्तुनिष्ठता को प्राय दो दृष्टि से देखा जाता है (1) प्रश्न निर्माण की दृष्टि से, (2) प्रश्न के मूल्यांकन की दृष्टि से। यदि इन दोनों दृष्टियों में वस्तुनिष्ठता पाई जाती है तो इस प्रकार का परीक्षण वस्तुनिष्ठ कहलाता है।

(1) प्रश्न-निर्माण में वस्तुनिष्ठता (Objectivity in Test Item Construction)

प्रश्न परीक्षा का मूल आधार है। यदि प्रश्न अस्पष्ट होगा तथा उनके अनेक प्रकार के उत्तर सम्भव होंगे तो परीक्षण के अंकन में परीक्षक को कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। विद्यार्थी के लिए भी यह कठिनाई होगी कि वह किस प्रकार का उत्तर दे व किसे छोड़े। अतः प्रश्न को वस्तुनिष्ठ बनाया जाना आवश्यक है। प्रश्न निर्माण की दृष्टि से वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय यह है कि प्रश्न का चयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि एक प्रश्न का केवल एक उत्तर ही सम्भव हो। यदि ऐसा न हुआ तो परीक्षण वैध नहीं होगा। अतः प्रश्न को प्रश्न पत्र में सम्मिलित करने से पूर्व इस बात का विचार कर लेना चाहिए कि प्रश्न का एक ही उत्तर हो। यदि एक प्रश्न के एक से अधिक उत्तर हों तो इस प्रकार के प्रश्न वस्तुनिष्ठ नहीं होंगे। इनको प्रश्न पत्र में रखने से परीक्षण वस्तुनिष्ठ नहीं होगा।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उदाहरण

प्रश्न—उत्तरप्रदेश में तेल शोधक कारखाना कहाँ है?

प्रश्न—थार के रेगिस्तान का अधिकांश भाग भारत के किस राज्य में स्थित है?

प्रश्न—किसी स्थान के मौसम को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख घटकों का उल्लेख कीजिए।

उक्त उदहरणा स यह स्पष्ट ह कि प्रश्न रचना की दृष्टि स इनम वस्तुनिष्ठता है। प्रश्नो की भाषा सरल एव स्पष्ट ह तथा इन प्रश्नो के उत्तर निश्चित ह।

(2) परीक्षण मे वस्तुनिष्ठता

(Objectivity in Evaluation)

परीक्षण कार्य जसे, प्रश्न पत्र का प्रशासन एव उस पर विद्यार्थियो द्वारा दिय गय उत्तरो का फलाकन वस्तुनिष्ठ प्रकार स होन चाहिए। परीक्षण म वस्तुनिष्ठता स तात्पर्य यह ह कि इन उत्तर पुस्तिकाओ का मल्याकन किसी व्यक्ति द्वारा किया जाव, विद्यार्थियो का अक सदव वही आवे। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रश्नो के उत्तर उत्तर-तालिका क रूप म पूव निश्चित प्रत्येक उत्तर का अक भार (Weight age) निश्चित कर दिया जाना चाहिए। वस्तुनिष्ठ परीक्षणा पर प्रशासन करन क तरीका तथा उत्तर पुस्तिका का जाचने वाल व्यक्तियो की भावनाओ रुचियो पसदगी आदि का कोई प्रभाव नही पडता है। परिभाषाए निम्न प्रकार स ह

(1) सी वी गुड (C V Good) क अनुसार वस्तुनिष्ठ परीक्षण सामान्यत वस्तुनिष्ठ प्रश्न जस बहुविकल्प रिक्त स्थान पूर्ति आदि पर आधारित होता है तथा इसका अकन अक तालिका से किया जाता है।'

(2) डगलस व हालैण्ड (Duglas and Hollnnd) वस्तुनिष्ठ परीक्षण का उद्देश्य परीक्षक वयक्तिक तत्त्वा से प्रभावित हुए बिना अक प्रदान करना है।'

(3) अनास्तास (Anastase) वस्तुनिष्ठता स तात्पय यह ह कि एक परीक्षा को कितन ही परीक्षको म सम्पन्न करवाया जाव, उसके परिणाम सदा स्थिर रहन ह।'

(4) एस एस माथुर (S S Mathur) वस्तुनिष्ठ परीक्षण म परीक्षक क व्यक्तिगत निणय का परीक्षा के प्राप्ताको पर प्रभाव नही पडता।

सक्षप म यह कहा जा सकता ह कि वस्तुनिष्ठ परीक्षण म प्रश्न इस प्रकार क हात हैं जिनका उत्तर निश्चित हाता ह तथा इनक फलाकन में परीक्षक क व्यक्तिगत निणय का कोई प्रभाव नही पडता ह।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के प्रकार

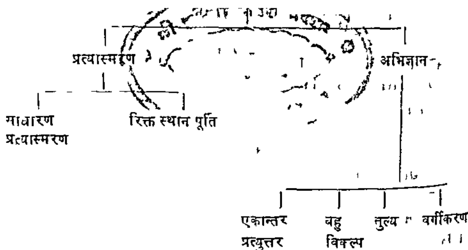
(Types of Objective Tests)

वस्तुनिष्ठ-परीक्षण मुख्यत निम्नलिखित दो प्रकार क हात ह

(1) प्रत्यास्मरण प्रकार (Recall Type)

(2) अभिज्ञान प्रकार (Recognition Type)

इनका चित्रमय प्रत्यय अग्रांकित प्रकार से किया जा सकता है—



(क) पूर्ति वाले प्रश्न—लघु उत्तर वाले और पूर्ति वाले प्रश्नो म किसी शब्द पर, सकेत या सख्या का प्रति स्मरण कर लिखना पडता है या रिक्त स्थान म भरना पडता है। लघु उत्तर वाला पद प्रश्न के रूप मे तथा वाक्य पूर्ति वाला रिक्त स्थान भरने के रूप मे होते है।

उदाहरण	प्रश्न का रूप
लघूत्तरात्मक—	भारत म राज्यो की सख्या कितनी है ?
पूर्ति वाला प्रश्न—	भारत मे राज्यो की सख्या है।

इस प्रकार पदो का उपयोग शब्द भण्डार, नाम, तारीखे, साधारण गणना, कार्य आदि के ज्ञान की जाच के लिए किया जाता है।

गुण

(1) इनकी रचना आसान होती है।

(2) ये किसी चार्ट, रेखाचित्र, डाइग्राम का समझने की योग्यता की जाच करने मे लाभदायक हैं।

(3) इसमे छात्र को निश्चित उत्तर देना होता है। वह अनुमान के आधार पर उत्तर ज्ञात नही कर सकता।

दोष

(1) इसमे सामान्य अधिगम-योग्यता ही मापी जा सकती है यथा स्मरण, पुनपहचान।

(2) रिक्त स्थान की पूर्ति म छात्र को सोचना पडता है अत मन्द बुद्धि वाला छात्र पिछड जाता है।

मुख्यत दो रूप होते है

(अ) साधारण प्रत्यास्मरण वाले प्रश्न—य परीक्षण म अत्यधिक प्रचलित है। इसम एक वाक्य प्रश्न के रूप म होता है जिसका उत्तर एक शब्द या शब्द समूह के रूप म प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिए—

(1) भारत के प्रथम राष्ट्रपति कौन थ ? ( )

(2) अमरिका की राजधानी कहा है ? ( )

(ब) रिक्त स्थान पूति वाले प्रश्न—इस प्रकार क परीक्षण-पदो म प्रश्न के स्थान पर वाक्य होते हैं जिसम एक या अधिक स्थान रिक्त होते है। परीक्षार्थी को इस रिक्त स्थान या स्थानो की पूर्ति करनी पडती है।

उदाहरण

(1) भारत के प्रथम राष्ट्रपति थ।

(2) अमरिका की राजधानी — है।

ध्यान रखने योग्य बात यह है कि प्रश्नो अथवा पदो म छात्रो को विचारन के लिए अतिरिक्त सकेत दिय जाते है। इससे प्रश्न की वस्तुनिष्ठता बढ जाती है।

सुझाव

(1) प्रश्नो म शब्दो का समावेश ऐसा हो कि उत्तर सदैव ही एक तथा निश्चित रूप से वही आवे।
   गलत उदाहरण—भारत म वर्षा कब होती है ?
   सशोधित उदाहरण—भारत म कौन कौन से माह म सामान्यतया वर्षा होती है ?

(2) एक ही प्रश्न में अनेक रिक्त पूति स्थानो का समावेश न हो।
   गलत उदाहरण—वेग का मान निकालने के लिए म का दना चाहिए।
   सशोधित उदाहरण—वेग का मान निकालने के लिए म का भाग दना चाहिए।

(3) अति सामान्य बातो को भरने के लिए रिक्त स्थान न छोड जाय।
   गलत उदाहरण—ताजमहल को शाहजहा न अपनी बेगम की म बनवाया।
   सशोधित उदाहरण—ताजमहल को ने अपनी बेगम की यादगार म बनवाया।

(4) कथन पाठ्य पुस्तक म से सीधे ही ज्यो के त्यो न ले लिये जायें इसस बालको म रटने की प्रवृत्ति बढेगी।

(5) छोटे बच्चों के लिए रिक्त स्थान पूर्ति की अपेक्षा लघु उत्तर के प्रश्न पूछे जायें।

गलत—गुजरात में तेल शोधक कारखाना .... में है।

संशोधित—गुजरात में तेल शोधक कारखाना कहाँ है?

(ख) एकान्तर प्रत्युत्तर रूप या सही और गलत प्रश्न—इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर 'सत्य' या "असत्य" के रूप में होता है। कभी कभी प्रश्न का उत्तर हाँ या नहीं के रूप में भी हो सकता है। इस प्रकार यहाँ दो विकल्पों में से एक को चुनना पड़ता है।

उदाहरण

निम्नलिखित कथन यदि सही हों तो सत्य और गलत हों तो असत्य को चिह्नित करो। पहला कथन उदाहरणस्वरूप चिह्नित किया गया है।

(1) कार्बन डाई आक्साइड गैस चूने के पानी में अधिक मात्रा में गुजारने पर यह पानी दूधिया रहता है। (सत्य/असत्य)

(2) महात्मा गांधी का जन्म साबरमती में हुआ था। (सत्य/असत्य)

(3) भारत देश में सन् 1947 में संविधान लागू हुआ था। (सत्य/असत्य)

(4) sin θ का मान 0 और 1 के मध्य होता है। (सत्य/असत्य)

इसी प्रकार हाँ या नहीं रूप वाले कथन भी लिखे जा सकते हैं। उदाहरण एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर का तापमान 36 8°C होता है। (हाँ/नहीं)

इन प्रश्नों को कारण व परिणाम (Cause and effect) में सही सम्बन्ध की पहिचान करने की योग्यता जाँचने में भी प्रयुक्त किया जाता है।

निर्देश—निम्नलिखित में से प्रत्येक कथन के दो भाग हैं दोनों ही भाग सही हैं। आपको यह बताना है कि दोनों भागों का पारस्परिक सम्बन्ध सही है या नहीं। यदि सही है तो सत्य और सही न हो तो "असत्य" को चिह्नित करें।

उदाहरण

स्थिर दाब पर यदि गैस को गर्म किया जाय तो उसका आयतन बढ़ता है। (हाँ/नहीं)

उपरोक्त उदाहरण में प्रथम भाग 'गैस को गर्म करना' तथा दूसरा भाग "आयतन बढ़ना" है। यह सम्बन्ध सही है। विद्यार्थी 'हाँ' पर चिह्न लगाता है।

(1) पृथ्वी पर दिन रात होते हैं क्योंकि पृथ्वी सूय की परिक्रमा करती है।
(हां/नहीं)

(2) सौर चूल्हे का उपयोग दिन में ही किया जा सकता है क्योंकि इसमें धूप की गर्मी काम में लाई जाती है। (हां/नहीं)

ज्ञान के कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जो न तो पूणत सत्य और न ही पूणत असत्य हैं। इनका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

गुण

(1) इन पदों की रचना सरल है।
(2) कम समय में अधिक प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।
(3) कम समय में अधिक उत्तरों को जांचा जा सकता है।
(4) इनका निर्माण सभी तरह की विषय सामग्री से किया जा सकता है।
(5) इस प्रकार के प्रश्नों में वस्तुनिष्ठता होती है।
(6) ये पद तर्क एवं निणय शक्ति पर आधारित है।

दोष

(1) कई बार पूणत सत्य या पूणत असत्य पद न दिये जाने पर छात्रों में भ्रम उत्पन्न हो जाता है।
(2) इसमें अनुमान किये जाने की सभावना 50 प्रतिशत है।

सुझाव

(1) कथन की भाषा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए तथा वाक्य छोटे होने चाहिए।
(2) नकारात्मक कथन का उपयोग नहीं करना चाहिए।
(3) कुछ शब्द जैसे कोई नहीं, कभी नहीं, केवल, सदैव आदि का प्रयोग कथन बनाते समय नहीं करना चाहिए।

(ग) बहु विकल्पात्मक प्रश्न—इन प्रश्नों में किसी प्रश्न के 4 या 5 उत्तर दिये जाते हैं या किसी वाक्य की पूर्ति के लिए कई पूरक वाक्य दिये जाते हैं। विद्यार्थी उन उत्तरों या पूरक वाक्यों में से सर्वोत्तम का चयन कर प्रश्न के सम्मुख दिये रिक्त कोष्ठक में सर्वोत्तम वाक्य या उत्तर का सकेत अक्षर लिख देता है। ये प्रश्न जटिल विचारों या व्याख्याओं के परीक्षण में प्रयुक्त किए जाते हैं।

सामान्यत इनमें प्रश्न एक वाक्य से प्रारम्भ होता है जिसे स्तम्भ कहते हैं। स्तम्भ के नीचे कुछ उत्तर सुझाये जाते हैं जिन्हें विकल्प कहते हैं। इन विकल्पों में एक सवशुद्ध हल होता है। शेष गलत या चकराने वाले या विकपक होते हैं। ये विकपक सवशुद्ध हल से लगभग मिलते जुलते होने चाहिए। यदि विकपक विकल्प सर्वथा असम्भव हुए तो छात्र उन्हें आसानी से पहिचान कर अलग छोड देंगे। एक अच्छा उपाय यह भी है कि विकपक विकल्प ऐसी गलत धारणाओं या सकल्पनाओं

अथवा सामान्यतः की जाने वाली त्रुटियों पर आधारित होने चाहिए जो कि बालक प्रायः करते हैं।

उदाहरण

जाड़े में ऊनी वस्त्र पहने जाते हैं क्योंकि वे—

(अ) टिकाऊ होते हैं।

(ब) शरीर को गर्मी देते हैं।

(स) दिखने में सुन्दर होते हैं।

(द) शरीर की ऊष्मा को बाहर नहीं निकलने देते।

(य) इनको बार बार धोने की आवश्यकता नहीं है। ( )

गुण

(1) ये अधिक लचीले व प्रभावी होते हैं।

(2) इससे बालक की निर्णय शक्ति की जांच की जा सकती है।

(3) इनमें अनुमान लगाना सम्भव नहीं।

(4) ये सर्वाधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं तथा इनका अंकन सरल है।

अनुमान कम करने का उपाय

इसके लिए शुद्धि सूत्र का उपयोग किया जाता है—

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

S=शुद्ध किया हुआ अंक

R=सही उत्तरों की संख्या

W=गलत उत्तरों की संख्या

N=प्रत्येक प्रश्न में विकल्पों की संख्या

उदाहरण के लिए एक प्रश्न पत्र में 20 प्रश्न हैं तथा सभी प्रश्नों में पांच विकल्प दिए हैं। एक छात्र सभी प्रश्नों के उत्तर स्वरूप स लिख देता है जबकि केवल 4 प्रश्नों में 'स' उत्तर सही है। यदि एक प्रश्न 1 अंक का हो तो अध्यापक उसे 4 अंक दे देगा। छात्र के शुद्ध अंक निम्न प्रकार से ज्ञात किये जायेंगे—

$$S = 4 - \frac{16}{5-1}$$

$$= 4 - \frac{16}{4}$$

$$= 0$$

अत ऐसे छात्र को अनुमान का कोई लाभ नही मिलेगा।

दोष

(1) इसरो विचारो की अभिव्यक्ति की जाच सम्भव नही है।

(2) इस प्रकार के प्रश्नो म विचारो को सगठित करने का अवसर नही मिलता है।

(3) विकपक हेतु सम्भावित विकल्पो का चुनना एक कठिन काय है।

सुझाव

सही विकल्प को इस प्रकार लिखा जाये कि वह अन्य स मेल खाता हो तथा न अधिक लम्बा और न ही छोटा हो। सही उत्तर का क्रम भी प्रत्येक प्रश्न म बदलता हुआ होना चाहिए। भाषा सरल तथा आसानी से समझ मे आने वाली होनी चाहिए। यथासम्भव 5 विकल्पो को दिया जाना चाहिए।

तुल्य पद

इन प्रश्नो म सम्बन्धित पदो (शब्दो, वाक्याशो या तथ्यो) को दो समानान्तर स्तम्भो म रखा जाता है। परीक्षार्थी एक स्तम्भ के पदो की तुलना दूसरे स्तम्भ के पदो से करते हैं और सम्बन्धित पद के जोड़े बनाते है। ये मुख्यतया परिभाषाओ, शब्दो, नामो, घटनाओ आदि की तुलना म प्रयुक्त होते हैं।

नीचे स्तम्भ 'ए' म कुछ गसो के नाम तथा स्तम्भ 'बी' म गैसो के गुण दिये गय हैं। स्तम्भ 'ए' म दिये रिक्त-कोष्ठक म स्तम्भ 'बी' म से चयन किये हुए गुण का सकेताक्षर लिखें जिसका वह गुण है—

स्तम्भ 'ए'	स्तम्भ 'बी'
( ) ऑक्सीजन	(क) स्वय जलती है।
( ) क्लोरीन	(ख) चूने के पानी को दूधिया करती है।
( ) कार्बन-डाई-आक्साइड	(ग) जलने म सहायक है।
( ) हाइड्रोजन	(घ) भीगे फूलो को रगहीन कर देती है।

गुण

(1) इनमे अनेक प्रश्नों को थोडी सी जगह म दे दिया जाता है।

(2) ये प्रश्न कौन कब, कहा, क्या आदि प्रश्नो व उत्तरो पर बनाये जा सकते हैं।

(3) इनसे विषय वस्तु के ज्ञान की जाच शीघ्र होती है।

दोष

(1) इसमे रटी हुई विषय वस्तु की जाच अधिक होती है।

(2) ये निर्णय व तर्क शक्ति की जाच मे उपयोगी नहीं हैं।

(3) इनमें असगत तथा भ्रमपूर्ण सकेतो की सम्भावना बनी रहती है।

सुझाव

अनुमान लगाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए दूसरे स्तम्भ में पूरक कथनों की संख्या पहिले स्तम्भ की संख्या से अधिक होनी चाहिए। ऐसे संकेत जो प्रश्न के उत्तर चुनने में सहायक हों, निकाल देने चाहिए। एक प्रश्न में 5 से 10 तक पद होने चाहिए।

वस्तुनिष्ठ-परीक्षण की विशेषतायें

वस्तुनिष्ठ प्रश्न वे प्रश्न हैं जो कि बनावट में छोटे तथा सरल होते हैं तथा उनका उत्तर संक्षिप्त तथा केवल एक ही होता है। इसमें यह भी विशेषता है कि यदि इसका अंकन विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जावे तो उनके द्वारा दिये गये अंक समान होंगे। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ प्रश्न बनावट, उत्तर तथा अंकन की दृष्टि से व्यक्तिगत प्रभाव से प्रभावित नहीं होते हैं।

वस्तुनिष्ठ-परीक्षण एक ऐसा आसान परीक्षण है जिसकी सहायता से पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण भाग का परीक्षण एक प्रश्न-पत्र द्वारा किया जा सकता है।

इसमें निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

(1) इस परीक्षण में बहुत कम समय लगता है।

(2) इसका अंकन शीघ्रता से किया जा सकता है।

(3) यह बहुत अधिक व्यापक है तथा इससे पाठ्यक्रम का अधिकांश भाग का परीक्षण सम्भव है।

(4) ये अधिक विश्वसनीय हैं क्योंकि इनकी वस्तुनिष्ठता अधिक है।

(5) ये कमजोर तथा अच्छे विद्यार्थियों में शीघ्रता से भेद कर सकते हैं।

(6) ये नदानिक-परीक्षण में आसानी से काम में लाये जा सकते हैं।

सीमाएँ

(1) इनमें अनुमान लगाने से कुछ प्रश्नों के उत्तर भाग्यवश सही हो जाते हैं।

(2) इनके निर्माण के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(3) इनसे अधिक उपलब्धियों की जटिल प्रक्रिया की जाँच सम्भव नहीं।

(4) इससे छात्रों की लिखित अभिव्यक्ति का ह्रास होता है।

(5) सृजनात्मक चिन्तन का इससे परीक्षण नहीं किया जा सकता।

(6) छात्र की भावाभिव्यक्ति की जाँच इससे सम्भव नहीं।

निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ दोनों प्रकार के प्रश्नों में गुण एवं दोष हैं। अतः किसी बालक की पूर्ण जाँच करने के लिए किसी एक को आधार नहीं बनाया जा सकता। यही कारण है कि सार्वजनिक परीक्षाओं जैसे माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा आयोजित परीक्षा में दोनों प्रकार के प्रश्नों को रखा जाता है।

अध्यापक-निर्मित परख

(Teacher Made Test)

किसी निश्चित कार्य क्षेत्र में अर्जित किये गए ज्ञान, अवबोध, कौशल आदि का मापन ही परीक्षण है। शिक्षण की प्रक्रिया में बालक को अध्यापक पाठ्य वस्तु का अध्ययन कराता है, बालक के उपलब्धि स्तर की जानकारी प्राप्त करने के लिए समय समय पर वह परख या परीक्षा आयोजित करता है। फ्रीमैन के अनुसार—"एक शैक्षिक उपलब्धि-परीक्षण वह है जिस का निर्माण ज्ञान समूह एवं कौशल के मापन के लिए किया जाता है। सभी विद्यार्थियों का ज्ञान तथा ज्ञानार्जन-स्तर एक सा नहीं होता तथा विद्यार्थी अनेक विषय पढ़ते हैं अतः यह परीक्षण विषय वार तैयार किये जाते हैं।

प्रभावी शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक को अपने विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर की विस्तृत, स्पष्ट एवं सही जानकारी हो ताकि वह अपने अध्यापन को विद्यार्थियों के लिए अनुकूल तथा सहज ग्राह्य बना सके। विद्यार्थियों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे समय समय पर अपनी कमजोरियों की जानकारी प्राप्त कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। दोनों ही दृष्टियों से परीक्षण लाभप्रद एवं उपयोगी है।

इस सब के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण समुचित स्तर का तथा वस्तुनिष्ठ हो जिससे कि विद्यार्थी की उपलब्धि की सही एवं विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सके। प्रायः परीक्षण को लोग कुछ प्रश्नों का एक समूह मात्र समझ लेते हैं जिसमें विद्यार्थी कुछ समय के लिए व्यस्त रह उत्तर देता है। प्रश्न-पत्र निर्माण को भी कुछ प्रश्नों का समूह मान लेते हैं, चाहे वो कैसे भी हों। वास्तविकता कुछ और ही है। एक अच्छे प्रश्न पत्र के निर्माण के लिए एक निश्चित योजना बनानी पड़ती है तथा इसे वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय बनाने का पूर्ण प्रयास किया जाता है। अध्यापक को इसका ज्ञान होना अति आवश्यक है।

शिक्षक-निर्मित परखें

(Teacher Made Tests)

शिक्षक शिक्षार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का मूल्यांकन करने के लिए सत्र में अनेक बार मूल्यांकन करता है। सामान्यतः यह निम्नांकित प्रकार का होता है

(1) प्रत्येक पाठ के अन्त में मूल्यांकन,
(2) प्रत्येक इकाई के पश्चात् मूल्यांकन
(3) आवधिक मूल्यांकन,
(4) अर्द्ध वार्षिक और वार्षिक मूल्यांकन।

(1) पाठ के अन्त में मूल्यांकन

शिक्षक प्रतिदिन का शिक्षण आयोजित करते समय अपने विषय को ध्यान में रखकर दैनन्दिन पाठों के उद्देश्य निर्धारित करता है। पाठ की अवधि में वह ऐसी

परिस्थितियों का निर्माण करता है कि निर्धारित उद्देश्य प्राप्त हो सकें। पाठ के अन्त में यह जानकारी करना आवश्यक होता है कि निर्धारित उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो सके हैं। यह प्रतिदिन की प्रक्रिया होती है। इसके निम्नांकित लाभ हैं

(अ) शिक्षक को यह ज्ञान हो जाता है कि किस किस शिक्षार्थी ने पाठ को भली भांति ग्रहण किया है।

(ब) शिक्षक को अपनी क्रियाओं की प्रभावोत्पादकता का सही अनुमान हो जाता है।

(स) अगले दिन का पाठ कहाँ से प्रारम्भ करना है, यह निर्णय करने में सुविधा हो जाती है।

(द) शिक्षार्थियों को गृह कार्य के रूप में कितना कार्य देना है, इसका निर्णय करने में भी मूल्यांकन द्वारा सुविधा रहती है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर दैनन्दिन पाठों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

प्रतिदिन के पाठ का मूल्यांकन करने के लिए परख बनाना आवश्यक नहीं है शिक्षक कुछ चुने हुए प्रश्न पहले से ही निश्चित कर सकता है और पाठ की समाप्ति पर उन्हें पूछ कर अपना मत स्थिर कर सकता है।

पडताल सूची, पर्यवेक्षण तथा स्तर माप आदि का भी समय समय पर प्रतिदिन के पाठ का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए शिक्षक को पांच मिनिट से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। शिक्षक अपनी सूझ-बूझ का प्रयोग करके इस कार्य को सरलतापूर्वक कर सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि शिक्षक प्रतिदिन के मूल्यांकन के विचार के प्रति जागरूक रहे।

(2) इकाई-मूल्यांकन

प्रत्येक इकाई के शिक्षण के पश्चात् इकाई मूल्यांकन करना उपयोगी होता है। वास्तव में मूल्यांकन शिक्षण का आवश्यक अंग है मूल्यांकन के बिना शिक्षण की प्रक्रिया पूरी नहीं होती।

प्रत्येक इकाई के पश्चात् मूल्यांकन करने के निम्नांकित लाभ हैं

(1) यह निर्णय करना सम्भव होता है कि इकाई योजना के निर्धारित उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो सके हैं।

(2) शिक्षक शिक्षार्थी क्रियाएँ किस सीमा तक निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हुई हैं, यह जानकारी हो जाती है।

(3) शिक्षार्थी विषय वस्तु के कौन से अंश या अंशों में कमजोर रह गये हैं ताकि नवीन इकाई प्रारम्भ करने से पूर्व उस अंश या अंशों का पुनर्स्थापन किया जा सके।

(4) शिक्षार्थियों को अपनी उपलब्धियों का ज्ञान हो जाता है और वे और अधिक उत्साह एवं परिश्रम से नवीन इकाई सीखने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

(5) इकाई मूल्यांकन के स्तर पर सभी निर्धारित उद्देश्यों तथा पठित विषय वस्तु के विभिन्न पक्षों का सन्तुलित रूप से मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रतिदिन के पाठ के स्तर पर अनेक बार यह सम्भव नहीं होता।

इकाई-परख निर्माण करने की विधि

(Procedure to Prepare Unit Test)

इकाई-परख निर्माण करने का विशिष्ट ढंग है, जिसे अपनाने पर परख वैज्ञानिक ढंग में तैयार किया जा सकता है। यही ढंग अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाओं के लिए प्रश्न-पत्र तैयार करने में अपनाया जा सकता है। इस विधि के निम्नांकित प्रमुख चरण हैं

(1) अभिकल्प बनाना (To Prepare Design),
(2) रूप रेखा बनाना (To Prepare Blue Print),
(3) इकाई-परख बनाना (To Prepare Unit Test),
(4) उत्तर-तालिका एवं अंक-योजना बनाना (To Prepare Scoring key & Marking Scheme) और
(5) प्रश्नवार विश्लेषण पत्रक तैयार करना (To Prepare Question-wise Analysis Chart)।

(1) अभिकल्प बनाना (To Prepare Design)

अभिकल्प द्वारा निम्नांकित आयामों की दृष्टि से सामान्य नीति निश्चित की जाती है

(अ) उद्देश्यों की दृष्टि से अंक प्रभार (Weightage to Objective),
(ब) विषय वस्तु की दृष्टि से अंक प्रभार (Weightage to Content),
(स) प्रश्नों के प्रकार की दृष्टि से अंक प्रभार (Weightage to different form of Questions),
(द) विकल्पों की योजना (Scheme of Options),
(य) खंडों की योजना (Scheme of Sections)।

उपर्युक्त आयामों की दृष्टि से अंक प्रभार निश्चित कर लेने पर सभी उद्देश्यों, विषय-वस्तु के सभी अंशों एवं सभी प्रकार के प्रश्नों को परख निर्माण करने में समूहों का महत्त्व प्रदान किया जा सकता है।

यदि पूरे विद्यालय संगम के स्तर पर एक ही परख बनाने का निश्चय किया गया हो तो संगम के शिक्षक मिलकर अपने-अपने विषय में अभिकल्प निर्धारित कर सकते हैं।

बाद की परीक्षाओं में यह निश्चय प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ करते हैं। अभिकल्प वास्तव में परख निर्माण करने सम्बन्धी स्वीकृत नीति होती है, जो कि प्रति वर्ष नहीं बदलती।

अभिकल्प ही रूप रेखा बनाने का आधार होता है। एक अभिकल्प के आधार पर अनेक रूप रेखाएँ बनाई जा सकती हैं।

प्रत्येक विषय में अपने विषय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निम्न प्रकार से विभिन्न आयामों की दृष्टि से अभिकल्प बनाया जा सकता है—

(अ) उद्देश्यों की दृष्टि से अंक प्रभार (Weightage to Objectives)—इसके अन्तर्गत शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों का अंक प्रभार निश्चित किया जाता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इकाई परख बनाते समय केवल चार उद्देश्यों—ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग और कौशल का ही अंक प्रभार निश्चित किया जाता है। क्योंकि लिखित परीक्षा द्वारा इन उद्देश्यों की ही जाँच सम्भव है। अभिरुचियों, अभिवृत्तियों आदि की जाँच लिखित परीक्षा द्वारा सामान्यतः सम्भव नहीं होती। उक्त चार उद्देश्यों का अंक प्रभार, शिक्षण के समय, जिस उद्देश्य पर जितना बल दिया गया हो, उसी अनुपात में निश्चित किया जाना चाहिए। यदि इकाई शिक्षण में ज्ञान उद्देश्य पर ही विशेष बल दिया गया हो तो इकाई-परख बनाते समय भी ज्ञान उद्देश्य को अधिक अंक देने होंगे। शिक्षार्थियों के प्रति यह अन्याय होगा कि शिक्षक पढ़ाते समय तो केवल ज्ञान उद्देश्य को ध्यान में रखकर पढ़ाएँ और परख बनाते समय अवबोध, ज्ञानोपयोग आदि उद्देश्यों पर आधारित प्रश्न पूछें। उद्देश्यों की दृष्टि से अंक प्रभार निश्चित करने का एक नमूना निम्नानुसार हो सकता है—

उद्देश्यों की दृष्टि से अंक प्रभार

क्र सं	उद्देश्य	अंक	प्रतिशत
(1)	ज्ञान	10	40
(2)	अवबोध	8	32
(3)	ज्ञानोपयोग	5	20
(4)	कौशल	2	8
	योग	25	100

(ब) विषय वस्तु की दृष्टि से अंक प्रभार—इसके अन्तर्गत इकाई में निहित उप इकाइयों तथा उनमें निहित प्रकरणों के अनुसार अंकों का विभाजन किया जाता है। ध्यान यह रखा जाता है कि प्रत्येक उप इकाई में जितनी विषय वस्तु की मात्रा है उसके अनुसार अंकों का विभाजन किया जा सके। विषय वस्तु से अंक प्रभार निश्चित करने का नमूना अग्रांकित है—

विषय वस्तु की दृष्टि से अक प्रभार

क्र स	प्रकरण	अक	प्रतिशत
(1)	पहला	4	16
(2)	दूसरा	5	20
(3)	तीसरा	7	28
(4)	चौथा	4	16
(5)	पाचवा	5	20
	योग	25	100

(स) प्रश्नों के प्रकार की दृष्टि से अक प्रभार (*Weightage to different* form of questions)—अभिकल्प बनाने के लिए तीसरा निर्णय यह करना होता है कि विभिन्न प्रकार के प्रश्नो में से प्रत्येक का कितना अक प्रभार देना है।

यहा यह नात करना समीचीन होगा कि प्रश्न कितने प्रकार के होते हैं। मोटे रूप से प्रश्नो को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है—

(1) मुक्त उत्तरात्मक प्रश्न और

(2) निश्चित उत्तरात्मक प्रश्न।

(1) मुक्त उत्तरात्मक प्रश्न (Free Response Questions)

इस प्रकार के प्रश्नो में वे प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर अपनी भाषा में स्वतत्र अभिव्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है। निबन्धात्मक और लघूत्तरात्मक प्रश्न इसी प्रकार के प्रश्न होते हैं। निबन्धात्मक प्रश्नो में उत्तर की लम्बाई तीन-चार पृष्ठ तक हो सकती है जबकि लघु उत्तरात्मक प्रश्नो में उत्तर आधे पृष्ठ से अधिक नही होता। निम्नाकित उदाहरणो से निबन्धात्मक और लघूत्तरात्मक प्रश्नो का अन्तर स्पष्ट हो सकेगा—

निबन्धात्मक (Essay Type)—

(अ) पाचन प्रणाली के विभिन्न अग कौन-कौन से है? आमाशय में भोजन किस प्रकार पचता है? पाचन प्रणाली का नामाकित चित्र बनाकर समझाइए।

(सामान्य विज्ञान)

(ब) यूरोपीय जातियो में केवल अग्रेज ही भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में क्या सफल हो सके? समझाइए।

(सामाजिक ज्ञान)

(स) एक मजदूर 60 दिन के लिए इस शर्त पर रखा गया कि उसे प्रतिदिन 2 रु दिये जायेंगे परन्तु अनुपस्थित रहने पर 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से दण्ड देना होगा। यदि अन्त में उसे कुल मजदूरी 90 रुपये मिली हो तो बताओ वह कितने दिन उपस्थित रहा?

(अंकगणित)

लघूत्तरात्मक (Short answer type)

(अ) ब्रह्म समाज के संस्थापक कौन थे? उनके तीन धार्मिक सिद्धान्त लिखिए। (सामाजिक ज्ञान)

(ब) दौड़ने पर हृदय की गति तीव्र क्यों हो जाती है?

(सामान्य विज्ञान)

(2) निश्चित उत्तरात्मक प्रश्न (Fixed Response Questions)

इसके अन्तर्गत वे प्रश्न आते हैं जिनके उत्तर निश्चित होते हैं। वस्तुनिष्ठ और अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न इस श्रेणी में आते हैं। वस्तुनिष्ठ प्रश्न वे प्रश्न कहलाते हैं जिनमें शिक्षार्थियों को सही उत्तर दिये हुए विकल्पों में से किसी एक पर संकेत लगाकर चुनना होता है। इस प्रकार के प्रश्नों में यह विशेषता होती है कि उत्तर चाहे जितने परीक्षकों द्वारा जाँचा जाय, परिणाम में भिन्नता उत्पन्न नहीं होती।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नों में उत्तर या तो एक शब्द में या एक वाक्यांश में दिये जाते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों में उत्तर निश्चित होते हैं और जाँचने में भी वस्तुनिष्ठता विद्यमान रहती है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उदाहरण

(Example of Objective based Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न मुख्य रूप से चार प्रकार के होते हैं—

(1) सत्यासत्य प्रकार (True and False, Right and Wrong)

(2) तुलनपद प्रकार (Matching Type)

(3) बहुविकल्पात्मक प्रकार (Multiple Choice Form),

(4) रिक्त स्थान पूर्ति प्रकार (Fill up the Gaps)।

(1) सत्यासत्य प्रकार (True and False, Right and Wrong)

इस प्रकार के प्रश्नों को एकान्तर प्रत्युत्तर प्रकार या 'हाँ' अथवा 'नहीं' प्रकार भी कहा जाता है। इस प्रकार के प्रश्नों में दो विकल्पों में से एक को चुनना होता है। कुछ कथन दिये जाते हैं और उनमें से एक को चुनना होता है।

उदाहरण

निम्नलिखित कथनों में से जो सत्य हों उनके आगे सत्य के ऊपर ✓ और असत्य हों तो असत्य के ऊपर ✓ लगाइए।

(अ) चन्द्रग्रहण पूर्णिमा का ही होता है। (सत्य/असत्य)

(ब) बंगाल में गेहूँ अधिक पैदा होता है। (सत्य/असत्य)

(स) बड़ौदा गुजरात राज्य की राजधानी है। (सत्य/असत्य)

(2) तुल्यपद प्रकार

इस प्रकार के प्रश्नों में दो स्तम्भ होते हैं। प्रथम स्तम्भ में कुछ पद अथवा वाक्यांश होते हैं। दूसरे स्तम्भ में अव्यवस्थित रूप से प्रथम स्तम्भ से सम्बन्धित पद अथवा वाक्यांश लिखे रहते हैं। परीक्षार्थी से उन्हें व्यवस्थित रूप से लिखने को कहा जाता है।

उदाहरण

निम्नलिखित में एक ओर कृषि उपजें हैं और दूसरी ओर राज्यों की सूची है। प्रत्येक कृषि की उपज के आगे रिक्त कोष्ठक में उस राज्य का क्रमांक अंकित कीजिये, जहाँ वह उपज सर्वाधिक होती हो—

उपज		क्रमांक	राज्य
चाय	( )	1	मैसूर
चावल	( )	2	केरल
गेहूँ	( )	3	पश्चिमी बंगाल
कपास	( )	4	आसाम
तम्बाकू	( )	5	महाराष्ट्र
कहवा	( )	6	बिहार
		7	उत्तर प्रदेश
		8	आन्ध्रप्रदेश
		9	गुजरात
गन्ना	( )	10	पंजाब
		11	हरियाणा

(3) बहु विकल्पात्मक प्रकार

यह प्रकार वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में सर्वाधिक प्रचलित है। इस प्रकार के प्रश्नों में अनुमान से सही विकल्प चुनने की सम्भावना बहुत कम होती है। इसमें प्रश्न के दो भाग होते हैं। पहले भाग को कथन कहते हैं और दूसरे भाग को विकल्प। परीक्षार्थियों को कथन के अनुसार दिये हुए विकल्पों में से एक विकल्प चुनना होता है और विकल्प से सम्बन्धित अक्षर सामने रिक्त कोष्ठक में लिखना होता है।

उदाहरण

(1) सूर्य की किरणें 21 जून को कहां सीधी पड़ती हैं ?
(अ) मकर रेखा पर।
(ब) कर्क रेखा पर।
(स) उत्तरी ध्रुव वृत्त पर।
(द) भूमध्य रेखा पर।
(य) दक्षिणी ध्रुव वृत्त पर। ( )

(2) यदि पृथ्वी परिक्रमण के समय $66\frac{1}{2}^0$ के स्थान पर अपनी कक्षा के साथ 70^0 झुकी हुई होती तो कर्क रेखा का अक्षांश क्या होता ?
(अ) 20^0 उत्तरी अक्षांश।
(ब) $23\frac{1}{2}^0$ उत्तरी अक्षांश।
(स) 25^0 उत्तरी अक्षांश।
(द) 30^0 उत्तरी अक्षांश।
(य) $22\frac{1}{2}^0$ उत्तरी अक्षांश। ( )

(4) रिक्त स्थान पूर्ति प्रकार

इन प्रश्नों में शिक्षार्थियों को अपूर्ण कथनों अथवा वाक्यांशों में रिक्त स्थान की पूर्ति करनी होती है। ज्ञान उद्देश्य की जांच के लिए इस प्रकार के प्रश्न उपयुक्त होते हैं तथा इन प्रश्नों में अनुमान से उत्तर देने की सम्भावना कम हो जाती है।

उदाहरण—

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—
(अ) भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे।
(ब) मुसलमानों का धार्मिक ग्रंथ है। (सामाजिक ज्ञान)
(स) प्रत्येक भिन्न वाली संख्या में ऊपर वाले अंक कहलाते हैं।
(द) त्रिभुज के तीनों कोणों का योग होता है। (गणित)

इकाई जांच पत्र में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को कितना अंक भार देना है, यह तीसरा नीति सम्बन्धी निर्णय अभिकल्प बनाते समय लेना होता है। एक नमूना अग्रांकित हो सकता है—

प्रश्नो के प्रकार की दृष्टि से अक प्रभार

क्रम स	प्रश्न का प्रकार	अक	प्रश्न सख्या	प्रतिशत
(1)	निबन्धात्मक प्रश्न	4	1	16
(2)	लघूत्तरात्मक प्रश्न	8	4	32
(3)	अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न	4	2	16
(4)	वस्तुनिष्ठ प्रश्न	9	9	36
	योग	25	16	100

(ख) विकल्पो की योजना—परखो म विकल्प दन की परम्परा लम्ब समय स हे। सामान्यत प्रश्न-पत्रा म चार प्रकार से विकल्प दिया जाता है—

(1) सम्पूर्ण प्रश्न-पत्र म समग्र विकल्प
(2) प्रश्न-पत्र के अलग अलग खण्डा म समग्र विकल्प,
(3) किसी प्रश्न म आन्तरिक समग्र विकल्प, और
(4) किसी प्रश्न म आन्तरिक एकान्तर विकल्प।

प्रत्येक का स्पष्टीकरण करना उपयुक्त होगा।

(1) सम्पूर्ण प्रश्न-पत्र मे समग्र विकल्प

पारम्परिक प्रश्न-पत्रा म इस प्रकार का विकल्प प्राय दिया जाता रहा है। इस प्रकार के विकल्प म प्रश्न-पत्र म आठ दस प्रश्न दिय हुए हाते हैं आर कोई स पाँच अथवा छ प्रश्न करन के लिए परीक्षार्थियो का निर्देश दिया जाता है। यह विकल्प-याजना अच्छी नही मानी जाती क्योकि इसम परीक्षार्थी यदि आधा पाठ्य क्रम भी भली भाति अध्ययन कर ले ता वह अच्छे अक प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार के प्रश्न पत्रो के परिणामा के आधार पर शिक्षार्थियो की परस्पर तुलना करना भी अवज्ञानिक है। अत इस प्रकार की विकल्प-याजना का नवीन परीक्षा पद्धति म कोई स्थान नही है।

(2) प्रश्न-पत्र के अलग-अलग खण्डा मे समग्र विकल्प

यह योजना प्रथम योजना का सुधरा हुआ रूप है। इसके अन्तगत परीक्षक प्रश्न पत्र को दो या तीन खण्डा म विभाजित कर देता है और यदि पूर प्रश्न पत्र म दस प्रश्न हो और छ प्रश्न करने हो तो वह निर्देश देता है कि प्रथम खण्ड मे से

दो प्रश्न और तृतीय खण्ड में से दो प्रश्न करना अनिवार्य है। इस योजना में परीक्षार्थियों को सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का अध्ययन करना होता है, परन्तु फिर भी प्रत्येक खण्ड में विकल्प होने के कारण उसकी सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की जाँच नहीं होती। इस विकल्प योजना के परिणामों के आधार पर भी परीक्षार्थियों की परस्पर तुलना करना अवैज्ञानिक होता है।

(3) किसी प्रश्न में आंतरिक समग्र विकल्प

इस विकल्प योजना में प्रश्न तो सभी करने होते हैं, परन्तु किसी किसी प्रश्न में आंतरिक समग्र विकल्प दे दिया जाता है, जैसे किसी प्रश्न में चार खण्ड दिये हुए हों तो निर्देश दिया जाता है कि कोई से दो कीजिए। इस योजना में विकल्प का प्रभाव प्रश्न विशेष तक ही सीमित रहता है और अन्य प्रश्न प्रभावित नहीं होते। यदि विकल्प देना आवश्यक हो तो इस प्रकार का विकल्प देने में विशेष हानि नहीं है।

(4) किसी प्रश्न में आंतरिक एकान्तर विकल्प

इस विकल्प-योजना में कुछ प्रश्नों में आंतरिक एकांतर विकल्प दे दिया जाता है। ऐसी स्थिति में दो प्रश्नों के बीच में "अथवा" लिखा जाता है, जिसका प्रयोजन यह होता है कि दोनों में से कोई भी प्रश्न किया जाय। सामान्यतः इस प्रकार के विकल्प में दोनों प्रश्न समान कठिनाई के होते हैं और एक ही प्रकार की विषय वस्तु पर आधारित होते हैं। इस प्रकार की विकल्प योजना से कोई हानि नहीं होती, यदि दोनों प्रश्न समान कठिनाई के हों तथा एक ही विषय वस्तु पर आधारित हों।

नवीन परीक्षा पद्धति में विकल्पों का समावेश नहीं किया जाता। अधिक से अधिक विकल्प देना हो तो वह आंतरिक एकांतर विकल्प होना है। अभिकल्प का निर्माण करते समय परीक्षक को यह ज्ञात होना चाहिये कि क्या उसे विकल्प देना है और देना है तो वह किस प्रकार का होगा ?

(घ) खण्डों की योजना—इसके अन्तर्गत यह निश्चय किया जाता है कि प्रश्न पत्र में कितने खण्ड रखने हैं। सामान्यतः नवीन परीक्षा-पद्धति में वस्तुनिष्ठ तथा अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न एक खण्ड में तथा निबंधात्मक तथा लघूत्तरात्मक दूसरे खण्ड में पूछे जाते हैं। ऐसा करने से जाँचने में सुविधा रहती है।

(2) रूपरेखा बनाना

अभिकल्प निश्चित करने के पश्चात् परख अथवा प्रश्न-पत्र बनाने की दिशा में दूसरा मुख्य पद रूप रेखा बनाना है। रूप रेखा उस त्रि विमितीय चार्ट का नाम है जिसमें अभिकल्प के अनुसार उद्देश्य, विषय वस्तु प्रश्नों के प्रकार एवं विकल्प को ध्यान में रखकर प्रश्न पत्र की सम्पूर्ण रूप रेखा बनाई जाती है।

इस स्तर पर अभिकल्प और रूप रेखा म अन्तर ज्ञात करना उपयुक्त होगा

अभिकल्प	रूप रेखा
1 यह प्रश्न-पत्र निर्माण करने के लिए स्वीकृति नीति का सूचक होता है।	1 यह प्रश्न पत्र निमाण करने के लिए कार्यपरक योजना है।
2 यह प्रश्न पत्र निमाण करने के लिए निम्नांकित विभिन्न आयामो की दृष्टि स दिशा प्रदान करता है—	2 यह प्रत्यक प्रश्न की दृष्टि स निम्नांकित सूचनायें प्रदान करती है—
(अ) उद्देश्यो की दृष्टि स अक प्रभार,	(अ) जाचा जाने वाला उद्देश्य,
(ब) विषय-वस्तु की दृष्टि स अक प्रभार,	(ब) विषय वस्तु जिस पर प्रश्न आधारित है
(स) विभिन्न प्रकार क प्रश्नो की दृष्टि स अक प्रभार	(स) प्रश्न का प्रकार, और
(द) विकल्प-योजना, और	(द) प्रत्येक प्रश्न का अक प्रभार।
(य) खण्डो की योजना।	
3 यह विषयाध्यापको की समिति द्वारा निश्चित किया जाता है।	3 इसका निमाण परीक्षक स्वय करता है और वह अपनी रूप रखा अभिकल्प क अनुसार बनाता है।
4 अभिकल्प प्रतिवर्ष बदलन की आवश्यकता नही होती। अत यह आने वाले कुछ वर्षों तक काम म लिया जा सकता है।	4 यह प्रत्यक बार बनाना होता है और एक अभिकल्प क आधार पर अनेक रूप रेखाएँ बनाई जा सकती है।

इस प्रकरण म दिय गय अभिकल्प क आधार पर इकाई प्रश्न पत्र का रूप रेखा बनाई जा सकता है। एक रूप रेखा अग्रांकित हो सकती है—

रूप रेखा मे काम मे लिए गए सकेता का स्पष्टीकरण

(1) कोष्ठक के अन्दर का अक प्रश्न सख्या तथा बाहर का अक कुल अको का सूचक ह।

(2) नि=निबन्धात्मक प्रश्न
ल=लघूत्तरात्मक प्रश्न
अ ल=अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न
व=वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

(3) यह चिह्न आतरिक एकातर विकल्प का सूचक है इसलिये इसके अक योग म सम्मिलित नही किये गये हैं।

उक्त रूप रेखा म उद्देश्यो के खण्डो तथा प्रकरणो के खण्डो का योग अभिकरण म निर्धारित अक प्रभार के अनुसार है। प्रश्नो के प्रकार का योग भी अभिकल्प के अनुसार है। इस प्रकार रूप रेखा अभिकल्प का क्रियात्मक पक्ष है।

(3) इकाई-परख बनाना

प्रश्न पत्र की रूप रेखा बना लेने के पश्चात् इकाई प्रश्न-पत्र बनाया जाता है। सर्वप्रथम पहले प्रकरण म विभिन्न उद्देश्यो के अन्तगत जिस प्रकार के प्रश्न बनाने होते है, बनाये जाते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रकरणो के अन्तगत प्रश्न बनाये जाते ह।

सभी प्रकरणो के अन्तगत प्रश्न बना लेने के पश्चात्, एक एक प्रकार के प्रश्नो को एक साथ लिख लिया जाता ह, जसे वस्तुनिष्ठ प्रश्नो को एक साथ, अति-लघूत्तरात्मक प्रश्नो को एक साथ आदि। एक एक प्रकार के प्रश्नो को एक साथ लिखते समय उनको सरल से कठिनाई के क्रम म जमाया जाता है। ऐसा करने से परीक्षार्थियो म प्रश्न पत्र हल करने का उत्साह पदा होता है, परन्तु यदि प्रारम्भ म ही कठिन प्रश्न हुआ तो उनम निराशा उत्पन्न हो सकती है।

(4) उत्तर-तालिका एव अक योजना बनाना

परीक्षक को प्रश्न पत्र बनाने के साथ ही साथ उत्तर-तालिका तथा अक योजना बना लेनी चाहिए। निश्चित उत्तरात्मक प्रश्नो के लिए उत्तर तालिका ही पर्याप्त होती है, परन्तु मुक्त उत्तरात्मक प्रश्नो के लिए उत्तरो को अंकित करने की योजना बनाना आवश्यक होता है।

उत्तर-तालिका तथा अक योजना बना लेने से एक से अधिक परीक्षक हो तो भी जाचने म समानता रखना सम्भव होता है। इससे जाचने की प्रक्रिया तक सगत एव वैज्ञानिक हो जाती है।

प्रश्न पत्र के साथ ही अक योजना बना लेने से परीक्षक को उत्तर की सभावित लम्बाई ज्ञात हो जाती है और आवश्यकता हो तो वह अपने प्रश्न म वाछित सुधार भी कर सकता है।

प्रश्न पत्र की रूप रेखा

उद्देश्य	ज्ञान				अवबोध				ज्ञानोपयोग				कौशल				अंकों का योग	प्रश्नों का योग
प्रकार→ प्रकरण	नि	ल	अ ल	व	नि	ल	अ ल	व	नि	ल	अ ल	व	नि	ल	अ ल	व		
पहला				1 (1)							2 (1)	1 (1)					4	3
दूसरा				1 (1)		2 (1)		1 (1)				1 (1)					5	4
तीसरा	4 (1)			1 (1)				1 (1)				1 (1)					7	4
चौथा	4 (1)		2 (1)	1 (1)		2 (1)											4	2
पाँचवा						2 (1)									2 (1)		5	3
अंकों का योग				10				8				5			2		25	—
प्रश्नों का योग				6				5				4			1		—	16

रूप रेखा मे काम मे लिए गए सकेता का स्पष्टीकरण

(1) कोष्ठक क अन्दर का अक प्रश्न सख्या तथा बाहर का अक कुल अको का सूचक है।

(2) नि=निबन्धात्मक प्रश्न
ल=लघूत्तरात्मक प्रश्न
अ ल=अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न
व=वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

(3) यह चिह्न आतरिक एकातर विकल्प का सूचक है इसलिय इसके अक योग म सम्मिलित नही किये गय हैं।

उक्त रूप रेखा म उद्देश्यो के खण्डो तथा प्रकरणो के खण्डो का योग अभिकरण म निधारित अक प्रभार के अनुसार है। प्रश्नो के प्रकार का योग भी अभिकल्प के अनुसार है। इस प्रकार रूप रेखा अभिकल्प का क्रियात्मक पक्ष है।

(3) इकाई-परख बनाना

प्रश्न-पत्र की रूप रेखा बना लेने के पश्चात् इकाई प्रश्न-पत्र बनाया जाता है। सवप्रथम पहले प्रकरण म विभिन्न उद्देश्यो के अन्तगत जिस प्रकार के प्रश्न बनाने होते है, बनाये जाते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रकरणो के अन्तगत प्रश्न बनाये जाते है।

सभी प्रकरणो क अन्तगत प्रश्न बना लेने के पश्चात्, एक एक प्रकार के प्रश्नो को एक साथ लिख लिया जाता है, जस वस्तुनिष्ठ प्रश्नो को एक साथ, अति लघूत्तरात्मक प्रश्नो को एक साथ आदि। एक एक प्रकार के प्रश्नो को एक साथ लिखते समय उनको सरल मे कठिनाई के क्रम म जमाया जाता है। ऐसा करने से परीक्षार्थियो म प्रश्न पत्र हल करने का उत्साह पदा होता है परन्तु यदि प्रारम्भ मे ही कठिन प्रश्न हुआ तो उनम निराशा उत्पन्न हो सकती है।

(4) उत्तर-तालिका एव अक योजना बनाना

परीक्षक को प्रश्न पत्र बनाने के साथ ही साथ उत्तर-तालिका तथा अक-योजना बना लेनी चाहिए। निश्चित उत्तरात्मक प्रश्नो के लिए उत्तर-तालिका ही पर्याप्त होती है परन्तु मुक्त उत्तरात्मक प्रश्नों के लिए उत्तरो को अकित करने की योजना बनाना आवश्यक होता है।

उत्तर-तालिका तथा अक योजना बना लेने से एक स अधिक परीक्षक हो तो भी जाचने म समानता रखना सम्भव होता है। इससे जाचने की प्रक्रिया तक सगत एव वैज्ञानिक हो जाती है।

प्रश्न-पत्र के साथ ही अक-योजना बना लेने से परीक्षक को उत्तर की सभावित लम्बाई ज्ञात हो जाती है और आवश्यकता हो तो वह अपने प्रश्न मे वाछित सुधार भी कर सकता है।

(5) प्रश्नवार विश्लेषण पत्रक तैयार करना

प्रश्नवार पत्र बनाने के बाद को व्यवस्थित बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक होता है कि प्रश्नवार विश्लेषण-पत्रक तैयार किया जाय। इसका प्रारूप निम्नानुसार होता है—

प्र. सं.	उद्देश्य	विशिष्टीकरण	प्रकरण	प्रश्न प्रकार	अंक	समय	कठिनाई का स्तर
1	2	3	4	5	6	7	8

उक्त प्रकार के प्रारूप में प्रत्येक प्रश्नवार सूचना अंकित कर देने के निम्नांकित लाभ हैं—

(1) विभिन्न उद्देश्यों के अन्तर्गत कौन कौन से विशिष्टीकरणों को प्रश्न-पत्र में सम्मिलित किया गया है यह ज्ञात हो जाता है।

(2) पूरा प्रश्न-पत्र हल करने में कितना समय लगेगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

(3) प्रश्न पत्र में कितने प्रश्न सरल, कितने सामान्य तथा कितने कठिन हैं इसका ज्ञान हो जाता है। अच्छे प्रश्न पत्रों में यह प्रतिशत क्रमशः 15, 70 और 15 के लगभग होता है।

आवधिक परखें

निश्चित अवधि के पश्चात् शैक्षिक उपलब्धि की जाँच करने के लिए प्रत्येक विद्यालय में आवधिक परखों का आयोजन किया जाता है। इनके आयोजन से शिक्षार्थी सत्र पर्यन्त नियमित रूप से अध्ययन करते रहते हैं। यह अवश्य है कि जिस विद्यालय में प्रत्येक इकाई शिक्षण के पश्चात् इकाई मूल्यांकन किया जाता हो वहाँ इनके आयोजन का विशेष महत्त्व नहीं है। परन्तु जहाँ प्रत्येक इकाई शिक्षण के पश्चात इकाई मूल्यांकन करना सम्भव न हो, वहाँ आवधिक परखों का आयोजन करना नितान्त आवश्यक है। आवधिक परखों में प्रश्न पत्र निर्माण करने की वही विधि अपनाई जा सकती है जो इकाई मूल्यांकन के अन्तर्गत स्पष्ट की गई है।

अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाएं

अर्द्धवार्षिक परीक्षा सत्र के मध्य में तथा वार्षिक परीक्षा सत्र के अन्त में आयोजित की जाती हैं। एक समय था जब कि शिक्षार्थियों की क्रमोन्नति वार्षिक परीक्षा के आधार पर ही की जाती थी। परन्तु मूल्यांकन के इस विचार ने कि जिस प्रकार शैक्षणिक विकास एक क्रमिक एवं अनवरत प्रक्रिया है, मूल्यांकन भी क्रमिक एवं अनवरत रूप से होना चाहिए वार्षिक परीक्षा के महत्त्व को घटा दिया है। राजस्थान राज्य में आवधिक परखों अर्द्धवार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षा के सम्मिलित प्राप्तांकों के आधार पर क्रमोन्नति की जाती है। लगभग ऐसी ही व्यवस्था

अन्य राज्यो म है। इतना सब होते हुए भी अर्द्ध वार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाए परम्परागत प्रभाव के कारण अपनी विशिष्टता बनाए हुए है। परन्तु उपयुक्त यही होगा कि प्रत्येक इकाई शिक्षण के पश्चात् इकाई मूल्याकन किया जाय तथा इनको ही शिक्षार्थी की क्रमोन्नति का आधार बनाया जाए। अर्द्ध वार्षिक एव वार्षिक परीक्षाओ के लिए प्रश्न पत्र बनाने का वही ढग अपनाया जाना चाहिए जो इकाई मूल्याकन के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

पुनराध्यापन

शिक्षक का दायित्व विभिन्न परखो का आयोजन कर तथा शिक्षार्थियो की उपलब्धियो का अनुमान लगाकर ही पूरा नही हो जाता। वास्तव म यह तो मूल्याकन का एक पक्ष है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष उन अध्याप्य बिन्दुओ का पुनराध्यापन करना है, जिनको शिक्षार्थी भलीभाति ग्रहण नही कर पाए हो। इस स्तर पर पुन प्रत्येक की वैयक्तिक कठिनाइयाँ दूर की जाती हैं तथा शिक्षार्थियो का शैक्षणिक स्तर उस धरातल तक उठाने का प्रयास किया जाता है जो कि अगली शिक्षण इकाई को सीखने के लिए आवश्यक होता है।

साराश

मूल्याकन शिक्षार्थियो के व्यवहारगत परिवर्तन विषयक साक्ष्यो का सकलन करने तथा परिवर्तन के स्तर, प्रकृति तथा दिशा के स्तर, प्रकृति तथा दिशा के सम्बन्ध मे निर्णय करने की प्रक्रिया है। इस दृष्टि से मापन और मूल्याकन म अन्तर है। मूल्याकन म मापन के साथ ही साथ मूल्य निर्धारण का तत्त्व भी निहित है।

मूल्याकन का आधार शैक्षणिक उद्देश्य ही हैं। परीक्षा और मूल्याकन म भी बहुत अन्तर है। इनमे आवृत्ति की दृष्टि से, अन्तवस्तु की दृष्टि से, विधियो की दृष्टि से एव उपयोग की दृष्टि से अन्तर है।

मूल्याकन सदा उद्देश्य केन्द्रित होता है यह शिक्षार्थी अभिस्थापित होता है यह अनवरत प्रक्रिया है यह व्यापक होता है। यह सख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनो होता है, यह सहकारी प्रक्रिया है, यह निदानात्मक होता है, एव यह अन्तक्रियात्मक होता है।

मूल्याकन की अनेक प्रविधिया होती है। मुख्य मुख्य ये है—पडताल-सूची, स्तर माप, घटना वृत्त प्रपत्र सचित अभिलेख, पर्यवेक्षण, साक्षात्कार, समाजमिति, परखे आदि।

मूल्याकन एक अनवरत प्रक्रिया ह अत प्रत्येक पाठ तथा प्रत्येक इकाई के पश्चात् मूल्याकन किया ही जाना चाहिए।

इकाई परख बनाने के लिए अभिकल्प बनाना रूप रेखा बनाना, प्रश्न-पत्र का निर्माण करना, उसकी उत्तर-तालिका तथा अक-योजना बनाना तथा प्रश्नवार

विश्लेषण पत्रक तयार करना होता है। यही प्रक्रिया अर्द्ध वार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षा के लिए भी निश्चित है।

विभिन्न प्रकार के प्रश्नो के अपने-अपने गुण दोष है। अत उद्देश्य और विषय वस्तु को ध्यान म रखकर प्रश्न का चुनाव किया जाना चाहिए। प्रश्न-पत्र मे विकल्पो की योजना ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षार्थी सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के लिए प्रेरित हो सकें।

शिक्षक को मूल्याकन करके ही मतोष नही करना चाहिए, परन्तु मूल्याकन के पश्चात् उन शिक्षण बिन्दुओ का पुनराध्यापन करना चाहिए जिनम शिक्षार्थी कमजोर दृष्टिगत हो। तभी मूल्याकन द्वारा शिक्षार्थियो के स्तर म सुधार किया जा सकता है।

अन्त म पाच इकाई परखो के नमून उनके अभिकल्प, रूप रेखा, उत्तर-तालिका तथा अक योजना तथा प्रश्नवार विश्लेषण के साथ दिये जा रहे हैं। इन नमूनो स शिक्षको को अपने-अपने विषय मे वैज्ञानिक ढग से प्रश्न पत्र बनाने मे सहायता मिलेगी।

अनिवार्य हिन्दी के नमूने के इकाई परख का अभिलेख तथा रूप रेखा

(1) उद्देश्यो की दृष्टि से अक भार

क स	उद्देश्य	अक	प्रतिशत
(1)	ज्ञान	12	48
(2)	अर्थ ग्रहण	4	16
(3)	अभिव्यक्ति	8	32
(4)	मौलिकता	1	4
	योग	25	100

(2) प्रश्नो का प्रकार की दृष्टि से अक प्रभार

क स	प्रश्न का प्रकार	प्रश्न स	अक	प्रतिशत
(1)	वस्तुनिष्ठ	10	10	40
(2)	लघूत्तरात्मक	7	10	40
(3)	निबन्धात्मक	1	5	20
	योग	18	25	100

(3) उप इकाई की दृष्टि से अक भार

क स	उप इकाई	अक	प्रतिशत
(1)	विनय	3	12
(2)	बाल लीला	9	36
(3)	किशोर एव शृगार	10	40
(4)	वियोग	3	12
	योग	25	100

रूपरेखा

उद्देश्य	ज्ञान			अर्थ ग्रहण			अभिव्यक्ति			मौलिकता	योग
प्रकार उप इकाई	नि	ल	व	नि	ल	व	नि	ल	व	ल	
विनय			2 (2)		+ ½ (1)			+ ½ (1)			3 (3)
बाललीला	2 (1)	+ 1 (2)	1 (1)			1 (1)	3 (1)	+ 1(2)			9 (5)
किशोर लीला		2 (2)	+ 2 (2)		½ (1)	1 (1)		1 (1) 2 (2) + ½ (1)		1 (1)	10 (7)
वियोग			2 (2)			1 (1)					3 (3)
योग	2	3	7	—	1	3	3	5		1	25 (18)
सम्पूर्ण योग		12			4			8		1	25 (18)

नोट (अ) बड़ी पंक्तियों में एक जैसे चिह्न पर ही प्रश्न के द्योतक हैं।
(ब) कोष्ठक में प्रश्न-संख्या तथा कोष्ठक के बाहर वाली संख्या अंकों की द्योतक है।
(स) रूप रेखा में नि ल तथा व क्रमश निबंधात्मक, लघूत्तरात्मक तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के द्योतक हैं।

इकाई परख

इकाई-सूर के पद

समय 40 मिनिट —अधिकतम अंक 25

निर्देश (अ) सभी प्रश्न करने अनिवार्य हैं।
(ब) खण्ड "अ" के प्रश्नों का उत्तर प्रश्न के सामने दिये गये कोष्ठक में अंकित करना है। खण्ड "ब" के लिए अलग पृष्ठ दिए गए हैं।
(स) पहिले खण्ड "अ" के प्रश्न हल करो तथा बाद में खण्ड "ब" के।

खण्ड (अ)

समय —पूर्णांक

(1) मधुपुरी का अर्थ है
(अ) व्रज
(ब) स्वर्ग
(स) मथुरा
(द) गोकुल
(य) द्वारिका ( )

(2) 'इक नदिया इक नार कहावत' यहाँ नार शब्द का अर्थ है
(अ) नाड़ी
(ब) नारी
(स) नाला
(द) नाल
(य) नाहर ( )

(3) 'मूड़ चढ़ना' मुहावरे का अर्थ है
(अ) इतराना
(ब) खुश होना
(स) नाराज होना
(द) दुःखी होना
(य) मनमानी करना ( )

(4) सूरदास ने पक्षी की रक्षा का वर्णन किस उद्देश्य से किया है ?
(अ) भगवान की शक्ति बताने के लिए
(ब) भगवान की भक्त-वत्सलता बताने के लिए
(स) भगवान की प्रार्थना करने के लिए
(द) पक्षी की रक्षा करने के लिए
(य) पक्षी की दीनता बताने के लिए ( )

(5) 'बीचहि बोल उठे हलधर तब, इनके माय न बाप' ?
हलधर ने कृष्ण के लिए यह बात क्यों कही ?
(अ) वे कृष्ण से जलते थे
(ब) वे कृष्ण को चिढ़ाते थे
(स) वे कृष्ण से बदला ले रहे थे
(द) वे कृष्ण को रुलाना चाहते थे
(य) वे कृष्ण के सौतेले भाई थे ( )

(6) राधा के आने पर कृष्ण माता से लड़ना क्यों छोड़ देते थे
(अ) राधा के प्रेम के कारण
(ब) पिता के भय के कारण
(स) राधा की मीठी वाणी के कारण
(द) राधा को प्रभावित करने के लिए
(य) माता को राधा का परिचय देने के कारण ( )

(7) 'ले जनि जाय चुराय राधिका, कछुक खिलौना मेरो'
इस पंक्ति से कृष्ण की कौनसी बात प्रकट होती है ?
(अ) वे विनोदी थे
(ब) वे चतुर थे
(स) वे प्रेमी थे
(द) वे खिलाड़ी थे
(य) वे शंकालु थे ( )

(8) 'तू मोहि को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीज'
इस पंक्ति में कृष्ण का कौनसा भाव प्रकट होता है ?
(अ) क्रोध
(ब) दुःख
(स) घृणा
(द) खीज
(य) व्यथा ( )

(9) तुम जानत राधा है छोटी, चतुराई अंग अंग भरी है'
गोपियों के इस कथन का क्या भाव है ?
(अ) ईर्ष्या
(ब) द्वेष
(स) क्रोध
(द) भय
(य) व्यंग्य

(10) तजे न प्राण सूर दसरथ लौं, हुतो जनम निबह्यो'
यशोदा के ये शब्द नन्द को किस भाव से प्रेरित होकर कहे ?
(अ) क्रोध
(ब) घृणा
(स) पुत्र प्रेम
(द) ग्लानि
(य) दुःख

(11) गंगा को समदर्शी क्या कहा है ?

(12) 'लै दीन्हा अपने कह हरि मुख, खात अल्प हँसि हैरो'
कृष्ण राधा का माखन खाते हुए क्यों हँसे ?

(13) कृष्ण खेलन क्यों नहीं जाते थे ?

खण्ड (ब)

(14) ग्वालिन कृष्ण को चोरी करते पकड़कर भी उन्हें दण्ड क्यों नहीं दे सकी ?
(15) गोपियों ने राधा को 'अति ही खोटी' क्यों कहा ?
(16) गोपियाँ मुरली के खातिर कृष्ण को दोष क्या नहीं देना चाहती थीं ?
(17) श्री कृष्ण ने राधा का परिचय जिस प्रकार दिया उसके आधार पर कल्पना से उत्तर दीजिए कि राधा ने अपनी माता को कृष्ण का प्रथम परिचय कैसे दिया होगा ?

(18) बाल-लीला के पदों के आधार पर कृष्ण के निम्नलिखित गुणों को बताने वाले एक एक उदाहरण दीजिए
(1) वे चतुर थे ।
(2) वे बड़े गुस्सा वाले थे ।
(3) वे भोले थे ।

उत्तर-तालिका तथा अंक-योजना

खण्ड (अ)

प्रश्न संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
उत्तर—	स	स	अ	ब	ब	द	अ	द	अ	ब	शुद्ध और गंदे जल का एकसा करने के कारण वि व 1/2 शुद्ध भाषा 1/2	राधा को चिढ़ाने के लिए वि व 1/2 शुद्ध भाषा 1/2	ग्वाले उन्हें चिढ़ाते थे वि व 1/2 शुद्ध भाषा 1/2
अंक	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1

खण्ड (ब)

प्र सं	अपेक्षित उत्तर	अंक	योग
14	क्रोध होते हुए भी प्रेम के कारण कृष्ण को दण्ड न दे सकी ।	वि व 1/2 शुद्ध भाषा 1/2	1
15	राधा को कृष्ण अधिक चाहते थे इसलिए गोपियों ने ईर्ष्या के कारण उसे खोटी कहा ।	वि व 1/2 शुद्ध भाषा 1/2	1
16	वे कृष्ण को अत्यधिक स्नेह करती थी अतः मुरली के दोषों के कारण कृष्ण को दोष नहीं दे सकी ।	वि व 1/2 शुद्ध भाषा 1/2	1

प्र स	अपेक्षित उत्तर	अंक	योग
17	कल मैं कठिनाई म पड गई थी । गायें मुझे मार देती पर अचानक कृष्ण ने आकर मुझे बचा लिया और स्वय गाय की फेंट म आ गए । या इसी प्रकार के अन्य उत्तर ।	मौलिकता 1 शुद्ध भाषा 1	2
18	वे चतुर थे—माखन चोरी करते हुए कृष्ण का पकडे जाना । वे गुस्से वाले थे—मित्रो के चिढ़ान पर खेलने न जाना । वे भोले थे—बडे भाई की शिकायत करना ।	उदाहरण 2 शुद्ध भाषा 2	4

प्रश्न-पत्र का प्रश्नानुसार विश्लेषण

प्र स	उद्देश्य	अपेक्षित परिवर्तन	विषय	उप विषय	प्रश्न का स्वरूप	अक	कठिनाई का अनुमानित स्तर	समय
1	ज्ञान	प्रत्यभिज्ञान	सूर के पद	भाषा तत्त्व	वस्तु निष्ठ	1	सरल	1 मि
2	ज्ञान	,,	,,	,,		1	सामान्य	1 मि
3	ज्ञान	,,	,,	,	,	1	सरल	1 मि
4	ज्ञान	तुलना		विषय वस्तु	,	1	सामान्य	1 मि
5	ज्ञान	अन्तर	,	,	,	1	सामान्य	1 मि
6	ज्ञान	,,	,,	,		1	,,	1 मि
7	ज्ञान	,,	,,	,,	,,	1		1 मि
8	अर्थ ग्रहण	भाव पहचानना	,,	मार्मिक स्थल	,	1	कठिन	1 मि
9	,,	,,	,,	,,	,,	1	,	1 मि
10	,,	,	,		,	1		1 मि
11	ज्ञान	प्रत्यास्मरण	,,	वि व	लघूत्तर	1	सरल	1 मि
	अभिव्यक्ति	शुद्ध भाषा						
12	,	,,	,	,		1	सामान्य	2 मि

13	ज्ञान अभिव्यक्ति	प्रत्यास्मरण शुद्ध भाषा पद	सूर के	वि व	लघूत्तर	1 सामान्य	2 मि
14	,,	,,	,,	,,	,,	1 ,,	3 मि
15	,,	,,	,,	,,	,,	2 ,,	3 मि
16	,,	तुलना शुद्ध भाषा	,,	,,	,,	2 ,,	4 मि
17	मौलिकता अभिव्यक्ति	स्वानुभूत एव गृहीत भाव की अभिव्यक्ति	,,	,,	,,	2 कठिन	5 मि
18	ज्ञान अभिव्यक्ति देना	उदाहरण शुद्ध भाषा अनुच्छेद	,,	,,	निबधात्मक	5 सामान्य	10 मि
						25	40 मि

साराश

परीक्षा से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की योग्यता ज्ञान, कौशल आदि की जांच की जाती है। परीक्षाओं को दो भागों में अर्थात निबधात्मक परीक्षा और वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में विभक्त किया जा सकता है।

निबधात्मक परीक्षाएं बहुचर्चित हैं। इसमें प्रश्न के उत्तर विस्तृत रूप में लिखने होते हैं। इससे बालक की विचार व्यक्त करने की क्षमता, सृजनात्मकता, संश्लेषण एव विश्लेषण आदि गुणों का भाव होता है। परन्तु यह वस्तुनिष्ठ नहीं है। इस कारण यह अनेक दोषों से युक्त है। इसमें सुधार लाने के लिए विभिन्न उपाय किए गये हैं जैसे परीक्षार्थी के उत्तरों को सीमित रूप में लिया जाना, आतरिक विकल्प व्यवस्था आदि।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा से तात्पर्य ऐसे परीक्षण से है जिस पर परीक्षक, समय एव स्थान का अंकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस परीक्षा पर परीक्षक के व्यक्तिगत पक्षों का प्रभाव न पड़ने के कारण यह दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न मुख्यत दो प्रकार के अर्थात् प्रत्यास्मरण और अभिज्ञान प्रकार के होते है। इनको पूर्तिवाले प्रश्न एकान्तर प्रत्युत्तर रूप या सही/गलत वाले प्रश्न, बहुविकल्पात्मक प्रश्न, तुल्य पद आदि के रूप में भी विभक्त किया जाता है। इन प्रश्नों की वस्तुनिष्ठता एव प्रभावशीलता इनके निर्माण एव अध्यापक की सूझ-बूझ पर निर्भर करती है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण से समय की बचत होने के साथ-साथ बालक का मूल्यांकन शीघ्रता से किया जाना सम्भव है। इस प्रकार के परीक्षण में प्रश्नों की संख्या अधिक होने के कारण पाठ्यक्रम का अधिकांश भाग का परीक्षण इससे सम्भव है। इनमें वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है। परन्तु इनकी कुछ सीमाएं हैं। इसके निर्माण के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिसके अभाव में हर अध्यापक अच्छे स्तर के प्रश्न नहीं बना सकता। जटिल मानसिक प्रक्रिया की जांच इनसे सम्भव नहीं है।

एक आदर्श परीक्षा में दोनों प्रकार के प्रश्नों अर्थात् निबन्धात्मक प्रश्न एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न को सम्मिलित किया जाना चाहिए। बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण जांच करने के लिए यह किया जाना आवश्यक है।

अध्याय 12

परीक्षण-रचना

(Test Construction)

परीक्षण रचना के अन्तर्गत प्रश्नों अथवा पदों के पूर्ण रूप से मूल्यांकन करके उनको अन्तिम रूप से परीक्षा में सम्मिलित किये जाते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम प्रश्न लिखे जाते हैं। उसके पश्चात् इनकी विशेषज्ञों द्वारा जाँच करके इनका एक समूह पर प्रशासन किया जाता है। पदों का विश्लेषण करके इनको अन्तिम रूप से प्रश्न पत्र में सम्मिलित किये जाने के बारे में निर्णय लिया जाता है।

सामान्यतः परीक्षण रचना के सात चरण निम्न प्रकार से हैं

(1) परीक्षण की योजना तैयार करना (Planning the Test)।

(2) परीक्षण के प्रथम प्रारूप की रचना (Prerparing First Draft)।

(3) प्रथम प्रारूप की जाँच करना (Preliminary Try Out of First Draft)।

(4) परीक्षण का मूल्यांकन (Evaluating the Test)।

(5) अन्तिम रूप प्रदान करना (Final Draft of the Test)।

(6) परीक्षण-वैधता (Test Validity)।

(7) परीक्षण विश्वसनीयता (Test Reliability)।

(1) परीक्षण योजना तैयार करना

परीक्षण के सफल निर्माण के लिए उसकी एक योजना बनाना आवश्यक है। योजना के तहत सर्वप्रथम उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है।

(अ) उद्देश्य निर्धारण—जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि शिक्षण-प्रक्रिया एवं मूल्यांकन एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। शिक्षण द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है जबकि परीक्षण द्वारा यह ज्ञात होता है कि ये किस सीमा तक प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि शिक्षण उद्देश्यों को ठीक प्रकार से पूर्व स्पष्टीकरण कर लिया गया हो। उद्देश्यों को संक्षिप्त, स्पष्ट, व्यावहारिक एवं एकार्थ रूप में लिखा जाना चाहिए।

परीक्षा का सीधा सम्बन्ध परीक्षार्थी के मूल्यांकन किये जाने से है अतः परीक्षा निर्माण से पूर्व यह तय कर लिया जाना आवश्यक है कि परीक्षा किस आयु

स्तर, ग्रेड आदि के लिए ली जानी है ताकि उसी स्तरानुसार इसमें प्रश्नों का निर्माण किया जा सके। शिक्षण उद्देश्यों का वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से किया है।

उद्देश्यों के कथन व्यवहार परक भाषा में लिखे जाने चाहिए ताकि इससे यह ज्ञात हो सके कि किस व्यवहारगत परिवर्तन का मापन किया जाना है। प्रश्न निर्माण तथा मूल्यांकन में इससे सहायता मिलेगी।

(ब) पाठ्यक्रम विश्लेषण—उद्देश्यों के निर्धारण के उपरान्त यह निश्चित किया जाता है कि परीक्षण में कौन कौन से प्रकरण किस सीमा तक सम्मिलित किये जाने हैं। परीक्षण पूर्णतः व्यापक हो अर्थात् पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग को सम्मिलित किए हुए हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अधिगम की दृष्टि से सभी महत्त्वपूर्ण प्रकरणों की एक सूची निर्मित कर लेता है। पाठ्यक्रम के विश्लेषण में वह निम्नांकित कार्य करता है—

(1) पाठ्य पुस्तकों तथा संदर्भ पुस्तकों का पूर्ण अध्ययन।

(2) विषय वस्तु से संबंधित अधिगम अनुभवों का ज्ञान।

(3) विषयाध्यापकों से वार्तालाप।

(4) विद्यार्थियों की दृष्टि से सरल एवं कठिन पाठ।

(5) ऐसे प्रकरण जो कि भावी अध्ययन या दैनिक जीवन की दृष्टि से उपयोगी हो।

(6) पूर्व में किये गये परीक्षणों के प्रतिवेदन।

उपरोक्त आधार पर पाठ्यवस्तु का विश्लेषण कर उसे अंक भार प्रदान किया जाता है। इसके साथ परीक्षण के स्वरूप पर भी परीक्षक को विचार कर लेना चाहिए। परीक्षा शाब्दिक होगी या अशाब्दिक अथवा दोनों। शाब्दिक परीक्षण का माध्यम प्रश्न का प्रकार तथा प्रश्नों की संख्या परीक्षा के लिए निर्धारित समय आदि का पूर्व निर्धारण किया जाना आवश्यक है।

(2) परीक्षण की प्रथम रचना

(अ) पद रचना—सर्वप्रथम विषय वस्तु तथा शिक्षण उद्देश्यों को ध्यान में रखकर पदों का चयन करता है। परीक्षण में यदि एक ही प्रकार के पद हों तो परीक्षण अरुचिकर हो जाता है इसलिए परीक्षा में विभिन्न प्रकार के पद सम्मिलित करने चाहिए, पदों के निर्माण में पूर्व पदों के प्रकारों की संख्या जो कि परीक्षण में सम्मिलित किये जाने हैं, पर विवेकपूर्ण निर्णय लिया जाना चाहिए। पद निम्न प्रकार के हो सकते हैं —

(1) बहु विकल्पात्मक प्रश्न

(2) एकान्तर प्रत्युत्तर पद या गलत और सही वाले प्रश्न

(3) पूर्ति वाले पद

(4) तुल्य पद

(5) लघु उत्तरात्मक पद।

पद की रचना करते समय एक परीक्षक को निम्नांकित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये

(1) एक पद में यथासंभव एक ही शिक्षण-उद्देश्य की परख की जानी चाहिए।

(2) परीक्षण को व्यापक बनाने के लिए पदों की संख्या अधिक हो परन्तु संख्या-वृद्धि की दृष्टि से परीक्षा में एक जैसे अथवा समान्तर पद सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिए।

(3) परीक्षण में ऐसे पदों, जो मात्र स्मृति-परीक्षण से संबंधित हों, की संख्या बहुत कम होनी चाहिए अन्यथा विद्यार्थियों की रटने की प्रवृत्ति को इससे बढ़ावा मिलेगा।

(4) पदों में ऐसे संकेतों या चिन्हों का प्रयोग न किया जाय जिसे विद्यार्थी समझ न सकें।

(5) पद निर्माण करते समय पुस्तकों के वाक्यों अथवा पदांशों को ज्यों का त्यों प्रश्न-पत्र में नहीं लिया जाना चाहिए, इससे विद्यार्थियों में सूझ का परीक्षण नहीं हो पायेगा।

(6) परीक्षा में सत्य/असत्य प्रकार के प्रश्न सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिए क्योंकि इससे अनुमान लगाकर उत्तर निकालने की संभावना अधिक है।

(7) परीक्षा में ऐसे पद न हों जिन्हें पढ़ कर विद्यार्थी अन्य पदों के उत्तरों का अनुमान कर सकें।

(8) प्रारम्भिक प्रारूप में पदों की संख्या प्रश्न पत्र के अन्तिम प्रारूप में रखे जाने वाले पदों की संख्या से दुगुनी होनी चाहिए।

(9) सामान्य जानकारी से सम्बन्धित पद अर्थात् वे पद जिनका उत्तर बिना पुस्तक पढ़े ही दिया जा सके, सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिए।

(10) पद की भाषा सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिए।

(11) परीक्षण पदों के सम्मुख उत्तर लिखने के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ा जाना चाहिए।

(12) पदों को सरल से कठिन स्तरानुसार व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

(13) यदि आवश्यक हो (भाषा में) तो महत्त्वपूर्ण वाक्यों को रेखांकित किया जाना चाहिए।

(14) पदों के उत्तर किसी निश्चित क्रम में न होकर अव्यवस्थित क्रम में होने चाहिए ताकि बालक उत्तर का अनुमान न लगा सकें।

पदों की प्रथम रचना करने के पश्चात् इनकी प्रथम जाँच विशेषज्ञों द्वारा की जाती है। ये पद की विषय वस्तु तथा प्रयुक्त तकनीकी दोनों का मूल्यांकन कर पद की उपयुक्तता के बारे में निर्णय लेते हैं, उनमें आवश्यक संशोधन करते हैं तथा आवश्यकतानुसार उनका परीक्षण में सम्मिलित किये जाने अथवा नए पद बनाये जाने के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं।

(ब) निर्देश—परीक्षण में बालक को प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार देने हैं तथा समय सीमा क्या है आदि के बारे में प्रश्न-पत्र के प्रारम्भ में ही सूचना दे दी जाती है। इन्हें निर्देश कहते हैं। प्रश्न पत्र में कौन सा प्रश्न कितने अंक का है तथा विकल्प कितने दिये हैं आदि की जानकारी भी निर्देश में दी जाती है।

यदि बालक वस्तुनिष्ठ-परीक्षण प्रथम बार दे रहे हों तो उन्हें अभ्यासार्थ एक या दो प्रश्न भी निर्देश में ही दिये जाते हैं ताकि वह पदों के उत्तर किस प्रकार देने हैं, को भली भांति समझ ले।

(3) परीक्षण का प्रथम मूल्यांकन करना

परीक्षा को अन्तिम रूप प्रदान करने से पूर्व एक प्रारम्भिक परीक्षण किया जाता है जिसके चरण निम्नांकित हैं

(अ) परीक्षण का प्रशासन—प्रश्न पत्र को मुद्रित कर एक समूह को इसे हल करने के लिए दिया जाता है। यह समूह ऐसे विद्यार्थियों का हो जिनका शैक्षिक स्तर प्रश्न-पत्र के स्तर जैसा हो तथा इसमें सभी तरह के विद्यार्थी अर्थात् उच्च, सामान्य व निम्न योग्यता वाले विद्यार्थी हों। इस हेतु सामान्यतः किसी भी विद्यालय की एक कक्षा के सभी विद्यार्थी लिए जा सकते हैं। विद्यार्थियों की संख्या 30 से कम तथा 60 से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रशासन के समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सभी विद्यार्थियों के लिए परीक्षा देने की परिस्थितियाँ एक जैसी हों। इनकी बैठक व्यवस्था उचित एवं आरामदायक हो तथा रोशनी व हवा की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यार्थियों को प्रश्न हल करने के लिए समय पर्याप्त मात्रा में दिया जाना चाहिए। ताकि वे सभी प्रश्नों को हल कर लें अर्थात् किसी प्रश्न को बिना हल किये न छोड़ें। इससे पद विश्लेषण में सहायता मिलेगी।

(ब) अंक प्रदान करना—परीक्षा के सफल प्रशासन के बाद उत्तर पुस्तिकाओं को एकत्र किया जाता है। अधिकांश वस्तुनिष्ठ प्रश्न पत्रों में उत्तर प्रश्न पत्र पर ही लिखाये जाते हैं अतः इनमें लिखे उत्तरों की जाँच की जाती है। अंक प्रदान करने के लिए परीक्षक पूर्व में ही एक अंक योजना का निर्माण कर लेता है। इसका एक प्रारूप निम्न है

प्रश्न संख्या	सही उत्तर	अंक
1	अ	1/2
2	अ	1/2

3	म	1/2
4	~	1/2
5	समुच्चय	1
6	माप	1
7	लीटर	1
8	84 वग मीटर	1
9	2	1
10	256 रुपय	1

परीक्षक अ क-तालिका की सहायता स अक प्रदान करता है। प्रश्न का उत्तर ठीक होन पर पूरे अ क तथा गलत होने पर शून्य प्रदान कर दिया जाता है। प्राप्तांकों का योग कर कुल प्राप्तांक लिख दिय जाते हैं।

(4) परीक्षा प्रश्न-पत्र का मूल्यांकन

प्रश्न-पत्र कितने प्रभावी रूप स उद्देश्यों की परख कर रहा है, यह उसम सम्मिलित पदों की विशषता पर निभर करता ह। यदि परीक्षण को प्रभावशाली बनाना है तो यह आवश्यक है कि प्रश्न-पत्र निर्माता प्रश्न-पत्र के सब पदों का अलग-अलग बारीकी से अध्ययन करे। इसे पद विश्लेषण कहते हैं।

(अ) पद विश्लेषण (Item Analysis)—पद विश्लेषण एक विधि है जिसके अन्तगत परीक्षक प्रश्न-पत्र म सम्मिलित सभी पदों का व्यक्तिगत रूप से अध्ययन करता है। पद विश्लेषण क सम्बन्ध म कुछ विचार निम्नांकित हैं—

(1) गिलफर्ड[1] (Guilford)

"किसी परीक्षण के अन्तिम रूप हेतु श्रेष्ठ पदों का चुनाव किये जाने के लिए पद विश्लेषण विधि का उपयोग अत्य त उपयोगी है।"

(2) फ्रीमैन[2] (Freeman)

"किसी परीक्षण म पदों क चयन हेतु दो बातों पर मुख्य रूप से विचार किया जाना चाहिये। प्रथम प्रत्येक पद का कठिनता स्तर तथा द्वितीय प्रत्येक पद की विभेद शक्ति।"

जसा कि पूर्व म यह स्पष्ट किया गया है कि परीक्षण के प्रथम प्रारूप का निर्माण करते समय हमने अंतिम रूप म रखे जाने वाले पदों की दुगुनी संख्या ली थी। अत जब परीक्षण की प्रथम जाच व फलांकन के बाद उन पदों में स कौन कौन से पद अन्तिम रूप से परीक्षण म रखे जाने योग्य हैं, इसका निणय पद विश्लेषण द्वारा किया जाता है। पद विश्लेषण म प्रमुख रूप स दो बातों को ज्ञात किया जाता है, जो कि अग्रांकित हैं—

1 Guilford J P, Psychometric Methods 1954 P 417
2 Freeman F S Theory and Practice of Psychological Testing 1965 P 113

(ग) प्रत्येक पद का कठिनाई स्तर
(घ) प्रत्येक पद की विभेदकारी शक्ति।

(क) पद का कठिनाई स्तर

किसी समूह से जब कोई प्रश्न हल कराया जाता है तो कुछ उसे गलत हल करते हैं तथा शेष सही करते हैं। सामान्यतः सही रूप से हल करने वालों का प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है। यदि किसी प्रश्न को 25 में से 24 छात्र सही हल करते हैं तथा दूसरे प्रश्न को 25 में से 2 छात्र सही उत्तर देते हैं तो प्रथम प्रश्न तथा द्वितीय प्रश्न में सही उत्तर देने वालों का प्रतिशत क्रमशः 96 प्रतिशत तथा 8 प्रतिशत रहा। सामान्यतः हम कहते हैं कि प्रथम प्रश्न बहुत सरल तथा द्वितीय प्रश्न वस्तुतः कठिन है। प्रश्न का कठिनता-स्तर इसी भावना को इंगित करता है। कुछ परिभाषाएँ निम्नांकित हैं—

(1) गैरिट[1] (Garrelt)

'सही उत्तर देने वालों की संख्या या पद को ठीक हल करने वाले समूह का अनुपात परीक्षण की कठिनाई निर्धारण की उपयुक्त विधि है।"

(2) टाटे[2] (Tate)

पद की कठिनता ज्ञात करने की सर्वोत्तम विधि पद को सही रूप में हल करने वाले विद्यार्थियों का अनुपात है। यह अनुपात जितना कम होगा पद उतना ही अधिक कठिन होगा।'

कठिनता-स्तर ज्ञात करने की विधियाँ

पद का कठिनता स्तर ज्ञात करने की अनेक विधियों में से दो प्रमुख विधियों का वर्णन नीचे किया जा रहा है—

(क) सूत्र के द्वारा

पद के कठिनता-स्तर को ज्ञात करने के लिये निम्नलिखित सूत्र प्रयुक्त किया जाता है—

$$\text{कठिनाई स्तर I D} = \frac{\text{उस पद का सही ढंग से हल करने वाले परीक्षार्थियों की संख्या}}{\text{कुल परीक्षार्थियों की संख्या}} \times 100$$

$$I\ D = \frac{NC}{NE} \times 100$$

I D = पद का कठिनाई स्तर

1 Garrelt H E Statistics in Psychology and Education 1961 P 363
2 Tate M W Statistics in Education and Psychology 1967 P 205.

N C=सही उत्तर देने वाले परीक्षार्थियों की संख्या

N E=कुल परीक्षार्थियों की संख्या।

उदाहरण—माना कि किसी परीक्षण में 200 परीक्षार्थियों ने भाग लिया। प्रश्न-पत्र के पहिले सवाल को 40 दूसरे को 120 तथा तीसरे को 180 विद्यार्थी सही हल करते हैं तो पहले दूसरे का 90 प्रतिशत हुआ। सामान्यतः परीक्षण के अन्तिम रूप में वे पद रखे जाते हैं जिनका कठिनाई स्तर 50 प्रतिशत के आस-पास हो। लेकिन परीक्षण में कुछ प्रश्न ऐसे भी सम्मिलित किये जाने चाहिये जिनका कठिनाई स्तर ऐसा हो कि उन प्रश्नों को श्रेष्ठ छात्र ही हल कर सकें। इसी प्रकार कुछ ऐसे सरल प्रश्न भी हों जिन्हें कमजोर छात्र भी कर सकें।

(ब) फेसिलिटी इनडेक्स (Facility Index)—इस विधि को हापर ने प्रतिपादित किया। इसके अनुसार परीक्षार्थियों को उच्च समूह तथा निम्न समूह में बाटा जाता है। उदाहरण के लिए 200 छात्र किसी परीक्षा में बैठे। इन सब को प्राप्तांकों के आधार पर क्रम में लिया। सबसे अधिक अंक वाले क्रम संख्या 1 पर, उससे कम अंक वाला क्रम संख्या 2 पर। इसी तरह सबसे कम अंक वाला क्रम संख्या 200 पर आया।

उच्च समूह में 27 प्रतिशत छात्र लिये जाते हैं अर्थात् क्रम संख्या 1 से 54 तक के छात्र उच्च समूह में रख लिये गये। निम्न समूह में नीचे से 27 प्रतिशत छात्र छाटने के लिए क्रम संख्या 47 से 200 तक के छात्र लिये। इस प्रकार उच्च समूह तथा निम्न समूह में 54 व 54 छात्र हैं।

हापर के अनुसार—

फेसिलिटी इन्डेक्स (Facility Index)$=\frac{R(U)+R(L)}{2N}\times 100$

जहाँ कि—

R(U)=उच्च समूह में प्रश्न को सही हल करने वालों की संख्या

R(L)=निम्न समूह में प्रश्न को सही हल करने वालों की संख्या

N=उच्च या निम्न समूह में छात्रों की संख्या।

उदाहरण—एक प्रश्न-पत्र में प्रश्न संख्या आठ को 200 विद्यार्थियों ने हल किया। उच्च समूह में 54 में से 40 तथा निम्न समूह में 54 में से 20 छात्रों ने यह प्रश्न सही हल किया।

फेसिलिटी इन्डेक्स$=\frac{40+20}{2\times 54}\times 100$

$$= \frac{60}{108} \times 100$$

$$= 55.5\%$$

$$= 56\%$$

जिस पद का फेसिलिटी इन्डेक्स (एफ आई) 35 प्रतिशत तथा 85 प्रतिशत के मध्य है, वे अच्छे कठिनता वाले पद माने जाते हैं तथा उनको प्रश्न-पत्र में चुन लिया जाता है।

(ख) परीक्षण के पदों की विभेदकारी शक्ति

यदि कोई पद उच्च समूह या निम्न समूह के विद्यार्थी के मध्य विभेद करता है तो वह परीक्षा में रखने लायक होगा। उदाहरण के लिए यदि किसी पद का योग्य विद्यार्थी अधिकांशतः सही उत्तर देते हैं और अयोग्य विद्यार्थी (निम्न समूह) में अधिकांश उसे गलत करते हैं तो यह पद विभेदकारी है अर्थात् हम इस पद द्वारा योग्य एवं अयोग्य विद्यार्थियों में स्पष्टतः अलग-अलग भेद कर सकते हैं।

परीक्षण के प्रत्येक पद की विभेदकारी शक्ति ज्ञात करने के लिए हम निम्न विधि अपनाते हैं—

(1) सभी उत्तर पुस्तिकाओं को जाँच कर प्राप्तांकों को इस प्रकार जमावें कि सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाला सबसे ऊपर तथा अन्य उत्तर-पुस्तिकाएं प्राप्तांकों के घटते क्रम में नीचे रखी जावें। सबसे कम अंक वाली उत्तर पुस्तिका सबसे नीचे हो।

(2) कुल उत्तर पुस्तिकाओं का 27 प्रतिशत ऊपर से लें। यह उच्च समूह होगा। इसी प्रकार नीचे के 27 प्रतिशत लें, ये निम्न समूह होगा। बीच की उत्तर पुस्तिका अलग रख दें इनका उपयोग यहाँ नहीं करेंगे। उदाहरण के लिए एक परीक्षण में 60 विद्यार्थियों ने भाग लिया। इनकी उत्तर पुस्तिकाओं को प्राप्तांकों के घटते क्रम में व्यवस्थित कर ऊपर की 16 उत्तर पुस्तिकाएं उच्च समूह के लिए तथा अन्त की 16 उत्तर पुस्तिकाएं निम्न समूह के लिए ले ली गईं।

(3) अब यह पता लगाया जायगा कि प्रत्येक पद को कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने उच्च समूह में तथा कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने निम्न समूह में पद का शुद्ध हल किया है। विभेदकारी शक्ति ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग करते हैं—

विभेदकारी शक्ति (Discriminative Index)

$$= \frac{P_1 - P_2}{\sqrt{\frac{P_1Q_1}{N_1} + \frac{P_2Q_2}{N_2}}}$$

$$= \frac{60}{108} \times 100$$

$$=55.5\%$$

$$=56\%$$

जिस पद का फेसिलिटी इन्डेक्स (एफ आई) 35 प्रतिशत तथा 85 प्रतिशत के मध्य है वे अच्छे कठिनता वाले पद माने जाते हैं तथा उनको प्रश्न-पत्र में चुन लिया जाता है।

(ख) परीक्षण के पदों की विभेदकारी शक्ति

यदि कोई पद उच्च समूह या निम्न समूह के विद्यार्थी के मध्य विभेद करता है तो वह परीक्षा में रखने लायक होगा। उदाहरण के लिए यदि किसी पद का योग्य विद्यार्थी अधिकांशत सही उत्तर देते हैं और अयोग्य विद्यार्थी (निम्न समूह) में अधिकांश उसे गलत करते हैं तो यह पद विभेदकारी है अर्थात हम इस पद द्वारा योग्य एवं अयोग्य विद्यार्थियों में स्पष्टत अलग अलग भेद कर सकते हैं।

परीक्षण के प्रत्येक पद की विभेदकारी शक्ति ज्ञात करने के लिए हम निम्न विधि अपनाते हैं—

(1) सभी उत्तर पुस्तिकाओं को जाच कर प्राप्तांकों का इस प्रकार जमावें कि सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाला सबसे ऊपर तथा अन्य उत्तर पुस्तिकाएं प्राप्तांकों के घटते क्रम में नीचे रखी जाय। सबसे कम अंक वाली उत्तर पुस्तिका सबसे नीचे हो।

(2) कुल उत्तर पुस्तिकाओं का 27 प्रतिशत ऊपर से लें। यह उच्च समूह होगा। इसी प्रकार नीचे के 27 प्रतिशत ले, ये निम्न समूह होगा बीच की उत्तर पुस्तिका अलग रख दें इनका उपयोग यहाँ नहीं करेंगे। उदाहरण के लिए एक परीक्षण में 60 विद्यार्थियों ने भाग लिया। इनकी उत्तर पुस्तिकाओं को प्राप्तांकों के घटते क्रम में व्यवस्थित कर ऊपर की 16 उत्तर पुस्तिकाएँ उच्च समूह के लिए तथा अन्त की 16 उत्तर पुस्तिकाएँ निम्न समूह के लिए ले ली गई।

(3) अब यह पता लगाया जायगा कि प्रत्येक पद को कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने उच्च समूह में तथा कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने निम्न समूह में पद को शुद्ध हल किया है। विभेदकारी शक्ति ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग करते हैं—

विभेदकारी शक्ति (Discriminative Index)

$$= P_1 - P_2$$

। कि

P_1=उच्च समूह में शुद्ध हल करने वालों का प्रतिशत।
P_2=निम्न समूह में शुद्ध हल करने वालों का प्रतिशत।
Q_1=उच्च समूह में अशुद्ध हल करने वालों का प्रतिशत।
Q_2=निम्न समूह में अशुद्ध हल करने वालों का प्रतिशत।
N =उच्च समूह में कुल परीक्षार्थियों की संख्या।
N_2=निम्न समूह में कुल परीक्षार्थियों की संख्या।

हरण

यदि किसी पद को उच्च समूह में 90 प्रतिशत ने सही व केवल 10 प्रति अशुद्ध किया इसी प्रश्न को निम्न वर्ग में 80 प्रतिशत ने गलत तथा 20 प्रतिशत सही किया। यदि उच्च एवं निम्न वर्ग में संख्या में दस दस विद्यार्थी हों तो

$$\text{विभेदकारी शक्ति} = \frac{90-20}{\sqrt{\frac{90\times 10}{10}+\frac{80\times 20}{10}}}$$

=4 4

यदि किसी पद की विभेदकारी शक्ति 1 96 से अधिक आये तो वह पद अच्छी विभेद शक्ति वाला माना जायेगा। वह परीक्षण में रख लिया जायेगा। 1 96 से कम मूल्य वाले पद को परीक्षण से हटा दिया जायगा।

रास तथा स्टैनले विधि[1] (Ross and Stanley Method)

पद विश्लेषण की एक सरल विधि रास तथा स्टैनले ने प्रस्तुत की। इससे कठिनाई स्तर तथा विभेदकारी शक्ति दोनों को साथ साथ ज्ञात किया जाता है।

(1) सर्वप्रथम उत्तर पुस्तिकाओं पर प्राप्तांकों के आधार पर प्रथम 27 प्रतिशत उच्च समूह तथा नीचे के 27 प्रतिशत निम्न समूह में इन्हें जायगा।

पद के लिए उच्च समूह में गलत करने वाले एवं या हल न करने संख्या गिनी जायेगी।

लिए निम्न समूह में गलत करने या वाले पद हल न करने गिनी जायगी।

की कुल संख्या तथा निम्न समूह के कुल निकाली जायगी। दोनों समान होगी।

से कठिनाई स्तर तथा विभेदकारिता निर्देशांक

---

[1] su en ent in To ay s Schcols Prentice / 452

जग कि

P_1=उच्च समूह म शुद्ध हल करन वाला का प्रतिशत।
P_2=निम्न समूह म शुद्ध हल करने वाला का प्रतिशत।
Q_1=उच्च समूह म अशुद्ध हल करने वालो का प्रतिशत।
Q_2=निम्न समूह म अशुद्ध हल करने वालो का प्रतिशत।
N =उच्च समूह म कुल परीक्षार्थिया की सख्या।
N_2=निम्न समूह म कुल परीक्षार्थिया की सख्या।

उदाहरण

यदि किसी पद को उच्च समूह म 90 प्रतिशत न सही व केवल 10 प्रतिशत ने अशुद्ध किया इसी प्रश्न को निम्न वग म 80 प्रतिशत ने गलत तथा 20 प्रतिशत ने सही किया। यदि उच्च एव निम्न वग म दोना म दस दस विद्यार्थी हो तो

$$\text{विभेदकारी शक्ति} = \frac{90 - 20}{\sqrt{\frac{90 \times 10}{10} + \frac{80 \times 20}{10}}}$$

$$= 4\ 4$$

यदि किसी पद की विभेदकारी शक्ति 1 96 स अधिक आये ता वह पद अच्छी विभेद शक्ति वाला माना जावेगा। इन्हे परीक्षण म रख लिया जायेगा। 1 96 स कम मूल्य वाले पद को परीक्षण म हटा दिया जायगा।

रास तथा स्टेनले विधि[1] (Ross and Stainley Method)

पद विश्लेषण की एक सरल विधि रास तथा स्टेनले ने प्रस्तुत की। इससे कठिनाई स्तर तथा विभेदकारी शक्ति दोनो को साथ साथ ज्ञात किया जाता है।

(1) सवप्रथम उत्तर पुस्तिकाओ पर आये प्राप्ताको के आधार पर प्रथम 27 प्रतिशत उच्च समूह तथा नीचे से 27 प्रतिशत निम्न समूह म इन्हें बाटा जावेगा।

(2) प्रत्यक पद क लिए उच्च समूह म गलत करने वाल पद या हल न करने वाला की सख्या गिनी जायेगी।

(3) उसी पद के लिए निम्न समूह म गलत करने या वाल पद हल न करन वाला की सख्या गिनी जायेगी।

(4) उच्च समूह क विद्यार्थियो की कुल सख्या तथा निम्न समूह के कुल विद्यार्थिया की कुल सख्या निकाली जायगी। दोना समान होगी।

अग्रांकित तालिका की सहायता से कठिनाई स्तर तथा विभेदकारिता निर्देशाक ज्ञात किय जायेंगे।

1. Ro s C C and Stalnley J C Measu en ent In To ay s Schcols Prent ce Hall Englewood Chif, N Y P 437 452

क्रमांक	उच्च समूह द्वारा गलत किया या छोडा गया	निम्न समूह द्वारा गलत किया या छोडा गया	कठिनाई	विभेद	कठिनाई स्तर	विभेदकारिता निर्देशांक	टिप्पणी
1	8	10	18	2	18 ÷ 44 =0 4	2 ÷ 22 =0 09	चयनित नही
2	1	9	10	8	10 ÷ 44 =0 2	8 ÷ 22 =0 4	चयनित
3							
4							
5							
6							
7							
8							
9							
10							

पूर्वोक्त म रिणी से यह स्पष्ट होता है कि उच्च एव निम्न समूह म बाइस-र इम छत्र है। पद मख्या 1 का कठिनाई स्तर 0 । तथा विभदकारिता निर्देशाक 0 09 ह जबकि पद मख्या 2 क यह मूल्य क्रमश 0 2 तथा 0 4 हैं।

पहले पद का कठिनाई स्तर सामा य व विभेदकारिता निर्देशाक बहुत कम है। अत यह पद छोडा जा सकता है। दूसरे पद का कठिनाई स्तर अति म मा य व विभेदकारिता निर्देशाक उच्च ह अत दूसरा पद अन्तिम परीक्षा म सम्मिलित किया जा सकता है।

ध्यातव्य यह है कि

(1) (अ) विभेदकारिता निर्देशाक का अधिकतम मूल्य 1 00 होता है जो यह बताता ह कि पद पूर्ण विभेद व्यक्त करता है।

(ब) इस निर्देशाक का न्यूनतम मूल्य 0 ह जो यह बताता है पद विभेद नही करता।

(स) हम 30 तथा इसस अधिक विभेदकारिता मूल्य वाल पद का स्वीकार करत हैं।

(2) कठिनाइ स्तर म

(अ) 2 स कम तथा 8 से अधिक मूल्य वाल पदो का त्याग दते है।

(ब) 2 तथा इसस अधिक 8 तक कठिनाई स्तर वाले-पद को अंतिम परीक्षा के लिए चयनित कर लेत हैं।

परीक्षण की वैधता

प्रत्यक परीक्षण क सवप्रथम उद्देश्य निर्धारित किय जाते है तथा उनके पश्चात् उनका मापन किया जाता है। यदि वह परीक्षण उद्देश्यो के अनुरूप मापन कर रहा है तो वह वैध होगा। साधारण शब्दो म यदि कोई परीक्षण शुद्धता तथा प्रभावी रूप स उसी ब त का मापन कर रहा ह जिसके लिए यह बनाया गया था तो यह परख वैध है। उदाहरण के लिए हमने एक बुद्धि परीक्षण तैयार किया। यदि यह परीक्षण वास्तव म बुद्धि का ही मापन कर तो यह वैध बुद्धि परीक्षण है। वैधता की कुछ परिभाषा निम्नाकित ह

(1) थार्नडाइक एव हेगन[1] (Thorndike and Hagen)

> कोई भी परीक्षण तब तक वैध ह जब तक वह उस काय क किसी अन्य किसी सफल मापन से यह सम्बन्धित है जिसकी रचना पूर्वानुमान हेतु कर ली गई हो।

---

1 Thorndike and Hagen Measurement and Evaluation in Psychology and Education New York John Willey & Sons Inc 1961

(2) क्रोनबक[1] (Cronbach)

'वैधता का अर्थ है कि कोई परीक्षण वही मापन करता है जिस हेतु यह बनाया गया है।"

वैधता ज्ञात करने की विधि

वैधता ज्ञात करने की अनेक विधियों में सरलतम विधि सह-सम्बन्ध-गुणांक निकालना है। उदाहरण के लिए एक परीक्षण बुद्धि मापन हेतु बनाया। उस पर विद्यार्थियों के प्राप्तांक ज्ञात किये गये। इन्हीं विद्यार्थियों का कोई मानकीकृत परख जैसे "सामूहिक मानसिक योग्यता-परीक्षण" जो कि जलोटा द्वारा निर्मित है, दिया गया। दोनों परीक्षणों के मध्य सह सम्बन्ध निकाला जाता है जो कि वैधता को प्रदर्शित करेगा।

विश्वसनीयता (Reliability)

एक परीक्षण तभी उत्तम माना जाता है जबकि वह वैध होने के साथ-साथ विश्वसनीय भी हो। विश्वसनीयता परीक्षण का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। यदि परीक्षण विश्वसनीय नहीं है तो उससे प्राप्त अंक भी विश्वसनीय नहीं होंगे तथा ऐसे अंकों से किसी प्रकार का निष्कर्ष निकाला जाना तर्कसंगत नहीं होगा। अतः यह आवश्यक है कि परीक्षण की विश्वसनीयता का अर्थ एवं उसको प्रभावित करने वाले घटकों का अध्ययन किया जावे।

विश्वसनीयता का अर्थ

विश्वसनीयता का शाब्दिक अर्थ है विश्वास करने योग्य। एक सामान्य उदाहरण लें। यदि हम एक दुकानदार से रोजाना सामान खरीदते हैं तथा उसका विश्वास करते हुए हम सौदा ले आते हैं। उसके द्वारा दी गई वस्तु कीमत, स्तर आदि में अच्छी है तो उसका यह व्यवहार विश्वसनीय है। परन्तु यदि प्रारम्भ में वह उचित मूल्य पर तथा अच्छी वस्तु दे और बाद में वह घटिया वस्तु देना शुरू कर दे तो वह दुकानदार विश्वसनीय नहीं होगा।

विद्यालय परिस्थितियों में यदि किसी बालक को गृह कार्य दिया जावे और वह दिये गये समय में उसे पूरा कर देता है तथा आगे भी ऐसा ही करता रहा है, वह एक विश्वसनीय छात्र है।

यही बात परीक्षण के बारे में है। यदि किसी परीक्षण में एक छात्र आज 10 अंक एक सप्ताह बाद 19 अंक तथा दो सप्ताह बाद 5 अंक पाता है तो यह परीक्षण उस छात्र की उपलब्धि के बारे में कुछ निश्चित नहीं बता पा रहा है अतः विश्वसनीय नहीं है। इसी प्रकार यदि एक ही उत्तर पुस्तिका को दो अलग अलग परीक्षक अंक प्रदान करें तथा इन अंकों में बहुत अधिक अन्तर हो तो यह परीक्षण

1 Cronback Lee J Essentials of Psychological Testing New York Harper & Row 1960

विश्वसनीय नही कहा जा सकता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि यदि एक परीक्षण का एक समूह पर दो या तीन बार प्रशासित किया जावे तथा हर बार समूह के छात्रों के अंकों में निश्चितता रहे तो ऐसा परीक्षण विश्वसनीय कहलायगा।

विश्वसनीयता की कुछ परिभाषाएं निम्नांकित हैं

(1) रास[1] (Ross)

"विश्वसनीयता से तात्पर्य परीक्षण में संगति का होना है।"

(2) एनस्टेसी (Anastasi)

"परीक्षण की विश्वसनीयता किसी व्यक्ति द्वारा उस परीक्षण पर विभिन्न अवसरों में या समकक्ष परीक्षणों के प्राप्तांकों में संगतता को इंगित करती है।"

(3) गिलफोर्ड[3] (Guilford)

'संक्षेप में किसी परीक्षण की विश्वसनीयता प्राप्तांकों के वास्तविक विचरण का अनुपात है।'

उपरोक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी परीक्षण का समान परिस्थितियों में बार बार प्रशासन किया जावे तथा विद्यार्थियों के प्राप्तांक हर बार उसी प्रकार आते रहें तो यह माना जायगा कि परीक्षण विश्वसनीय है। दूसरे शब्दों में विश्वसनीयता परीक्षा का वह पक्ष है जो यह बताता है कि परीक्षा द्वारा मापी गई योग्यता में स्थायित्व है। यदि परीक्षा की विश्वसनीयता उच्च स्तर की है तो वह परीक्षा बालकों की योग्यता का मापन सत्यता से करती है। इस प्रकार परीक्षण जिसे समय-समय पर प्रयुक्त किया जावे तथा उसके द्वारा प्रदत्त परिणामों में अन्तर न आवे विश्वसनीय कहलायगा।

गिलफोर्ड तथा हेल्मेस्टेडर (Guilford and Helmster) ने विश्वसनीयता को गणितीय रूप में निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया है

$$r = \frac{\sigma x^2 - \sigma c^2}{\sigma x^2}$$

जहां कि

σx^2=प्राप्तांकों का विचरण

r=विश्वसनीयता गुणांक

σc^2=त्रुटियों का विचरण

1 Ross The Ground Work of Education Psychology

2 Anastasi A Psychological Testing (2nd ed) New York The Mac Millan Co 1961

3 Guilford J P Psychometric Methods New York Mc Graw Hill Book Co Inc 1954

इस प्रकार विश्वसनीयता प्राप्तांकों तथा त्रुटियों के विवरण से सबंधित है। यदि त्रुटियां अधिक हैं तो विश्वसनीयता कम तथा यदि त्रुटियां लगभग शून्य हैं तो विश्वसनीयता गुणांक अधिक होगा।

विश्वसनीयता ज्ञात करने की विधियां
(Methods for Finding out Reliability)

परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने की अनेक विधियां हैं उनमें से महत्त्वपूर्ण निम्नांकित हैं—

(1) परीक्षण पुनः परीक्षण विधि (Test Retest Method)

(2) समान्तर प्रारूप विधि (Parallel Form Method)

(3) अर्द्ध विच्छेदन विधि (Split Half Method)

(1) परीक्षण पुनः परीक्षण विधि

यह विधि एक सरल तथा अत्यधिक प्रचलित विधि है। यह सरल इस रूप में है कि इसमें एक परीक्षण को ही काम में लिया जाता है। इस विधि में विश्वसनीयता निकालने के लिए परीक्षण को एक विद्यार्थी समूह पर प्रशासित किया जाता है। कुछ माह बाद इसी परीक्षा को इन्हीं विद्यार्थियों पर पुनः प्रशासित कर दिया जाता है। दोनों अवसरों पर आये प्राप्तांकों के मध्य सह-संबंध ज्ञात कर लिया जाता है। यही विश्वसनीयता का प्रदर्शित करता है।

उदाहरण के लिए हमने हिन्दी का एक परीक्षण कक्षा सात के लिए तैयार किया। इस विधि द्वारा विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए आज ही कक्षा सात के 40 छात्रों की परीक्षा ली। दो माह बाद इन्हीं 40 छात्रों की पुनः परीक्षा उसी परीक्षण से ली। दोनों परीक्षाओं में इन छात्रों के आये अंकों के मध्य, सह सम्बन्ध निकाला गया जो कि इस परीक्षा के विश्वसनीय होने या या न होने को बतलाता है। इसे स्थिरता गुणांक भी कहते हैं।

विधि के गुण

(1) यह एक सरल विधि है।

(2) इसके उपयोग में किसी विशेष तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है।

(3) इसमें एक परीक्षण से ही काम चल जाता है।

(4) प्रश्न पत्र की भाषा आदि का इसमें प्रभाव नहीं पड़ता।

दोष

(1) स्मृति के प्रभाव से दुबारा परीक्षण के अंकों पर प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।

(2) प्रथम परीक्षण पर प्रश्न हल करने के अभ्यास का प्रभाव पुनः परीक्षण में प्रश्न हल करने पर पड़ता है।

(3) चूँकि इसमें एक परीक्षण दो अवसरों पर प्रशासित किया जाता है तथा दोनों अवसरों में समयान्तर अधिक होता है, अतः इसमें अधिक समय व्यय होता है।

(4) व्यक्तित्व, शील, गुण, अभिवृत्ति आदि सदैव एक जैसे नहीं रहते हैं अतः ये पुनः परीक्षण के प्राप्तांकों को प्रभावित कर सकते हैं।

(2) समान्तर-प्रारूप विधि :

परीक्षण विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए यह दूसरी परन्तु महत्त्वपूर्ण विधि है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है इसमें परीक्षण के दो प्रारूप लिए जाते हैं जो कि एक जैसे होते हैं। इन दोनों प्रारूपों को समान्तर प्रारूप कहते हैं। इसमें पहले परीक्षण के प्रथम प्रारूप द्वारा विद्यार्थियों के एक समूह की परीक्षा ली जाती है तथा इसी समूह पर परीक्षण के दूसरे प्रारूप से दुबारा परीक्षा ली जाती है। इन भिन्न भिन्न परीक्षाओं पर आये विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के मध्य सह सम्बन्ध निकाला जाता है जो कि विश्वसनीयता को प्रदर्शित करता है।

उदाहरण के लिए स्टैनफर्ड बिने (Standford Binet) मापनी के दो प्रारूप L तथा M हैं। इन्होंने दोनों समान्तर प्रारूपों को प्रशासित कर इन पर प्राप्त अंकों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक .91 ज्ञात किया है।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों परीक्षण समान्तर होने चाहिए। यद्यपि दो परीक्षणों का पूर्णतया एक जैसा होना सम्भव नहीं है फिर भी दोनों परीक्षण विषयवस्तु, उद्देश्य रचना, कठिनता स्तर, प्रश्नों का स्वरूप आदि की दृष्टि से समान होने चाहिए। दोनों प्रारूपों में न केवल पदों की संख्या ही समान हो अपितु उनमें निहित मानसिक सक्रियाएं भी लगभग समान हों। सांख्यिकी की दृष्टि से इन दोनों प्रारूपों पर प्राप्त विद्यार्थियों के अंकों के मध्यमान तथा मानक विचलन में भी आपस में निकट का सम्बन्ध होना चाहिए।

विशेषताएँ

(1) इस विधि द्वारा विश्वसनीयता निकालने में स्मृति का प्रभाव नहीं पड़ता है।

(2) इसमें समय कम लगता है।

(3) इसका उपयोग किया जाना सरल है।

सीमाएँ

(1) इस विधि में परीक्षण का समानान्तर रूप काम में लाया जाता है जिसका निर्माण करना एक जटिल कार्य है।

(2) इस विधि में अभ्यास का प्रभाव पड़ता है क्योंकि दोनों परीक्षणों में प्रश्नों का स्वरूप एक जैसा होता है। इन्हीं सीमाओं के कारण इसका उपयोग कम किया जाता है।

(3) अर्द्ध विच्छेदन विधि

इस विधि का, परीक्षण की वैधता निकालने के लिए, उपयोग सर्वाधिक किया जाता है। इसमें प्रश्न पत्र को दो समान भागों में विभक्त कर उसे विद्यार्थियों पर प्रकाशित किया जाता है। इन भागों को अर्द्ध भाग कहते हैं। इन दोनों अर्द्ध भागों पर आये प्राप्तांकों को प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग-अलग ज्ञात कर इन अर्द्ध भागों के प्राप्तांकों के मध्य सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है।

उदाहरण के लिए मनोविज्ञान विषय के प्रश्न पत्र में 6 प्रश्न हैं। प्रश्न-पत्र में इन्हें अर्द्ध-भागों में निम्नानुसार बाँट सकते हैं—

छात्र का नाम सोहन लाल कक्षा बी एड

विषय मनोविज्ञान दिनांक 3 3 89

प्रश्न संख्या (1)	प्रश्न संख्या (2)
थार्नडाइक के प्रभाव के नियम से तात्पर्य है—	थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित नियमों में निम्न में से कौन सा गौण नियम है-
(अ) उद्दीपन अनुक्रिया सम्बन्धों की आवृत्ति	(अ) अभ्यास का नियम
(ब) उद्दीपन अनुक्रिया सम्बन्धों को दृढ़ बनाना	(ब) प्रभाव का नियम
(स) उद्दीपन अनुक्रिया सम्बन्धों को दुर्बल बनाना	(स) साहचर्यात्मक स्थानान्तरण
(द) उद्दीपन अनुक्रिया सम्बन्धों का दृढ़ीकरण ( )	(द) तत्परता का नियम ( )
प्रश्न 3 4 5 7 का माध्य होगा ( )	प्रश्न 4 5 3, 3, 6 का बहुलांक होगा ( )
प्रश्न 5 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन के मुख्य प्रवर्तक का नाम लिखें ( )	प्रश्न 6 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन के मुख्य प्रवर्तक का नाम लिखें ( )
प्रथम अर्द्ध के प्राप्तांक= अ का योग	द्वितीय अर्द्ध के प्राप्तांक =ब का योग

इसके उपरान्त सभी विद्यार्थियों के अद्ध-भागो के अंको को निम्न तालिका अनः कर गणना म सह-सम्बन्ध ज्ञात कर लत ह जस—

म	छात्र का नाम	प्रथम अद्ध म प्राप्तांक	द्वितीय अद्ध म प्राप्तांक
1	साहन लाल	ज	व
2			
3			
4			
5			
6			
7			
8			
9			
10			
11			
12			
13			
14,			
15			

प्रथम अद्ध तथा द्वितीय अद्ध क प्राप्तांकां क मध्य सह सम्बन्ध स विश्वसनीयता ज्ञात करन के लिए स्पीयरमन ब्राउन सूत्र (Spearman Brown, Formula) जो कि निम्न ह, काम म लत हैं—

$$r = \frac{2r'}{1+r'}$$

जहा कि

r = सम्पूण परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक

r' = दोनो अद्धों पर आये प्राप्तांको म सह सम्बन्ध ।

विशेषता

(1) परीक्षण का प्रशासन केवल एक बार करना पडता है।

(2) समय की बचत होती है।

(3) अभ्यास एवं स्मृति का प्रभाव विश्वसनीयता निकालने पर नहीं पड़ता है।

(4) सरल एवं सुगम विधि है।

(5) दोनों अर्द्धों का परीक्षण एक ही समय तथा एक परिस्थिति में होता है।

परिसीमा

(1) गति परीक्षणों में इसका प्रयोग सम्भव नहीं है।

(2) दोनों अर्द्ध भाग समान हों, यह सम्भव बहुत कम है।

परीक्षण-विश्वसनीयता को प्रभावी बनाने वाले कारक

(Factors Affecting Reliability of a Test)

किसी परीक्षण की विश्वसनीयता निम्न बातों से प्रभावित होती है

(1) समूह का आकार (Size of the Sample)

समूह के आकार या संख्या का विश्वसनीयता-गुणांक से सीधा सम्बन्ध है। यदि समूह की संख्या अधिक है तो विश्वसनीयता अधिक तथा कम होने पर परीक्षण विश्वसनीयता कम आयगी। अत विश्वसनीयता निकालते समय समूह-संख्या कम से कम 60 विद्यार्थियों की होनी चाहिये। मानकीकृत रूप के लिए समूह संख्या 400 विद्यार्थियों की होना आवश्यक माना गया है।

(2) प्राप्तांकों का प्रसार

यदि किसी परीक्षण में प्राप्तांकों के अधिक मान एवं न्यूनतम मान में अन्तर अधिक है अर्थात् प्रसार अधिक है तो परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक अधिक आयगा। इसके विपरीत कम प्रसार वाले परीक्षण में यह गुणांक कम आयेगा। उदाहरण के लिए एक परीक्षण में प्राप्तांक प्रसार 18-40 तथा दूसरे में 18 30 हैं तो पहले परीक्षण का विश्वसनीयता-गुणांक अधिक तथा दूसरे का अपेक्षाकृत कम आयेगा।

(3) परीक्षणों के मध्य समय अन्तराल

जब कभी भी दो समान्तर परीक्षण किये जाने हों या जांचें व पुन जांचें की जानी हों तो इनके मध्य समयान्तर का प्रभाव विश्वसनीयता-गुणांक पर पड़ता है। यदि यह समय अधिक होगा तो यह गुणांक कम तथा समय कम होगा तो गुणांक अधिक आयगा।

(4) परीक्षण की लम्बाई

परीक्षण की लम्बाई का विश्वसनीयता गुणांक से सम्बन्ध निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है—

$$r = \frac{nr}{1+(n-1)r}$$

जहाँ कि—

r=नवीन विश्वसनीयता गुणाक।

n=परीक्षण की लम्बाई जितने गुणी करनी है।

r'=मौलिक परीक्षण की विश्वसनीयता।

उदाहरण के लिए यदि किसी परीक्षण में 10 पद हैं। हम इसे दस गुणे याने 100 पद करना चाहते हैं। यदि दस पद वाले परीक्षण की विश्वसनीयता 30 है तो 100 पद करने पर उसका विश्वसनीयता गुणांक निम्नानुसार होगा

$$r = \frac{n r'}{1 + (n-1) r'} \qquad n=10, \quad r' = 33$$

$$= \frac{10 \times 30}{1 + 9 \times 30}$$

$$= \frac{3}{37}$$

$$= 81$$

इस प्रकार पदों की संख्या 10 गुणा करने से विश्वसनीयता 30 से बढ़ कर 81 हो गई है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी परीक्षण को उत्तम किस्म का बनाने के लिए उसे वस्तुनिष्ठ बनाकर सर्वप्रथम पद विश्लेपण करना चाहिए। अनुपयुक्त पदों की छटनी कर परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता ज्ञात कर लेनी चाहिए। इससे अच्छे परीक्षण की रचना की जा सकती है।

साराश

परीक्षा का सीधा सबंध विद्यार्थी के मूल्यांकन से है यदि परीक्षा अच्छे स्तर की होगी तो मूल्यांकन भी अच्छा होगा। परीक्षण निर्माण में सर्वप्रथम पदों की रचना की जाती है। पद शिक्षण उद्देश्य की परख करने वाले, तर्क शक्ति जागृत करने वाले तथा विषय वस्तु से सम्बन्धित हों।

परीक्षा को अन्तिम रूप देने से पूर्व पदों का विश्लेपण किया जाता है इसके लिए उनका कठिनाई स्तर तथा विभेदकारी शक्ति का ज्ञात किया जाना आवश्यक है। पद की कठिनाई स्तर से अर्थ इसे सही रूप से हल करने वाले विद्यार्थियों की संख्या से है। यह अनुपात जितना कम होगा, प्रश्न उतना ही कठिन होगा। इसे ज्ञात करने की अनेक विधियाँ हैं जिसमें फसिलिटी इन्डेक्स अधिक प्रचलित है।

विभेदकारी शक्ति का अर्थ पद का वह गुण है जिससे वह अच्छे स्तर के विद्यार्थी तथा कमजोर विद्यार्थियों में भेद स्थापित करता है। यह पद का एक आवश्यक गुण है तथा इसे कई प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है।

अध्याय 13

शिक्षा मे साख्यिकी
(Statistics in Education)

साख्यिकी का उपयोग दैनिक जीवन म बढता जा रहा है। आज का किसान भी भावो के बढने तथा घटने का अनुमान प्रतिमाह औसत भावो को देखकर लगा लेता है। *बालक भी क्रिकेट के खेल म औसत रन सख्या के ज्ञान के आधार पर* हार-जीत का निर्णय दे सकता है। साख्यिकी के महत्त्व को देखते हुए शिक्षा म भी इसका उपयोग प्रारभ किया गया। शिक्षा के क्षेत्र म इसके ज्ञान से राज्य तथा राष्ट्र की शैक्षिक स्थिति का वर्णन किया जाकर शैक्षिक विकास के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि साक्षरता प्रतिशत के आधार पर राजस्थान के विभिन्न जिलो का तुलनात्मक अध्ययन किया जावे तो जालौर, जैसलमेर, बाडमेर आदि जिले शिक्षा प्रसार म पिछडे हैं। भावी योजना बनाते समय इस प्रकार के साख्यिकी समक मार्ग-दर्शन प्रदान करते हैं। इनकी उपयोगिता को देखते हुए भारत सरकार तथा राज्य सरकारो द्वारा शैक्षिक सर्वे भी कराये जाते है। एक शिक्षक को साख्यिकी का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि उसे इसका समुचित ज्ञान होगा तो वह इसका उपयोग शिक्षण, शिक्षा अनुसधान शैक्षिक प्रगति का मूल्याकन तथा शिक्षा योजनाओ के निर्माण म कर सकेगा।

सामान्य रूप म साख्यिकी का अर्थ औसत, प्रतिशत आदि के रूप म लिया जाता है। जैसे भारत म शिक्षा की साक्षरता का प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से निकाल कर शैक्षिक प्रगति को देखा जाता है। बालको की बुद्धि का माध्य निकाल कर अन्य स्थान के बालको की बुद्धि के माध्य से तुलना की जाती है। गूढ रूप म साख्यिकी के अन्तर्गत वे विश्लेषणात्मक विधिया भी आती है जिनकी सहायता म परिकल्पनाओ की जाच आदि की जाती है। इस प्रकार साख्यिकी एक ऐसा विज्ञान है जिसकी सहायता म प्रदत्तो का सकलन, प्रस्तुतिकरण, विश्लेषण आदि किये जाते हैं।

परिभाषा (Definition)

साख्यिकी की परिभाषाए इसके भिन्न भिन्न पक्षो को प्रस्तुत करती है। इनम कुछ परिभाषाए अग्रांकित हैं

(1) बाउले[1] (Bowley)

'सांख्यिकी वह विज्ञान है जो सामाजिक रचना की सम्पूर्ण मात्रा का प्रत्यक्षीकरण को मापता है।

(2) केन्डाल (Kendall)

'सांख्यिकी वैज्ञानिक विधि की वह शाखा है जो प्राकृतिक पदार्थों के समूह की विशेषताओं का माप कर या गिनकर प्राप्त की गई सामग्री से सम्बन्धित है।'

(3) डब्ल्यू आई किंग (W I King)

'सांख्यिकी किसी गणना अथवा अनुमानों के संकलन से विश्लेषण द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों के आधार पर सामूहिक, प्राकृतिक अथवा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन करने की पद्धति है।"

(4) सलीमैन (Seligmen)

"सांख्यिकी वह विज्ञान है जो कि सांख्यिकी-सामग्री के संकलन, वर्गीकरण, प्रदर्शन और व्याख्या इत्यादि की पद्धतियों का वर्णन करती है जिसका संकलन किसी शाखा के क्षेत्र के ऊपर प्रकाश डालने के लिए किया जाता है।"

(5) लिण्डक्विस्ट (Lindquist)

"सांख्यिकी-पद्धतियां वे प्रणालियां हैं जिनके द्वारा संख्यात्मक अथवा परिमाणात्मक प्रदत्तों का संकलन तथा विवेचन किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सांख्यिकी का अर्थ केवल मात्र तथ्यों का संकलन ही नहीं अपितु इसमें भी कुछ अधिक है।

सांख्यिकी के कार्य (Functions of Statistics)

मनुष्य के जीवन तथा सांख्यिकीय रीतियों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संसार में अगणित व्यक्ति ऐसे हैं जिनको सांख्यिकी का ज्ञान नहीं है परन्तु दैनिक जीवन में वे उसका उपयोग करते हैं। कोई व्यक्ति विद्यालय जाने वाले अपने बच्चे के लिए यदि बैग ही खरीदना चाहे तो पहिले मूल्यों का बैग की किस्म के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन करता है। वह बैग का औसत मूल्य ज्ञात करने का प्रयत्न करता है तथा बैग के मूल्यों का विस्तार अर्थात् कम से कम तथा अधिक से अधिक सख्या में अन्तर मालूम करता है। खरीददार इनसे अपरिचित होते हुए भी इनका अपने जीवन में प्रयोग करता है।

सांख्यिकी के विभिन्न कार्य हैं, उनमें से कुछ निम्न प्रकार में हैं—

(1) विभिन्न तथ्यों को संख्यात्मक रूप प्रदान करना

किसी देश की शैक्षिक प्रगति, शिक्षण-संस्थाओं के संसाधनों की स्थिति,

---

1 Bowley A L Elements of Statistics

विद्यालय की प्रगति आदि को गुणात्मक रूप म प्रभावी रूप से प्रदर्शित नही किया जा सकता । यदि इनको साख्यिकी रीतिया के द्वारा निश्चित समक जसे प्रतिशत, औसत आदि म प्रकट किया जाता है जिसम इन क्षेत्रो का गुणात्मक चित्रण एव प्रदर्शन सम्भव है।

(2) जटिल तथ्यो को सरल रूप प्रदान करना

कभी-कभी आकिक रूप म उपलब्ध तथ्यो की सख्या इतनी जटिल होती है कि उनका समझना कठिन होता है। इसी प्रकार कई बार शक्षिक आकडे इतने विशाल होते हैं कि उनस कोई निष्कर्ष निकालना सामान्य मनुष्य के लिए असम्भव सा होता है। साख्यिकी म एसी अनेक विधिया है जिनक द्वारा इन अको को सरल तथा बोधगम्य रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। जैसे ग्राफ या चित्रो द्वारा तथ्यो का प्रदशन। इनको देखने मात्र से ही तथ्य आसानी स समझ मे आ जात हैं जबकि अको से इतनी सरलता स इन तथ्यो को नही समझा जा सकता है।

(3) तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा

किसी एक स्थिति को ठीक समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी अन्य किसी दूसरी स्थिति स तुलना की जावे। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से दोनो स्थितियो के मध्य अन्तर को सरलता से समझ लिया जाता है। मान लीजिए दो विधियो द्वारा छात्रो की शक्षिक निष्पत्ति पर पडने वाले प्रभावो का अध्ययन करना है। इसकी तुलना साख्यिकी की सहायता स दोनो विधिया द्वारा पढाने के बाद छात्रो के प्राप्ताको के माध्य निकाल कर की जा सकती है। साख्यिकी द्वारा तुलनाएँ सरल तथा अथपूर्ण होती हैं।

(4) तथ्यो को निश्चयात्मक रूप देना

कई बार व्यक्ति अपनी समस्या को प्रस्तुत करना चाहता है परन्तु उसे तथ्यात्मक रूप प्रदान नहीं कर पाता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति प्राय शिक्षा के प्रसार की बात करत है परन्तु किसी निश्चित माप द्वारा प्रसार के स्तर को प्रकट नहीं कर पाते हैं। यदि वे प्रसार का निश्चित माप नही कर सकते तो उनकी बातो म अनिश्चितता ही बनी रहती है। साख्यिकी इसे सख्यात्मक रूप प्रदान कर यथार्थ रूप प्रदान करती है। लार्ड केल्विन ने तो यहा तक कहा है कि 'जिस विषय की बात आप कर रहे हैं यदि आप उसे माप सकते हैं, और सख्या मे प्रदर्शित कर सकते हैं, तब तो आप उसके विषय म कुछ ज्ञान रखते हैं। यदि उस आप माप नहीं सकते, प्रदर्शित नही कर सकते तो आपका ज्ञान अल्प एव अपर्याप्त है।

(5) नये नियमो या सिद्धान्तो का निर्माण

समय समय पर शिक्षा-मनोविज्ञान मे अनेक प्रयोग हुए हैं जिनम साख्यिकी की सहायता से निष्कर्ष निकाले गये हैं। उदाहरण के लिए सीखने के नियम, बुद्धि

के नियम, शिक्षण व्यवहार का सिद्धान्त आदि का प्रतिपादन करने से पूर्व इनका पहिले साख्यिकी के आधार पर परखा गया तदोपरान्त नियमो की व्याख्या की गई। पुराने नियमो में संशोधन भी कार्य कारण सम्बन्धो का विश्लेषण कर साख्यिकी की सहायता से किया जाता है।

(6) शोध कार्यों में सहायक

शोध कार्यों में सामान्यत कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए परिकल्पना का निर्माण किया जाता है। प्रयोग करने के लिए प्रतिदर्श का चुना जाता है तथा प्रयोग कर उपलब्ध परिणामो का विश्लेषण साख्यिकी की सहायता से किया जाता है। परिकल्पना को अस्वीकार करना या स्वीकार करना साख्यिकी की सहायता से ही किया जाता है।

साख्यिकी का शिक्षा में महत्त्व
(Importance of Statistics in Education)

आजकल साख्यिकी का महत्त्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढता जा रहा है। इस सम्बन्ध में ए एल बाउले ने कहा है कि साख्यिकी का ज्ञान विदेशी भाषा या बीजगणित के ज्ञान के समान है यह किसी भी समय, किसी भी परिस्थिति में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यह बात सत्य है, आज कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहा पर किसी न किसी रूप में साख्यिकी का प्रयोग न होता हो। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका व्यापक रूप से उपयोग हो रहा है जैसे—शिक्षा नियोजन, शिक्षा में शोध-कार्य, शिक्षा प्रशासन, शिक्षा मनोविज्ञान आदि। साख्यिकी का शिक्षा में महत्त्व निम्नांकित बिन्दुओं में स्पष्ट किया गया है

(1) शिक्षा सम्बन्धी शोध कार्य में इसका विशेष महत्त्व है। प्रदत्तो के सकलन, प्रतिदर्श का चयन तथा परिकल्पनाओं के सत्यापन में साख्यिकी का उपयोग आवश्यक हो गया है। इसके ज्ञान के अभाव में शोध-कार्य विधिवत् पूरा किया जाना सम्भव नहीं है।

(2) शिक्षा में ऐसे कई चिह्न एव चित्रो का प्रयोग किया जाता है जिसका बिना साख्यिकी के ज्ञान के अर्थ नहीं लगाया जा सकता है, उदाहरण के लिए ग्राफ द्वारा प्राथमिक कक्षाओं में प्रति वर्ष अवरोधन, नामांकन की स्थिति आदि।

(3) साख्यिकी द्वारा शिक्षा से सम्बन्धित आकडो को आसानी से सकलित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए प्राथमिक विद्यालयों में भौतिक ससाधनो की कमी का यदि हम सर्वे करना चाहे तो इसके लिए साख्यिकी के ज्ञान की आवश्यकता होगी।

(4) शैक्षिक समक अपने आप में किसी सूचना को प्रदर्शित करते हैं जैसे 1986 में जसलमेर में 14 उच्च माध्यमिक एव माध्यमिक विद्यालय

थे जबकि भरतपुर जिले में इन विद्यालयों की संख्या 115 थी। इनसे सही स्थिति का ज्ञान तभी सम्भव है जब इनका अध्ययन छात्र संख्या के आधार पर किया जाय कि यह संख्या जिलों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त है या नहीं। यह कार्य सांख्यिकी की सहायता से ही किया जा सकता है।

(5) शैक्षिक आवश्यकताओं का पूर्वानुमान सांख्यिकी के ज्ञान से लगाया जा सकता है।

(6) बालक के गुणों की भविष्यवाणी सांख्यिकी द्वारा किया जाना सम्भव है।

(7) शिक्षार्थी की आवश्यकताएं, व्यक्तित्व, गुण, सृजनात्मकता, आदि गुणों का अध्ययन सांख्यिकी द्वारा सम्भव है।

(8) परीक्षा-परिणाम की तैयारी में सांख्यिकी की आवश्यकता पड़ती है।

(9) शैक्षिक योजनाओं के निर्माण का मूल आधार सांख्यिकी द्वारा प्रदत्त समंक हैं। इन समंकों की सहायता से शिक्षा के विकास की भावी योजनाओं का निर्माण किया जाता है।

सांख्यिकीय के अविश्वास

सांख्यिकी विधियाँ शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है तथा इनका उपयोग भी बढ़ता जा रहा है। इनके द्वारा विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का हल ढूंढने का प्रयास भी किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इसकी सहायता से शैक्षिक तथ्यों का सकलन, वर्गीकरण, सारणीयन आदि कर वांछित सूचना परिशुद्धता के साथ प्राप्त की जाती है। इस सबके बावजूद भी आम लोगों की धारणा इन समंकों में कम होती है। कुछ विद्वानों के विचार इस अविश्वास के सम्बन्ध में, निम्नांकित हैं—

(1) डिजरायली

'झूठ तीन प्रकार के होते हैं सफेद झूठ, झूठ तथा सांख्यिकीय झूठ।'

(2) ला गार्डिया (La Guardia)

'समंक या सांख्यिकी उन्माद रोग के रोगियों की तरह है, ये शिक्षा भी पक्ष का समर्थन कर सकते हैं।"

सारांश यह है कि अधिकांश लोगों का ऐसा विश्वास है कि सांख्यिकी के आंकड़े भ्रमपूर्ण तथा झूठे होते हैं।

वास्तव में यह अविश्वास व्यक्ति की अज्ञानता के कारण है। कोई भी समंक या सांख्यिकी कुछ भी सिद्ध नहीं करती, परन्तु इनको कुछ भी सिद्ध करने की दृष्टि से प्रयोग में लाया जा सकता है। इस संदर्भ में यह उदाहरण देना सटीक होगा

कि एक उत्तम औषधि जो ठीक प्रकार से उपयोग करने पर रोग से मुक्ति प्रदान करती है, वही अनुपयुक्त रूप से प्रयोग किये जाने पर घातक भी सिद्ध हो सकती है। इसमें रोग औषधि का न होकर रोगी का है। यही बात सांख्यिकी के लिए लागू होती है। यदि उनका सकलन तथा विश्लेषण सही ढंग से किया जाता है तो उनसे प्राप्त निष्कर्ष भी गलत होंगे। इसमें दोष सांख्यिकी का न होकर प्रयोग करने वाले का है। इसीलिए डब्ल्यू आई किंग[1] ने कहा है कि "सांख्यिकी बहुत उपयोगी हो सकती है परन्तु उन व्यक्तियों के लिए जो उनका उपयोग जानते हों।"

सांख्यिकी की सीमाएं (Limitations of Statistics)

सांख्यिकी के प्रयोग किये जाने की कुछ सीमाएं भी हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध सांख्यिक टिपट (L H C Tippett) ने कहा है 'किसी क्षेत्र में सांख्यिकीय नियमों का उपयोग कुछ मान्यताओं पर आधारित तथा कुछ सीमाओं से प्रभावित होता है, इसलिए प्रायः अनिश्चित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।" अतः सांख्यिकी की सीमाओं की जानकारी की जाना आवश्यक है। कुछ प्रमुख सीमाएं निम्न प्रकार से हैं

(1) समूहों का अध्ययन—सांख्यिकी की सहायता से समूह का अध्ययन किया जाता है न कि किसी व्यक्ति का। सांख्यिकीय निष्कर्ष भी समूह का व्यक्तिगत इकाइयों का नहीं। उदाहरण के लिए किसी कक्षा के सभी विद्यार्थियों की ऊँचाइयों का अध्ययन करने के लिए समूह या कक्षा के विद्यार्थियों की औसत ऊँचाई ज्ञात की जाती है। माना कि यह 1 4 मीटर है। यहां यह आवश्यक नहीं है कि इस कक्षा के किसी विद्यार्थी की ऊँचाई 1 4 मीटर हो ही। समूह के माध्य से व्यक्ति की लम्बाई के बारे में अलग अलग अन्दाज लगाये जा सकते हैं।

(2) संख्यात्मक तथ्यों का अध्ययन—सांख्यिकी की दूसरी सीमा यह है कि इसके द्वारा केवल किसी भी घटना या गुण के संख्यात्मक या परिमाणात्मक पहलू को ही मापा जा सकता है। तथ्यों को सामान्यतः निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है

(1) ऐसे तथ्य जिनको संख्यात्मक रूप प्रदान किया जा सकता है, जैसे बालक की आयु भार, ऊँचाई आदि।

(2) कुछ तथ्य ऐसे भी होते हैं जिनको अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करना पड़ता है जैसे शिक्षार्थी के ज्ञान या बुद्धि के स्तर को प्रत्यक्ष रूप से संख्या में प्रदर्शित नहीं कर सकते। इसके लिए उनकी परीक्षा के अंक या किसी बुद्धि परख के प्राप्तांक अप्रत्यक्ष रूप से साक्षी देते हैं।

---

1 King W I Elements of Statistical Methods

(3) व तथ्य जिनको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार म सख्यात्मक रूप प्रदान नही किया जा सकता। इस प्रकार के तथ्य का अध्ययन साख्यिकी द्वारा सभव नही है जस। "गीता के शिक्षा दशन का वतमान शिक्षा पर प्रभाव" दशन का सख्यात्मक रूप दिया जाना सम्भव नही है।

(3) साख्यिकी से प्राप्त निष्कष पूण प्रमाणित नहीं—साख्यिकी का विनान पूण रूप से अनुमानो पर आधारित होता है। अत इसस प्राप्त निष्कर्षों को बिना जाचे समझे स्वीकार नही करना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी परीक्षा में असफल होने वाले सभी छात्र मोट पाय गय। इससे यह निष्कष निकालना कि मोट विद्यार्थी पढाई म कमजोर होत है, भ्रमात्मक होगा। बाउले ने इस सदभ मे कहा है कि 'साख्यिकी के उपयोग कर प्राप्त अनुसधान के निष्कर्षों को प्रमाणित मानकर सन्तुष्ट नही हो जाना चाहिए, परन्तु उस विधि के समस्त पहलुओ का नान प्राप्त करना चाहिए।"

(4) प्रदत्तो की सजातीयता—साख्यिकी म यह आवश्यक है कि यह सजातीय प्रदत्ता पर ही प्रयुक्त की जा सकती है जस भार और शारीरिक स्वास्थ्य का अध्ययन करन के लिए प्रत्यक व्यक्ति का भार तथा शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिति का अध्ययन करना होगा, ऐसा सभव नही है कि भार किसी व्यक्ति का तथा स्वास्थ्य अन्य व्यक्ति का ले ने। इस प्रकार साख्यिकी से उन्ही गुणो का अध्ययन सभव है जो एक ही व्यक्ति या तथ्य से सम्बन्धित हो।

(5) न्यादश—न्यादश का चुनाव ठीक प्रकार करने पर ही साख्यिकी से प्राप्त निष्कष विश्वसनीय होंगे। न्यादश का चुनाव इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सम्पूण या समग्र का प्रतिनिधित्व करे।

(6) साख्यिकीय विधियाँ—साख्यिकीय विधियो का उपयोग बिना सोचे-समझे हुए परिस्थितियो म किया जाना सभव नही ह। प्रत्यक साख्यिकीय परख की कुछ मान्यताए होती है जिसके पूण होन पर ही उसे उपयोग म लाया जा सकता है।

उपरोक्त विवचन से यह निष्कष निकलता ह कि साख्यिकी साधन प्रस्तुत करता है, समाधान नही। दूसर शब्दो म साख्यिकीय सामग्री स्वत ही किसी सामाजिक समस्या का हल नही होती है।

साराश

साख्यिकी का उपयोग बहुत पुराने समय म चलता आ रहा है। आधुनिक युग म इसका उपयोग वज्ञानिक आधार प्रदान कर किया जाता ह। इसका उपयोग न केवल शिक्षा, अपितु अन्य विषय म भी व्यापक रूप से हो रहा है।

सांख्यिकी वैज्ञानिक विधि की वह शाखा है जो प्राकृतिक पदार्थों के समूह की विशेषताओं को माप कर या गिनकर प्राप्त की गई सामग्री से सम्बन्धित है। इसका उपयोग (1) तथ्यों को संख्यात्मक रूप प्रदान करने, (2) जटिल तथ्यों को सरल रूप देने, (3) विभिन्न तथ्यों में तुलना करने, (4) नए नियमों या सिद्धान्तों का निर्माण करने, तथा (5) भावी कार्य करने में किया जाता है। शिक्षा का क्षेत्र बालक के विकास से सम्बन्धित है अतः शिक्षा में इसे इस रूप में काम में लाते हैं।

सांख्यिकी शिक्षा के क्षेत्र में काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। परन्तु इस पर पूर्ण रूप से आश्रित होना उचित नहीं यह एक अच्छी सेवक है परन्तु मालिक नहीं। सांख्यिकी के उपयोग की भी कुछ सीमाएं हैं अतः अध्यापक को इसका उपयोग करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए। 

अध्याय 13 (i)

प्रदत्तो का वर्गीकरण एव सारणीयन

(Classification and Tabulation of Datum)

यदि किसी राशि क मान म परिवतन होता रहता है ता उस चर (Variable) कहते हैं। उदाहरण क लिए छात्र की ऊँचाई, बुद्धि आदि चर ह क्योकि इनक मान म परिवतन हाता है अर्थात् एक छात्र की ऊँचाई 50' हो सकती ह जबकि दूसरा छात्र इससे कम या ज्यादा ऊँचाई का भी हो सकता है। चर दो प्रकार क अर्थात् (1) सतत् (Continuous) (2) असतत् (Discontinuous) होते ह। सतत् चर का मान एक सीमा तक कुछ भी हो सकता ह जस भार, परीक्षा के अक आदि। मान लें कि एक परीक्षा म अधिकतम अक सीमा 300 अक ह। छात्र के प्राप्ताक 0 स 300 के मध्य कुछ भी हो सकत है।

असतत् चर म राशि निश्चित मानो को ही ग्रहण कर सकती है जसे एक परिवार क सदस्यो की सख्या। परिवार म सदस्यो की सख्या का कोई मूल्य नही हो सकता जस एक परिवार म ढाई सदस्य नही हो सकत है जबकि सतत् राशि म यह सम्भव ह।

कभी-कभी राशियो का वर्गों म बाँटने की आवश्यकता पडती है जस एक अध्यापक यह ज्ञात करना चाहता ह कि उसकी कक्षा का परीक्षा-परिणाम कसा रहा। वह प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी तथा अनुत्तीण छात्र क वग वार आवृत्तिया निकालता ह। सतत् राशियो क वर्गीकरण का एक उदाहरण है।

असतत राशियो म भी वर्गीकरण किया जाता ह जस, परिवार कल्याण क एक कायकर्ता परिवारो का वर्गीकरण उसम पुत्र-पुत्रियो की सख्या क आधार पर करना चाहता है इसका वर्गीकरण करन क लिए नि सन्तान, एक सन्तान, दो सन्तान के आधार पर एक क्षेत्र विशेष के परिवारो को वर्गीकृत करता है।

वर्गीकरण का अर्थ (Meaning of Classification)

किसी भी समस्या स सम्बन्धित आँकडो को एकत्रित किया जाता ह। इनका व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती ह। यदि इन्हे व्यवस्थित नही

किया जाये तो इन आंकडा म हम कोई महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त नहा कर सकत है। वर्गीकरण म आंकडा या प्राप्तों को एक नियमित या क्रमानिक ढग स प्रस्तुत किया जाता है।

एल आर कानर (L R Connor) क अनुसार—'वर्गीकरण वस्तुओं को वास्तविक या उनक गुणा क अनुसार कुछ वर्गों म समभाजित करन की क्रिया को कहत ह।'

उदाहरण क लिए 50 विद्यार्थियों क अंक निम्न प्रकार स ह

31—13—20—31—30—45—38—30— 9—42
30—30—46—36— 2—41—44—18—26—63
44—30—19— 5—44—15— 7—25—12—30
6—22—24—37—15— 6—39—32—21—20
42—31—19—14—23—28—17—53—22—21

उपयुक्त को सारियकी म यथा प्राप्त आंकडे (Raw date) कहत ह। समस्त अंको को उचित वर्ग यथा 0–9 10–19, 20–29, 30–39, 40–49, 50–59 60–69 म बाटना ह। ये वर्ग अन्तराल (Class interval) कहलाते है। वर्ग अन्तराल की छोटी संख्या को निम्न वर्ग सीमा (Lower class limit) कहते है जसे वर्ग-अन्तराल 10–19 मे 10 छोटी वर्ग सीमा है। इसी प्रकार इस वर्ग-अन्तराल की सबसे बडी सीमा को उच्च वर्ग सीमा (Upper class limit) कहत हैं। उपयुक्त उदाहरण मे यह 19 ह।

अब एक तीन स्तम्भों वाली सारिणी, जिसक प्रथम स्तम्भ म वर्ग-अन्तराल (Class Interval) द्वितीय मे मिलान चिह्न (Tally Marks) तथा तृतीय म बारम्बारता (frequency) लिखते ह। जो कि निम्नांकित है

सारिणी संख्या (1)

वर्ग अन्तराल	मिलान चिह्न	बारम्बारता
० - ९	卌 /	६
१० - १९	卌 ////	९
२० - २९	卌 卌 /	११
३० - ३९	卌 卌 ////	१४
४० - ४९	卌 ///	८
५० - ५९	/	१
६० - ६९	/	१

कुल योग ५०

पूर्वोक्त सारिणी तयार करने के लिए सबसे पहला अक 31 लिया। यह 30–39 वग अन्तराल म जाता है अत एक मिलान चिह्न (/) 30–39 वग के सामने 31 के लिए खीचा। इसी प्रकार 13 के लिए वग अन्तराल 10–19, 20 के लिए वग-अन्तराल 20 29 के आग मिलान चिह्न खीचत गय। जब चार मिलान-चिह्न खडे खीचे जावें तो पाचवा मिलान चिह्न चार चिह्न को काटता हुआ खीचा जाता है। इस प्रकार ये पाच-पाच के समूह बन जाते ह तथा बारम्बारता निकालन म आसानी रहती ह। मिलान चिह्नो की सख्या गिनकर बारम्बारता वाले स्तम्भ म लिख दिया जाता ह। जस 40–49 वग अन्तराल मे मिलान चिह्न की सख्या 8 अत बारम्बारता भी 8 होगी।

जसा कि उपरोक्त उदाहरण स स्पष्ट ह कि समस्त यथा प्राप्त आकडा का वग-अन्तराल म विभाजित कर देत है। इस वग म दो सीमाएँ होती ह

(1) अपवर्जी विधि

(2) समावेशी विधि।

उपरोक्त उदाहरण मे प्रथम वग-अन्तराल 0 9 लिया ह। इसम प्रथम वग-अन्तराल की उच्च वग-सीमा 9 है। द्वितीय वग-अन्तराल 10 19 है जिसम निम्न वग सीमा 10 है अर्थात् एक वग की निम्न उच्च तथा दूसरे की निम्न वग सीमा अलग अलग हो तो इस विधि को समावेशी प्रणाली कहत ह।

वग-अन्तरालो को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है कि प्रथम वग की उच्च सीमा तथा द्वितीय वग की निम्न वग सीमा एक ही अक का जसे 0 10 तथा 10 20 आदि। इसम यह समस्या आती ह कि 10 को कहा रक्खा जाव 0 10 म या 10–20 म इस कठिनाइ को दूर करन क लिए 10 को 10 20 वग म रक्खा जाता ह अर्थात् वग-अन्तराल की उच्च सीमा को उस वग-अन्तराल म नही माना जाता ह। उदाहरण म 0 10 वग म 10 को इसम नही माना जावगा। इसी प्रकार 40 50 वग म 50 को इस वग म न मानकर 50 59 म माना जावगा। इस विधि को अपवर्जी विधि कहत ह।

आवृत्ति वितरण के सामान्य नियम

(General Principles for Frequency Distribution)

आवृत्ति वितरण करने के लिए निम्नाकित बातो का ध्यान म रखना चाहिए

(1) दिय हुए यथा प्राप्त आँकडा म सबस छोटा तथा सबस बडा अक ढूँढना चाहिए।

(2) सबस बडे अक म स छोट अक को घटाकर अन्तर ज्ञात किया जाता है, इस विस्तार कहत ह।

(3) वग अन्तरालो की सख्या कम स कम 5 तथा अधिकतम 10 होनी चाहिए। (कम सख्या वाले आँकडो के लिए)

उदाहरण—अंक

72	75	77	67	72
81	78	65	86	73
67	82	76	76	70
78	71	63	72	72
61	67	84	69	64

म विस्तार= 86 − 61 = 25

मान लीजिए वर्ग-अन्तराल 5 अंकों के बनाना चाहते हैं, वर्ग-अन्तरालों की संख्या ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग करते हैं

$$\text{वर्ग-अन्तरालों की संख्या} = \frac{\text{विस्तार}}{\text{एक वर्ग-अन्तराल में अंकों की संख्या}} + 1$$

$$= \frac{25}{5} + 1$$

$$= 6$$

अत यहां पर 6 वर्ग-अन्तराल निम्न प्रकार से बनेंगे -

सारिणी संख्या (2)

वर्ग-अन्तराल	मिलान-चिन्ह	बारम्बारता
८५-८९	/	१
८०-८४	////	४
७५-७९	~~////~~	५
७०-७४	~~////~~ //	७
६५-६९	~~////~~	५
६०-६४	///	३

कुल योग २५

वर्ग-अन्तराल बनाते समय ध्यातव्य बातें

वर्ग अन्तराल बनाते समय अग्रलिखित बातों का ध्यान में रखना आवश्यक है

(1) प्रत्येक वर्ग अन्तराल का वर्गान्तर समान होना चाहिए जो उपरोक्त उदाहरण में प्रत्येक वर्ग अन्तराल 5 अंकों के हैं न कि अलग-अलग।

(2) वर्ग-अन्तराल कितना बड़ा हो यह यथा प्राप्त आंकड़ों की सबसे बड़ी तथा सबसे छोटी इकाई के मध्य अन्तर अर्थात् विस्तार पर निर्भर करता है। यदि विस्तार अधिक है तो वर्ग-अन्तराल भी बड़ा होगा।

(3) यदि किसी वर्ग अन्तराल में बारम्बारता शून्य हो तो वहां शून्य ही लिखा जाना चाहिए न कि उस वर्ग-अन्तराल को अनावश्यक समझ कर लिखें ही नहीं।

(4) प्रत्येक वर्ग की उच्च एवं निम्न वर्ग सीमाएँ निश्चित होनी चाहिए।

(5) वर्ग-अन्तराल में उच्च एवं निम्न वर्ग-सीमाएँ तथा मध्य मूल्य यथासंभव पूर्णांक होने चाहिए।

(6) वर्ग-अन्तराल हेतु चुनी गई राशियां सजातीय होनी चाहिए।

(7) बारम्बारता का कुल योग यथा प्राप्त अंकों की संख्या के तुल्य होना चाहिए।

(8) वर्ग-अन्तराल का आधार स्पष्ट होना चाहिए अर्थात एक ही अंक दो वर्ग-अन्तरालों में न रखा जा सके।

वर्ग-अन्तराल का आकार

वर्गान्तर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग भी किया जा सकता है। यह सूत्र एच. ए. स्टर्जेज द्वारा प्रतिपादित है

$$i = \frac{\text{विस्तार}}{1 + 3.322 \log N}$$

जहां

i = वर्गान्तर या वर्ग-अन्तराल में अंकों की संख्या
N = इकाइयों की कुल संख्या

सामान्यतः इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि किन्हीं अंकों के वितरण में 8 से वर्ग-अन्तराल होंगे अथवा इनसे अधिक या कम इनका निर्णय करने के लिए कुछ सिद्धान्तों को आधार बनाया जाना है।

यदि अग्रांकित दो सारिणियों का निरीक्षण किया जाय तो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें उभरती हैं

उदाहरण—अंक

			67	72
72	75	77	86	73
81	78	65	76	70
67	82	76	72	72
76	71	63	69	64
61	67	84		

में विस्तार= 86 − 61 = 25

मान लीजिए वर्ग-अन्तराल 5 अंकों का बनाना चाहते हैं, वर्ग-अन्तरालों की संख्या ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग करते हैं

$$\text{वर्ग-अन्तरालों की संख्या} = \frac{\text{विस्तार}}{\text{एक वर्ग-अन्तराल में अंकों की संख्या}} + 1$$

$$= \frac{25}{5} + 1$$

$$= 6$$

अतः यहाँ पर 6 वर्ग-अन्तराल निम्न प्रकार से बनेंगे -

सारिणी संख्या (2)

वर्ग-अन्तराल	मिलान-चिन्ह	बारम्बारता
८५-८९	/	१
८०-८४	////	४
७५-७९	𝍸	५
७०-७४	𝍸,//	७
६५-६९	𝍸	५
६०-६४	///	३
	कुल योग	२५

वर्ग अन्तराल बनाते समय ध्यातव्य बातें

वर्ग-अन्तराल बनाते समय अग्रलिखित बातों का ध्यान में रखना आवश्यक है

(1) प्रत्येक वर्ग-अन्तराल का वर्गान्तर समान होना चाहिए जैसे उपरोक्त उदाहरण में प्रत्येक वर्ग अ तराल 5 अ को के है न कि अलग अलग।

(2) वर्ग-अ तराल कितना बडा हो यह यथा प्राप्त आँकडो की सबसे बडी तथा सबसे छोटी इकाई के मध्य अ तर अर्थात् विस्तार पर निर्भर करता है। यदि विस्तार अधिक है तो वर्ग-अन्तराल भी बडा होगा।

(3) यदि किसी वर्ग-अ तराल मे बारम्बारता शून्य हो तो वहा शून्य ही लिखा जाना चाहिए न कि उस वर्ग-अ तराल को अनावश्यक समझ कर लिखे ही नही।

(4) प्रत्येक वर्ग की उच्च एव निम्न वर्ग सीमाएँ निश्चित होनी चाहिए।

(5) वर्ग-अ तराल मे उच्च एव निम्न वर्ग-सीमाएँ तथा मध्य मूल्य यथासभव पूर्णा क होने चाहिए।

(6) वर्ग-अन्तराल हेतु चुनी गई राशिया सजातीय होनी चाहिए।

(7) बारम्बारता का कुल योग यथा प्राप्त अ को की सख्या के तुल्य होना चाहिए।

(8) वर्ग-अ तराल का आधार स्पष्ट होना चाहिए अर्थात एक ही अ क दो वर्ग-अन्तरालो मे न रखा जा सके।

वर्ग-अन्तराल का आकार

वर्गान्तर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग भी किया जा सकता है। यह सूत्र एच ए. स्टर्जेज द्वारा प्रतिपादित है

$$i = \frac{\text{विस्तार}}{1 + 3.322 \log N}$$

जहा

i=वर्गान्तर या वर्ग-अन्तराल मे अ को की सख्या,

N=इकाइयों की कुल सख्या

सामान्यत इस निष्कर्ष पर पहुचा गया कि किन्ही अ को के वितरण मे 8 से वर्ग-अन्तराल होगे अथवा इनसे अधिक या कम इनका निर्णय करने के लिए कुछ सिद्धान्तो को आधार बनाया जाता है।

यदि अग्राकित दो सारिणियो का निरीक्षण किया जाय तो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें उभरती हैं

उदाहरण—अक

			67	72
72	75	77	86	73
81	78	65	76	70
67	82	76	72	72
78	71	63	69	64
61	67	84		

म विस्तार= 86 − 61 = 25

मान लीजिए वर्ग-अन्तराल 5 अंकों के बनाना चाहते हैं, वर्ग-अन्तराल की संख्या ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग करते हैं

$$\text{वर्ग-अन्तरालों की संख्या} = \frac{\text{विस्तार}}{\text{एक वर्ग-अन्तराल में अंकों की संख्या}} + 1$$

$$= \frac{25}{5} + 1$$

$$= 6$$

अतः यहां पर 6 वर्ग-अन्तराल निम्न प्रकार से बनेंगे

सारिणी संख्या (2)

वर्ग-अन्तराल	मिलान-चिन्ह	बारम्बारता
८५-८९	/	१
८०-८४	////	४
७५-७९	~~////~~	[illegible]
७०-७४	~~////~~,//'	७
६५-६९	~~////~~	५
६०-६४	///	३
	कुल योग	२५

वर्ग-अन्तराल बनाते समय ध्यातव्य बातें

वर्ग-अन्तराल बनाते समय अग्रलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है

(1) प्रत्येक वर्ग-अन्तराल का वर्गान्तर समान होना चाहिए जैसे उपरोक्त उदाहरण में प्रत्येक वर्ग अन्तराल 5 अंकों के हैं न कि अलग-अलग।

(2) वर्ग-अन्तराल कितना बड़ा हो यह यथा प्राप्त आंकड़ों की सबसे बड़ी तथा सबसे छोटी इकाई के मध्य अन्तर अर्थात विस्तार पर निर्भर करता है। यदि विस्तार अधिक है तो वर्ग-अन्तराल भी बड़ा होगा।

(3) यदि किसी वर्ग-अन्तराल में बारम्बारता शून्य हो तो वहां शून्य ही लिखा जाना चाहिए न कि उस वर्ग-अन्तराल को अनावश्यक समझ कर लिखे ही नहीं।

(4) प्रत्येक वर्ग की उच्च एवं निम्न वर्ग-सीमाएँ निश्चित होनी चाहिए।

(5) वर्ग-अन्तराल में उच्च एवं निम्न वर्ग-सीमाएँ तथा मध्य मूल्य यथासम्भव पूर्णांक होने चाहिए।

(6) वर्ग-अन्तराल हेतु चुनी गई राशियां सजातीय होनी चाहिए।

(7) बारम्बारता का कुल योग यथा प्राप्त अंकों की संख्या के तुल्य होना चाहिए।

(8) वर्ग-अन्तराल का आधार स्पष्ट होना चाहिए अर्थात एक ही अंक दो वर्ग-अन्तरालों में न रखा जा सके।

वर्ग-अन्तराल का आकार

वर्गान्तर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग भी किया जा सकता है। यह सूत्र एच. ए. स्टर्जेज द्वारा प्रतिपादित है

$$i = \frac{\text{विस्तार}}{1 + 3.322 \log N}$$

जहां

i=वर्गान्तर या वर्ग-अन्तराल में अंकों की संख्या,

N=इकाइयों की कुल संख्या

सामान्यतः इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि किन्हीं अंकों के वितरण में 8 हो वर्ग-अन्तराल होंगे अथवा इनसे अधिक या कम, इनका निर्णय करने के लिए कुछ सिद्धान्तों को आधार बनाया जाता है।

यदि उपरोक्त दो सारिणियों का निरीक्षण किया जाय तो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें उभरती हैं

उदाहरण—अंक

72	75	77	67	72
81	78	65	86	73
67	82	76	76	70
78	71	63	72	72
61	67	84	69	64

म विस्तार= 86 − 61 = 25

मान लीजिए वर्ग-अन्तराल 5 अंकों का बनाना चाहते हैं, वर्ग-अन्तराल की संख्या ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग करते हैं

$$\text{वर्ग-अन्तरालों की संख्या} = \frac{\text{विस्तार}}{\text{एक वर्ग-अन्तराल में अंकों की संख्या}} + 1$$

$$= \frac{25}{5} + 1$$

$$= 6$$

अतः यहाँ पर 6 वर्ग-अन्तराल निम्न प्रकार से बनेंगे

सारिणी संख्या (2)

वर्ग-अन्तराल	मिलान-चिन्ह	बारम्बारता
८५-८९	/	१
८०-८४	////	४
७५-७९	~~////~~	५
७०-७४	~~////~~, //	७
६५-६९	~~////~~	५
६०-६४	///	३

कुल योग २५

वर्ग-अन्तराल बनाते समय ध्यातव्य बातें

वर्ग-अन्तराल बनाते समय अग्रलिखित बातों का ध्यान में रखना आवश्यक है

(1) प्रत्येक वर्ग-अन्तराल का वर्गान्तर समान होना चाहिए जसे उपरोक्त उदाहरण म प्रत्येक वग अन्तराल 5 अ को के है न कि अलग-अलग।

(2) वग-अन्तराल कितना बडा हो यह यथा प्राप्त आकडा की सबसे बडी तथा सबसे छोटी इकाई के मध्य अन्तर अथात् विस्तार पर निभर करता है। यदि विस्तार अधिक है तो वग-अन्तराल भी बडा होगा।

(3) यदि किसी वग-अन्तराल में बारम्बारता शून्य हो तो वहा शून्य ही लिखा जाना चाहिए न कि उस वग-अन्तराल को अनावश्यक समझ कर लिखे ही नहीं।

(4) प्रत्येक वग की उच्च एव निम्न वग सीमाए निश्चित होनी चाहिए।

(5) वग-अन्तराल म उच्च एव निम्न वग-सीमाएँ तथा मध्य मूल्य यथासभव पूर्णांक होने चाहिए।

(6) वग-अन्तराल हेतु चुनी गई राशियाँ सजातीय होनी चाहिए।

(7) बारम्बारता का कुल योग यथा प्राप्त अको की सख्या के तुल्य होना चाहिए।

(8) वग-अन्तराल का आधार स्पष्ट होना चाहिए अर्थात एक ही अक दो वग-अन्तरालो में न रखा जा सके।

वर्ग-अन्तराल का आकार

वर्गान्तर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग भी किया जा सकता है। यह सूत्र एच ए स्टर्जज द्वारा प्रतिपादित है

$$i = \frac{\text{विस्तार}}{1 + 3.322 \log N}$$

जहा

i=वर्गान्तर या वग-अन्तराल म अको की सख्या,

N=इकाइयों की कुल सख्या

सामान्यत इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किन्ही अको के वितरण म 8 हो वग-अन्तराल होगे अथवा इनसे अधिक या कम इनका निर्णय करने के लिए कुछ सिद्धान्तों को आधार बनाया जाता है।

यदि अग्रांकित दो सारिणियों का निरीक्षण किया जाय तो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें उभरती हैं

सारिणी संख्या (3)

(अ)

वर्ग अन्तराल	बारम्बारता
0–20	15
20–40	25
40–60	9
60–80	1
योग	50

(ब)

वर्ग-अन्तराल	बारम्बारता
0–5	3
5–10	3
10–15	6
15–20	3
20–25	5
25–30	6
30–35	8
35–40	6
40–45	4
45–50	4
50–55	1
55–60	0
60–65	1
65–70	0
70–75	0
75–80	0
योग	50

पूर्वोक्त ग रिणिया म (ज) बहुत छाटी मा्रिणी है यदि इस प्रकार की सारिणी तयार की जाती ह तो इसम आकडा के मूल गुण विलोपित हा जाते है। लम्ब अन्तर ल म ज क विशप की आवत्ति छिप जाती ह। इस प्रकार कम सख्या वाल वग-अन्तर ला म बाटना उचित नही ह।

यदि वग-अन्तरालो की सख्या बहुत अधिक हा, जस कि सारिणी (ब) म 16 वग अन्तराल दशाय गय ह, तो यह भी वर्गीकरण की दृष्टि से उपयुक्त नही है। यदि वग अन्तराला की सख्या आवश्यकता से अधिक हागी ता गणना काय अनावश्यक रूप स जटिल तथा लम्बा हागा। अत इस सम्बध म मध्यम माग अपनाया जाता ह। एक काय परक नियम इस क्रम म निम्नानुसार है

(1) यदि यथा प्राप्त आंकडो की सख्या 1000 से अधिक हो तो वग अन्तराला की सख्या 10 स 20 क मध्य हा सकती है।

(2) यदि आकडा की सख्या 100 से कम हा तो वग अन्तराला की सख्या इससे कम की जा सकती ह।

वग-अन्तराल की सख्या निश्चित किय जान की वकल्पिक विधि नीच दी जा रही ह।

माना कि एक परीक्षा म अधिकतम प्राप्तांक 127 तथा न्यूनतम प्राप्तांक 50 ह। प्राप्तांको का विस्तार 127 −50=77

यदि

(1) 4 वग-अन्तराल बनाना चाह ता एक वग-अन्तराल म अक हाग

$\frac{77}{4}$=20 लगभग।

(2) 16 वग-अन्तराल बनाना चाह ता एक वग-अन्तराल म अक हाग

$\frac{77}{16}$=5 लगभग।

(3) 8 वग-अन्तराल बनाना चाह ता एक वग अन्तराल म अका की सख्या

$\frac{77}{8}$=10 लगभग।

उपरोक्त उदाहरणा म 8 वग अन्तराल बनाना उचित है। यह न अधिक बडा न बहुत छाटा हागा। इसक लिए प्रत्यक वग-अन्तराल म 10 का वगान्तर रखना हागा।

वर्ग-अन्तराल का चित्रमय प्रदशन

सारिणी सख्या 2 म 6 वर्ग अन्तराल ह। इसका चित्रमय प्रदशन करन क लिए सवप्रथम सबस कम मूल्य वाला वग अन्तराल 60−64 लेत ह। इसे अग्राकित प्रकार स दिखाया जा सकता है



उपरोक्त रेखा चित्र में क ख रेखा पर 60, 61, 62, 63, 64 अर्थात् पांच अंकों को प्रदर्शित किया गया है। प्रत्येक अंक का क्षेत्र अर्द्ध-वृत्त से बताया गया है। 60 का क्षेत्र 59 5 से प्रारम्भ होकर 60 5 पर समाप्त हो रहा है, 62 का क्षेत्र 61 5 से शुरू होकर 62 5 तक तथा इसी तरह 64 का क्षेत्र 63 5 से 64 5 तक है। इस प्रकार वर्ग-अन्तराल 60 64 वास्तविक रूप से 59 5 से प्रारम्भ होकर 64 5 पर समाप्त होता है।

अन्य वर्ग अन्तरालों का क्षेत्र भी इसी प्रकार निर्धारित कर सारिणी संख्या–2 को सैद्धान्तिक रूप में निम्नानुसार लिख सकते हैं

सारिणी (4)

वर्ग-अन्तराल	बारम्बारता
84 5–89 5	1
79 5–84 5	4
74 5–79 5	5
69 5–74 5	7
64 5–69 5	5
59 5–64 5	3
योग	25

उक्त वर्णित वर्ग-अन्तराल पूर्व में बताये वर्ग-अन्तरालों से कहीं अधिक वास्तविक है। परन्तु सामान्यतः इसे काम में कम लाया जाता है।

मध्य-बिन्दु

वह बिन्दु जो कि किसी वर्ग-अन्तराल में इस प्रकार हो कि उसके दोनों ओर बराबर अंक आवें मध्य बिन्दु कहलाता है। वर्ग-अन्तराल 60–64 में 60, 61, 62, 63 व 64 अंक हैं। 62 इसका मध्य बिन्दु होगा। क्योंकि 62 के पूर्व तथा बाद में दो-दो अंक विद्यमान हैं।

कभी ऐसी भी स्थिति आती है जब वग अन्तराल में अको की सख्या सम हो जसे 60–65, इसम निहित अक 60, 61, 62, 63, 64, 65 है। यहा पर मध्य म 62 व 63 दोना ही अक है ऐसी स्थिति म इन दोनो अका के मध्यमान अर्थात् $\frac{62+63}{2}$=62 5 को मध्य बिन्दु माना जाता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर वग-अन्तराल का मध्य बिन्दु ज्ञात करने की दो स्थितिया हो सकती है जो कि निम्न हैं

(1) वग अन्तराल म अको की सख्या सम हो।

(2) वग-अन्तराल म अको की सख्या विषम हो।

सम सख्या होने की स्थिति म निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है

$$\text{मध्य बिन्दु} = \text{निम्न अक} + \frac{\text{विस्तार}}{2}$$

$$= 60 + \frac{64 \quad 60}{2}$$

$$= 62$$

विषम सख्या होने पर वग-अन्तराल का मध्य बिन्दु निम्न प्रकार से निकालते हैं

$$\text{मध्य बिन्दु} = \frac{\text{निम्न अक} + \text{उच्च अक}}{2} - 1$$

$$= \frac{62-65}{2} - 1$$

$$= \frac{127}{2} = 1$$

$$= 63\ 5 - 1$$

$$= 62\ 5$$

सारणीयन (Tabulation)

यथा प्राप्त अको के वर्गीकरण के पश्चात् उनका सारणीयन करना आवश्यक है। इसम अको को सक्षिप्त रूप म प्रदर्शित कर उन्हे समझने योग्य बना दिया

जाता है। सारणीयन से आंकड़ों को सरलता से समझ कर समग्र आंकड़ों के गुणों के बारे में अनुमान लगाया जाना सम्भव है। कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार से हैं—

(1) एच सेक्राइस्ट (H Secrist)

सारिणी वह साधन है जिसमें वर्गीकरण द्वारा की गई विवेचना को निश्चित रूप रखा प्रदान की जाती है।

(2) एल आर कोनर (L R Connor)

"सारणीयन किसी विशेष समस्या का स्पष्ट रूप प्रदान करने के लिए आंकड़ों को नियमित तथा सुव्यवस्थित रूप में रखने का नाम है।"

सारणीयन के नियम

(1) सारणी में शीर्षक तथा उप शीर्षक स्पष्ट रूप से लिखे जाने चाहिए जिनके पढ़ने मात्र से यह समझ में आ जाय कि यह सारणी क्या प्रदर्शित कर रही है?

(2) शीर्षक को संक्षिप्त में लिखा जाना चाहिए।

(3) सारणी का आकार बहुत बड़ा हो तो उसे छोटी छोटी सारणियों में विभक्त कर लेना चाहिए। बड़ी सारणी को समझना कठिन होता है।

(4) सारणी के कालम के शीर्षक भी लिखे जाने चाहिए।

(5) सारणी में प्रयुक्त अंकों की इकाई को भी लिखा जाना चाहिए।

(6) सारणी में कालम तथा श्रेणीवार योग की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

सारणी तैयारी करने के प्रकार

सारणी को मुख्यतः हाथ द्वारा तथा मशीन द्वारा तयार किया जाता है। हाथ द्वारा सारणीयन के लिए अंकों को वर्ग अन्तराल में बाट कर फिर मिलान चिन्ह अंकित कर किया जाता है। इसका वर्णन पूर्व में कर दिया गया है।

आजकल मशीनों द्वारा सारणीयन भी होता है इसके लिए सर्वप्रथम प्रविष्टियों को 'कोड संख्या' में बदल कर इनको कार्डों पर लिखना होता है। इसे कार्ड पंच करना कहते हैं। मशीन इन कार्डों से मनचाही सारणी बना कर शीघ्रता से दे देती है।

सारांश

शिक्षा के क्षेत्र में कई बार ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जबकि अध्यापक को प्राप्तांक राशियों को विभिन्न वर्गों में बाटना पड़ता है। अतः एक शिक्षक का प्रदत्तों के वर्गीकरण की तकनीक का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्गीकरण का अर्थ दिये गये चर मूल्यों अथवा वस्तुओं का उनके अंजित वर्गों में उनके गुणों अथवा संख्या के आधार पर बाटना है।

आवृत्ति वितरण अंकित करने से पूर्व अध्यापक को वर्ग अन्तराल की संख्या निश्चित कर लेनी चाहिए। यह संख्या लगभग 10 और 15 के मध्य या कुछ कम

या अधिक हो सकती ह। इम ज्ञत करन के लिए प्राप्ताको ने विस्तार म एक वर्गान्तर के आकार का भ ग दिया जाता है।

वग अ तराल बनाते समय अध्यापक को कुछ बातो का ध्यान रखना चाहिए। ध्यातव्य बातें हैं—(1) वर्गान्तरा का आकार समान हो (2) शू य आवृत्ति वाला वर्ग-अन्तराल भी लिखा जावे, (3) मध्य मूल्य यथासम्भव पूर्णा क हो, (4) उच्च एव निम्न सीमाएँ निश्चित हा, (5) इस हेतु ली गई राशिया सजातीय हो, तथा (6) वग अ तरा ा की बारम्बारताओ का योग प्राप्ताको की कुल सख्या क तुल्य हो।

अ क ा को सक्षिप्त रूप से प्रदर्शित करन की विधि को सारणीयन कहते हैं। इससे आकडा को सरलता से समझ कर उनके गुणा के बारे म अनुमान लगाया जा सकता है। अत अध्यापक को सारणीयन विधि का ज्ञान होना आवश्यक है।



अध्याय 13 (II)

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान

(Measures of Central Tendency)

आंकडे स्वयं कुछ स्पष्ट नहीं कर सकते जब तक कि उन्हें विधिपूर्वक सारिणी में व्यवस्थित न किया जाय। इसके लिए सर्वप्रथम आंकडों का वर्गीकरण तथा सारिणीयन किया जाता है। इसकी विधि आदि का वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है। एक बार जब आवृत्त सारिणी (Frequency Distribution) तैयार हो जाती है तो उनके गुणों का अध्ययन करने के लिए इन विभिन्न आवृत्त सारिणियों की तुलना की जाती है। उदाहरण के लिए गत दस वर्षों में साक्षरता का अध्ययन करने के लिए स्त्री साक्षरता तथा पुरुष साक्षरता की अलग अलग आवृत्त सारिणियाँ तैयार की जा सकती हैं। इन दोनों में साक्षरता में प्रगति की तुलना दो प्रकार से की जा सकती है—

(1) चित्र अथवा ग्राफ के द्वारा

(2) संख्यात्मक अध्ययन द्वारा।

चित्र एवं ग्राफ द्वारा तुलनात्मक अध्ययन इतना सही नहीं माना गया है क्योंकि इसमें देखने का कौशल निहित है जो कि सही निष्कर्ष निकालने में बहुत कम सक्षम पाया गया है। इसी कारण से आंकड़ों का संख्यात्मक अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार का अध्ययन चित्र और ग्राफ से कहीं अधिक प्रभावी है।

सामान्यतः आंकड़ों में एक ऐसी प्रवृत्ति या गुण पाया गया है कि वे सब किसी एक संख्या के आस पास बिखरे रहते हैं। दूसरे शब्दों में दिये गये प्रदत्तों में कोई न कोई एक ऐसी संख्या अवश्य होती है जिसके आस पास अन्य प्रदत्त बिखरे रहते हैं। निम्न उदाहरण में यह तथ्य और अधिक स्पष्ट होगा। माना कि विद्यार्थियों के हिन्दी विषय में प्राप्तांक निम्न प्रकार से हैं—

17 18 18, 19, 20 21, 22 22, 23, 24, 25

उपरोक्त संख्याओं से यह स्पष्ट हो रहा है कि सभी प्राप्तांक 21 के आस पास ही हैं। इनमें कुछ 21 से कम तथा कुछ इससे अधिक हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त सभी प्राप्तांकों की प्रवृत्ति 21 की ओर केन्द्रित है। प्रत्येक

श्रेणी में कोई न कोई अंक ऐसा होता है जिसकी ओर श्रेणी के अन्य अंक केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं। साधारण बोल चाल की भाषा में इसे औसत कहते हैं।

विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ हम विशाल संख्याओं का प्रयोग करते हैं केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप का अधिक महत्त्व है। डा बाउले ने तो सांख्यिकी को ही 'मापों का विज्ञान' कहा है। सांख्यिकी माप एक सरल संख्या होती है जो किसी समूह का प्रतिनिधित्व करती है। सामान्यतः मध्य, माध्यिका और बहुलांक में सांख्यिकी मापों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इनको केन्द्रीय प्रवृत्ति (Central Tendency) भी कहते हैं। इनके द्वारा किसी समूह या गुण तथा उनके वितरण के बारे में ज्ञान आसानी से प्राप्त हो जाता है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के इन मानों का उपयोग निम्न उद्देश्यों से सांख्यिकी एवं शिक्षा में किया जाता है—

(1) केन्द्रीय माप द्वारा विशाल समूह को छोटे रूप में प्रदर्शित किया जाना सम्भव है।

(2) इनके द्वारा दो या दो से अधिक समूहों का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव है।

(3) किसी भी शोध कार्य में सभी अंकों का प्रयोग सम्भव नहीं इनका अध्ययन केन्द्रीय मान से भी सम्भव है।

(4) केन्द्रीय मान सांख्यिकीय विवेचना एवं विश्लेषण के आधार हैं अंकों के विश्लेषण को अन्य सब क्रियाएँ इन पर आधारित हैं।

अतः यह आवश्यक है केन्द्रीय माप अर्थात् मध्य माध्यिका एवं बहुलांक का ज्ञान प्रत्येक शिक्षक को हो। इनके ज्ञान से वह शिक्षक समंकों के गुणों को भली-भाँति समझ सकेगा उनका विवेचन कर सकेगा तथा आवश्यकता पड़ने पर वह अन्य अंकों से तुलनात्मक अध्ययन कर सकेगा। इस सम्बन्ध में किंग का कथन सही प्रतीत होता है कि "समंक बहुत उपयोगी नौकर हैं पर तु केवल उन व्यक्तियों के लिए जो कि इनका उचित उपयोग जानते हैं।" सांख्यिकीय सामग्री स्वतः ही किसी शैक्षिक समस्या का हल नहीं होती। इससे तो समस्या का केवल ठीक ठाक रूप सामने आता है अतः शिक्षक को सांख्यिकीय माप का ज्ञान होने के साथ साथ उसका उपयोग करने की विधि से भी परिचित होना चाहिए जिससे कि वह उन्हें आधार बना कर प्रमाण दे सके, तथा निष्कर्ष निकाल सके।

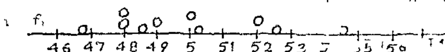
मध्यमान

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों में सबसे अधिक उपयोग मध्यमान का किया जाता है। यह वह मूल्य है जो उस श्रेणी के सभी अंकों के मूल्यों के योग को उनकी संख्या

से भाग देने पर प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए एक कक्षा म दस विद्यार्थी ह। इनकी ऊँचाइया फीट मे क्रमश 4 66, 5 20, 5, 4 9, 4 8, 5 25, 4 8, 4 85, 5 05 तथा 5 47 है, इन सब ऊँचाइया का याग 50 फीट है अत —

$$\text{मध्यमान ऊंचाई} = \frac{50}{10} = 5 \text{ फीट}$$

इसका चित्रमय प्रदर्शन निम्न प्रकार स किया जा सकता है। निम्न चित्र म X-अक्ष पर छात्रो की ऊँचाई प्रदर्शित की गई है। यदि दो छात्रों की ऊँचाई समान ह ता उनका एक बिन्दु पर दिखाया गया है। रेखा पर O का निशान छात्र को बताता है—



उपरोक्त उदाहरण स यह स्पष्ट ह कि मध्यमान वह मूल्य है जो उस श्रेणी के सभी मूल्यों के योग को उनकी कुल संख्या से भाग देने पर प्राप्त किया जाता है।"

मध्यमान को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया गया है—

(1) बस्ट[1] (Best)

"किसी समक माला के समानान्तर माध्य को मध्यमान कहते है। इसे उन सभी समक मूल्यो के योग म समको की संख्या के भाग देने से प्राप्त किया जाता है।"

(2) विलियम आई ग्रीनवाल्ड (William I Greenwald)

"किसी समूह का मध्यमान उस समूह के पदो के मूल्यो के योग को उसके पदो की संख्या से विभाजित करके प्राप्त किया जाता है।"

मध्यमान किसी समूह के प्राप्तांको का वह मान ह जो इन सभी अकों के इससे विचलन को समान भागो मे बाटता है। उदाहरण के लिए गणित म 9 छात्रा के अक 44, 51 45, 42, 37, 55 25, 41, 47 हैं। इनका मध्यमान निम्न प्रकार से ज्ञात किया जायेगा

$$\text{मध्यमान} = \frac{44+45+42+37+55+25+41+47}{9} = \frac{387}{9}$$

1 Best John W Research in Education Prentice Hall of India (Pvt) Ltd , New Delhi 1963 P 211

अब हम विचलन की दृष्टि से देखें—

अंक	विचलन (अंक माध्य)	धनात्मक	ऋणात्मक
44	44–42	1	
51	51–43	8	
45	45–43	2	
42	42–43		–1
37	37–43		–6
55	55–43	12	–
25	25–43		–18
41	41–43		–2
47	47–43	4	
	योग	+ 27	– 27

अत मध्यमान वह मान है जिसम समूह के सभी अंको का विचलन निकाल कर यदि विचलन का योग किया जावे तो वह शून्य होगा। दूसरे शब्दो म यह समूह के अंको का वह मान हे जहा से अंको का विचलन इसके दोनो ओर समान होता है।

मध्यमान ज्ञात करने की विधिया

जसा कि पूव के अध्याय म स्पष्ट किया गया प्रश्नो को दो प्रकार अर्थात अव्यवस्थित या व्यवस्थित रूप म रखा जा सकता है। इसी के अनुरूप मध्यमान भी दो प्रकार से अर्थात् अव्यवस्थित प्रदत्तो से मध्यमान ज्ञात करना तथा व्यवस्थित प्रदत्तो से मध्यमान ज्ञात किया जा सकता है।

(अ) अव्यवस्थित प्रदत्तो से मध्यमान ज्ञात करना—यह एक सरल विधि है। इसके अन्तगत समूह के सभी अंको का योग कर इसम समूह संख्या का भाग दे देता है। भाग देन पर जो मान आता है उसे मध्यमान कहते हैं।

उदाहरण के लिए यदि अंग्रेजी की परीक्षा में 10 छात्रो न क्रमश 18, 20, 30, 35, 40, 15, 7, 8, 12, 45 अंक प्राप्त किय तो इनका मध्यमान निकालने के लिये सर्वप्रथम इनका योग करेंगे। यह योग 230 है। चूँकि कुल अंक 10 हैं अत 230 म 10 का भाग दिया जायेगा।

$$\text{मध्यमान} = \frac{230}{10}$$

$$= 23$$

यदि किसी समूह में N अंक हों तथा इन N अंकों का योगफल Σx से प्रदर्शित किया जाता हो तो

$$\text{मध्यमान} = \frac{\Sigma x}{N}$$

(ब) आवत्तियुक्त अव्यवस्थित पदों का मध्यमान—कभी कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि पदों के साथ उनकी आवत्तियाँ भी दी हुई होती हैं। इस प्रकार की सारिणी यदि दी हुई हो तो सर्वप्रथम प्रत्येक पद को उसकी आवत्ति से गुणा करते हैं तथा सभी गुणनफल का योग कर लेते हैं। इस सर्व-योग में आवत्तियों की संख्या के योग का भाग देने से हमें मध्यमान प्राप्त हो जाता है।

निम्न तालिका में यह विधि उपयोग में लाई गई है—

प्रदत्त (x)	आवत्तियाँ (f)	प्रदत्त आवत्तियाँ ($f \times x$)
6	2	12
8	3	24
10	5	50
12	2	24
14	3	42
	N=15	$\Sigma fx = 152$

$$\text{मध्यमान} = \frac{152}{15} = 10.13$$

इस सूत्र का रूप निम्न प्रकार से दिया जा सकता है—

$$M = \frac{\Sigma fx}{N}$$

जहाँ कि

M=मध्यमान (2)

Σfx=प्रदत्त एव आवृत्तियों के गुणनफलो का योग
N=आवृत्तिया का योग।

व्यवस्थित पदो का मध्यमान ज्ञात करना

यदि पद पूववत् व्यवस्थित ह तव तो इस विधि का उपयोग किया ही जा सकता है और यदि अव्यवस्थित ह तो उन्ह वर्ग अन्तरालो म व्यवस्थित कर इनका मध्यमान भी इस विधि स ज्ञात कर सकत ह। अत इस विधि क लिए यह आवश्यक ह कि पद वग अन्तराल म व्यवस्थित हो। इन व्यवस्थित पदो स मध्यमान निम्न प्रकार स निकाला जा सकता ह

(क) बारम्बारता वितरण तालिका से मध्यमान ज्ञात करना

बारम्बारता वितरण स मध्यमान ज्ञात करन की विधि निम्नानुसार ह

वर्गान्तर	मध्य बिन्दु	आवृत्ति या बारम्बारता	fx
13–15	14	1	14
10–12	11	4	44
7–9	8	2	16
4–6	5	6	30
1–3	2	3	6
		N=16	Σfx=110

$$n=\frac{\Sigma fx}{N}=\frac{110}{16}=6.87$$

उपरोक्त तालिका से इस विधि के चरण निम्नानुसार स्पष्ट होते हैं

(1) मध्य बिन्दु ज्ञात करना

वर्गान्तर म यह मध्य का अंक है। इसे ज्ञात करन क लिए अन्तिम पदो को जोडकर दो का भाग दे दिया जाता ह। उपरोक्त उदाहरण म 4–6 म मध्य बिन्दु $\frac{4+6}{2}=5$ ह।

(2) आवृत्ति तथा मध्य बिन्दु का गुणा करना

प्रत्येक वर्ग-अन्तराल के सम्मुख लिख मध्य बिन्दु का उसकी आवृत्ति स गुणा किया जाता है जैसे 13–15 म मध्य बिन्दु 14 का गुणन उसकी

आवृत्ति 1 से किया गया है तथा इसी प्रकार वर्गान्तर 7–9 में मध्य बिन्दु 8 को गुणा आवृत्ति 2 से कर गुणनफल 16 लिया गया है।

(3) मध्यमान ज्ञात करने के लिए मध्यमान तथा आवृत्ति के गुणनफलों के सर्वयोग में कुल आवृत्तियों का भाग दिया जाता है। एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है

वर्गान्तर	मध्य बिन्दु	बारम्बारता	fx
23–25	24	1	24
20–22	21	6	126
17–19	18	7	126
14–16	15	6	90
11–13	12	7	84
8–10	9	8	72
5–7	6	2	12
2–4	3	3	9
		N=40	Σfx=543

$$M = \frac{\Sigma fx}{N}$$

$$= \frac{543}{40} = 13\ 575$$

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि इस विधि में बड़ी बड़ी संख्याओं का गुणा करना पड़ता है यदि इस गुणन क्रिया में जरा भी असावधानी हो जाती है तो मध्यमान गलत हो सकता है। बड़ी-बड़ी गुणन संक्रियाओं में न केवल सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है अपितु इसमें समय अधिक लगता है। विद्यार्थी के श्रम एवं समय दोनों की दृष्टि से यह विधि उपयुक्त नहीं है। मध्यमान ज्ञात करने के लिए एक अन्य विधि संक्षिप्त विधि के नाम से प्रयोग में लायी जाती है।

मध्यमान ज्ञात करने की संक्षिप्त विधि

इस विधि में निम्नांकित पदों के अनुसार आगे बढ़ना चाहिए

(1) कल्पित माध्य ज्ञात करना—सामान्यतः बारम्बारता वितरण के मध्य में स्थित उस वर्गान्तर को लेना चाहिए जिसकी बारम्बारता अधिक हो। इस वर्गान्तर के मध्य बिन्दु को कल्पित माध्य कहते हैं।

(2) कल्पित माध्य से प्रत्येक मध्य बिन्दु का विचलन ज्ञात करने के लिए मध्य बिन्दु में से कल्पित माध्य को घटा लेते हैं तथा यदि इन मानों में वर्ग अन्तराल का भाग जा सकता हो तो दे देते हैं।

(3) वर्ग-अन्तराल में पदों की संख्या ज्ञात करना।

मध्यमान ज्ञात करने की संक्षिप्त विधि का एक उदाहरण

बड़े समंकों का मध्यमान निकालने में कठिनाई होती है अतः इसके मध्यमान को *निकालने के लिए संक्षिप्त विधि काम में ली जाती है। इसे कल्पित मध्य* मान विधि भी कहते हैं क्योंकि इसमें एक कल्पित मध्यमान मान कर प्रदत्तों का मध्यमान निकाला जाता है इस विधि का निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट किया गया है

संक्षिप्त विधि से मध्यमान की गणना

वर्ग-अन्तराल	आवृत्तियां (f)	कल्पित मध्यमान से विचलन (d)	आवृत्ति तथा विचलन का गुणनफल (fd)
45 – 49	3	+5	+15
40 – 44	5	+4	20
35 – 39	10	+3	30
30 – 34	15	+2	30
25 – 29	20	+1	30
20 – 24	30	0	0
15 – 19	15	–1	–15
10 – 14	10	–2	–20
5 – 9	7	–3	–21
0 – 4	5	–4	–20
	$N=120$		$\Sigma fd=+39$

$$\text{मध्यमान}=A+\frac{\Sigma fd}{N}\times i$$

जहां कि

A=कल्पित माध्य

Σfd=आवृत्ति एवं विचलन के गुणनफल का योग

N=कुल आवृत्ति

i=वर्ग-अन्तराल।

$$\text{मध्यमान}=22+\frac{39}{120}\times 5=23.62$$

उपरोक्त उदहरण स यह स्पष्ट है कि—

(1) यहा कल्पित मध्यमान के लिए वर्गान्तर 20 – 24 को इसलिए चुना गया ह कि यह मध्य म है तथा इसकी आवत्ति अधिक अधात 30 है ।

(2) कल्पित मध्यमान= $\frac{20+24}{2}$=22 निकाला गया । यह वर्गान्तर 20 – 24 का मध्य विन्दु ह ।

(3) विचलन निकालने के लिए उस वर्गान्तर क मध्य बिन्दु म स कल्पित मध्यमान घटा कर शेषफल म वर्गान्तर क मान का भाग दिया गया । यहा प्रत्यक वग अन्तराल म 5 अक हैं अत वर्गान्तर का मान 5 है । उदाहरण के लिए 45 – 49 वग अन्तराल का विचलन ज्ञात करने के लिए इसका मध्य विन्दु 47 ज्ञात किया गया । 47 म स कल्पित मध्यमान 22 घटाने पर 25 प्राप्त हुआ । इसम वर्गान्तर क मान 5 का भाग देने पर विचलन का मान=25 – 5=5 प्राप्त हाता ह । इसी प्रकार अन्य विचलन ज्ञात किए ।

(4) आवृत्ति तथा विचलन का गुणनफल ज्ञात कर इनक सब योग ज्ञ त किया गया ।

उपरोक्त काय करने क उपरान्त सूत्र का प्रयोग कर सक्षिप्त विधि स मध्यमान निकाला गया । इस विधि स मध्यमान ज्ञात करने म गणना करने का काय बहुत ही सरल ह तथा परिणाम क अशुद्ध हान की सम्भावना भी कम रहती ह । इस विधि स समय की भी बचत हाता है ।

मध्यमान के गुण

(1) मध्यमान का सूत्र ज्ञात करना आसान हाता ह ।

(2) किसी समूह क मध्यमान स समूह म इकाइया की सख्या, समूह या इकाइयो का कुल मूल्य आदि ज्ञात किया जा सकता ह ।

(3) मध्यमान म प्रत्यक इकाई का महत्त्व दिया जाता है ।

(4) मध्यमान पर प्रतिदश क चुनाव का बहुत कम असर पडता ह, उदारण क लिए यदि किसी समग्र म स कुछ प्रतिदश यादृच्छिक रूप स चुन जावे तथा प्रत्यक प्रतिदश का माध्य अलग अलग निकाला जाय ता इन माध्यो क मूल्यो म मामूली अन्तर होगा ।

(5) माध्य ज्ञात करने के लिए समूह की इकाइयों का व्यवस्थित रूप से क्रम में रखना आवश्यक नहीं है।

(6) समूह की सभी इकाइयों का माध्य से विचलन ज्ञात कर उनका योग किया जावे तो वह शून्य होगा।

मध्यमान के दोष

(1) मध्यमान वास्तविक इकाई में प्रदर्शित किया जाय अथवा नहीं यह निश्चित नहीं है। जैसे यदि किसी कक्षा के विद्यार्थियों की औसत आयु 17 वर्ष है, यहां यह आवश्यक नहीं है कि 17 वर्ष की उम्र वाला बालक वास्तव में उस कक्षा में है या नहीं।

(2) मध्यमान का मूल्य अवलोकन मात्र से ज्ञात नहीं किया जा सकता है।

(3) समूह की इकाइयों की संख्या का उसके मध्यमान मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। यदि चुने गये समूह में इकाइयां कम हैं तथा वे सर्वाधिक मूल्य या बहुत कम मूल्य वाली हैं तो इनसे ज्ञात मध्यमानों में पर्याप्त अंतर होगा। उदाहरण के लिए एक समूह में अधिकांश लोग साधारण आय वाले हैं। एक या दो करोड़पति की आय भी समूह में सम्मिलित करने से मध्यमान के मान में पर्याप्त अंतर आ जायगा।

(4) मध्यमान द्वारा कभी-कभी गलत निष्कर्ष भी निकल जाते हैं। उदाहरण के लिए दो विद्यालयों का 3 वर्षों का परीक्षाफल नीचे दर्शाया गया है

	विद्यालय अ	विद्यालय ब
1985	40 प्रतिशत	70 प्रतिशत
1986	50 प्रतिशत	50 प्रतिशत
1987	60 प्रतिशत	30 प्रतिशत

दोनों विद्यालयों का गत तीन वर्षों का औसत प्रतिशत 50 प्रतिशत आता है जो कि दोनों की समान प्रगति को बताता है परन्तु वास्तविकता में विद्यालय 'अ' प्रगति कर रहा है जबकि विद्यालय 'ब' के स्तर में गिरावट आ रही है।

मध्यमान के विशेष गुण

(1) मध्यमान से समूह के सभी अंकों के विचलन का योग शून्य होता है।

(2) यदि समूह के प्रत्येक अंक में किसी संख्या का गुणा करें तो मध्यमान के मूल्य में भी उस संख्या के गुणन मूल्य के बराबर वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के लिए, संख्या 10, 20, 30, 40, 50 का मध्यमान

(2) यदि प्रत्येक संख्या को दुगुना कर दिया जाय तो संख्या क्रमशः 20, 40, 60, 80, 100 होगी। इनका मध्यमान पहले मध्यमान से दुगुना होगा।

(3) यदि प्रत्येक प्राप्तांक में किसी संख्या का भाग दे दें तो मध्यमान मूल्य भी उसी अनुपात में घट जायगा। उदाहरण के लिए यदि किसी समूह संख्या के प्रत्येक पद में 5 का भाग लगा दें तो इन संख्याओं का मध्यमान पूर्व मध्यमान का 1/5वां भाग होगा।

(4) प्रत्येक संख्या में एक निश्चित राशि जोड़ने से मध्यमान में भी उतनी ही वृद्धि हो जाती है।

मध्यांक

मध्यांक का शाब्दिक अर्थ है मध्य का अंक। जब कच्चे अंकों या प्रदत्तों को आरोही क्रम (Ascending Order) या अवरोही क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है तो मध्य में रहने वाले अंक के मूल्य को मध्यांक कहते हैं। उदाहरण के लिए अंक 7, 4, 9, 3 10 का आरोही क्रम 3, 4 7, 9, 10 में व्यवस्थित करने पर मध्य पद का मूल्य जो कि तीसरा पद है, मध्यांक कहलायेगा। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि तीसरा पद स्वयं मध्यांक नहीं है अपितु तीसरे पद का मूल्य जो कि 7 है मध्यांक है। इस प्रकार मध्यांक किसी प्राप्तांकों के समूह में वह बिन्दु है जिसके ऊपर तथा नीचे बराबर प्राप्तांक हों। परन्तु मध्यांक के एक ओर की संख्याओं के मध्यांक से मूल्य कम तथा दूसरी ओर की संख्याओं के मूल्य अधिक होंगे।

समूह की संख्या विषम हो तो संख्याओं को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित कर बीच वाली संख्या का मूल्य ज्ञात कर लेते हैं परन्तु यदि संख्या सम हो तो उस अवस्था में बीच में दो संख्याएँ आयेंगी। [illegible] दो का भाग देने से मध्यांक आ जाता है। उदाहरण [illegible] 1 2 [illegible]
30 और 33 के बीच में पड़ता [illegible]

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मध्यांक किसी समूह में मध्य के पद का मूल्य है अथवा यह वह पद है जिसके ऊपर या नीचे पदों की संख्या बराबर होती है।

विद्यार्थियों के उक्त अंकों से यह ज्ञात करें किस विषय में इनके ज्ञान का स्तर अधिक है।

दोनों विषयों में ज्ञान के स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए दोनों विषयों में प्राप्त अंकों को व्यवस्थित करते हैं

गणित—25–28–29–30–32–33–33–35–38–40–42–45–46–46–48–49–51–52–54–56–58–60–65–72।

अंग्रेजी—10–15–20–25–28–30–32–33–35–36–38–39–40–42–44–46–50–53–55–58–62–63–72–80–85।

गणित विषय में $\frac{n+1}{2}$ अर्थात् $\frac{25+1}{2}$ वाँ पद या 13वाँ पद 46 है जबकि अंग्रेजी विषय में 13वाँ पद 40 है। गणित में प्राप्तांकों का मध्यांक अंग्रेजी के मध्यांक से अधिक है जिससे यह प्रकट होता है कि गणित में ज्ञान का स्तर अंग्रेजी से अच्छा है।

उदाहरण

निम्न तालिका में बालकों की ऊँचाई दी हुई है

क्र स	ऊँचाई (से मी में)	क्र स	ऊँचाई (से मी में)
1	150	7	120
2	150	8	120
3	145	9	115
4	140	10	110
5	140	11	110
6	130	12	100

बालकों की ऊँचाइयों का मध्यांक ज्ञात करो।

$$\text{मध्यांक पद (Medium Term)} = \frac{\frac{n}{2} \text{ वाँ पद} + \left(\frac{n}{2}+1\right) \text{वाँ पद}}{2}$$

n–पदों की संख्या।

म मध्य म पाचवा तथा छठा पद दोनो ही है। ये पद क्रमश 27 तथा 30 हैं। इन दोनो को जोडकर दो का भाग देने से मध्याक आ जाता है। अर्थात् मध्याक $\frac{27+30}{2}=28.5$। यदि किसी समूह में n पद हो तथा ये पद सम हो तो $\left(\frac{n}{2}+1\right)$वा पद तथा $\frac{n}{2}$वा पद का औसत मूल्य मध्याक कहलायगा।

उदाहरण

नीचे सारणी म 25 विद्यार्थियो के अग्रेजी तथा गणित के अक दिए हुए है

छात्र का रोल न	गणित	अग्रेजी	छात्र का रोल न	गणित	अग्रेजी
1	29	36	13	46	80
2	65	30	14	47	44
3	33	38	15	60	85
4	45	39	16	30	20
5	51	64	17	32	32
6	72	50	18	52	25
7	48	46	19	54	55
8	33	15	20	56	28
9	42	42	21	58	53
10	25	10	22	49	35
11	28	70	23	40	62
12	35	33	24	46	58
			25	38	40

(ब) खण्डित श्रेणी का मध्यांक ज्ञात करना—खण्डित या असतत श्रेणी में मध्यांक उस पद का मूल्य होता है जिसमें मध्य पद होता है। सर्वप्रथम पदों को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित कर उनकी संचयी आवृत्ति ज्ञात की जाती है। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं

मध्यांक मूल्य $= \frac{\text{कुल आवृत्ति} + 1}{2}$

उदाहरण 53 छात्रों के गणित में प्राप्तांकों की बारम्बारता निम्नानुसार है

अंक	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति
15	4	4
18	6	10
20	10	20
22	2	22
25	9	31
26	3	34
28	5	39
30	7	46
32	2	48
34	3	51
36	1	52
40	1	53

उपरोक्त सारणी में यह स्पष्ट है कि संचयी आवृत्ति लिखने में

(1) सबसे कम अंक की आवृत्ति, जैसे 15 की आवृत्ति 4, को ज्यों का त्यों संचयी आवृत्ति के स्तम्भ में लिख देते हैं।

(2) आगे की संचयी आवृत्ति निकालने के लिए अंक की आवृत्ति में पिछली संचयी आवृत्ति जोड़ते हैं। जैसे 18 की संचयी आवृत्ति निकालने के लिए 18 की आवृत्ति (6) में 18 से पूर्व की संचयी आवृत्ति (4) जोड़ देने पर इस पद की संचयी आवृत्ति 10 होगी। इसी प्रकार पद 36 की संचयी आवृत्ति इस पद की आवृत्ति + इस पद से पूर्व की संचयी आवृत्ति=1 + 51=52 ।

(3) अन्तिम पद की संचयी आवृत्ति कुल आवृत्तियों के तुल्य होगी

मध्यांक$=\frac{53+1}{2}=27$

$=27$वें पद की आवृत्ति का मूल्य

$=25$

वर्गीकृत श्रेणी का मध्यांक ज्ञात करना

वर्गीकृत श्रेणी का मध्यांक ज्ञात करने का सूत्र निम्नानुसार है—

$$Md_n = L + \left(\frac{N/2 - f_b}{f_m}\right) \times i$$

जहां कि

L=निम्न सीमा

N=कुल आवृत्तियां या कुल अंक

f_b =निम्न सीमा से नीचे के सभी वर्गान्तरों की बारम्बारता का योग

f_m=मध्यांक जिस वर्गान्तर में स्थित है, उसकी बारम्बारता

i=वर्गान्तर का मान

Md_n =मध्यांक

उदाहरण

वर्गान्तर	बारम्बारता (f)	संचयी बारम्बारता (cf)
141–150	2	100
131–140	5	98
121–130	10	93
111–120	19	93
101–110	26	64
91–100	15	38
81–90	12	23
71–80	6	11
61–70	4	5
51–60	1	1
	N=100	

चूँकि यहाँ कुल अंक 100 हैं अतः 50वाँ अंक मध्यांक होगा। संचयी बारम्बारता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 50वाँ अंक कहाँ होगा। यह पूर्वोक्त तालिका में 101–110 वर्गान्तर में स्थित है। इसका अनुमान लगाने के लिए 51–60 वर्गान्तर को देखते हैं। उसमें 1 अंक है। 61–70 में 1 के बाद 5 तक अंक, 71–80 में 5 के बाद 11 तक अंक हैं। 101–110 में 38 के आगे 64 तक अंक हैं। 50वाँ अंक इसी में स्थित है।

$$Md_n = l + \frac{\left(\frac{N}{2} - f_b\right)}{f_m} \times i$$

$$= 100.5 + \left(\frac{50 - 38}{26}\right) \times 10$$

$$= 100.5 + \frac{12}{26} \times 10$$

$$= 100.5 + 4.61$$

$$= 105.11$$

मध्यांक के परिणाम में कोई भिन्नता नहीं होगी यदि गणना सबसे बड़े वर्ग की ओर से की जाय। परन्तु ऐसी स्थिति में मध्यांक ज्ञात करने का सूत्र निम्नानुसार होगा—

$$Md_n = U - \frac{\left(\frac{N}{2} - f_a\right)}{f_m} \times i$$

जहाँ कि

U=ऊपरी सीमा (Upper limit)

N=कुल अंक

f_a=ऊपरी सीमा से ऊपर की बारम्बारता का योग

f_m=मध्यांक जिस वर्गान्तर में स्थित है, उसकी बारम्बारता

i=वर्गान्तर का मान

उपरोक्त प्रश्न को दुबारा इस सूत्र से हल करने पर

$$Md_n = U - \frac{\left(\frac{N}{2} - f_a\right)}{f_m} \times i$$

$$=110.5 - \left(\frac{50-36}{26}\right) \times 10$$

$$=110.5 - 5.38$$

$$=110.12$$

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों प्रकार के मध्यांक का मान लगभग समान आता है।

मध्यांक के गुण

(1) मध्यांक को सरलता से ज्ञात किया जा सकता है।

(2) वितरण में जब चरम अंक हों तो ये अंक मध्यांक के मान को प्रभावित नहीं करते हैं। इस प्रकार यह मध्यमान से भिन्न है, जिस पर चरम अंकों का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए 3, 4 7 9 और 10 में एक अंक 112 सम्मिलित कर लें तो इसमें मध्यमान में 19 7 की वृद्धि होगी जबकि मध्यांक में केवल 1 की वृद्धि होती है।

(3) मध्यांक मध्य-पद का मूल्य है अतः इसके मूल्य में अन्य पदों के मूल्यों का प्रभाव नहीं पड़ता। केवल वह पद जिसमें मध्यांक स्थित है, का मूल्य ज्ञात होना पर्याप्त है।

(4) मध्यांक समूह के विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करता है जैसे अध्यापकों की मासिक आय का मध्यांक 1000 रुपये है। इससे अभिप्राय यह है कि आधे अध्यापक 1000 रुपये से अधिक तथा आधे 1000 रुपये से कम मासिक वेतन प्राप्त करते हैं।

(5) मध्यांक का उपयोग ऐसे मानवीय गुणों की जानकारी प्राप्त किये जाने में सहायक है जिनका सही मापन सम्भव नहीं जैसे बुद्धि, स्वास्थ्य, रुचि आदि। उदाहरण के लिए निम्न तालिका में 5 लड़कों तथा 5 लड़कियों के बुद्धि के अंक दिये हैं—

क्र स	लड़के	लड़कियाँ
1	45	20
2	46	48
3	48	72
4	76	92
5	70	84

उपरोक्त उदाहरण में लड़कों की बुद्धि का मध्यांक 48 तथा लड़कियों का यह मध्यांक 72 है अतः लड़कियाँ लड़कों से अधिक बुद्धिमान हैं।

मध्यांक के दोष

(1) यदि पदों की संख्या कम हो तो इस बात की संभावना बनी रहती है कि मध्यांक समूह के गुणों का पूर्ण प्रतिनिधित्व न करे।

(2) पद के मूल्य अनियमित होने पर मध्यांक से प्राय भ्रमयुक्त निष्कर्ष निकलते हैं। उदाहरण के लिए एक परीक्षा में 5 विद्यार्थियों के प्राप्तांक 28 20 5, 1 1 हों तो इनका मध्यांक 5 भ्रमपूर्ण है।

(3) मध्यांक ज्ञात करने के लिए प्राप्तांकों को आरोही या अवरोही क्रम में जमाना आवश्यक है।

(4) यदि कई मध्यांक दिए हों तो इनसे संयुक्त मध्यांक ज्ञात नहीं किया जा सकता है।

(5) यदि मध्य-पद दो वर्गों के बीच में पड़ता हो तो मध्यांक का सही मान ज्ञात करना कठिन होता है। ऐसी अवस्था में केवल संभावित मूल्य ही ज्ञात किया जा सकता है।

मध्यांक का उपयोग उसी दशा में किया जाना चाहिये जबकि इकाइयों की संख्या निश्चित हो तथा इन्हें आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जाना संभव हो। जब प्राप्त आँकड़े समवितरित न होकर एक दिशा में अधिकता लिए हों जैसे 50 अंक के प्रश्न-पत्र में अधिकांश छात्र 35 से अधिक अंक प्राप्त करें तथा कुछ छात्र 35 से कम, ऐसी स्थिति में मध्यांक का उपयोग किया जाना उचित रहता है। मध्यांक, चूँकि सभी आवृत्तियों पर आधारित है तथा इसे कभी-कभी तो मात्र अवलोकन से ही ज्ञात कर लेते हैं, अतः इसको शिक्षा समंकों के गुणों के प्रदर्शन में काम में लाया जाता है।

बहुलांक (Mode)

अंकों के समूह में जिस पद की आवृत्ति सबसे अधिक बार होती है उसे बहुलांक कहते हैं। उदाहरण के लिए 21, 21, 22, 29, 32, 32, 32, 37 37, 38 में 32 की आवृत्ति सर्वाधिक है अतः बहुलांक 32 हुआ।

बहुलांक को अंग्रेजी में मोड कहते हैं जो कि फ्रैंच भाषा के 'ल मोद" से बना है जिसका अर्थ है रिवाज या फैशन। सांख्यिकी में बहुलांक उस मूल्य को कहते हैं जो कि अंकों के समूह में सबसे अधिक बार आता है अर्थात् जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक हो। इसे सर्वाधिक घनत्व की स्थिति भी कह सकते हैं क्योंकि इस अंक के मूल्यों की बाहुल्यता होती है।

परिभाषायें (Definitions of Mode)

बहुलांक को अग्रांकित प्रकार से परिभाषित किया गया है—

(1) क्राक्सन और काउडेन (Croxton and Cowden)

"एक बारंबारता वितरण का बहुलांक वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयाँ अधिक से अधिक केन्द्रित होती हैं।"

(2) राबर्ट एच वेशल और एडवर्ड आर विलेट
(Robert H Wessel and Edward R. Willett

"अंकों में सर्वाधिक आवृत्ति वाली आकृति को बहुलांक कहते हैं।"

(3) बोडिंगटन (Boddington)

"बहुलांक वह रूप, प्रकार अथवा मूल्य है जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो अथवा सर्वाधिक घनत्व की स्थिति में हो।"

(4) विलियम आई ग्रीनवाल्ड (William I Greenwald)

"बहुलांक वह महत्त्वपूर्ण मूल्य या मान है जो समूह के प्राप्तांकों में सबसे अधिक बार प्रकट हुआ हो।"

(5) बाउले (A L Bowley)

"किसी सांख्यिकीय समूह में किसी मात्रा का वह मूल्य जो सर्वाधिक बार प्रकट हुआ हो अथवा जिस पर आवृत्तियों का सर्वाधिक घनत्व हो, बहुलांक कहलाता है।"

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि बहुलांक को सर्वाधिक जमाव वाली संख्या के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें आवृत्ति को विशेष महत्त्व दिया गया है। यदि किसी बिन्दु की आवृत्ति सबसे अधिक है तो वह बहुलांक होगा। दूसरे अर्थ में यदि किन्हीं समुदाय के सदस्यों की आय का बहुलांक 500 रु है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस समुदाय में अधिकतम सदस्यों की आय 500 रु प्रति मास है।

वर्गीकृत श्रेणी से बहुलांक ज्ञात करना

बहुलांक की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि यह वह अंक है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है। इस दृष्टि से अधिकतम आवृत्ति वाले पद का मूल्य जान कर बहुलांक ज्ञात कर लिया जाता है। यह मान निरीक्षण से ही ज्ञात किया जा सकता है। इस रूप में यह एक सरल विधि है। उदाहरण के लिए 15 छात्रों के प्राप्तांक अग्रलिखित सारिणी में दर्शाये गये हैं—

प्राप्तांक	18	20	21	23	24	28
बारम्बारता	1	3	6	3	1	1

यहाँ पर प्राप्तांक 21 की बारम्बारता सर्वाधिक है अतः उपर्युक्त श्रेणी का बहुलांक 21 है।

परन्तु कई बार ऐसी भी स्थिति आती है जब श्रेणी की दी गई बारम्बारता नियमित न हो अर्थात् कभी बड़ी तथा कभी घट जाय तथा एक से अधिक स्थानों पर अधिकतम बारम्बारताएँ केन्द्रित हो तो मात्र निरीक्षण से बहुलांक ज्ञात करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में निरीक्षण के बजाय 'समूहन विधि' का उपयोग करते हैं।

उदाहरण के लिए निम्न तालिका में विद्यार्थियों की ऊँची कूद प्रतियोगिता में कूदी गई ऊँचाई दर्शायी गयी है

ऊँचाई (मीटर में)	1 0	1 5	1 8	2 1	2 5	2 7	3 0	3 2	4 0	4 5
आवृत्ति	10	5	13	6	23	32	14	35	8	7

उपरोक्त सारिणी को देखने से अधिकतम आवृत्ति 35 ऊँचाई 3 2 की है अतः मात्र निरीक्षण से 3 2 ऊँचाई को बहुलांक कहा जा सकता है। परन्तु यह भी सम्भव है कि इस पद के पड़ौस में पद 3 0 (आवृत्ति=14) तथा पद 4 0 (आवृत्ति=8) बहुलांक की आवृत्ति पर प्रभाव डाल सकते हैं। 35 से कम आवृत्ति 32 है जो कि पद 2 7 मीटर का है इसके पड़ोसी पद 2 5 (आवृत्ति=23) तथा पद 3 0 (आवृत्ति=14) की आवृत्तियाँ यदि सम्मिलित कर ली जावें तो पद 2 5 2 7, 3 0, की संयुक्त आवृत्तियाँ (69), पद 3 2, 4 0 और 4 5 की संयुक्त आवृत्तियां (50) से अधिक है अतः पद 4 0 का बहुलांक होना अनिश्चित है।

उक्त सारिणी को समूहन विधि से अग्रांकितानुसार सरल किया जा सकता है—

समूहन विधि

सारिणी—अ

समूहन सारिणी

ऊँचाई (मीटर में)	आवृत्तियाँ (1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
10	10	–	–	–	–	
15	5	15		28	–	
18	13		18		24	
21	6	19				42
25	23		29	61		
27	32	55			69	
30	14	49				
32	35		46	57		81
40	8	15	43		50	
45	7	–	–		–	

उपरोक्त सारिणी में कालम संख्या 1 में आवृत्तियाँ लिखी गई हैं कालम संख्या 2 में दो-दो आवृत्तियों के जोड़े बनाये गये हैं। जैसे 10+5=15, 13+6=19, 23+32=55 आदि। जिन दो आवृत्तियों का योग किया गया है उनका कोष्ठक में अंकित कर योग लिख दिया गया है जैसे आवृत्तियाँ 10 और 5 के आगे कोष्ठक बनाकर 15, आवृत्तियाँ 13 और 6 के आगे कोष्ठक में 19 आदि लिख गये हैं। चूँकि 10 प्रकार की ऊँचाइयाँ हैं अतः कुल 5 कोष्ठक कालम संख्या 2 में खींचे गये हैं। यदि संख्या विषम होती तो अन्तिम आवृत्ति को छोड़ दिया जाता।

कालम संख्या 3 में प्रथम आवृत्ति को छोड़ कर दो-दो आवृत्तियों के जोड़े बनाकर उनका योग कोष्ठक के आगे लिखा गया है। कालम संख्या 4 में तीन तीन आवृत्तियों का योग कोष्ठक के आगे लिखा गया जबकि कालम संख्या 5 में पहली आवृत्ति को छोड़ कर तीन तीन आवृत्तियों को जोड़ा गया है। कालम संख्या 6 में प्रथम दो आवृत्तियाँ छोड़ कर तीन तीन आवृत्तियों के समूह बनाकर योग लिखा गया है।

यह ज्ञात करने के लिए कि बहुलांक का मान क्या है, हम एक विश्लेषण सारिणी तैयार करते हैं। इस सारिणी में प्रत्येक कालम की अधिकतम आवृत्ति को अंकित किया जाता है। सारिणी निम्नानुसार तैयार की जाती है

विश्लेषण-सारिणी

इस सारिणी में कालम का स्थान निम्न प्रकार से बदल देते हैं—

सारिणी—ब

कालम संख्या	ऊँचाई के पद (मीटर में) 10	15	18	21	25	27	30	32	40	45
1								|		
2					|	|				
3						|	|			
4				|	|	|				
5					|	|	|			
6						|	|	|		
योग	0	0	0	1	3	5	3	2	0	0

उपरोक्त सारिणी तैयार करने के लिए सर्वप्रथम सारिणी अ के कालम संख्या 1 में अधिकतम आवृत्ति देखी जो कि 35 है। यह आवृत्ति पद 32 की है अतः सारिणी—ब में कालम संख्या 1 तथा पद 32 मीटर जहाँ मिलते हैं, | का निशान लगा दिया है।

सारिणी—अ के कालम संख्या 2 में अधिकतम आवृत्ति 55 | पद 25 तथा 27 मीटर की है अतः सारिणी—ब में कालम संख्या 2 तथा पद 25 व 27 के मिलने वाले स्थानों पर | के दो निशान अंकित कर दिये। यही क्रम अन्य सभी कालम के लिए किया गया।

उपरोक्त सारिणी से यह स्पष्ट होता है कि बहुलांक का मूल्य 27 मीटर है।

उदाहरण—सारिणी में 65 अध्यापकों की मासिक आय का विवरण दिया हुआ है।

आय (रुपयों में)	555	665	775	885	995	1105	2115
संख्या	8	10	16	14	10	5	2

बहुलांक ज्ञात करें।

हल

आय (रु मे)	आवृत्तियो के समूहो का योग 1	2	3	4	5	6
555	8	–		–	–	
665	10	18		34	–	
775	16		26		40	
885	14	30	24	29		40
995	10					
1105	5	15	7		17	
2115	2	–	–	–	–	

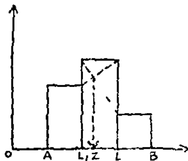
विश्लेषण-सारिणी

कालम स	आय 555	665	775	885	995	1105	2115
1			|				
2			|	|			
3		|	|				
4	|	|	|				
5		|	|	|			
6			|	|	|		
योग	1	3	6	3	1	0	0

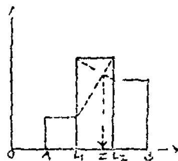
अत बहुलाक पद 885 रु है क्योकि समूहन विधि से इसकी आवृत्ति सर्वाधिक अर्थात 6 है।

सतत श्रेणी का बहुलाक समूहन-विधि से ज्ञात करना

सतत श्रेणी मे बहुलाक की स्थिति को उसके पडौस के पद की आवृत्तिया प्रभावित करती है। इसे स्पष्ट करने के लिए दो चित्र अग्राकितानुसार अकित किये गये हैं



(अ)



(ब)

उपरोक्त चित्रों में चित्र अ तथा चित्र ब आवृत्ति-विवरण की भिन्न स्थितियाँ प्रदर्शित करते हैं। चित्र अ में L_1, L_2 बहुलांक के वर्ग को प्रदर्शित करता है। इस पद से पूर्व के पद की आवृत्ति, पद के बाद वाले पद की आवृत्ति से अधिक है अर्थात् पद AL_1 की ऊँचाई L_2B से अधिक है इस कारण बहुलांक बिन्दु Z निम्न सीमा (L_1) की ओर झुका है।

चित्र ब में आवृत्ति विवरण की स्थिति विपरीत है। बहुलांक पद $L_1 L_2$ है। इस पद से पूर्व के पद AL_1 की आवृत्ति बाद के पद L_2B से कम है अर्थात् L_2B की ऊँचाई AL_1 से अधिक है इस कारण बहुलांक बिन्दु उच्च सीमा अर्थात् L_2 के निकट है। उक्त चित्रों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बहुलांक का मान बहुलांक पद से निम्न पद तथा उच्च पद की आवृत्तियों के मूल्यों द्वारा प्रभावित होता है। इसी कारण इसके सूत्र में इन पदों की आवृत्तियाँ ली गई हैं।

बहुलांक का सूत्र निम्नानुसार है—(जब बहुलांक वर्ग की आवृत्ति सर्वाधिक हो)

$$Z = L_1 + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2}(L_2 - L_1)$$

जहाँ कि

Z=बहुलांक
L_1=बहुलांक वर्ग की निम्न सीमा
L_2=बहुलांक वर्ग की उच्च सीमा
f=बहुलांक वर्ग की आवृत्ति
f_1=बहुलांक वर्ग से पूर्व के वर्ग की आवृत्ति
f_2=बहुलांक वर्ग के बाद के वर्ग की आवृत्ति

(2) जब बहुलांक पद की आवृत्ति अन्य वर्ग-अन्तराल से कम हो तो

$$Z = L_1 + \frac{f_2}{f_1 + f_2}(L_2 - L_1)$$

उदाहरण

निम्न प्रदत्ता से वहुलाक ज्ञात करें

प्राप्तांक	आवृत्तियाँ
0–9	3
10–19	4
20–29	8
30–39	7
40–49	6
50–59	3

सवप्रथम समूहन विधि से वहुलाक किस वर्ग अन्तराल में स्थित है यह ज्ञान लिया जाता है

(1) समूहन-विधि

प्राप्तांक	आवृत्तियाँ					
	1	2	3	4	5	6
0–9	3	–		–	–	
10–19	4	7	12	14	–	
20–29	8				19	
30–39	7	15	13	16 –		21
40–49	6			–	–	
50–59	3	9 –				

(2) विश्लेषण-सारिणी

कालम संख्या	प्राप्तांक					
	0–9	10–19	20–29	30–39	40–49	50–59
1			|			
2			|	|		
3				|	|	
4				|	|	|
5		|	|	|		
6			|	|	|	
योग	0	1	4	5	3	1

(2) विश्लेषण-सारिणी

कालम	प्राप्तांक					
	1–0	11–20	21–30	31–40	41–50	51–60
1				|		
2			|	|		
3				|	|	
4				|	|	|
5		|	|	|		
6			|	|	|	
योग	0	1	3	6	3	1

यहा पर बहुलाक वग 31–40 उभर कर आया है। प्रश्न म दी गई सारिणी म भी इसकी आवृत्ति सर्वाधिक है अत

सूत्र $Z = L_1 + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2}(L - L_1)$ का प्रयाग करन पर

$$Z = 30\ 5 + \frac{38-36}{76-36-37}(10)$$

$$= 30\ 5 + \frac{2}{3} \times 10$$

$$= 30\ 5 + 6\ 66 = 36\ 56$$

बहुलाक के गुण

(1) बहुलाक का ज्ञात किया जाना सरल है।

(2) बहुलाक पर प्रदत्ता के विचलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(3) बहुलाक से यह प्रकट होता है कि सर्वाधिक छात्र क्या प्राप्त कर रहे हैं या कसा गुण रखते है।

(4) इसका समझना आसान है।

(5) किसी न्यादर्श म बहुलाक का मान सदव एक ही होता है।

बहुलाक के दोष

(1) इसमे बीजगणितीय विवेचन जसे कई न्यादर्शों के बहुलाको का सयुक्त रूप मे बहुलाक ज्ञात करना आदि सम्भव नहीं है।

पूर्वोक्त सारिणी से यह स्पष्ट होता है कि बहुलांक वर्ग अन्तराल 30–39 में है क्योंकि विश्लेषण सारिणी में इसकी आवृत्ति सर्वाधिक अर्थात 5 है। यहाँ पर अधिकतम आवृत्ति वाला वर्ग अन्तराल 20–29 है जबकि बहुलांक-वर्ग 30–39 है। इस कारण सूत्र संख्या–2 का उपयोग करने पर

$$Z=L_1+\frac{f_2}{f_1+f_2}(L_2-L_1)$$

$$=29.5+\frac{6}{8+6}(10)$$

$$=29.79$$

उपरोक्त सूत्रों के उपयोग में ध्यान रखने की एक आवश्यक शर्त यह है कि वर्ग अन्तराल का आकार समान होना चाहिए।

उदाहरण— निम्न सारिणी से बहुलांक ज्ञात करें

प्राप्तांक	आवृत्ति
1–10	12
11–20	24
21–30	36
31–40	38
41–50	37
51–60	6

(1) समूहन-विधि

प्राप्तांक	आवृत्ति					
	1	2	3	4	5	6
1–10	12					
		36		72		
11–20	24		60			
21–30	36				98	
		74				111
31–40	38		75	81		
41–50	37					
		43				
51–60	6					

(2) विश्लेषण-सारिणी

कालम	प्राप्तांक					
	1–0	11–20	21–30	31–40	41–50	51–60
1				|		
2			|	|		
3				|	|	
4				|	|	|
5		|	|	|		
6			|	|	|	
योग	0	1	3	6	3	1

यहा पर बहुलाक वग 31–40 उभर कर आया ह। प्रश्न म दी गई सारिणी म भी इसकी आवृत्ति सर्वाधिक ह अत

सूत्र $Z=L_1+\frac{f-f_1}{2f-f_1-f_2}(L_2-L_1)$ का प्रयोग करने पर

$$Z=30.5+\frac{38-36}{76-36-37}(10)$$

$$=30.5+\frac{2}{3}\times 10$$

$$=30.5+6.66=36.56$$

बहुलाक के गुण

(1) बहुलाक का ज्ञात किया जाना सरल ह।

(2) बहुलाक पर प्रदत्ता क विचलन का कोई प्रभाव नही पडता ह।

(3) बहुलाक से यह प्रकट होता ह कि सर्वाधिक लोग क्या प्राप्त कर रह ह या कसा गुण रखत है।

(4) इसको समझना आसान ह।

(5) किसी न्यादर्श म बहुलाक का मान सदव एक ही होता ह।

बहुलाक के दोष

(1) इसम बीजगणितीय विवचन जसे कई न्यादर्शों के बहुलाकों का संयुक्त रूप स बहुलाक ज्ञात करना आदि सम्भव नही ह।

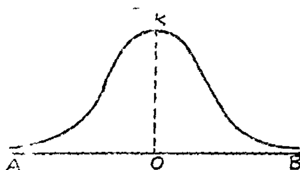
(2) यदि बहुलाक कम आवृत्तियों में ज्ञात किया गया हो तो यह केन्द्रीय प्रवृत्ति को प्रदर्शित नही करता है। अतः बहुलाक ज्ञात करने के लिए आवृत्तियों की संख्या अधिक होनी चाहिए।

(3) यदि किसी सतत श्रेणी में सभी वर्गान्तरों की आवृत्तियाँ समान हों तो बहुलाक ज्ञात करना सम्भव नही है।

बहुलाक का प्रयोग किसी आवृत्ति वितरण के बारे में शीघ्रता से अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। इसको कई बार मात्र अवलोकन से ही ज्ञात कर लेते हैं।

मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक मे सम्बन्ध

यदि किसी आवृत्ति वितरण का आलेख तैयार किया जाय तथा वह इस प्रकार हो कि उस आलेख के दो बराबर भाग करें तो एक भाग दूसरे का प्रतिबिम्ब हो उस वितरण को सममित वितरण कहते हैं।



चित्र में आवृत्ति वितरण रेखा OK के दोनों ओर बराबर है। ऐसी स्थिति में मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक एक बिन्दु O पर स्थित होंगे।

सामान्यतः मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक में सम्बन्ध निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है

बहुलांक=3 मध्यांक−2 मध्यमान

उदाहरण—यदि किसी विषय के प्राप्तांकों का बहुलांक 16 तथा मध्यमान 15 6 हो तो मध्यांक का मान ज्ञात करें?

बहुलांक=3 मध्यांक−2 मध्यमान

16 =3 मध्यांक−2 × 15 6

3 मध्यांक=47 2

मध्यांक=15 73

कब किस विधि का उपयोग करें

यहाँ केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापन की तीनों विधियों का वर्णन किया जा चुका है अतः अब यह प्रश्न उठता है कि कब किस केन्द्रीय प्रवृत्ति का प्रयोग किया जाय?

मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक के प्रयोग के सम्बन्ध में सामान्य निष्कर्ष दिये जा रहे हैं, जिनसे यह निर्णय करने में सुविधा होगी कि कब कौन सी केन्द्रीय प्रवृत्ति का प्रयोग किया जाय।

(1) मध्यमान

इसका प्रयोग तब करें जबकि—

(क) अंकों का वितरण सममित हो।

(ख) जब हम मानक विचलन या सह सम्बन्ध गुणांक आदि ज्ञात करते हों।

(2) मध्यांक

इसका प्रयोग उस स्थिति में करेंगे जबकि—

(क) वितरण का हम ठीक मध्य बिन्दु ज्ञात करना हो।

(ख) वितरण में चरम अंकों का प्रभाव न्यूनतम करना हो।

(3) बहुलांक

यह तब ज्ञात करें जबकि—

(क) सर्वाधिक प्रचलित अंक ज्ञात करना हो।

(ख) हम केन्द्रीय प्रवृत्ति का निकटतम मान ज्ञात करना हो।

इस संबंध में वसल तथा विलेट कहते हैं कि सम्भावना एवं गुण सम्बन्धित समस्याओं के लिए मध्यमान, खुले वितरण में मध्यांक तथा विशेष बड़ी आवृत्तियों वाले वितरण में बहुलांक ज्ञात किया जाना चाहिए।

साराश

सामान्यतः आंकड़ों में एक ऐसी प्रवृत्ति या गुण पाया जाता है कि ये सब एक संख्या के आस पास बिखरे रहते हैं। इस गुण को केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा संख्या को केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान कहते हैं। सामान्यतः मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक का इस रूप में प्रयोग किया जाता है इसलिए इन्हें केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान कहते हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मानों में सबसे अधिक प्रचलित मध्यमान है। यह समूह के पदों के मूल्यों का योग कर इस पदों की संख्या से विभाजित करने से प्राप्त किया जाता है। मध्यमान के अनेक गुण हैं इसे ज्ञात करना आसान है। इसमें प्रत्येक इकाई को महत्त्व दिया जाता है तथा इस पर प्रतिदर्श के चुनाव का बहुत कम असर पड़ता है। समूह की सभी इकाइयों का मध्यमान से विचलनों का योग शून्य होता है। इसमें कुछ दोष भी हैं। यह आवश्यक नहीं है कि मध्यमान वास्तविक इकाई में ही प्रदर्शित किया जावे। मध्यमान से कभी कभी गलत निष्कर्ष भी निकल जाते हैं।

मध्यांक का अर्थ है मध्य का अंक। यह वह पद है जिसके दोनों ओर आवृत्तियों की संख्या तुल्य होती है। मध्यांक ज्ञात करने की अनेक विधियाँ हैं। मध्यांक के अनेक गुण हैं। श्रेणी के चरम अंक मध्यांक के मूल्य को प्रभावित नहीं करते हैं।

यह ऐसे मानवीय गुणों की जानकारी प्राप्त किये जाने में सहायक है जिनका सही मापन सम्भव नहीं है। मध्यांक की कुछ सीमाएं भी हैं जैसे यदि पदों की संख्या कम हो तो यह समूह के गुणों का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता। इसका उपयोग उसी दशा में किया जावे जब पदों की संख्या अधिक हो, वे निश्चित हों तथा इन्हें आरोही या अवरोही क्रम में जमाया जा सकना सम्भव हो।

बहुलांक का अर्थ श्रेणी के उस पद से है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक हो अथवा यह वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयां अधिक से अधिक केन्द्रित होती हैं। बहुलांक ज्ञात करने की सब प्रचलित विधि समूहन विधि है। इसके अनेक गुण है। बहुलांक पर विचलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तथा इससे यह ज्ञात हो जाता है कि अधिकतर लोग कैसे हैं या क्या चाहते हैं।

मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक तीनों सममित वितरण की स्थिति में एक दूसरे से सम्बंधित रहते हैं। इनका सम्बंध 'बहुलांक=3 मध्यांक–2 मध्यमान" द्वारा प्रदर्शित होता है। इसकी सहायता से कोई दो ज्ञात होने पर तीसरे को ज्ञात किया जा सकता है।



अध्याय 13 (iii)

विचलन-माप

(Measures of Variance)

मध्यमान किसी वितरण (Dispersion) का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वितरण के सभी प्रदत्तों का मान मध्यमान के बराबर हो। उदाहरण के लिए एक कक्षा में पाँच विद्यार्थियों के प्राप्तांक क्रमश 32, 40, 48, 56 तथा 64 हैं। इन अंकों का मध्यमान तथा मध्यांक 48 है। यहा पर अंक 32 मध्यमान से 16 कम है, अंक 56 मध्यमान से 8 अधिक है आदि। साख्यिकी-भाषा में हम इसे विचलन कहते हैं। विचलन का अर्थ है कि किसी वितरण में दिया गया अंक या प्रदत्त अपने माध्य से कितना दूर या पास है। विचलन जितना अधिक होगा अंक माध्य से उतने ही अधिक दूर होंगे तथा सख्याओं का फैलाव उतना ही अधिक होगा।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान किसी वितरण की प्रवृत्ति (Feudency) का आभास तो देते हैं परन्तु वितरण के स्वभाव का ज्ञान हम नहीं दे पाते हैं। कुछ ऐसे भी वितरण हो सकते हैं जिनके मध्यमान तथा मध्यांक एक जैसे हो परन्तु उनका स्वभाव आपस में भिन्न हो। उदाहरण के लिए गणित विषय में समूह अ, ब एवं स के विद्यार्थियों के प्राप्तांक निम्न प्रकार से हैं—

अ	ब	स
35	24	111
35	29	20
35 (मध्यांक)	35 (मध्यांक)	20
35	41	20
35	46	4
मध्यमान 35	मध्यमान 35	मध्यमान 35

उपरोक्त तीनों समूहों में मध्यमान बराबर है। समूह अ तथा ब का मध्यांक भी तुल्य है परन्तु इन मानों के बराबर होने पर भी तीनों समूहों के अंकों में पर्याप्त

अन्तर है। समूह 'अ' में सभी अंक बराबर हैं जबकि समूह 'ब' के दो अंक मध्यमान से अधिक तथा दो ही अंक मध्यमान से कम हैं। समूह 'स' में चार अंक मध्यमान से कम तथा एक अंक मध्यमान से बहुत अधिक है। यहाँ तक कि समूह स में निम्नतम अंक व उच्चतम अंक के मूल्य में लगभग 28 गुना अन्तर है। अतः यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान समूह के सभी गुणों को प्रकट नहीं करते हैं।

न्यूसवान्जर (Neuiswanger) ने तो यहाँ तक कहा है कि "यह सत्य है कि मध्यमान त्रुटियों को छुपाने की एक युक्ति है।" अतः यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान विचलन आदि को स्पष्ट करने में असमर्थ हैं।

समूह में अंकों का किस सीमा तक फैलाव है, यह भी जानना आवश्यक है। क्या अंक माध्य के आस-पास ही हैं अथवा माध्य से अधिक दूरी तक फैले हुए हैं ? इस प्रश्न का हल विचलन के ज्ञान से ही सम्भव है। विभिन्न समूहों की आवृत्तियों के वितरण में क्या अन्तर है यह ज्ञात करने के लिए हम 'विचलन के माप' का उपयोग करते हैं। समूहों की आवृत्तियों में दो प्रकार से अन्तर हो सकता है जो कि निम्नानुसार है—

(1) समूहों की आवृत्तियों के माध्य अलग अलग हों परन्तु उनके पदों के विचलन लगभग समान हों।

(2) समूहों की आवृत्तियों के विचलन अलग अलग हों लेकिन माध्य समान हों।

यदि समूहों की आवृत्तियों का विचलन लगभग समान हो तो ऐसे समूहों की तुलना मध्यमानों द्वारा की जा सकती है परन्तु यदि आवृत्तियों का विचलन असमान हो तो केवल मध्यमान से इनकी तुलना किया जाना उचित नहीं होगा। इस प्रकार किसी समूह की आवृत्तियों के गुणों के बारे में पूर्ण जानकारी के लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान का ज्ञान होने के साथ साथ उसके पदों के विचलन के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है।

विचलन के माप की जानकारी प्राप्त करने के लिए कुछ विशेष रीतियाँ हैं। इनका निम्नानुसार वर्गीकरण किया जा सकता है—

(1) स्थानात्मक माप (Positive Measures)

(अ) विस्तार (Range)

(ब) चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation)।

(2) परिकलित माप (Calculated Measures)

(अ) मध्यमान विचलन (Mean Deviation)

(ब) प्रमाप विचलन (Standard Deviation)।

विस्तार (Range)

विस्तार का अर्थ किसी श्रेणी के अधिकतम तथा न्यूनतम अंक के मध्य अन्तर से है। इसे ज्ञात करने के लिए उस श्रेणी के सबसे बड़े अंक में से सबसे छोटा अंक घटा देते है। दिये गये उदाहरणों में समूह अ का विस्तार शून्य है क्योंकि इसमें सभी अंक समान है, समूह ब का विस्तार 46 − 24 = 22 है तथा समूह स में विस्तार अधिकतम अर्थात 107 है। सूत्र के रूप में यदि लिखना चाहे तो यह निम्न प्रकार से है—

विस्तार = सबसे बड़ा अंक − सबसे छोटा अंक

विस्तार के गुण (Merits of Range)

(1) इसकी गणना शीघ्रता से की जा सकती है।

(2) इसको आसानी से समझा जा सकता है।

(3) इसको धनात्मक माप इसलिए कहा गया है कि यह केवल चरम मूल्यों (Extreme Values) से सम्बन्धित है।

विस्तार के दोष (Demerits of Range)

(1) चरम मूल्यों का मान यदि अधिक हो तो इससे विस्तार पर प्रभाव पड़ता है।

(2) यह माप अस्थिर है। यदि चरम मूल्य का एक अंक हटा लिया जाय या बढ़ा दिया जाय तो विस्तार माप में परिवर्तन हो जाता है।

विस्तार का प्रयोग कब करें

विस्तार का सांख्यिकी में प्रयोग निम्न दशाओं में किया जाना उचित है

(1) विस्तार का प्रयोग समय तथा श्रम के अभाव में अनुमानार्थ किया जा सकता है।

(2) जब सही और शुद्ध विचलन ज्ञात करने की आवश्यकता न हो ऐसी स्थिति में विचलन का उपयोग किया जा सकता है।

(3) ऐसी स्थिति में जब केवल चरम मूल्यों के बारे में ही ज्ञान करना हो, विस्तार का उपयोग किया जा सकता है।

विस्तार का अधिकांश उपयोग मशीन द्वारा तैयार किये जाने वाले माल के स्तर को बनाये रखने के लिए किया जाता है। मशीन द्वारा तैयार माल के हर एक या दो घंटे के बाद नमूने लिये जाते हैं। इन नमूनों के स्तर में अधिक विस्तार नहीं होना चाहिए। यदि विस्तार लगभग शून्य है तो मशीन द्वारा तैयार किया माल ठीक है। यदि विस्तार अधिक है तो मशीन उत्पादन में सुधार की आवश्यकता है। इस प्रकार, विस्तार विचलन के माप का एक अत्यन्त साधारण माप होते हुए भी, बहुत ही उपयोगी माप है।

चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation)

चतुथक विचलन ज्ञात करने के लिए शताशीय मान निकालने का ज्ञान होना आवश्यक है। शताशीय मान किसी श्रेणी म वह प्राप्ताक है जिसके नीचे कुछ निश्चित प्रतिशत के प्राप्ताक है । उदाहरण क लिए मध्याक एक शताशीय मान है क्याकि यह वितरण क मध्य म होता है तथा इसके ऊपर तथा नीचे 50 प्रतिशत प्राप्ताक होत है ।

शताशीय मान का निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते है

$$P = L_1 + \frac{(P_n - f_b)}{f_a} \times i$$

जहा कि—

P=शताशीय मान

L_1=वर्गातर जिसमे अपेक्षित शताशीय मान हो, की निम्न सीमा

P_n=कुल आवत्तिया का अपक्षित प्रतिशत

f_a=वर्गातर जिमम शताशीय मान है, की आवृत्ति

f_b=शताशीय मान वाले वर्गातर स नीच की सभी आवत्तिया का योग

i=वग अन्तराल

उदाहरण

वर्गातर	बारम्बारता	सचयी-बारम्बारता
141–150	2	100
131–140	5	98
121–130	10	93
111–120	19	83
101–110	26	64
91–100	15	38
81– 90	12	23
71– 80	6	11
61– 70	4	5
51– 60	1	1
	N=100	

25वां शतांश ज्ञात करने के लिए P_n को P_{25} लिखेंगे यह कुल आवृत्तियों के 25 प्रतिशत के तुल्य है अतः $P_{25}=\frac{100}{4}=25$ उक्त तालिका में संचयी बारम्बारता को देखने से स्पष्ट है कि 23 बारम्बारता वर्गान्तर 91–100 के नीचे है। इसका आशय यह हुआ कि 25 बारम्बारता वर्गान्तर 91–100 में होगी।
सूत्र का प्रयोग करने पर—

$$P_{25}=90.5+\frac{25-28}{15}\times 10$$

$$=90.5+\frac{2}{15}\times 10$$

$$=90.5+13.33$$

$$=103.83$$

इसी प्रकार 75वें शतांश के लिए P_n के लिए कुल आवृत्तियों का 75 प्रतिशत भाग को लिखेंगे। कुल आवृत्तियाँ 100 हैं अतः P_n का मान 75 होगा। संचयी बारम्बारता से ज्ञात होता है कि यह आवृत्ति वर्गान्तर 111–120 में स्थित है। सूत्र का उपयोग करने पर

$$P_{75}=100.5+\frac{75-64}{19}\times 10$$

$$=100.5+\frac{11}{19}\times 10$$

$$=100.5+5.78$$

$$=116.28$$

इस प्रकार किसी भी शतांशीय मान को सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है।

चतुर्थक ज्ञात करना

विस्तार का मूल्य चरम मूल्यों से प्रभावित होता है यदि चरम मूल्य अधिक है तो विस्तार अधिक तथा कम होने की स्थिति में विस्तार कम होगा। यह इसका सबसे बड़ा दोष है। इस दोष को चतुर्थक विचलन से दूर किया जा सकता है। जकसन और जकसन के अनुसार 'चतुर्थक विचलन किसी भी बारम्बारता समूह के तृतीय और प्रथम चतुर्थकों के अन्तर का आधा होता है।

चतुर्थक विचलन

जहां कि Q_1=वह बिन्दु जिसके नीचे 25 प्रतिशत अंक हैं

Q_3=वह बिन्दु जिसके नीचे 75 प्रतिशत अंक हैं

Q_1 को हम 25वां शतांश तथा Q_3 को 75वां शतांश भी कहते हैं। शतांश का सूत्र प्रयोग करने पर—

$$P_{25}=Q_1=L_1+\frac{(N/4-f_b)}{f_a}\times i$$

$$\text{तथा } P_{75}=Q_3=L_1+\frac{(3N/4-f_b)}{f_a}\times i$$

उपरोक्त सूत्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इनमें P_n अर्थात् कुल आवृत्तियों का अपेक्षित प्रतिशत Q_1 और Q_3 में क्रमशः N/4 तथा 3N/4 है। जब श्रेणी में कुल संख्या N है तो Q_1 जो कि 25वां शतांश है के लिए P_n का मान N/4 होगा। इसी प्रकार Q_3 के लिए P_n का मान 3N/4 होगा।

उदाहरण

वर्गांतर	आवृत्ति	संचयी-आवृत्ति
120–139	50	100
100–119	150	950
80– 99	500	800
60– 79	250	300
40– 59	50	50
	N=1000	

सूत्र द्वारा—

$$Q_3=L_1+\frac{\left(\frac{3N}{4}-f_b\right)}{f_a}\times i$$

$$79.5+\frac{750-300}{500}\times 20$$

$$=79\ 5+\frac{450\times 20}{500}$$

$$=79\ 5$$

$$Q_1=59\ 5+\frac{250-50}{250}\times 20$$

$$=59\ 5+\frac{200\times 20}{250}$$

$$=59\ 5+16$$

$$=75\ 5$$

$$Q=\frac{Q_3-Q_1}{2}=\frac{97\ 5-75\ 5}{2}=11$$

चतुर्थक विचलन=11

उपरोक्त उदाहरण के आधार पर चतुर्थक विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न चरण प्रकट होते हैं

(1) सचयी-आवृत्ति ज्ञात करना।

(2) कुल आवृत्ति का 25 प्रतिशत Q_1 के लिए तथा 75 प्रतिशत Q_3 के लिए ज्ञात करना। यह उक्त उदाहरण म क्रमश 250 तथा 750 है।

(3) सचयी-आवृत्ति म उस वर्ग-अन्तराल को ज्ञात करना जिसम Q_1 और Q_3 के मान आत है। उदाहरण म 250 आवृत्ति अन्तराल 60–79 म तथा 750 आवृत्ति 80–99 म आती है।

(4) इन वर्गान्तरो की निम्न सीमाए Q_1 क लिए 59 5 तथा Q_3 क लिए 79 5 आती है।

(5) Q_1 के लिए F_b का मान 50 तथा Q_3 स यह 300 आवृत्ति ह।

उदाहरण

निम्न सारिणी स चतुर्थक विचलन ज्ञात कर

प्राप्तांक	10	15	20	25	30	35	40	90
छात्रो की सख्या	6	17	29	38	25	14	9	1

(3) विस्तार की तरह इस पर चरम मूल्यों का प्रभाव नहीं पड़ता है।
(4) यदि किसी श्रेणी के प्रथम या अन्तिम पद अनिश्चित हों तो भी इसे ज्ञात किया जा सकता है।
(5) Q_1 तथा Q_3 के मध्य 50 प्रतिशत अंक आते हैं।
(6) यदि (मध्यांक$-Q_1$)$=$(Q_3-मध्यांक) किसी आवृत्ति वितरण में आता है तो वह वितरण सममित होता है। अतः चतुर्थक से वितरण के गुण धर्म को ज्ञात किया सकता है।

चतुर्थक विचलन के दोष (Demerits of Quartile Deviation)

(1) इसका बीजगणितीय विश्लेषण सम्भव नहीं है।
(2) यह समस्त अंकों को बराबर का महत्त्व नहीं देता है क्योंकि इसमें Q_1 से ऊपर के तथा Q_3 से नीचे के अंक छोड़ दिये जाते हैं।
(3) यदि श्रेणी सममिलत नहीं हो तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

मध्यमान विचलन (Mean Deviation)

किसी समूह में अंकों के उनके मध्यमान से विचलनों के निरपेक्ष मूल्यों के मध्यमान को उस श्रेणी का माध्य विचलन कहते हैं। मध्यमान विचलन का बहुत कम उपयोग किया जाता है परन्तु इसके निकालने की विधि समझ लेने से प्रमाणिक विचलन की विधि समझने में सहायता मिलेगी।

हम देख चुके हैं कि श्रेणी में उसके मध्यमान से कुछ अंक बड़े होते हैं तथा कुछ अंक छोटे होते हैं। अंकों के मध्यमान से विचलन के मध्यमान को "मध्यमान विचलन" कहते है। यह तथ्य निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगा।

अंक	मध्यमान से विचलन का निरपेक्ष मान
17	7
16	6
14	4
13	3
11	1
9	1
7	3
6	4
5	5
2	8
100	42

सारिणी रूप मे लिखने पर

प्राप्तांक	आवृत्ति	संचयी-आवृत्ति
10	6	6
15	17	23
20	29	52
25	39	90
30	25	115
35	14	129
40	9	138
90	1	139
	N (एन)=139	

यहाँ पर—

$$Q_3=\frac{3(n+1)}{4}\text{वां पद}=\frac{3(139+1)}{4}=105\text{वां पद}$$

संचयी-आवृत्ति को देखने पर 105वां पद 30 आता है अत

$Q_3=30$

$$Q_1=\frac{n+1}{4}\text{वां पद}=\frac{139+1}{4}=35\text{वां पद}$$

संचयी आवृत्ति से 35वे पद का मान 20 आता है।

$$\text{चतुर्थक विचलन}=\frac{Q_3-Q_1}{2}=\frac{30-20}{2}=5$$

उपरोक्त उदाहरण मे यह स्पष्ट होता है कि इसके पदो का विस्तार 90–10 अर्थात 80 है। यहाँ 90 केवल एक पद है यदि इसे हटा लिया जाय तो यह विस्तार 40–10=30 ही हो जायेगा। इस प्रकार केवल एक, चरम, मूल्य (जैसे 90) ने विस्तार को प्रभावित कर दिया। इस प्रभाव को समाप्त करने के लिए चतुर्थक विचलन ज्ञात किया जाता है। उपरोक्त उदाहरण मे 90 को हटा लेने पर चतुर्थक मान पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

चतुर्थक विचलन के गुण (Merit of Quartile Deviation)

(1) इसकी गणना सरल है।

(2) इसे सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है।

(3) विस्तार की तरह इस पर चरम मूल्यो का प्रभाव नही पडता है।

(4) यदि किसी श्रेणी के प्रथम या अन्तिम पद अनिश्चित हो तो भी इसे ज्ञात किया जा सकता है।

(5) Q_1 तथा Q_3 के मध्य 50 प्रतिशत अक आते हैं।

(6) यदि (मध्याक−Q_1)=(Q_3−मध्याक) किसी आवृत्ति वितरण म आता है तो वह वितरण सममित होता है। अत चतुर्थक से वितरण के गुण धर्म को ज्ञात किया सकता है।

चतुर्थक विचलन के दोष (Demerits of Quartile Deviation)

(1) इसका बीजगणितीय विश्लेषण सभव नही है।

(2) यह समस्त अको को बराबर का महत्त्व नही देता है क्योकि इसम Q_1 से ऊपर के तथा Q_3 स नीचे के अक छोड दिये जाते है।

(3) यदि श्रेणी सममित नही हो तो इसका उपयोग नही करना चाहिए।

मध्यमान विचलन (Mean Deviation)

किसी समूह म अको के उनके मध्यमान स विचलनो के निरपेक्ष मूल्यो के मध्यमान को उस श्रेणी का माध्य विचलन कहते है। मध्यमान विचलन का बहुत कम उपयोग किया जाता है परन्तु इसके निकालने की विधि समझ लेने स प्रमाणिक विचलन की विधि समझन म सहायता मिलेगी।

हम देख चुके है कि श्रेणी म उसके मध्यमान स कुछ अक बडे होते हैं तथा कुछ अक छोटे होते है। अको के मध्यमान स विचलन के मध्यमान को "मध्यमान विचलन" कहते है। यह तथ्य निम्नाकित उदाहरण स स्पष्ट हो सकेगा।

अक	मध्यमान स विचलन का निरपेक्ष मान
17	7
16	6
14	4
13	3
11	1
9	1
7	3
6	4
5	5
2	8
100	42

मध्यमान $= \frac{100}{10} = 10$ मध्यमान विचलन $= \frac{42}{10} = 4.2$

कच्चे फलांकों से मध्यमान विचलन ज्ञात करने के लिए पहले अंकों का मध्यमान ज्ञात कर लेना चाहिए। यह उपरोक्त उदाहरण में 10 आया। प्रत्येक अंक का विचलन उस अंक में से मध्यमान को घटा कर ज्ञात करते हैं जैसे 17 का विचलन 17–10 =7, छोटे अंक 2 का विचलन 2–10 =8 हुआ परन्तु निरपेक्ष मान में सभी चिन्ह धनात्मक होते हैं अतः 2 का निरपेक्ष विचलन 8 होगा। इस प्रकार सभी अंकों का निरपेक्ष विचलन ज्ञात कर लिया जाता है।

$$\text{मध्यमान विचलन} = \frac{\text{निरपेक्ष विचलनों का योग}}{\text{कुल पद}}$$

उक्त सूत्र की सहायता से मध्यमान विचलन ज्ञात कर लिया जाता है।

माध्य-विचलन के गुण

(1) विचलन की गणना में सभी पद प्रयोग में आते हैं।

(2) यह सरलता में ज्ञात हो जाता है।

(3) यह सब पदों के विचलन का मध्यमान होता है।

माध्य-विचलन के दोष (Demerits of Mean Deviation)

(1) इसमें अंकों के + और – चिन्ह छोड़ दिये जाते हैं यह एक गणितीय दोष है।

(2) इसका गणितीय विश्लेषण संभव नहीं है।

(3) सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए यह उपयोगी नहीं है।

प्रमाप-विचलन (Standard Deviation)

प्रमाप विचलन विचलनशीलता का सबसे स्थायी एवं विश्वसनीय मान है। अनुसंधान साहित्य तथा सांख्यिकी गणना में इसका सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। इसका सर्वप्रथम उपयोग कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने किया था। इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

(1) गिलफर्ड[1] (Guilford)

किसी श्रेणी के विभिन्न पदों के उस श्रेणी के मध्यमान से विचलनों के वर्गों के मध्यमान के वर्गमूल को प्रमाप विचलन कहते हैं।"

(2) वेसल और विलट (Wessel and Willett)

प्रमाप विचलन किसी श्रेणी या समूह के विभिन्न पदों के मध्यमान से विचलन के वर्गों के समानान्तर माध्य का वर्गमूल होता है।"

1 Guilford Fundamental Statistics in Psychology and Education P 8

इसको समझने के लिए यह माना जाय कि किसी समूह म विभिन्न पदों की संख्या क्रमश $x_1, x_2, x_3, \ldots x_n$ है। तथा इन पदों का मध्य मान स विचलन क्रमश $d_1, d_2, d_3 \ldots d_n$ है तो—

$$\text{प्रमाप-विचलन} = \sqrt{\frac{d_1^2 + d_2^2 + d_3^2 + \ldots d_n^2}{n}}$$

प्रमाप विचलन को स्पष्ट निम्न उदाहरण स किया जा सकता है। माना कि पाच छात्रों के प्राप्तांक क्रमश 16, 18, 20, 22 और 24 है इनका मध्यमान=

$$\frac{16+18+20+22+24}{5} = 20$$

प्राप्तांक	मध्यमान स विचलन (प्राप्तांक मध्यमान)	विचलन का वर्ग
16	16−20=−4	16
18	18−20=−2	4
20	20−20= 0	0
22	22−20= 2	4
24	24−20= 4	16
		योग 40

$$\text{प्रमाप विचलन} = \sqrt{\frac{40}{5}} = 2.83$$

इस प्रकार प्रमाप विचलन, प्राप्तांकों के मध्यमान स विचलन के वर्गों के मध्यमान के वर्गमूल के तुल्य होता है। प्रमाप विचलन को ग्रीक अक्षर सिगमा या σ स प्रकट किया जाता है।

अवर्गीकृत अंकों से प्रमाप-विचलन ज्ञात करना
(Determination of Standard Deviation from Ungrouped Data)

अवर्गीकृत अंकों से प्रमाप विचलन ज्ञात करने का सूत्र निम्न प्रकार से है—

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N}}$$

उदाहरण (2)

समूह (अ)			समूह (ब)		
प्राप्तांक	विचलन	विचलन वर्ग	प्राप्तांक	विचलन	विचलन-वर्ग
3	−8	64	13	1	1
5	−6	36	12	0	0
13	+2	4	10	−2	4
14	+3	9	12	0	0
15	+4	16	11	−1	[illegible]
16	+5	25	14	+2	4
66		154	72		10
=6 मध्यमान= $\frac{66}{6}$ =11 $\sigma_{अ} = \sqrt{\frac{154}{6}}$ =5 06			=6 मध्यमान= $\frac{72}{6}$ =12 $\sigma_{ब} = \sqrt{\frac{10}{6}}$ =1 3		

उपर्युक्त अंकों से प्रमाप विचलन ज्ञात करने के लिए पहले अंकों का मध्य मान ज्ञात कर लेते हैं इसके पश्चात् प्रत्येक अंक का मध्यमान से विचलन ज्ञात किया जाता है। इन विचलनों का वर्ग इन्हें जोड़ लेते हैं। फिर सूत्र का उपयोग कर प्रमाप विचलन ज्ञात कर लेते हैं।

कल्पित मध्यमान से प्रमाप-विचलन ज्ञात करना

मध्यमान निकाल कर फिर उससे विचलन निकालने में समय लगता है। कई बार मध्यमान दशमलव में आ जाता है ऐसी स्थिति में दशमलव वाली संख्या का वर्ग आदि करने से प्रमाप विचलन निकालना जटिल हो जाता है। इसके लिए एक संक्षिप्त विधि ज्ञात की गई है। इसमें एक कल्पित मध्यमान लेते हैं तथा इस मध्यमान से विचलन ज्ञात कर लेते हैं फिर निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं—

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n}-\left(\frac{\Sigma d}{n}\right)^2}$$

जहां कि σ=प्रमाप विचलन

d=अंक का कल्पित मध्यमान से विचलन

n=पदों की संख्या

उदाहरण

प्राप्तांक	विचलन	विचलन वर्ग	प्राप्तांक	विचलन	विचलन-वर्ग
3	−10	100	13	2	4
5	− 8	64	12	+1	1
13	0	0	10	−1	1
14	1	1	12	+1	1
15	2	4	11	0	0
16	3	9	14	+3	9
	$\Sigma d=-12$	$\Sigma d^2=178$		$\Sigma d=6$	$\Sigma d^2=16$

$\sigma_{अ}=\sqrt{\frac{178}{6}-\left(\frac{-12}{6}\right)^2}$

$=\sqrt{29\ 67}$

$=5\ 06$

$\sigma_{ब}=\sqrt{\frac{16}{6}-\left(\frac{6}{6}\right)^2}$

$=\sqrt{2\ 67-1}$

$=1\ 3$

यदि कल्पित मध्यमान के स्थान पर वास्तविक मध्यमान से प्रमाप विचलन निकाला जावे तो दोनों प्रमाप विचलन के मान यही आवेंगे।

उपरोक्त उदाहरण में समूह अ का वास्तविक मध्यमान 11 है जबकि प्रश्न को कल्पित मध्यमान 13 से हल किया है। इसी प्रकार समूह ब का वास्तविक मध्यमान 12 है जबकि इस समूह का प्रमाप विचलन कल्पित माध्य 11 से निकाला गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि वास्तविक मध्यमान के स्थान पर कल्पित मध्यमान से प्रमाप विचलन निकालें तो प्रमाप विचलन के मान में कोई अन्तर नहीं आयेगा।

अवर्गीकृत श्रेणी का प्रमाप-विचलन ज्ञात करना

(Calculation of Standard Deviation in Discrete Services)

अवर्गीकृत श्रेणी का प्रमाप विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है—

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{\Sigma f}}$$

जहां कि σ = प्रमाप विचलन

f = आवृत्ति

x = मध्यमान से विचलन

उदाहरण

निम्न सारिणी की सहायता से प्रमाप विचलन ज्ञात करें—

गणित मे प्राप्तांक	6	7	8	9	10	11	12
छात्रों की संख्या	3	6	9	13	8	5	4

प्रमाप विचलन ज्ञात करने के लिए मध्यमान से अंकों के विचलन को ज्ञात किया जाता है। अतः सर्वप्रथम, मध्यमान का मूल्य $\frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{432}{48} = 9$ ज्ञात किया।

प्रमाप विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न सारिणी तैयार करते हैं

प्राप्तांक (x)	आवृत्ति (f)	f×x	विचलन (x)	x^2	fx^2
6	3	18	−3	9	27
7	6	42	−2	4	24
8	9	72	−1	1	9
9	13	117	0	0	0
10	8	80	1	1	8
11	5	55	2	4	20
12	4	48	3	9	36
	Σf=48,	Σfx=432			$\Sigma fx^2=124$

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{\Sigma f}}=\sqrt{\frac{124}{48}}$$

$=\sqrt{2.58}$

$=1.6$

इस प्रश्न को कल्पित मध्यमान से भी हल किया जा सकता है। इसके लिए सूत्र निम्नानुसार है

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{\Sigma f}-\left(\frac{\Sigma fd}{\Sigma f}\right)^2}$$

उक्त उदाहरण में वास्तविक मध्यमान 9 है। इसके स्थान पर कल्पित माध्य 10 मान कर उक्त प्रश्न को निम्नानुसार कर सकते हैं

प्राप्तांक	आवृत्ति	d	d^2	f×d	fd^2
6	3	−4	16	−12	48
7	6	−3	9	−18	54
8	9	−2	4	−18	36
9	13	−1	1	−13	13
10	8	0	0	0	0
11	5	1	1	5	5
12	4	2	4	8	16
	Σf=48			Σfd=48,	$\Sigma fd^2=172$

$$\sigma=\sqrt{-\frac{172}{48}-\left(\frac{-48}{-48}\right)^{2}}$$

$$=\sqrt{3.85-1}=1.6$$

वर्गीकृत श्र को के प्रमाप-विचलन ज्ञात करना

वर्गीकृत अको का प्रमाप विचलन ज्ञात करने की लम्बी एव सक्षिप्त दोनो विधिया है। क्योकि लम्बी विधि समय अधिक लेती है और सगणना करने मे अशुद्धि हो जाने की सभावना बनी रहती है अत प्रमाप विचलन को सक्षिप्त विधि से ही ज्ञात किया जाता है। लम्बी विधि मे निम्न काय करने होते है—

(1) श्रेणी के पदो का मध्यमान ज्ञात करना।

(2) मध्यमान स प्रत्यक वर्गान्तर के मध्य बिन्दु का विचलन निकालना।

(3) सूत्र $\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N}}$ का प्रयोग प्रयोग करना।

चूँकि यह विधि बहुत कम उपयोग मे लाई जाती है अत यहाँ प्रमाप विचलन ज्ञात करने की सक्षिप्त विधि का वर्णन किया जा रहा है।

सक्षिप्त विधि

प्रमाप विचलन की सक्षिप्त विधि काल्पनिक मध्यमान पर आधारित है। इस विधि मे निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है—

$$\sigma=i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$$

जहा कि

f=आवृत्ति

d=कल्पित मध्यमान से विचलन

i=वर्ग अन्तराल

इस विधि को निम्न उदाहरण से समझते हैं—

वर्गान्तर		मध्य बिन्दु			
50–54	3	52	4	12	48
45–49	4	47	3	12	36
40–44	5	42	2	10	20
35–39	8	37	1	8	8

30–34	10	32	0	0	0
25–29	6	27	−1	−6	6
20–24	4	22	−2	8	16
15–19	4	17	−3	−12	36
10–14	3	12	−4	−12	48
5–9	3	7	−5	−15	75
	N=50			Σfd=11	Σfd^2=293

$$\text{प्रमाप विचलन} = i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$$

$$= 5\sqrt{\frac{293}{50} - \left(\frac{-11}{50}\right)^2}$$

$$= \frac{120.5}{10}$$

$$= 12.05$$

उदाहरण—निम्न सारिणी में पचास दस के छात्रों के प्राप्तांक दर्शाये गये हैं—

प्राप्तांक	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70
आवृत्ति	8	12	17	14	9	7	4

उक्त सारिणी के अंकों का प्रमाप विचलन ज्ञात करें।
इसे निम्नानुसार हल कर सकते हैं—

वर्गान्तर	मध्य बिन्दु				
0–10	5	8	−3	−24	72
10–20	15	12	−2	−24	48
20–30	25	17	−1	−17	17

30–40	35	14	0	0	0
40–50	45	9	1	9	9
50–60	55	7	2	14	28
60–70	65	4	3	12	36
		N=71		$\Sigma fd = -30$,	$\Sigma fd^2 = 210$

सूत्र $\sigma = i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$ का उपयोग करने पर

$$=10\sqrt{\frac{210}{71} - \left(\frac{-30}{71}\right)^2}$$

$$=10\sqrt{2.95 - 1785}$$

$$=10\sqrt{2.7715}$$

$$=1.664 \times 10 = 16.64$$

उप-समूहों के मध्यमानों तथा प्रमाप विचलनों को संयुक्त करना

यदि किसी उप समूहों के माध्यों को जोडना चाहे तो निम्न सूत्र का उपयोग करते हैं—

$$\overline{X} = \frac{n_1\overline{X}_1 + n_2\overline{X}_2}{n_1 + n_2}$$

तथा यदि हम प्रमाप विचलनों को संयुक्त करना चाहे तो इसके लिए निम्न सूत्र काम में लेंगे—

$$\sigma = \sqrt{\frac{n_1\sigma_1^2 + n_2\sigma_2^2 + n_1d_1^2 + n_2d_2^2}{n_1 + n_2}}$$

जहां कि

σ_1=प्रथम समूह का प्रमाप विचलन
σ_2=द्वितीय समूह का प्रमाप विचलन
n_1=प्रथम समूह की आवत्तिया
n_2=द्वितीय समूह की आवत्तिया
$d_1 = \overline{X}_1$ —संयुक्त मध्यमान
$d_2 = \overline{X}_2$—संयुक्त मध्यमान

उपरोक्त सूत्र का उपयोग भली भांति समझने के लिए हम अग्रांकित उदाहरण सरल करते है।

निम्न सारिणी म छात्रों क भारों क माध्य एवं प्रमाप विचलन दिये गये हैं—

कक्षा	संख्या	औसत वजन	प्रमाप विचलन
अ	50	113 पौंड	6 5
ब	50	120 पौंड	8 2

दोनों कक्षा क छात्रों क भारों का संयुक्त माध्य तथा संयुक्त मानक विचलन ज्ञात करें।

इस प्रश्न म संयुक्त माध्य $=\dfrac{\bar{X}_1 n_1+\bar{X}_2 n_2}{n_1+n_2}$

यहाँ $\bar{X}_1=113,\quad \bar{X}_2=120$

$n_1=50\quad n_2=60$

अत संयुक्त माध्य $=\dfrac{50\times 113+60\times 120}{50+60}=\dfrac{5650+7200}{110}$

$=\dfrac{12850}{110}=116\ 82$

संयुक्त प्रमाप विचलन $=\sqrt{\dfrac{n_1\sigma_1^2+n_2\sigma_2^2+n_1d_1^2+n_2d_2^2}{n_1+n_2}}$

यहाँ $\sigma_1=6\ 5\qquad \sigma_2=8\ 2$

$d_1=113-116\ 82=-3\ 82$

$d_2=120-116\ 82=+3\ 18$

अत संयुक्त प्रमाप विचलन

$=\sqrt{\dfrac{50(6\ 5)^2+60(8\ 2)^2+50(-3\ 82)^2+60(3\ 18)^2}{110}}$

$=\sqrt{\dfrac{2112\ 5+4034\ 4+729\ 6+606\ 7}{110}}$

$=\sqrt{\dfrac{7483\ 2}{110}}$

$=\sqrt{68\ 03}=8\ 25$

प्रमाप-विचलन के गुण

प्रमाप विचलन में अधोलिखित गुण है

(1) इसमें मध्यमान विचलन की तरह गणित सम्बन्धी दोष नहीं है। इसमें गणितीय चिन्ह + तथा – का उपयोग किया जाता है।

(2) यह श्रेणी के सभी पदों को समान महत्त्व प्रदान करता है।

(3) यह एक स्थिर सांख्यिकीय माप है।

(4) इसका बीजगणितीय विश्लेषण सम्भव है।

(5) जहां पर परिशुद्धता को महत्त्व देते है वहां इसे अवश्य काम में लाते है।

प्रमाप विचलन के दोष

(1) इसकी गणना करना अन्य विचलन मापों की तुलना में कुछ कठिन है।

विशेष बात यह है कि यदि सभी प्राप्तांकों में कोई एक राशि जोड दी जावे तो इसका प्रमाप विचलन वही रहता है अर्थात उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसी प्रकार संख्या प्राप्तांकों में से घटाने पर भी प्रमाप विचलन अप्रभावित रहता है। परन्तु किसी एक संख्या से प्राप्तांकों को गुणा करने से प्रमाप विचलन भी उतना ही गुणा बढ़ जायगा। उदाहरण के लिए यदि सभी प्राप्तांकों को 2 से गुणा कर दो प्रमाप विचलन भी दुगुना हो जायगा।

विचलन के मापों में आपस में सम्बन्ध

(1) चतुर्थक विचलन = 2/3 प्रमाप विचलन

(2) मध्यमान विचलन = 4/5 प्रमाप विचलन

कब किस विधि का प्रयोग करें

विचलनशीलता के मान की चारों विधियों के अध्ययन के पश्चात् यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि कब किस विधि का प्रयोग किया जाय। निम्न में चतुर्थक विचलन, मध्यमान विचलन तथा प्रमाप विचलन के सम्बन्ध में कुछ सामान्य निष्कर्ष दिये जा रहे है—

(1) विस्तार का उपयोग निम्न दशाओं में किया जाना चाहिए

(क) जब हमें केवल अंकों का फलाव ही ज्ञात करना हो।

(ख) हमें चरम अंकों का ही ज्ञान हो।

(ग) अंकों की संख्या बहुत कम हो।

(घ) अंक बहुत बिखरे हुए हों।

(2) चतुर्थक विचलन का उपयोग निम्न स्थितियों में किया जा सकता है

(क) केन्द्रीय प्रवृत्ति का मध्यांक द्वारा मापन किया गया हो।

(ख) श्रेणी में चरम अंक हों।

(ग) जब मध्य के 50 प्रतिशत अंकों में ही विशेष रुचि हो।

(3) मध्यमान विचलन को निम्न दशाओं में काम में लाते हैं

(क) प्रत्येक विचलन को उसके भार के अनुपात में महत्त्व देना हो।

(4) प्रथम विचलन का उपयोग अग्रांकित स्थितियों में किया जा सकता है

(क) विचलनशीलता का सबसे अधिक विश्वसनीय मान ज्ञात करना हो।
(ख) चरम अंकों द्वारा विचलनशीलता के मान को अधिक प्रभावित करना हो।
(ग) सह-सम्बन्ध गुणांक तथा अन्य सांख्यिकी गणना करना आवश्यक हो।

सारांश

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान किसी वितरण की प्रवृत्ति का आभास देते हैं परन्तु इनमें वितरण के स्वभाव का ज्ञान होना सम्भव नहीं है। इसका ज्ञान हम विचलन के माप द्वारा लाते है। विचलन के अनेक माप हैं जिनमें विस्तार, शतांशीय मान, चतुर्थक, मध्यांक विचलन एवं प्रमाप विचलन आदि प्रमुख हैं।

विस्तार का अर्थ है कि किसी श्रेणी के अधिकतम एवं न्यूनतम अंकों में कितना अन्तर है। इस बात को ज्ञात करने के लिए बड़े अंक में से छोटा अंक घटा देते है। इसकी गणना शीघ्रता से की जा सकती है तथा आसानी से इसे समझा जा सकता है परन्तु यह माप वितरण की सही जानकारी नहीं देता है।

चतुर्थक विचलन के लिए शतांशीय मान ज्ञात करने की विधि का ज्ञान होना आवश्यक है। चतुर्थक विचलन का अर्थ श्रेणी के 75वें शतांशीय मान तथा 25वें शतांशीय मानों में अन्तर से है। इस अन्तर का आधा चतुर्थक विचलन कहलाता है। इसके द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि मध्यांक के आस-पास कितना वितरण है। परन्तु इसमें कई दोष हैं इस कारण इसका उपयोग भी वितरण की प्रवृत्ति को ज्ञात करने के लिए सामान्यतः नहीं किया जाता है।

मध्यमान विचलन समूह के अंकों का उसके मध्यमान से विचलन के निरपेक्ष मूल्यों के मध्यमान को कहते हैं। इसका उपयोग बहुत कम किया जाता है। वितरण की प्रवृत्ति की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रमाप विचलन का उपयोग करते है। यह किसी श्रेणी या समूह में विभिन्न पदों के मध्यमान से विचलन के वर्गों के समान्तर माध्य का वर्गमूल होता है। प्रमाप विचलन ज्ञात करने की अनेक विधियाँ हैं जिनमें संक्षिप्त विधि का उपयोग सर्वाधिक किया जाता है क्योंकि यह सरल है तथा इसमें गणना कम करनी पड़ती है।

प्रमाप विचलन में सभी पदों को समान महत्त्व प्रदान किया जाता है तथा इसमें ऋणात्मक एवं धनात्मक चिह्नों का प्रयोग करने से यह गणितीय दोष से मुक्त है। यह एक स्थिर सांख्यिकीय माप है तथा इसका बीजगणितीय विश्लेषण भी सम्भव है।

प्रमाप विचलन पर कुछ गणितीय सक्रियाओं का प्रभाव नहीं पड़ता है जैसे यदि प्राप्तांकों में से कोई एक राशि घटाई जाय या जोड़ दी जावे तो भी इसका मूल्य वही रहता है। गुणा करने पर इसका मान उतने ही गुणा बढ़ जाता है। यह एक उपयोगी सांख्यिकी माप है। ☐

अध्याय 14

सह-सम्बन्ध
(Correlation)

प्राय यह अनुभव किया गया है कि किसी वस्तु के एक गुण मे परिवर्तन होने से उसके दूसरे गुण मे भी परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए एक नन्हा-सा बालक ज्यो-ज्यो लम्बाई मे बढता है, उसके भार मे भी सामान्यत वृद्धि होती जाती है। इसी प्रकार जब किसी वस्तु की माग बढ जाती है तो उसके मूल्यो मे वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। गणित के क्षेत्र को ले, वृत्त की त्रिज्या बढाने से उसका क्षेत्रफल बढता जाता है तथा उसकी त्रिज्या कम करने से यह क्षेत्रफल कम होता है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि यह सम्बन्ध सदैव ही रहता है जैसे भार और वृद्धि। यह आवश्यक नही है कि बालक के भार मे वृद्धि होने से उसकी बुद्धि मे भी बढोतरी होनी हो। जिन गुणो के बढने या घटने का प्रभाव दूसरे गुण पर भी पडता हो तो साधारण भाषा मे यह कहा जाता है कि ये गुण एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

सह सम्बन्ध का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning & Definition of Correlation)

जब कभी दो राशि इस प्रकार सम्बन्धित हो कि एक मे परिवर्तन होने से दूसरे मे परिवर्तन निम्न प्रकार से हो

(क) एक मे वृद्धि होने से दूसरे मे वृद्धि या कमी हो,

(ख) एक के मूल्य मे कमी होने पर दूसरे के मूल्य मे भी कमी या वृद्धि हो।

तब यह कहा जाता है ये दोनो राशिया एक दूसरे से सम्बन्धित अथवा 'सह-सम्बन्धित' है।

उदाहरण के लिए

(क) (1) वर्षा के अधिक होने पर छतरी की बिक्री बढता है।

(2) वस्तु की कीमत बढने पर उसकी माग मे कमी हो जाती है।

(3) वायु को अधिक दबाने पर उसके आयतन मे कमी आती है।

(ख) (1) वस्तु की पूर्ति मे कमी होने से उसके मूल्य मे वृद्धि हो जाती है।

(क) विचलनशीलता का सबसे अधिक विश्वसनीय मान ज्ञात करना हो।
(ख) चरम अंकों द्वारा विचलनशीलता के मानों को अधिक प्रभावित करना हो।
(ग) सह-सम्बन्ध गुणांक तथा अन्य सांख्यिकी गणना करना आवश्यक हो।

साराश

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान किसी वितरण की प्रवृत्ति का आभास देते हैं परन्तु इनसे वितरण के स्वभाव का ज्ञान होना सम्भव नहीं है। इसका ज्ञान हम विच- के माप द्वारा ...ता है। विचलन के ... माप ... जिनमें विस्तार, शतांशीय चतुर्थक, मध्यांक विचलन एवं प्रमाप विचलन आदि प्रमुख हैं।

विस्तार का अर्थ है कि किसी श्रेणी के अधिकतम एवं न्यूनतम ... कितना अन्तर है। ... ज्ञात करने के लिए बड़े अंक ... में से छोटा ... है। इसकी गणना शीघ्रता से की जा सकती है तथा आसानी ... सकता है परन्तु यह माप वितरण की सही जानकारी नहीं देता

चतुर्थक विचलन के लिए शतांशीय मानों ... ज्ञात ... होना आवश्यक है। चतुर्थक विचलन का अर्थ श्रेणी के 25वें शतांशीय मानों में अन्तर ... है। इस ... कहलाता है। इसके द्वारा यह ज्ञात किया जा ... कितना वितरण है। परन्तु इसमें कई दोष ... की प्रवृत्ति का ज्ञात करने के लिए सामा...

मध्यमान विचलन समूह ... पक्ष मूल्यों के मध्यमान का ... वितरण की प्रवृत्ति की जानका... करते हैं। यह किसी श्रेणी या समू... वर्गों के समानान्तर माध्य का वर्गमूल ... अनेक विधियाँ हैं जिनमें संक्षिप्त विधि ... क्योंकि यह सरल है ... ना कम कर...

प्रमाप विचलन ... समान... इसमें ऋणात्मक एवं ध... गो... है। यह एक स्थिर सां... सम्भव है।

प्रमाप विचलन ... यदि प्राप्तांकों में से कोई ... मूल्य वही रहता है। गुणा... ...क उपयोगी सांख्यिकी माप

सह सम्बन्ध के प्रकार (Types of Correlation)

सह-सम्बन्ध को चर मूल्यों के परिवर्तनों की दिशा के आधार पर निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है

(1) धनात्मक सह सम्बन्ध (Positive Correlation)
(2) ऋणात्मक सह-सम्बन्ध (Negative Correlation)
(3) रखीय सह-सम्बन्ध (Linear Correlation)
(4) शून्य सह सम्बन्ध (Zero Correlation)
(5) बहुगुणी सह सम्बन्ध (Multiple Correlation) ।

(1) धनात्मक सह सम्बन्ध—जब एक चर के मूल्य में वृद्धि होने से दूसरे चर के मूल्य में भी वृद्धि हो रही हो, और एक चर के मूल्य में कमी होने पर दूसरे चर के मूल्य में कमी होती है तो उस सह-सम्बन्ध को धनात्मक सह सम्बन्ध कहते है ।

उदाहरण निम्नानुसार है—

छात्र क्रमांक	गणित के प्राप्तांक	हिन्दी के प्राप्तांक
1	15	18
2	16	20
3	19	22
4	21	28
5	22	28
6	25	30

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि छात्रों के गणित विषय के प्राप्तांकों में बढ़ोतरी के साथ साथ हिन्दी के अंकों में भी वृद्धि हो रही है । इसी प्रकार एक विषय के प्राप्तांकों में कमी होने पर दूसरे विषय के प्राप्तांक भी कम होते जा रहे है जैसे छात्र संख्या 6 के गणित और हिन्दी विषय में सर्वाधिक अंक है । छात्र संख्या 5 के अंक इनसे कुछ कम है तथा छात्र संख्या 4 के प्राप्तांक और कम है ।

(2) पैदावार कम होने से अनाज के मूल्य बढ़ जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दो भिन्न राशियों के मूल्यों, गुणों या योग्यता में इस प्रकार का सम्बन्ध हो कि एक के बढ़ने या घटने से दूसरे में कमी या वृद्धि हो तो सांख्यिकी की भाषा में यह कहा जाता है कि इन राशियों में सह-सम्बन्ध (Correlation) विद्यमान है। शिक्षा के क्षेत्र में भी बालक के गुणों में इस प्रकार के सह-सम्बन्ध पाये जाते हैं जैसे बुद्धि तथा शैक्षिक उपलब्धि आपस में सह सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् बुद्धि के बढ़ने के साथ साथ उसकी शैक्षिक उपलब्धियां भी बढ़ना स्वाभाविक है।

सह-सम्बन्ध को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है

(1) पी किंग[1] (P King)

दो श्रेणियों अथवा समूहों के अन्तर्गत कारण और प्रभाव के सम्बन्ध को सह सम्बन्ध कहते हैं।

(2) कोनर[2] (Connor)

"जब दो या अधिक राशियों में, एक में परिवर्तन होने के फलस्वरूप दूसरी राशि में भी परिवर्तन होने की प्रवृत्ति पाई जाती है, तो वे राशियां सह सम्बन्धित कहलाती हैं।"

(3) एच ई गेरेट[3] (H E Garrett)

"यह एक अनुपात है जो कि एक चर में परिवर्तन होने के फलस्वरूप दूसरे चर में होने वाले परिवर्तनों को बताता है अथवा इनकी परस्पर निर्भरता की सीमा को व्यक्त करता है।

(4) जे पी गिलफर्ड[4] (J P Guilford)

जब दो चर राशियां इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक में बढ़ोतरी या कमी से दूसरे में भी कमी या वृद्धि हो तो ऐसी स्थिति में दोनों राशियां सह सम्बन्धित हैं।"

इस प्रकार जब दो भिन्न-भिन्न विषयों या योग्यताओं के अंकों में इस प्रकार का सम्बन्ध हो कि एक में परिवर्तन होने पर सहानुभूति में दूसरे में भी परिवर्तन होता हो तो, वे विषय या योग्यताएँ सह-सम्बन्धित कहलाती हैं।

सह सम्बन्ध के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम दो चर राशियां हों। यदि दो राशियां नहीं होंगी तो आपस में सह सम्बन्ध ज्ञात किया जाना सम्भव नहीं होगा। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात राशियों के गुणों के परिवर्तन से जुड़ी है। परिवर्तन आकस्मिक न होकर एक दिशा विशेष में होना आवश्यक है।

1 King P Element of Statistical Methods p 198
2 Connor Statistics in Theory and Practice p 135
3 Garrett H E Statistics in Psychology and Education Bombay Vakil Feller and Simons Pvt Ltd p 122
4 Guilford J P Fundamental Statistics in Pshychology and Education, New York Mc Graw Hill Book Co 197-

सह सम्बन्ध के प्रकार (Types of Correlation)

सह सम्बन्ध को चर मूल्यों के परिवर्तनों की दिशा के आधार पर निम्न लिखित प्रकारों में बांटा जा सकता है

(1) धनात्मक सह सम्बन्ध (Positive Correlation)
(2) ऋणात्मक सह-सम्बन्ध (Negative Correlation)
(3) रखीय सह-सम्बन्ध (Linear Correlation)
(4) शून्य सह सम्बन्ध (Zero Correlation)
(5) बहुगुणी सह-सम्बन्ध (Multiple Correlation)।

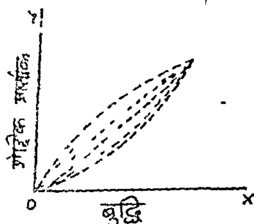
(1) धनात्मक सह सम्बन्ध—जब एक चर के मूल्य में वृद्धि होने से दूसरे चर के मूल्य में भी वृद्धि हो रही हो, और एक चर के मूल्य में कमी होने पर दूसरे चर के मूल्य में कमी होती है तो ऐसे सह-सम्बन्ध को धनात्मक सह सम्बन्ध कहते है।

उदाहरण निम्नानुसार है—

छात्र क्रमांक	गणित के प्राप्तांक	हिन्दी के प्राप्तांक
1	15	18
2	16	20
3	19	22
4	21	28
5	22	28
6	25	30

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि छात्रों के गणित विषय के प्राप्तांकों में बढ़ोतरी के साथ-साथ हिन्दी के अंको में भी वृद्धि हो रही है। इसी प्रकार एक विषय के प्राप्तांकों में कमी होने पर दूसरे विषय के प्राप्तांक भी कम होते जा रहे है जैसे छात्र संख्या 6 के गणित और हिन्दी विषय में सर्वाधिक अंक है। छात्र संख्या 5 के अंक इनसे कुछ कम है तथा छात्र संख्या 4 के प्राप्तांक और कम है।

इसका चित्रमय प्रदर्शन निम्न प्रकार से किया जा सकता है



चित्र में किसी कक्षा के प्रत्येक बालक की बुद्धि के अंक तथा उसके शैक्षिक प्राप्तांकों को बिन्दु में बताया गया है। चित्र को देखने से यह प्रकट होता है कि ये सब बिन्दु एक रेखा के समीप हैं तथा इनका फैलाव धनात्मक दिशा में है। इसी कारण इस सम्बन्ध को धनात्मक सह-सम्बन्ध कहते हैं।

(2) ऋणात्मक सह-सम्बन्ध—यदि दो श्रेणियों की चर राशियों में इस प्रकार का सम्बन्ध हो कि एक के मूल्य में वृद्धि होने से दूसरे चर के मूल्य में कमी आवे अथवा दोनों चर राशियों के मूल्य में परिवर्तन की दिशा विपरीत हो तो उनके बीच के सह-सम्बन्ध को ऋणात्मक सह-सम्बन्ध कहते हैं। उदाहरण के लिए विद्युत धारा का बहना एवं प्रतिरोध। ज्यों ज्यों किसी विद्युत परिपथ में हम प्रतिरोध बढ़ाते जायेंगे, परिपथ में बहने वाली विद्युत धारा कम होती जायगी। इसके विपरीत यदि प्रतिरोध को हम कम करते जावें तो परिपथ में विद्युत का बहना तेजी से होगा। इस प्रकार प्रतिरोध एवं विद्युत धारा का बहना ऋणात्मक रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित है। संख्यात्मक रूप से एक काल्पनिक उदाहरण निम्नानुसार है

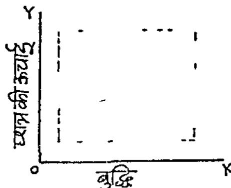
छात्र क्रमांक	आर्थिक स्तर अंक	शैक्षिक उपलब्धि अंक
1	870	725
2	750	750
3	725	800
4	695	817
5	650	912

पूर्वोक्त सारिणी से यह प्रकट हो रहा है कि छात्र के आर्थिक स्तर अंक सबसे अधिक है परन्तु शैक्षिक उपलब्धि अंक सबसे कम है। इसी प्रकार न्यूनतम आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थी के शैक्षिक उपलब्धि अंक सबसे अच्छे है। अतः एक चर (आर्थिक स्तर) के मूल्य के घटने से दूसरे चर (शैक्षिक उपलब्धि) का मूल्य बढता जा रहा है यह ऋणात्मक सह सम्बन्ध को दर्शाता है।



चित्र में वायु के दाब तथा आयतन में सम्बन्ध दर्शाया गया है। यदि वायु का दाब बढाते है तो (निश्चित ताप पर) उसका आयतन कम होता जाता है। यहा पर एक चर मूल्य के बढने से दूसरा चर-मूल्य कम तथा घटने से दूसरे चर-मूल्य में वृद्धि हो रही है। अतः यह चित्र ऋणात्मक सह-सम्बन्ध को प्रकट कर रहा है।

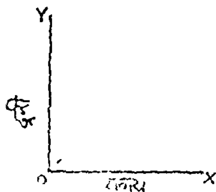
(3) शून्य सह-सम्बन्ध—जब एक चर मूल्य के घटने या बढने से दूसरे चर मूल्य के घटने या बढने के मध्य कोई सम्बन्ध न हो तो ऐसे सह सम्बन्ध को शून्य सह-सम्बन्ध कहते है। उदाहरण के लिए छात्र के भार तथा गणित विषय के प्राप्तांकों में कोई सम्बन्ध नही है अर्थात् गणित विषय में अच्छे अंक प्राप्त करने वाला बालक कम, औसत या अधिक भार वाला कैसा भी हो सकता है।



यहा पर बुद्धि और छात्र की ऊँचाई के बिन्दु प्रदर्शित किए गये है। चित्र में स्पष्ट हो रहा है कि इनमे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है बिन्दु चारो ओर फैले हुए है।

(4) रेखीय सह-सम्बन्ध—यदि दो चरों के मूल्यों के परिवर्तनों का अनुपात स्थायी होता है तो उनका सह-सम्बन्ध रेखीय कहलाता है। रेखीय सह-सम्बन्ध में चरों में आनुपातिक वृद्धि एक जैसी होती है यह तथ्य अग्रांकित उदाहरण से स्पष्ट हो सकता है। एक छात्र का समय दूरी विवरण अग्रांकित है

समय	छात्र द्वारा तय की गई दूरी
5 मिनट	1 कि मी
10 मिनट	2 कि मी
15 मिनट	3 कि मी
20 मिनट	4 कि मी
25 मिनट	5 कि मी
30 मिनट	6 कि मी



उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि बालक द्वारा तय की गई दूरी तथा तय करने में लिया गया समय एक निश्चित अनुपात रखते है। इसका यदि रेखा चित्र बनाया जाय तो यह चित्र एक सरल रेखा को प्रदर्शित करता है।

इसके विपरीत यदि दोनों चर-मूल्यों के परिवर्तन में निश्चित अनुपात न हो तो यह रेखा एक वक्र रेखा होगी।

(5) बहुगुणी सह सम्बन्ध—सामान्यतः दो चर मूल्यों के मध्य सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है परन्तु कुछ ऐसे भी चर हैं जो कि एक से अधिक चरों से सम्बन्ध रखते है, उदाहरण के लिए बुद्धि, सृजनात्मकता, अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी गुण, शैक्षिक उपलब्धि आदि आपस में सह सम्बन्ध रखते है यदि इनका आपस में सह सम्बन्ध ज्ञात किया जाय तो यह बहुगुणी सह सम्बन्ध कहलायगा।

इसी प्रकार गेहूं की उपज पर खाद, जल की मात्रा, भूमि की प्रकृति, ताप आदि का प्रभाव पड़ता है यदि इन सब का गेहूं की उपज पर सामूहिक प्रभाव ज्ञात किया जावे तो इस हेतु ज्ञात किए गए सह सम्बन्ध बहुगुणी सह सम्बन्ध कहलायेंगे। इस प्रकार बहुगुणी सह-सम्बन्ध में कम से कम तीन या इससे अधिक चरों का होना आवश्यक है।

सह सम्बन्ध गुणांक की सीमाएं
(Limits of Coefficient of Correlation)

सह सम्बन्ध गुणांक सदा +1 और −1 के मध्य होता है। जब दो श्रेणियों के मध्य पूर्ण धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है तो उसे +1 गुणांक द्वारा

प्रकट करते हैं। इसी प्रकार जब दो श्रेणियों के मध्य पूर्ण ऋणात्मक सह सम्बन्ध होता है तो इसे r = −1 गुणांक द्वारा प्रदर्शित करते हैं। सामान्यतः +1 या −1 का सह-सम्बन्ध बहुत कम स्थितियों में पाया जाता है। अधिकांशतया सह सम्बन्ध +1 और −1 के मध्य ही पाये जाते हैं। इन्हें गणित में $-1 < r < +1$ द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

सह-सम्बन्ध को परिणाम की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त करते हैं

(क) उच्च सह सम्बन्ध (High Degree Correlation)—जब दो चर राशियों के मध्य निकाला गया सह-सम्बन्ध गुणांक का मूल्य 1 और .75 के मध्य हो तो यह सम्बन्ध उच्च प्रकृति का माना जाता है। यदि मूल्य धनात्मक हो तो 'उच्च धनात्मक सह-सम्बन्ध' तथा ऋणात्मक स्थिति होने पर "उच्च ऋणात्मक सह सम्बन्ध" कहते हैं।

(ख) मध्य सह सम्बन्ध (Moderate Degree Correlation)—इस प्रकार के सम्बन्ध में दो श्रेणियों के मध्य सह-सम्बन्ध न अधिक अच्छा तथा न ही अधिक कम होता है। गणित की दृष्टि में जब सह-सम्बन्ध गुणांक .25 और .75 के बीच पाया जाता है तो यह मध्य-सह सम्बन्ध कहलाता है।

(ग) निम्न कोटि सह सम्बन्ध (Low Correlation)—जब दो श्रेणियों में सम्बन्ध बहुत कम होता है अर्थात् एक में परिवर्तन होने से दूसरे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं पाया जाये तो इस प्रकार का सह-सम्बन्ध निम्न-कोटि का सह-सम्बन्ध कहलाता है। गणित की दृष्टि से ऐसे सह-सम्बन्ध गुणांक का मान 0 और +.25 या 0 और −.25 के मध्य होता है।

सह सम्बन्ध गुणांक की गणना
(Calculation of Coefficient of Correlation)

सह सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने की अनेक विधियाँ हैं, इनमें दो विधियाँ अधिक प्रचलित हैं

1. कार्ल पियर्सन विधि (Karl Pearson's Method)
2. स्पियरमैन की कोटि-अन्तर-विधि (Spearman's Rank Difference Method)।

कार्ल पियर्सन विधि

इस विधि को प्रसिद्ध प्राणीशास्त्री कार्ल पियर्सन ने 19वीं शताब्दी में प्रतिपादित किया। यह बड़े प्रतिदर्श में काम में लाई जाती है। अनुसंधान में इस का व्यापक उपयोग किया जाता है। सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने के लिए श्रेणी का मध्यमान ज्ञात कर प्रत्येक पद का मध्यमान से विचलन ज्ञात किया जाता है। चूँकि दो श्रेणियाँ ली जाती हैं अतः दोनों के विचलन ज्ञात कर उनका गुणन

किया जाता है। इन गुणनफलों का योग प्राप्त कर उसे पदों की संख्या से भाग दे देते हैं। सह सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग करते हैं

$$r = \frac{\Sigma d_n \ d_y}{NS_n \ S_y}$$

जहां कि r = सह सम्बन्ध गुणांक

$\Sigma d_n d_y$ = श्रेणियों के मध्यमानों से विचलनों के गुणनफलों का योग

N = पदों की संख्या

S_n = प्रथम श्रेणी का प्रमाप विचलन

S_y = द्वितीय श्रेणी का प्रमाप विचलन

उदाहरण

क्र.स.	गणित के अंक			हिन्दी के अंक			
	प्राप्तांक x	विचलन d_x	विचलन वर्ग d_x^2	प्राप्तांक y	विचलन d_y	विचलन वर्ग d_y^2	$d_x d_y$
1	9	3	9	6	2	4	36
2	8	2	4	5	1	1	4
3	6	0	0	2	−2	4	0
4	5	−1	1	4	0	0	0
5	2	−4	16	3	−1	1	16
	30		30	20		10	56

गणित के प्राप्तांकों का माध्य $= \frac{30}{5} = 6$

गणित के प्राप्तांकों का प्रमाप विचलन $= \sqrt{\frac{\Sigma d_x^2}{N}} = \frac{30}{5} = 2.4$

हिंदी के प्राप्तांकों का माध्य $\frac{20}{5} = 4$

हिंदी के प्राप्तांकों का प्रमाप विचलन $= \sqrt{\frac{\Sigma d_y^2}{N}} = \frac{10}{4} = 1.4$

$$r = \frac{56}{5 \times 1.4 \times 2.4} = 0.3$$

लघु रीति

कार्ल पियर्सन की प्रत्यक्ष विधि से सह सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने में चरों का मध्यमान से विचलन ज्ञात किया जाता है। इस विचलन का मान वास्तविक होना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में यदि मध्यमान दशमलव युक्त राशि हो अथवा पूर्णांक न हो तो विचलन का मान दशमलव में आयेगा। इन मानों से गणना करना एक जटिल कार्य हो जायेगा। लघु रीति में मध्यमान का वास्तविक मान न लेकर कल्पित मान लिया जाता है तथा इसे कल्पित मध्यमान (Assumed Average) लघु रीति के निम्नांकित चरण हैं

(1) दोनों श्रेणियों में सुविधानुसार कल्पित मध्यमानों को चुनना।

(2) कल्पित मध्यमानों से विचलन का मान दोनों श्रेणियों में अलग अलग ज्ञात करना।

(3) विचलनों के वर्गों का योग ज्ञात करना तथा विचलनों के गुणनफलों का योग मालूम करना।

निम्न सूत्र का उपयोग कर सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात किया जाता है।

$$r = \frac{N\Sigma d_x d_y - (\Sigma d_x \Sigma d_y)}{\sqrt{(N\Sigma d_x^2 - (\Sigma d_x)^2)\,[N\Sigma d_y^2 - (\Sigma d_y)^2]}}$$

जहां कि

r = सह सम्बन्ध गुणांक

N = श्रेणी में पद-संख्या

Σd_x = एक श्रेणी में पदों का कल्पित मध्यमान से विचलनों का योग

Σd_x^2 = विचलनों के वर्गों का जोड़

Σd_y = दूसरी श्रेणी में पदों का कल्पित मध्यमान से विचलनों का योग

Σd_y^2 = विचलनों का वर्ग

$\Sigma d_x d_y$ = विचलनों के गुणनफलों का योग।

स्पीयरमैन की कोटि-अन्तर सह सम्बन्ध विधि

चार्ल्स स्पीयरमैन ने दो श्रेणियों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने

की एक सरल विधि का प्रतिपादन किया । यह विधि विशेषतः उन्हीं परिस्थितियों में काम में ली जाती है जहाँ कि न या या गुणों का सही रूप में सख्या में प्रकट किया जाना सम्भव न हो । उदाहरण के लिए सुन्दरता स्वास्थ्य बुद्धि आदि । इनका नाम कोटि अन्तर इस कारण से पड़ा कि इसमें प्रत्येक श्रेणी के अंक को उसकी कोटि दी जाती है । दोनों श्रेणियों की कोटियों का अन्तर ज्ञात कर सह सम्बन्ध गुणांक ज्ञात किया जाता है । इस विधि द्वारा ज्ञात सह सम्बन्ध गुणांक को ρ (rho) द्वारा प्रकट किया जाता है । सूत्र निम्न प्रकार से है

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)}$$

जहाँ कि

ρ = सह सम्बन्ध गुणांक

D = कोटि अन्तर

N = पदों की सख्या ।

निम्न उदाहरण से यह विधि हमें पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी—

प्रश्न

निम्न सारिणी में 11 विद्यार्थियों के अंग्रेजी और हिन्दी विषय के अंक दिये गये हैं । इनमें सह सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करें

क्र स	छात्र का नाम	अंग्रेजी के प्राप्तांक	हिन्दी के प्राप्तांक
1	क	40	45
2	ख	46	45
3	ग	54	50
4	घ	60	43
5	ङ	70	40
6	च	80	75
7	छ	82	55
8	ज	85	72
9	झ	85	65
10	य	90	42
11	र	95	70

उक्त तालिका में अंग्रेजी तथा हिन्दी के प्राप्तांक दिये हुए हैं । इनमें सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम अंग्रेजी में सर्वाधिक प्राप्तांक ढूँढने होंगे । र के अंक 95 सबसे अधिक है । इसे पहला स्थान दिया जायगा । दूसरा स्थान य

को देना पडेगा क्योकि इसके अग्रेजी म अक र म कम तथा अन्य म उससे अधिक है। इसी प्रकार अन्य छात्रो के प्राप्ताको का स्थान दे दिया जायगा।

हिन्दी विषय म भी प्राप्ताको को प्रथम से 11वा स्थान तक दिया जायगा। प्रथम स्थान ज को (प्राप्ताक 72) द्वितीय स्थान र को (प्राप्ताक 70) तथा अन्य को भी इसी घटते क्रम म स्थान दे दिये जायेगे।

इसकी सारिणी निम्नानुसार तैयार होगी

क्र स	छात्र का नाम	अग्रेजी (अ) के प्राप्ताक	हिन्दी (ह) के प्राप्ताक	अ विषय म छात्र का क्रम R_1	ह विषय म छात्र का क्रम R_2	क्रमो म अन्तर $R_1-R_2=D$	D^2
1	क	40	45	11	7.5	+3.5	12.25
2	ख	46	45	10	7.5	+2.5	6.25
3	ग	54	50	9	6	+3	9.00
4	घ	60	43	8	9	−1	1.00
5	ङ	70	40	7	11	−4	16.00
6	च	80	75	6	1	+5	25.00
7	छ	82	55	5	5	0	0
8	ज	85	72	3.5	2	+1.5	2.25
9	झ	85	65	3.5	4	−0.5	0.25
10	य	90	42	2	10	−8	64.00
11	र	95	70	1	3	−2	4.00
							$\Sigma D^2 = 140$

यहा अग्रेजी विषय म छात्र ज और झ के प्राप्ताक तुल्य है। छात्र ज और झ म से किसी एक को तीसरा व चौथा स्थान मिलना चाहिए। चूँकि दोनो के अक बराबर है अत दोनो को स्थान भी बराबर अर्थात् $\frac{3+4}{2} = 3.5$वा स्थान दे दिया गया है। इसी प्रकार हिन्दी विषय म क और ख के अक तुल्य (45) होने के कारण दोनो को 7.5वा स्थान दिया गया है

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{n(n^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 140}{11 \times (121-1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 140}{11 \times 120}$$

$$= 1 - 63$$

$$= 0\ 37$$

उदाहरण

एक भाषण प्रतियोगिता में 10 विद्यार्थियों को 3 निर्णायकों ने निम्न प्रकार से स्थान प्रदान किया

छात्र का नाम	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	य
प्रथम निर्णायक	1	6	4	10	3	2	5	9	7	8
द्वितीय निर्णायक	5	3	8	4	7	10	2	1	6	9
तृतीय निर्णायक	9	4	6	8	1	2	3	10	5	7

कोटि अन्तर विधि से निर्णायकों के निर्णयों में सह सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करो।

हल—यहां पर हमें तीन प्रकार से सह-सम्बन्ध निकालना पड़ेगा

(1) प्रथम निर्णायक के क्रम तथा द्वितीय निर्णायक के क्रम के मध्य।

(2) प्रथम निर्णायक के क्रम तथा तृतीय निर्णायक के क्रम के मध्य।

(3) द्वितीय निर्णायक के क्रम तथा तृतीय निर्णायक के क्रम के मध्य।

छात्र का नाम	प्रथम निर्णायक द्वारा दिया स्थान R_1	द्वितीय निर्णायक द्वारा दिया स्थान R_2	तृतीय निर्णायक द्वारा दिया स्थान R_3	$R_1 - R_2 = D_1$	D_1^2	$R_2 - R_3 = D_2$	D_2^2	$R_1 - R_3 = D_3$	D_3^2
क	1	5	9	−4	1	−4	16	−8	64
ख	6	3	4	+3	9	−1	1	+2	4
ग	4	8	6	−4	16	+2	4	−2	4
घ	10	4	8	+6	36	−4	16	+2	4
ङ	3	7	1	−4	16	+6	36	+2	4
च	2	10	2	−8	64	+8	64	0	0
छ	5	2	3	+3	49	−1	1	+2	4
ज	9	1	10	+8	64	−9	81	−1	1
झ	7	6	5	+1	1	+1	1	+2	4
य	8	9	7	−1	1	+2	4	+1	1
	n=10				232		224		90

(1) प्रथम निर्णायक और द्वितीय निर्णायक के निर्णयों के मध्य कोटि अन्तर—

$$\text{सह सम्बन्ध} = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{n(n^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 232}{10(100 - 1)}$$

$$= 1 - 1\ 4$$

$$= -0\ 4$$

(2) द्वितीय निर्णायक और तृतीय निर्णायक के निर्णयों के मध्य कोटि अन्तर—

$$\text{सह-सम्बन्ध} = \frac{6 \times 224}{10(100 - 1)}$$

$$= 1 - 1\ 36$$

$$= 0\ 36$$

(3) प्रथम निर्णायक तथा तृतीय निर्णायक के निर्णयों के मध्य अन्तर—

$$\text{सह सम्बन्ध} = 1 - \frac{6 \times 90}{10(100 - 1)}$$

$$= 1 - 54$$

$$= 0\ 46$$

उपरोक्त गणना से यह प्रकट होता है कि प्रथम निर्णायक तथा तृतीय निर्णायक के द्वारा दिये गये निर्णयों में निकट का सम्बन्ध है।

उदाहरण

10 छात्रों द्वारा हिन्दी एवं गणित में प्राप्तांकों का समान्तर विधि द्वारा सह सम्बन्ध ज्ञात करें।

छात्र	गणित में प्राप्तांक	हिन्दी में प्राप्तांक	R_1	R_2	$R_1 - R_2 = D$	D^2
क	78	84	3	2	1	1 00
ख	36	54	7 5	6 5	1	1 00
ग	98	36	1	9	−8	68 00
घ	25	60	9 5	5	4 5	20 25
ङ	75	36	4	9	−5	25 00
च	80	54	2	6 5	−4 5	20 25
छ	25	92	9 5	1	8 5	15 25
ज	62	36	5	9	−4	16 00
झ	36	62	7 5	4	3 5	12 25
य	40	68	6	3	3	9 00
					ΣD^2	= 241 00

इस विधि द्वारा सह सम्बन्ध ज्ञात करने हेतु सर्वप्रथम हम छात्र द्वारा दोनों विषयों में प्राप्त अंकों को क्रम प्रदान करते हैं। इन क्रमों को हम R_1 एवं R_2 वाले खानों में अंकित करते हैं। R_1 में गणित और R_2 में हिन्दी विषयों के अंकों को अंकित किया गया है।

क्रम प्रदान करने के लिए हम ध्यान में रखते हैं कि विषय में सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्र को क्रम 1 एवं उससे कम अंक प्राप्त करने वाले को 2, 3 आदि क्रम प्रदान करेंगे। यदि एक अथवा एक से अधिक छात्र एक जैसे अंक प्राप्त करते हैं तो हम अंकों का मध्यक प्राप्त करने के पश्चात उन्हें क्रम प्रदान करेंगे। उदाहरण के तौर पर गणित में दो छात्रों ने 36 अंक प्राप्त किये हैं। इस स्थान तक हमने 6 क्रम प्रदान किये हैं। अब यदि हम 7वाँ क्रम एक को प्रदान करते हैं और 8वाँ दूसरे को, तो इसे उपयुक्त नहीं कहा जा सकेगा क्योंकि दोनों विद्यार्थियों की निष्पत्ति एक जैसी है। इसलिए हमने 9वें एवं 8वें क्रम का मध्यक निकाला जो कि $\frac{7+8}{2} = 7\ 5$ निकला। अतः हमने दोनों छात्रों को 7 5 क्रम प्रदान किया। जबकि हमने 8वें क्रम के बारे में निर्णय ले लिया है, तो हम 8वाँ क्रम किसी को भी प्रदान नहीं करेंगे। उन छात्रों के लिए भी इसी विधि का उपयोग करेंगे, जिन्होंने 25 अंक प्राप्त किये हैं।

हिन्दी में तीन छात्रों ने एक जैसे अंक प्राप्त किये हैं। इस स्थान तक हमने 7वाँ क्रम प्रदान किया है। इस स्तर पर हमने 8वें, 9वें एवं 10वें क्रम का मध्यक

निकाला जो कि $\frac{8+9+10}{3}=9$ बना। अतः सभी को 9वां क्रम प्रदान किया जिन्होंने एक जैसे अंक प्राप्त किये थे।

क्रम प्रदान करने के पश्चात् हमने R_1 एवं R_2 का अन्तर ज्ञात किया और उसे D स्थान में अंकित कर दिया। हमने विभिन्नताओं के वर्गों को D^2 के स्थान में अंकित किया और D^2 की राशियों को जोड़ के प्राप्त किया।

उपर्युक्त दिये गये सूत्र का प्रयोग इस प्रकार किया

$$= 1 - \frac{6\Sigma D^2}{n(n^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 241}{10(100-1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 241}{10 \times 99}$$

$$= \frac{165-241}{165}$$

$$= -4 \text{ उत्तर}$$

परिणाम की व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है निम्न ऋणात्मक सहसम्बन्ध देखने को मिलता है।

कोटि अन्तर सह-सम्बन्ध की सीमाएं

(1) यह सीमित संख्या के समूह में ही प्रयोग में लाई जा सकती है। यदि समूह बड़ा हो तो इस विधि से सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करना अत्यधिक कठिन है।

(2) इसमें छात्रों की संख्या कम होती है अतः इससे प्राप्त सह-सम्बन्ध विश्वसनीय नहीं होते।

(3) यहां अंकों का क्रम काम में लाया जाता है। इन क्रमांकों से अंकों का वास्तविक अन्तर छिप जाता है।

उपरोक्त सीमाओं के होते हुए भी यह विधि एक सरल विधि है। इसमें गणना कार्य जटिल नहीं है अतः अध्यापक के दैनंदिन कार्य की दृष्टि से यह विधि उपयोगी है।

सह सम्बन्ध गुणाक की मान्यताए

सह-सम्बन्ध-गुणाक निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है

(1) कार्य-कारण-सम्बन्ध—दो श्रेणियां जिनके मध्य सह सम्बन्ध ज्ञात किया जा रहा है, उनके मध्य कार्य कारण सम्बन्ध होना चाहिए। जैसे बुद्धि तथा शैक्षिक उपलब्धि।

(2) दोनों श्रेणियां गुण रेखीय प्रकृति के अनुसार सम्बन्धित होनी चाहिए।

(3) लिया गया न्यादर्श संख्या में बड़ा होना चाहिए।

उपरोक्त मान्यताओं पर आधारित सह-सम्बन्ध-गुणांक से ही निष्कर्ष निकाले जाने सम्भव हैं।

सह सम्बन्ध गुणाक को प्रभावित करने वाले कारक

(1) सह-सम्बन्ध-गुणांक का मान प्राप्तांकों के विचलन का व्युत्क्रमानुपाती है अर्थात् विचलन जितना अधिक होगा सह सम्बन्ध गुणाक उतना ही कम होगा। विचलन के कम होने की स्थिति में सह-सम्बन्ध-गुणाक अधिक होगा।

(2) सह-सम्बन्ध गुणांक का मान समूह या श्रेणी में पदों की संख्या पर निर्भर होता है। यदि श्रेणी में पदों की संख्या अधिक है तो सह-सम्बन्ध-गुणांक का मान कम होगा।

सह सम्बन्ध-गुणांक का ज्ञान अध्यापक के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इससे वह शैक्षिक मार्गदर्शन प्राप्त करता है तथा छात्रों की विषयगत योग्यता का पूर्वानुमान कर सकता है। यह कार्य वह प्रतिपगमन रेखाओं की सहायता से कर सकता है जिसमें वह सह-सम्बन्ध-गुणांक का उपयोग करता है।

सह-सम्बन्ध-गुणांक द्वारा अध्यापक परीक्षणों की विश्वसनीयता के बारे में पता लगा सकता है। वह उसके द्वारा बनाये गये परीक्षा में आये छात्रों के प्राप्तांकों का, मानकीकृत परीक्षा में आये प्राप्तांकों से सह सम्बन्ध गुणांक निकाल कर परीक्षण की विश्वसनीयता के बारे में निर्णय ले सकता है। अर्द्ध विच्छेदन विधि जो कि विश्वसनीयता ज्ञात करने की एक प्रचलित विधि है, में भी सह सम्बन्ध गुणाक निकालने का ज्ञान होना आवश्यक है।

विभिन्न विषयों में छात्रों के प्राप्तांकों के सह सम्बन्ध गुणांकों के द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों की विषय योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है तथा आवश्यकतानुसार उपचारात्मक शिक्षण किये जाने हेतु निर्णय ले सकता है। इस प्रकार सह सम्बन्ध गुणाक का ज्ञान शिक्षक के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो जाता है।

सारांश

प्रकृति में कुछ गुण ऐसे पाये जाते हैं जिनके घटने या बढ़ने का प्रभाव दूसरे गुण पर भी पड़ता है। जब दो राशियाँ या गुण इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक में परिवर्तन से दूसरे में भी परिवर्तन हो जैसे एक में वृद्धि से दूसरे में वृद्धि या कमी हो तब यह कहा जाता है कि ये गुण या राशियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित अथवा "सह-सम्बन्ध" रखती हैं।

सह-सम्बन्ध को मूल्यों के परिवर्तन की दिशा के आधार बनाकर पाँच प्रकार में बाँटा गया है। ये क्रमशः धनात्मक सह-सम्बन्ध, ऋणात्मक सह-सम्बन्ध, रेखीय सह-सम्बन्ध, अरेखीय सह-सम्बन्ध एवं बहुगुणी सह-सम्बन्ध हैं। सह-सम्बन्ध का मान सदैव +1 तथा -1 के मध्य होता है। जब राशियाँ पूर्ण रूप से सम्बन्धित हों तो उनका मान एक होता है।

सह-सम्बन्ध का ज्ञान करने की प्रमुख रूप में दो विधियाँ अर्थात् कार्ल पियर्सन-विधि तथा स्पियरमैन की कोटि अन्तर-विधि हैं। इन दोनों विधियों में कोटि-अन्तर विधि का उपयोग अधिक किया जाता है। कारण कि इस विधि में गणना कार्य बहुत कम है।

कोटि-अन्तर-विधि की कुछ सीमाएँ हैं। यदि समूह बड़ा हो तो इस विधि में सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाना एक कठिन कार्य होगा।

सह-सम्बन्ध ज्ञात करने का ज्ञान एक अध्यापक के लिए आवश्यक है क्योंकि इससे उसे शैक्षिक मार्गदर्शन प्राप्त होता है। वह इसका उपयोग छात्रों की विषयगत योग्यता का अनुमान करने, परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने तथा अन्य विषयों के प्राप्तांकों से तुलना करने आदि कार्यों के लिए कर सकता है।



अध्याय 14 (i)

आंकड़ो का बिन्दु-रेखीय प्रदर्शन

(Graphical Representation of Statistical Data)

सांख्यिकीय आंकड़ों के प्रदर्शन में बिन्दु-रेखीय रीतियों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। इस कारण देखने वाले की समझ में सरलता से आ जाती है, देखने से पाठक के मस्तिष्क पर एक चिरस्थाई प्रभाव होता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान सख्यात्मक रूप में लिखे जाते हैं जिन्हें समझने में बालक को कुछ समय लगता है जबकि सांख्यिकी के चित्रों को वह देखने मात्र से ही समझ लेता है। बालक अंकों को, सामान्यत नीरस एवं शुष्क समझ कर उनमें रुचि नहीं लेता, परन्तु चित्र उसे अपनी ओर आसानी से आकर्षित कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में मेरी एलानार स्पियर (Mary Eleaner Spear) लिखती है कि "बिन्दुरेखीय प्रदर्शन कला उतना ही अधिकार सम्बन्धी रूप है जितना कि आधुनिक पेन्टिंग या शिल्प कला।"

बिन्दु रेखीय प्रदर्शन का आधार चित्र है। चित्र को वैचारिक प्रदर्शन के लिए सदा से ही एक शक्तिशाली माध्यम माना गया है। विष्णुधर्मोत्तरम में लिखा है

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मार्थकाममोक्षदम

मंगल्य प्रथमं चैतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम

अर्थात चित्र को कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। चित्र की विशेषता यह है कि व्यक्ति आंखों द्वारा अनुभव प्राप्त करता है जो कि अधिक स्थाई माने जाते है। इस प्रकार संख्यात्मक प्रदर्शन की तुलना में आंकड़ों का बिन्दु रेखीय प्रदर्शन अधिक प्रभावी माना गया है।

चित्रों की उपयोगिता एवं महत्त्व

(Utility and Importance of Graphical Representation)

ब्रूनर ने चित्रमय प्रदर्शन के सम्बन्ध में कहा है कि एक चित्र हजार शब्दों के तुल्य होता है। चित्र अनेक सूचनाओं को संजोये हुए उन्हें आकर्षक एवं सरल ढंग में विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत करता है। सांख्यिकीय चित्रों के अग्रलिखित लाभ है

(1) सांख्यिकीय तथ्यों को सरल और बोधगम्य बनाकर यह पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है।
(2) बिन्दुमय प्रदर्शन में दिये गये तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।
(3) बिन्दुमय प्रदर्शन आकर्षक एवं रोचक होता है।
(4) ये मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालते हैं।
(5) चित्रमय प्रदर्शन से समय एवं श्रम की बचत होती है।
(6) इसके प्रदर्शन में गणना आदि के जटिल कार्य से बचा जा सकता है।
(7) चित्रों में किसी तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है, इसको समझने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार बिन्दु रेखीय प्रदर्शन शिक्षा एवं सांख्यिकी में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

बिन्दुमय प्रदर्शन के सामान्य नियम

बिन्दुमय प्रदर्शन का उद्देश्य गणितीय तथ्यों को इस प्रकार से प्रदर्शित करना है कि साधारण व्यक्ति भी इस सरलता से समझ सके। इस दृष्टि से चित्र न केवल आकर्षक ही हों अपितु प्रदर्शित किये जाने वाले तथ्यों को सरलता से जान देने वाले भी होने चाहिए। इस दृष्टि से बिन्दुमय प्रदर्शन के कुछ सामान्य नियम निम्न प्रकार से हैं

(1) चित्रों का आकार इतना होना चाहिए कि उनमें प्रदर्शित सामग्री पूर्णतः स्पष्ट हो सके। यदि चित्र छोटा होगा तो उसे देखने में कठिनाई होगी। चित्र के चारों ओर मोटी रेखा खींचनी चाहिए।
(2) चित्र उपयुक्त पैमाने के आधार पर ही बनाया जाना चाहिए। पैमाना इस प्रकार चुना जाय कि चित्र दिये गए कागज में पूर्णतः फैल जाय।
(3) चित्र को आकर्षक और प्रभावशाली बनाने के लिए उसमें रंग का उपयोग किया जाना चाहिए।
(4) चित्र में आवश्यकतानुसार शीर्षक दिया जाना चाहिए जिससे यह समझ में आ सके कि चित्र किस तथ्य से सम्बन्धित है।

इस प्रकार बिन्दुमय प्रदर्शन के लिए चित्र को सुनियोजित तरीके से बनाया जाना चाहिए जिससे कि ये अच्छे स्तर के समान गुण एवं स्वभाव वाले, आकर्षक, सम्पूर्ण सूचनाओं से युक्त एवं सरल हों। यदि चित्र भ्रमपूर्ण तथा दी गई सूचनाओं के अनुकूल नहीं होंगे तो इसमें पाठक भ्रमात्मक निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

विद्यालयों में कई बार ऐसी स्थितियाँ आती हैं जब अध्यापक को विद्यालय से सम्बन्धित आँकड़ों को सजीवता के साथ प्रस्तुत करना होता है। उदाहरण के लिए, किसी विद्यालय का गत दस वर्षों का परीक्षाफल। यदि परीक्षाफलों को

किसी रेखाचित्र से दिखाया गया है तो साधारण स्तर तक पढ़ा हुआ व्यक्ति भी यह बता सकता कि यह विद्यालय परीक्षाफल की दृष्टि से प्रगति कर रहा है या नहीं। जबकि सख्यात्मक आकडा से वह इतनी शीघ्रता से निर्णय न ले सकेगा। अत यह कहा जा सकता है कि अध्यापक विद्यालयीय तथ्यों एवं सूचनाओं को अधिक सजीवता एव स्पष्टता से प्रदर्शित करने के लिए बिन्दु रेखीय प्रदर्शन को प्रयोग में ला सकता है।

सूचनाओं का प्रभावी रूप से किस प्रकार प्रदर्शित किया जाय, इस सम्बन्ध में कई शोध कार्य हुए है। एक शोध निष्कर्ष के अनुसार चित्र का मस्तिष्क पर 80 प्रतिशत की सीमा तक प्रभाव पडता है जबकि सुनने से वह केवल 6 प्रतिशत की सीमा तक प्रभावित होता है। अत चित्र, प्रदर्शन के लिए सबसे अधिक प्रभावी माने गये है। इस दृष्टि से भी यदि सोचा जाय तो बिन्दु रेखीय प्रदर्शन शैक्षिक आकडो को प्रस्तुत करने के लिए एक सशक्त माध्यम बन सकता है।

मुहम्मद जियाउद्दीन[1] (M Ziauddin) ने आकडा के बिन्दु रेखीय प्रदर्शन के सम्बन्ध में कहा है कि 'सांख्यिकीय तथ्यों को चार्ट रेखा चित्र अथवा अन्य चित्रों से प्रस्तुत किये जाने पर सांख्यिकी की प्रकृति एव स्वरूप का बोध अधिक स्पष्टता से कराया जाकर इसे सुग्राह्य बनाया जा सकता है। चित्रमय प्रदर्शन का उपयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी प्रभावी रूप से किया जा सकता है। डब्लू आई किंग[2] (W I King) ने बिन्दु रेखीय प्रदर्शन के बारे में कहा है कि "सांख्यिकीय विज्ञान का मुख्य उद्देश्य विशाल तथ्यों को एक दृष्टि से सरल एव सुबोध बनाना है।

प्रदत्तो का बिन्दु रेखीय प्रदर्शन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

(1) पाई चित्र (Pie Diagrams)
(2) आयत चित्र (Frequency Polygon)
(3) बारम्बारता-बहुभुज (Histogram)
(4) तोरण (Ogives)।

(1) वृत्त चित्र या पाई चित्र

पाई चित्र का प्रयोग उन प्रदत्तो को प्रदर्शित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है जिनकी सूचना प्रतिशत के रूप में उपलब्ध हो। इस प्रकार के चित्रो को आसानी से खीचा जा सकता है। उदाहरण के लिए एक विद्यालय के

1 M Zia Ud Din Practical Statistics to Beginners The Punjab Educational Press Lahore 1943 P 31
2 King W I The Elements of Statistical Methods

कुल वजट का 75 प्रतिशत अध्यापकों के वेतन आदि, 5 प्रतिशत शिक्षण-सहायक सामग्री, 10 प्रतिशत पुस्तकालय एवं वाचनालय, 5 प्रतिशत भवन-मरम्मत तथा 5 प्रतिशत अन्य मदों पर खर्च हुआ। इस प्रकार के खर्चे का पाई चित्र बनाया जाना सम्भव है।

पाई चित्र बनाने के चरण

(1) दिये गये प्रदत्तों को, यदि प्रतिशत में न दिये हों, तो प्रतिशत में बदलना।

(2) 1 प्रतिशत को 3.6 के हिसाब से दिये गये प्रतिशतों का कोण ज्ञात करना। जैसे उक्त उदाहरण में—

अध्यापकों का वेतन = 75 प्रतिशत	270 डिग्री
सहायक सामग्री पर व्यय = 10 प्रतिशत	36 डिग्री
पुस्तकालय एवं वाचनालय = 5 प्रतिशत	18 डिग्री
भवन मरम्मत = 5 प्रतिशत	18 डिग्री
अन्य व्यय = 5 प्रतिशत	18 डिग्री
कुल योग	360 डिग्री

प्रत्येक अवस्था में कुल योग 360 डिग्री आना चाहिए।

(3) सुविधानुसार त्रिज्या का एक वृत्त खींचना।

(4) वृत्त के केन्द्र पर दिये गये कोणों को अंकित करना।

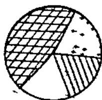
उदाहरण

एक विद्यालय में परीक्षाफल निम्न प्रकार रहा

प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण छात्र 20 प्रतिशत

द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण छात्र - 40 प्रतिशत

तृतीय श्रेणी से उत्तीर्ण छात्र 20 प्रतिशत



द्वितीय श्रेणी छात्र   तृतीय श्रेणी छात्र

प्रथम श्रेणी छात्र   अनुत्तीर्ण छात्र

उक्त विद्यालय के परीक्षाफल का पाई चित्र अंकित करें।

पाई चित्र निर्माण के लिए चरण

(1) प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण छात्रों के लिए कोण = $20 \times 3.6 = 72°$

(2) द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण छात्रों के लिए कोण = $40 \times 3.6 = 144°$

(3) तृतीय श्रेणी म उत्तीण छात्रा क निए कोण $= 20 \times 3.6 = 7_$

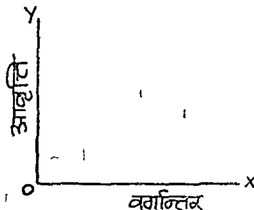
(4) अनुत्तीण छात्रा क लिए प्रतिशत $= (100 - 80) = 20$

अनुत्तीण छात्रा क लिए कोण $= 20 \times 3.6 = 72°$

(2) आयत चित्र

आयत चित्र म प्रदत्ता का आयत या स्तम्भ के रूप म प्रदर्शित किया जाता ह। इसम आयत की ऊचाई आकडा की आवृत्ति क अनुपात म रखी जाती ह। यदि आवृत्ति अधिक ह ता आयत की ऊचाई अधिक तथा आवृत्ति कम होन की दशा म ऊचाइ कम हागी। इस बनान क लिए अक्षा का ज्ञान हाना आवश्यक ह। निम्न चित्र म अक्ष दर्शाय गय ह।

चित्र म दा अक्ष OX तथा OY है। OX को भुजाक्ष तथा OY का काटि अक्ष कहते है। आयत चित्र बनाने के लिए भुजाक्ष (OX) पर वर्गान्तर की सीमा तथा काटि अक्ष पर आवृत्ति अकित की जाती ह। प्रत्यक वर्गान्तर की भुजा का उसकी आवृत्ति का भुजा म मिला कर आयत बना दिया जाता ह।



निम्न उदाहरण से आयत-चित्र का बनाना स्पष्ट हो सकेगा। नीचे छात्रों के गणित में प्राप्तांक दिये हुये है। इसका आयत-चित्र बनाव।

गणित में प्राप्तांक का वर्गान्तर	निम्न सीमा	आवृत्ति
12–13	11 5	1
10–11	9 5	2
8– 9	7 5	3
6– 7	5 5	2
4– 5	3 5	1

आयत चित्र बनाने की विधि

(1) भुजाक्ष पर वर्गान्तर अंकित करने के लिए सुविधानुसार पैमाना माना जाता है। यहां 1 cm = 1 प्राप्तांक माना गया है।

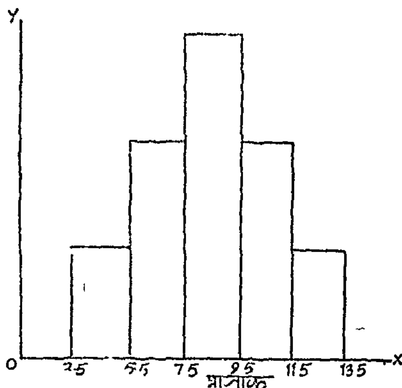
(2) वर्गान्तर की निम्न सीमाएं ज्ञात करना, जैसे 12–13 में निम्न सीमा 11 5, 10–11 में निम्न सीमा 9 5 आदि।

(3) भुजाक्ष पर वर्गान्तरों को अंकित करने के लिए निम्न सीमाएं लिखना।

(4) कोटि अक्ष पर आवृत्ति के अनुसार पैमाना मानना। यहां अधिकतम आवृत्ति 3 है अतः 1 आवृत्ति = 4 cm पैमाना लिया गया।

(5) आवृत्ति को कोटि-अक्ष पर अंकित करना।

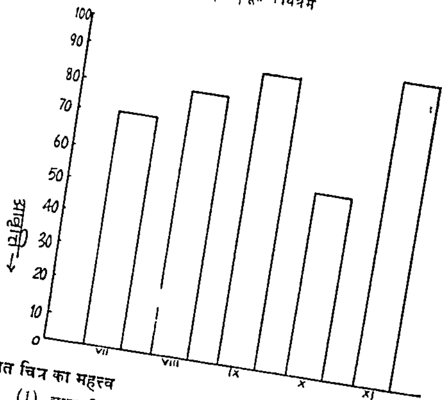
(6) आयत चित्र बनाने के लिए आवृत्ति तथा वर्गान्तर को मिलाना एवं अलग अलग आयत बनाना।



कुछ सूचनाएँ एसी भी होती है जिनमे वर्गान्तर नही होते। उदाहरण निम्नानुसार है

कक्षा	छात्रों की उपस्थिति का प्रतिशत
7	70
8	80
9	90
10	60
11	95

इस प्रकार का आयत चित्र बनाना और अधिक सरल है। वर्गान्तर के स्थान पर कक्षाओं को भुजाक्ष पर तथा कोटि अक्ष पर प्रतिशत अंकित कर यह आयत चित्र अग्रांकित प्रकार से बनाया जा सकता है—



आयत चित्र का महत्त्व

(1) आयत चित्र द्वारा आकड़ो का प्रदर्शन आसानी से किया जा सकता है।

(2) इसमे वर्गान्तर का महत्त्व बढ़ता है तथा इसमे आवृत्तियो का व्यक्तिगत तुलनात्मक अध्ययन शीघ्रता से कर सकता है।

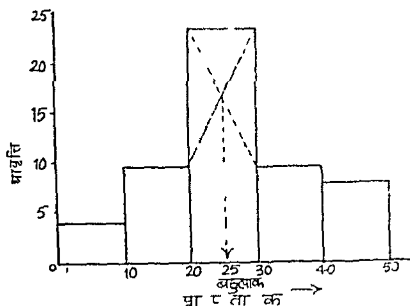
(3) आयत चित्र की सहायता से बहुलाक के परिकलित मूल्य की जाच की जा सकती है।

उदाहरण—निम्न सारिणी मे विद्यार्थियो के प्राप्ताक दिये हुए है

वर्गान्तर	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
आवृत्ति	3	8	24	8	7

बहुलांक का परिकलन कर आयत-चित्र में इसकी स्थिति दर्शाये। सूत्र द्वारा गणना —

आयत चित्र द्वारा बहुलांक

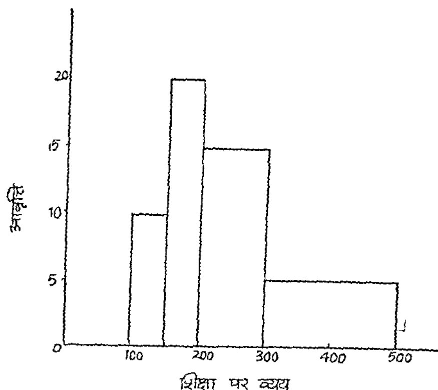


उक्त आयत चित्र में यह स्पष्ट है कि रेखा कग और खघ को मिलाने पर ये एक दूसरे को च बिन्दु पर काटती हैं। च से एक रेखा सीधी नीचे की ओर खींचने पर भुजाक्ष पर यह य बिन्दु पर मिलती है। बिन्दु य बहुलांक है। उपरोक्त चित्र में इसका मान 25 है जो कि परिगणित मान के बराबर है।

असमान वर्गों का आयत चित्र बनाना

कभी कभी ऐसे भी वर्गान्तर देखने को मिलते हैं जो कि आपस में बराबर नहीं होते हैं। इनमें कुछ वर्गान्तर बड़े तथा कुछ छोटे भी हो सकते हैं। भुजाक्ष पर बड़े वर्गान्तर के लिए उसी अनुपात में अधिक चौड़ा आयत तथा छोटे होने की स्थिति में कम चौड़ा आयत बनाने से इस प्रकार का आयत चित्र बनाया जा सकता है। यह चित्र निम्न प्रकार से बनाया जा सकता है—

प्रति बालक शिक्षा पर व्यय	100–150	150–200	200–300	300–500
आवृत्ति	10	20	15	5



उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि वर्गान्तर 100–150 के आयत की चौड़ाई कम तथा वर्गान्तर 300–500 के आयत की चौड़ाई अधिक है।

(3) बारम्बारता बहुभुज

बारम्बारता-बहुभुज आयत चित्र का सरलीकृत रूप है। यह वक्र वर्गान्तरों के मध्य बिन्दुओं तथा उनकी आवृत्ति के मध्य खींचा जाता है। किसी दी गई श्रेणी के वर्गान्तरों को भुजाक्ष पर तथा आवृत्तियों को कोटि पर अंकित कर इनसे बने आयतों के मध्य बिन्दुओं को आपस में मिला दिया जाता है। इस प्रकार बने रेखाचित्र को बारम्बारता बहुभुज कहते हैं।

बारम्बारता बहुभुज के निर्माण के चरण—

(1) भुजाक्ष पर वर्गान्तर तथा कोटि अक्ष पर आवृत्ति अंकित करना।

(2) आयत-चित्र की रचना करना एवं मध्य-बिन्दु अंकित करना।

(3) प्रारम्भ तथा अन्तिम बिन्दु के क्रमशः पीछे तथा आगे के मध्य बिन्दु भुजाक्ष पर अंकित करना।

(4) मध्य बिन्दुओं को मिलाना।

उदाहरण

वर्गान्तर	5–9	10–14	15–19	20–24	25–29	30–34	35–39	40–44	45–49
आवृत्ति	7	7	6	12	7	5	3	9	3

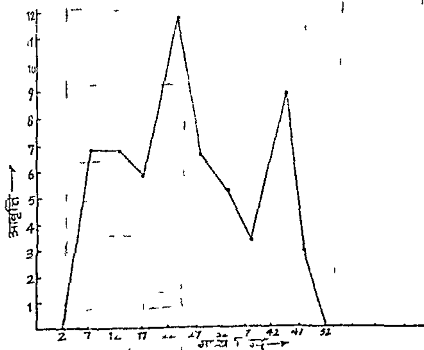
मध्य बिन्दु निकालने के लिए निम्न अंक तथा उच्च अंक को जोड़ कर दो का भाग दे दिया जाता है जैसे वर्गान्तर 5–9 का मध्य बिन्दु $\frac{5+9}{2} = 7$, वर्गान्तर 10–14 का मध्य बिन्दु $\frac{10+14}{2} = 12$ आदि। वर्गान्तरों के मध्य बिन्दु निम्नांकित प्राप्त हुए

वर्गान्तर	5–9	10–14	15–19	20–24	25–29	30–34	35–39	40–44	45–49
मध्य बिन्दु	7	12	17	22	27	32	37	42	47
आवृत्ति	7	7	6	12	7	5	3	9	3

वारम्बारता वहुभुज बनाने के लिए सवप्रथम भुजाक्ष पर वर्गान्तर तथा कोटि-अक्ष पर आवृत्तिया का अंकित करेंगे। इनके उपरान्त वर्गान्तर के मध्य बिन्दु के निशान भुजाक्ष पर लगा देंगे। कोटि अक्ष पर भी उचित पैमाना मान कर आवृत्तियां अंकित कर दी जायेगी।

बारम्बारता वहुभुज बनाने के लिए भुजाक्ष पर पहला बिन्दु काल्पनिक वर्गान्तर 0–4 दिया गया वर्गान्तर से पूर्व का लेंगे तथा इसका मध्य-बिन्दु 2 भुजाक्ष पर अंकित करेंगे। फिर वर्गान्तर 5-9 का मध्य बिन्दु 7 को इसकी आवृत्ति 7 से मिलान कर बिन्दु "क" प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार वर्गान्तर 10–14 का मध्य बिन्दु 15 को आवृत्ति 7 से मिलान कर अंकित करेंगे। चित्र में यह बिन्दु "ख" है।

इसी तरह अन्य वर्गान्तरों का उनकी दी गई आवृत्ति के साथ मिलान कर अन्य बिन्दु अंकित किये गये। अन्त में 50–54 का काल्पनिक वर्गान्तर लेकर उसके मध्य बिन्दु 52 को भुजाक्ष पर अंकित किया गया। इन सब बिन्दुओं को मिलाया गया।



बारम्बारता वहुभुज तथा आयत चित्र की तुलना

वारम्बारता-वहुभुज आयत चित्र में वर्गान्तरों के मध्य बिन्दुओं को मिलाने से प्राप्त होता है, इस दृष्टि से दोनों में काफी समानता है। इन दोनों चित्रों से

प्र॰ता के वितरण के बार म जानकारी प्राप्त होती है। यदि कोई परख बहुत सरल है तो उसम अधिकतर छात्रा के प्राप्तांक उच्च स्तर के होगे। यदि परख छात्रा की योग्यतानुसार हुई तो अको का वितरण सममित होगा। यदि परख कठिन है तो अधिकतर छात्रा के कम अक आयेगे। यह सब जानकारी बारम्बारता बहुभुज तथा आयत-चित्र के देखने मात्र स ही प्राप्त की जा सकती है।

दो या इससे अधिक कक्षाओ के छात्रा की शैक्षिक तुलना करने के लिए बारम्बारता-बहुभुज अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। एक ही चित्र म अलग-अलग कक्षाओ के अलग-अलग बारम्बारता-बहुभुज खीचे जा सकते है और इनसे कक्षाओ के स्तरो का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार की तुलना आयत चित्र द्वारा सभव नही क्योकि इसम एक ही चित्र म कई आयत बनाने से चित्र बडा बनेगा जिससे किसी निश्चित नतीजे पर पहुचना सभव नही होगा। परन्तु जहा बारम्बारता के सही प्रतिनिधित्व का प्रश्न है आयत चित्र बारम्बारता-बहुभुज की तुलना म अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार, साराशत यह कहा जा सकता है कि बारम्बारता वितरण के प्रदशन के लिए चित्र तथा दो बारम्बारता वितरणो मे परस्पर तुलना करने के लिए बारम्बारता-बहुभुज अधिक उपयुक्त रहेगा।

(4) सचयी-आवृत्ति वक्र अथवा तोरण

सचयी आवृत्ति-वक्र को बनाने स पूर्व सचयी आवृत्तिया ज्ञात की जाती है। इन सचयी आवृत्तियो तथा इनसे सम्बन्धित चरो को जब रेखाचित्र पर अकित कर कोई वक्र प्राप्त करते है, उसे सचयी-आवृत्ति वक्र कहते है। इसके लिए वर्गान्तरो के ऊपर सीमाओ को भुजाक्ष पर तथा सचयी आवृत्तिया को कोटि अक्ष पर अकित कर यह वक्र बनाया जाता है। इस वक्र को 'तोरण' भी कहते है। चूकि आवृत्ति को सामान्यत ऊपरी सीमाओ के बढते क्रम म निकाला जाता है अत इसकी आवृत्ति अक्सर अग्रेजी के एस शक्ल की आती है। सचयी आवृत्ति-वक्र को बनाने के लिए निम्न काय करने पडते है

(1) प्रत्यक वर्गान्तर की उच्च सीमा ज्ञात करना।

(2) सचयी आवृत्ति ज्ञात करना।

(3) भुजाक्ष पर वर्गान्तरो की उच्च सीमाओ को अकित करना।

(4) कोटि-अक्ष पर सचयी आवृत्ति अकित करना।

(5) उच्च सीमाओ तथा सचयी आवृत्ति का रेखाचित्र खीचना।

हम सचयी-बारम्बारता-वक्र अग्राकित उदाहरण स अधिक स्पष्ट हो सकेगा

उदाहरण

वर्गान्तर	आवृत्ति	सचयी-आवृत्ति	उच्च सीमा
90–99	2	50	99 5
80–89	2	48	89 5
70–79	3	46	79 5
60–69	6	43	69 5
50–59	10	37	59 5
40–49	12	27	49 5
30–39	7	15	39 5
20–29	4	8	29 5
10–19	2	4	19 5
0– 9	2	2	9 5

उपरोक्त उदाहरण में सर्वप्रथम वर्गान्तरों की उच्च सीमा ज्ञात की गई है। वर्गान्तर 90–99 की उच्च सीमा 99 5, वर्गान्तर 80 89 की उच्च सीमा 89 5, वर्गान्तर 70–79 की उच्च सीमा 79.5 आदि। ये सब उच्च सीमाएं प्रत्येक वर्गान्तर के सम्मुख लिख दी गई हैं।

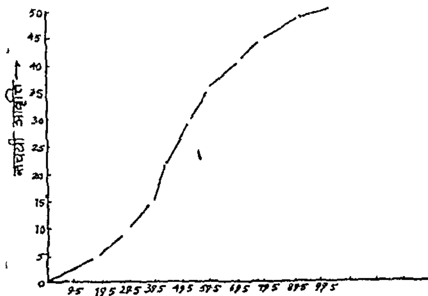
सचयी आवृत्ति उच्च सीमा के मूल्य के बढ़ते क्रम में ज्ञात की जाती है। उच्च सीमाओं में से सबसे कम 9 5 तथा सबसे अधिक 99 5 है। अर्थात् यह वर्गान्तर 0 9 से 90 99 की ओर बढ़ रही है। अतः सचयी आवृत्ति का प्रारम्भ वर्गान्तर 0 9 से किया गया है। इस वर्गान्तर की आवृत्ति को, जो कि 2 है, सचयी-आवृत्ति के कालम में ज्यों का त्यों लिख दिया गया है। आगे की सचयी आवृत्ति अगले वर्गान्तर की आवृत्ति को जोड़ कर लिखी गई है। जैसे 10-19 में सचयी-आवृत्ति = वर्गान्तर 0 9 की सचयी-आवृत्ति तथा वर्गान्तर 10 19 की आवृत्ति का योग–2 + 2 = 4

इसी प्रकार—

वर्गान्तर 50–59 की स[illegible] = वर्ग[illegible] की सचयी [illegible] 40–59 आवृ[illegible]

वर्गान्त[illegible] सचयी [illegible]

सचयी-आवृत्ति को ज्ञात करने के उपरान्त इन्हें उचित पैमाना मान कर कोटि अक्ष (OY) पर अंकित करते है तथा उच्च सीमाओं को पैमाना मान कर भुजाक्ष (OX) पर अंकित करते है। इन सबका रेखाचित्र खींच दिया जाता है।



चित्र को बनाते समय उच्च सीमा 9.5 को सचयी आवृत्ति 2 से, 19.5 को सचयी आवृत्ति 4 से, 29.5 को सचयी आवृत्ति 8 से आदि, रेखाचित्र पर अंकित कर रेखाचित्र बनाया गया है। 9.5 को निम्न सीमा शून्य से मिला दिया गया है।

कभी कभी वर्गान्तर के स्थान पर केवल पद या राशि दी हुई होती है। इसके लिए सचयी आवृत्ति-वक्र भी ऊपर बताये अनुसार विधि का प्रयोग कर बनाया जा सकता है। केवल अन्तर यह है कि वर्गान्तर में उच्च सीमा ली जाती है जबकि ऐसे उदाहरणों में उच्च सीमा के स्थान पर संबंधित पद या राशि को ले लिया जाता है।

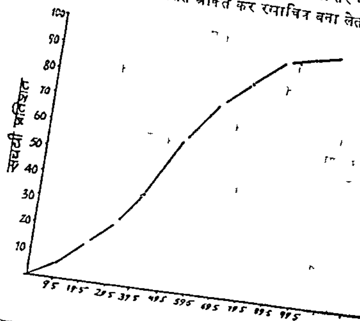
शतमक वक्र

सचयी आवृत्ति को प्रतिशत में बदल कर जब सचयी-आवृत्ति-वक्र हम खींचते है तो इस वक्र को "शतमक वक्र" कहते है।

उदाहरण

वर्गान्तर	आवृत्ति	सचयी-आवृत्ति	सचयी प्रतिशत	उच्च सीमा
90–99	1	50	100	99 5
80–89	2	49	98	89 5
70–79	3	47	94	79 5
60–69	6	44	88	69 5
50–59	8	38	76	59 5
40–49	10	30	60	49 5
30–39	8	20	40	39 5
20–29	5	12	42	29 5
10–19	4	7	14	19 5
0– 9	3	3	6	9 5

शतमक-वक्र बनाने के लिए भुजाक्ष पर वर्गान्तर की उच्च सीमाएं तथा कोटि अक्ष पर सचयी प्रतिशत अंकित कर रेखाचित्र बना लेते है।



शतमक वक्र के द्वारा माध्य मूल्य एव चतुर्थांश आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

बिन्दु रेखीय प्रदर्शन के गुण

(1) इसके द्वारा दो या इससे अधिक वक्रा का सरलता स तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(2) बडी सारिणिया की अपेक्षा ग्राफ पपर पर खाची गई रेखाएँ मस्तिष्क को शीघ्र प्रभावित करती है।

(3) इसके द्वारा बहुलाक तथा माध्य को आसानी स ज्ञात किया जा सकता है।

(4) इन रेखाचित्रा स दो या अधिक श्रेणिया क मध्य सम्बन्ध ज्ञात किया जा सकता है।

बिन्दु-रेखीय प्रदर्शन स प्रभावित होकर काल्विन एफ स्मिड[1] (Calvin F Schmid) लिखते हैं कि चार्ट और बिन्दु रेखीय चित्र एकदम लाभप्रद और लचीले माध्यम है जो सास्यिकी तथ्या को सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली रूप से प्रदर्शित करते है ताकि मूल्यो और सम्बन्धा मे तुलना की जा सके। साख्यिकीय आका का बिन्दु-रेखीय प्रदर्शन अन्य प्रकार के प्रदर्शना स उत्तम माना जाता है।

बिन्दु रेखीय प्रदर्शन की सीमा

बिन्दु रेखीय प्रदर्शन निम्न परिस्थितिया म उचित नही होगा

(1) जब दिये गय चर मूल्य एकदम अनियमित हो, तब एसी स्थिति म इन मूल्या को भुजाक्ष पर अकित किया जाना सभव न होगा।

(2) बिन्दु रेखीय प्रदर्शन उस परिस्थिति म भी नही किया जाना चाहिए जब अपेक्षाकृत कम मूल्या को अकित किया जाना हो।

उपरोक्त सीमा के होते हुए भी गणितीय दृष्टि से बिन्दु रेखीय प्रदर्शन चित्रा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि कुछ विशिष्ट रेखाचित्र जस शतमक, तोरण आदि की रचना, चित्रा की तुलना म कठिन है तथा इनक बनान म गणितीय ज्ञान की आवश्यकता होती है, फिर भी य आवृत्ति प्रदर्शन के लिए विशष रूप स उपयुक्त हैं।

साराश

शैक्षिक तथ्या एव सूचनाआ क प्रभावी प्रदर्शन के लिए चित्रा को एक सशक्त माध्यम माना गया है। चित्र को अन्य सब कलाआ म श्रेष्ठ माना गया है। ब्रूनर न तो यहा तक कहा है कि चित्र म असीमित शब्दा को धारण करन की शक्ति होती है। अत एक अध्यापक को यह ज्ञान होना आवश्यक है कि चित्रा के माध्यम स किस प्रकार शक्षिक समको का प्रदर्शित किया जावे।

शैक्षिक चित्र अथवा प्रदत्ता का चित्रमय प्रदर्शन सामान्यत चार प्रकार स अर्थात पाठ चित्र आयत चित्र, बारम्बारता-बहुभुज एव तोरण द्वारा किया जा

---

1 Calvin F Schmid Hand Book of Graphic Presentation

सकता है। पाई चित्र म ऐस शैक्षिक आकडा का प्रदशन किया जाता है, जिनकी सूचनाएँ प्रतिशत म उपलब्ध हा। इन प्रतिशता को डिग्री म बदल कर पाई चित्र वना लेते हैं।

आयत चित्र म भुजाक्ष एव काटि-अक्ष का उपयोग करते हैं जिसम, सामान्यत कोटि अक्ष पर आवृत्ति तथा भुजाक्ष पर शैक्षिक समक लेत है। चूँकि इसम अनेक आयत वनाय जाते है अत इस आयत चित्र क नाम स जाना जाता ह। वडा आयत अधिक आवृत्ति का सूचक है।

वारम्वारता-वहुभुज की रचना रेखाचित्र की तरह ही की जाती है। इसम भुजाक्ष पर मध्य विन्दु तथा कोटि-अक्ष पर आवृत्ति अक लेकर रेखाचित्र वना दिया जाता ह। सचयी आवृत्ति-वक्र अथवा तोरण का निर्माण सचयी-आवृत्ति तथा वर्गान्तर की उच्च सीमा के मध्य रेखाचित्र वना कर तैयार की जाती है। इसका आकार, यदि वितरण सममित हो ता अग्रेजी के एस के जैसा हाता है।

शैक्षिक दृष्टि से विन्दु-रेखीय प्रदशन महत्त्वपूर्ण ह। इनस शैक्षिक समका की तुलना आसानी स की जा सकती है। वहुलाक तथा मध्याक आसानी स ज्ञात किया जा सकता है तथा विभिन्न समका के मध्य सम्बन्ध ज्ञात किये जा सकते है।

अध्याय 15

अभिक्रमित अनुदेशन

(Programmed Instruction)

जनसख्या म असाधारण वद्धि स अब कक्षा म और अधिक विद्यार्थी होगे अर्थात शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात बढेगा । एक आदश शिक्षण-स्थिति म शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात 1 1 माना गया ह जबकि अब यह सभावना ह कि जनसख्या क बढन स यह अनुपात 1 60 या इसस भी अधिक हो । अधिक सख्या म बालक-बालिकाओ को पढान की माग-पूर्ति केवल मात्र भवन-निर्माण तथा अधिक सख्या म शिक्षको को प्रशिक्षण प्रदान कर पूरी नही की जा सकती । विज्ञान एव अन्य क्षत्रो म हुए अनुसधान कार्यो के फलस्वरूप पाठ्यक्रम भी दिन-प्रति दिन अधिक विस्तृत होता जा रहा ह । पाठयक्रम के द्वारा दिय जान वाले ज्ञान को यदि अध्यापक ही अकेला देना चाहेगा तो यह उसके लिए सभव न होगा । इसका कुछ भाग विद्यार्थी को स्वाध्याय स पूरा करना होगा । इस प्रकार बढती हुई जनसख्या तथा बढता हुआ ज्ञान दोनो अध्यापक क सम्मुख अब एक चुनौती के रूप म उभर रहे है ।

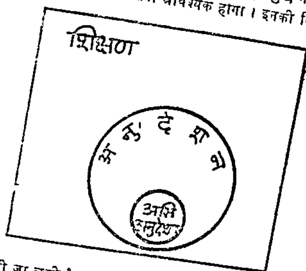
रेडियो तथा दूरदशन कुछ सीमा तक अध्यापक की इस कठिनाई को सुलभाने का प्रयास कर रहे है । इनके द्वारा पाठ प्रदशन किय जाते हैं जो कि काफी रोचक होत है परन्तु इसकी एक सबस बडी कमी यह हे कि बालक केवल एक मूक दशक ही है । वास्तविक शिक्षण परिस्थितियो म शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य अन्त क्रिया होना आवश्यक ह अर्थात अध्यापक प्रश्न पूछ, छात्र उत्तर द । अध्यापक छात्र के उत्तर म यदि आवश्यक हो तो सशोधन या स्वीकृति/अस्वीकृति प्रदान कर । छात्र भी अपनी शकाओ का निवारण कर आदि । समूह शिक्षण म जहा कि एक अध्यापक साठ स सत्तर विद्यार्थियो को एक साथ पढाता है, इतना कुछ प्रत्येक विद्यार्थी क लिए किया जाना सभव नही ह । दूसरी ओर जब बालक रेडियो या दूरदशन की सहायता स पढता ह तो भी शिक्षक-शिक्षार्थी अनुक्रिया सभव नही ह । इस प्रकार शिक्षण म उत्पन्न हुई समस्याओ का सुलभान क लिए तथा शिक्षा म इसी अनुरूप परिवतन लाने के लिए पिछली शताब्दी स ही प्रयास होत रहे है । शिक्षण की कमियो को दर्शात हुए बी एफ स्किनर (B F

Skinner) लिखत है कि "आज आयाए दिन प्रतिदिन केवल मात्र मूक दर्शक तथा ज्ञान को एकत्र करने वाले बनते जा रहे है।"1

शिक्षण का सही रूप न अर्थ यह है कि बालक को प्रेरित कर नवीन व्यवहारा को अर्जित करने म सहायता प्रदान करना। यह सहायता सामान्यत अध्यापक द्वारा प्रदान की जाती है। अब अध्यापक पर काय भार (Work load) बढ गया है। अत इस काय को शिक्षक के स्थान पर विशेष प्रकार से निर्मित शिक्षण-सामग्री को कुछ अशा तक सौंपा जा रहा है, यह विशेष प्रकार की सामग्री जिसम बालक स्वय की सीखने की गति स सीखता है, उस स्वय अध्ययन करना होता है तथा उसके उत्तरा की जाच तुरन्त की जाती है, अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction) है।

अभिक्रमित-अनुदेशन का अर्थ एव परिभाषाए
(Meaning and Definitions of Programmed Instruction)

अभिक्रमित अनुदेशन के अर्थ को समझने न पूर्व कुछ महत्त्वपूर्ण प्रत्यय जस शिक्षण व अनुदशन को भी समझना आवश्यक होगा। इनकी विस्तृत व्याख्या पूर्व



के अध्याया म की जा चुकी है यहा तो इतना ही पर्याप्त है कि शिक्षण एक वृहत् प्रत्यय है जिसम अनुदेशन निहित है। इस अनुदेशन को जब अधिगम के सिद्धान्तो पर आधारित कर पूर्व नियोजित कर लिया जाता है कि कार कौन स प्रश्न पूछे

1 Skinner B F Teaching Machines Science Vol 128 October 1958 P 959 977

जाते है, कौन-कौन सी क्रियाए करानी हैं तथा बालक जब इन सबको अपनी सीखने की रफ्तार से सीखने को स्वतन्त्र होता है, यह अधिक्रमित अनुदेशन कहलाता है। चित्र मे यही तथ्य स्पष्ट हो रहा है कि शिक्षण के ही भाग अनुदेशन तथा अभिक्रमित-अनुदेशन है। यहा यह बात स्पष्ट करना उचित होगा कि पाठ-योजना मे भी अध्यापक यह पूर्व निश्चित करता है कि उसे कौन-कौन से प्रश्न करने है तथा कौन सी छात्र अध्यापक-अनुक्रियाए करानी है, दोनो मे निम्न अन्तर हैं—

(1) पाठ-योजना से अध्यापक समूह शिक्षण करता है जबकि अभिक्रमित-अनुदेशन मे हर बालक अपनी अपनी सीखने की रफ्तार से सीखता है। कोई बालक सीखने मे तेज गति रखता है तो वह चौथे पाठ को पढ रहा होगा, उसी समय उसी कक्षा मे धीमी गति से सीखने वाला बालक पहले पाठ का ही अध्ययन कर रहा होगा। पाठ-योजना मे सभी बालक चाहे जो भी उनकी सीखने की गति हो, एक रफ्तार से सीखने को बाध्य है।

(2) पाठ योजना अध्यापक की शिक्षण करने मे सहायता करती है। यह उसे बताती है कि कौन सी शैक्षिक-क्रिया कब करनी है जबकि अभिक्रमित-अनुदेशन पर आधारित सामग्री से बालक स्वय सीखता है, उसे सीखने मे अध्यापक की कोई विशेष आवश्यकता नही पडती है।

इस प्रकार पाठ-योजना को अभिक्रमित अनुदेशन नही कहा जा सकता है।

एडगर डेल[1] (Edgar Dale) ने कहा है कि "शिक्षण एक वृहत् परन्तु पूर्णत परिभाषित शब्द नही है, अनुदेशन मे विशिष्ट उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित, नियन्त्रित एव क्रमबद्ध प्रयत्न किए जाते है जबकि अभिक्रमित-अनुदेशन इसका एक लघु रूप है।"

अभिक्रमित अनुदेशन सक्रिय अनुबंध अनुक्रिया सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory) पर आधारित, एक ऐसी प्रविधि है जिसमे निम्नलिखित विशेषताए होती है—

(1) अनुदेशन-सामग्री को एक तार्किक क्रम (Logical sequence) मे विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

(2) छात्र की सही अनुक्रिया को पुनर्बलित (Reinforce) किया जाता है।

(3) प्राप्य उद्देश्यो को व्यावहारिक रूप मे लिया जाता है।

1 Dale Edgar Audio Visual Methods in Teaching Holt Rinehart and Winston

(4) अनुदेशन सामग्री का स्तर आसान होता है ताकि कमजोर से कमजोर छात्र भी इसे समझ सके।

(5) पाठ्य-वस्तु छोटे छोटे पदों में छात्र के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

(6) छात्र स्वयं की सीखने की गति से विषय वस्तु को सीख सकता है।

(7) इसमें ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्येक छात्र को अनुक्रिया करनी पड़ती है जिससे वह सदैव क्रियाशील रहता है।

(8) अभिक्रमित अनुदेशन से छात्रों की कमजोरियों का पता लगा कर उनका उपचारात्मक शिक्षण किया जा सकता है।

अभिक्रमित अनुदेशन का अर्थ स्पष्ट करते हुए लुम्सडेन[1] (Lumsdaine) लिखते है कि "यह एक ऐसी प्रविधि है जो इस बात पर बल प्रदान करती है कि प्रत्येक विद्यार्थी जो इस प्रयोग में लाता है, सीखता है। यदि विद्यार्थी वही असफल होता है तो इसकी भूल अभिक्रमित-अनुदेशन की होती है न कि बालक की। सम्पथ, पन्निरेल्वम और सनथानम[2] (Sampalth Pennirselvam and Santhanam) ने अभिक्रमित अनुदेशन को नियन्त्रित, सावधानीपूर्वक व्यवस्थित और स्पष्ट अधिगम अनुभवों की संज्ञा दी है। इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन एक प्रविधि है जिसमें अधिगम-अनुभवों को तार्किक क्रम में व्यवस्थित कर विद्यार्थी को स्वयं की सीखने की गति से पढ़ने तथा सीखे ज्ञान की प्रतिपुष्टि करने का प्रावधान होता है। इसको समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक है।

अभिक्रमित अनुदेशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Programmed Instruction)

अभिक्रमित अनुदेशन का नामकरण संस्कार बी एफ स्किनर (B F Skinner) ने किया। स्किनर ने एक इस प्रकार की शिक्षण सामग्री तैयार की जिसकी सहायता से बालक स्वयं विषय वस्तु को प्रभावी रूप से सीख सकता था। उनका यह तर्क था कि चूँकि यह शिक्षण सामग्री पूर्व नियोजित (Pre Programmed) है तथा इसकी सहायता से प्रभावी रूप से अनुदेशन (Instruction) प्रदान किया जाना सम्भव है अतः इन दोनों शब्दों को संयुक्त कर उन्होंने इसे 'अभिक्रमित अनुदेशन' (Programmed Instruction) का नाम दे दिया।

1 Lumsdaine Arthar A Educational Technology Programmed Learning and Instructional Science Ed E R Hilgard Part I of 63rd Year Book N S S E Chicago University Press P 371 401

2 Sampath K Panniselvaro A and Santhanam S Introduction to Educational Technology New Delhi Sterling Publishers Private Ltd 1984 P 219

प्रश्न उठता है कि क्या अभिक्रमित-अनुदेशन केवल बी एफ स्किनर की खोज का ही परिणाम है या यह शिक्षण-पद्धति किसी अन्य रूप में पूर्व में भी था। अधिकांश विद्वानों का मत है कि अभिक्रमित-अनुदेशन का प्रत्यय इतना नया नहीं है जैसा कि कुछ विद्वान् इस स्किनर के कार्यों में जोड़ कर बताया करते है वास्तव में तो यह प्रत्यय बहुत अधिक पुराना है। प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात प्रश्नोत्तर विधि से अपने शिष्यों को पढ़ाया करते थे। मार्ग में चलते-चलते शिष्यों से प्रकरण से सम्बन्धित अनेक प्रश्न करना, प्रश्नों के उत्तरों को सुनकर इनका सही गलत होने का ज्ञान देना आदि क्रियाएँ उनके द्वारा की जाती थी। अभिक्रमित अनुदेशन में भी यह सब कुछ होता है। विद्यार्थी का फ्रेम या पद में छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते है, वह उनके उत्तर देता है। प्रश्नों का क्रम इस प्रकार होता है कि बहुत सारे प्रश्नों का उत्तर देते देते वह स्वयं ही किसी प्रत्यय को समझ लेता है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि अभिक्रमित-अनुदेशन का प्रारम्भ सुकरात के समय से हुआ है। कुलकर्णी एवं कपाडिया[1] (Kulkarni and Kapadia) कहते हैं "यद्यपि अभिक्रमित-अनुदेशन का नाम पुराना नहीं है परन्तु इसका प्रत्यय सुकरात के समय का है। सुकरात ने एक गुलाम बालक को पाइथागोरस प्रमेय सिद्ध करना चित्रों की सहायता से लगभग इसी पद्धति से सिखाया था।"

अभिक्रमित-अनुदेशन का प्रारम्भ बी एफ स्किनर[2] के 1954 में एक महत्त्वपूर्ण शोध पत्र "अधिगम का विज्ञान तथा शिक्षण की कला" (The Science of Learning and Art of Teaching) में हुआ जिसमें उसने एक नवीन प्रावधि को जन्म दिया तथा उसका नाम अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction) रखा। परन्तु कुछ प्रयत्न पूर्व में भी हुए जो कि अभिक्रमित अनुदेशन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते है।

सन् 1912 में थार्नडाइक (E L Thorndike) ने एक ऐसी शिक्षण तकनीकी की कल्पना की थी जो कि अभिक्रमित-अनुदेशन से मेल खाती है।

सन 1920 में सिडनी एल प्रेसे (Sidney L Pressey) ने कमजोर छात्रों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों का पता लगाने के लिए एक ऐसी मशीन को विकसित किया जिसका प्रयोग शिक्षण एवं परीक्षण (Teaching and Testing) दोनों के लिए किया जाता था। प्रेसे ने कुछ प्रयोग ओहियो स्टेट

1 Kulkarni S S and Kapadia G G (1974) Programmed Learning in Buch S B A Survey in Research in Education Case Baroda P 304— 08

2 Skinner B F The Science of Learning and Art of Teaching Harvard Educational Review 1954, Vol 24

(4) अनुदेशन सामग्री का स्तर आसान होता है ताकि कमजोर से कमजोर छात्र भी इसे समझ सकें।

(5) पाठ्य वस्तु छोटे छोटे पदों में छात्र के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

(6) छात्र स्वयं की सीखने की गति से विषय वस्तु को सीख सकता है।

(7) इसमें ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्येक छात्र को अनुक्रिया करनी पड़ती है जिससे वह सदैव क्रियाशील रहता है।

(8) अभिक्रमित अनुदेशन से छात्रों की कमजोरियों का पता लगा कर उनका उपचारात्मक शिक्षण किया जा सकता है।

अभिक्रमित अनुदेशन का अर्थ स्पष्ट करते हुए लुम्सडेन[1] (Lumsdaine) लिखते है कि यह एक ऐसी प्रविधि है जो इस बात पर बल प्रदान करती है कि प्रत्येक विद्यार्थी जो इस प्रयोग में लाता है, सीखता है। यदि विद्यार्थी वहाँ असफल होता है तो इसकी भूल अभिक्रमित-अनुदेशन की होती है न कि बालक की। सम्पथ, पन्निरसेल्वम और सन्थानम[2] (Sampath Pennirselvam and Santhanam) ने अभिक्रमित अनुदेशन को नियन्त्रित, सावधानीपूर्वक, व्यवस्थित और स्पष्ट अधिगम अनुभवों की संज्ञा दी है। इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन एक प्रविधि है जिसमें अधिगम-अनुभवों को तार्किक क्रम में व्यवस्थित कर विद्यार्थी को स्वयं की सीखने की गति से पढ़ने तथा सीखे ज्ञान की प्रतिपुष्टि करने का प्रावधान होता है। इसको समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक है।

अभिक्रमित अनुदेशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Programmed Instruction)

अभिक्रमित अनुदेशन का नामकरण संस्कार बी एफ स्किनर (B F Skinner) ने किया। स्किनर ने एक इस प्रकार की शिक्षण सामग्री तैयार की जिसकी सहायता से बालक स्वयं विषय-वस्तु को प्रभावी रूप से सीख सकता था। उनका यह तर्क था कि चूँकि यह शिक्षण सामग्री पूर्व नियोजित (Pre Programmed) है तथा इसकी सहायता से प्रभावी रूप से अनुदेशन (Instruction) अथवा पढ़ाया जाना सम्भव है अतः इन दोनों शब्दों को संयुक्त कर उन्होंने इसे "अभिक्रमित-अनुदेशन" (Programmed Instruction) का नाम दे दिया।

---

1 Lumsdaine Arthur A Educational Technology Programmed Learning and Instructional Science Ed E R Hilgard Part I of 63rd Year Book N S S E Chicago University Press P 371 401

2 Sampath K Panniselvam A and Santhanam S Introduction to Educational Technology New Delhi Sterling Publishers Private Ltd 1984 P 219

प्रश्न उठता है कि क्या अभिक्रमित-अनुदेशन केवल बी एफ स्किनर की खोज का ही परिणाम है या यह शिक्षण-पद्धति किसी अन्य रूप में पूर्व में भी थी। अधिकांश विद्वानों का मत है कि अभिक्रमित-अनुदेशन का प्रत्यय इतना नया नहीं है जैसा कि कुछ विद्वान् इसे स्किनर के कार्यों से जोड़कर बताया करते हैं वास्तव में तो यह प्रत्यय बहुत अधिक पुराना है। प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात प्रश्नोत्तर विधि से अपने शिष्यों को पढ़ाया करते थे। मार्ग में चलते-चलते शिष्यों से प्रकरण से सम्बन्धित प्रश्न प्रश्न करना, प्रश्नों के उत्तरों को सुनकर उनका सही गलत होने का ज्ञान देना आदि क्रियाएं उनके द्वारा की जाती थी। अभिक्रमित अनुदेशन में भी यह सब कुछ होता है। विद्यार्थी को फ्रेम या पद में छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते हैं, वह उनके उत्तर देता है। प्रश्नों का क्रम इस प्रकार होता है कि बहुत सारे प्रश्नों का उत्तर देते देते वह स्वयं ही किसी प्रत्यय को समझ लेता है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि अभिक्रमित अनुदेशन का प्रारम्भ सुकरात के समय से हुआ है। कुलकर्णी एवं कपाडिया[1] (Kulkarni and Kapadia) कहते हैं "यद्यपि अभिक्रमित-अनुदेशन का नाम पुराना नहीं है परन्तु इसका प्रत्यय सुकरात के समय का है। सुकरात ने एक गुलाम बालक को पाइथागोरस प्रमेय सिद्ध करना चित्रों की सहायता से लगभग इसी पद्धति से सिखाया था।"

अभिक्रमित-अनुदेशन का प्रारम्भ बी एफ स्किनर[2] के 1954 में एक महत्त्वपूर्ण शोध पत्र "अधिगम का विज्ञान तथा शिक्षण की कला (The Science of Learning and Art of Teaching) में हुआ जिसमें उसने एक नवीन प्रविधि को जन्म दिया तथा उसका नाम अभिक्रमित-अनुदेशन (Programmed Instruction) रखा। परन्तु कुछ प्रयत्न पूर्व में भी हुए जो कि अभिक्रमित अनुदेशन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

सन् 1912 में थार्नडाइक (E L Thorndike) ने एक ऐसी शिक्षण तकनीकी की कल्पना की थी जो कि अभिक्रमित अनुदेशन से मेल खाती है।

सन् 1920 में सिडनी एल प्रेसे (Sidney L Pressey) ने कमजोर छात्रों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों का पता लगाने के लिए एक ऐसी मशीन को विकसित किया जिसका प्रयोग शिक्षण एवं परीक्षण (Teaching and Testing) दोनों के लिए किया जाता था। प्रेसे ने कुछ प्रयोग ओहियो स्टेट

---

1 Kulkarni S S and Kapadia G G (1974) Programmed Learning in Buch S B A Survey in Research in Education Case Baroda P 304—08

2 Skinner B F The Science of Learning and Art of Teaching Harvard Educational Review 1954 Vol 24

विश्वविद्यालय म किए परन्तु धनाभाव के कारण उस य प्रयोग बीच म ही बन्द करने पड़े । उसन मशीन की सहायता स प्रश्नो को एक विशेष क्रम म रख कर छात्रो के समक्ष प्रस्तुत किए । छात्र प्रश्न क उत्तर देते थ जिनकी मशीन तत्काल जाच करती थी जिसस छात्र का अपने उत्तर के सही या गलत होने का बोध उसी समय हो जाता था । परन्तु वह इन प्रयोगो को व्यापक रूप से नही कर पाया । प्रेस क राय का मूल्याकन करते हुए लुम्सडेन[1] (Lumsdaine) लिखते है कि यद्यपि प्रेस द्वारा बनाई गई मशी। अनुदेशन का अपेक्षा परीक्षण पर अधिक बल देती था, परन्तु इनम मनोविज्ञान के सिद्धान्त जैसे विद्यार्थी का अधिगम क्रिया म सक्रिय भागीदार, उत्तरो की तत्काल जाच और स्वय की गति स सीखने का प्रथम बार कक्षा कक्ष म उपयोग किया गया ।

अभिक्रमित-अनुदेशन के विकास म सबसे महत्वपूर्ण योगदान वर्तमान शताब्दी के मध्य म बी एफ स्किनर[2] के प्रयोगो स हुआ । उसने अपने शोध-पत्र "हम शिक्षण मशीन क्या चाहिए ?" म लिखा है कि आधुनिक युग के जब रसोईघर पूर्ण रूप स मशीनो एव उपकरणो स सुसज्जित है तो फिर हमारे कक्षा-कक्ष क्यो नही ?

स्किनर ने अभिक्रमित अनुदेशन का निर्माण करने के लिए पाठ्यवस्तु का छोटे छोटे पदो म विभक्त किया तथा उनको एक तार्किक क्रम म व्यवस्थित किया । इस पाठ्यवस्तु का उसने छात्र के सम्मुख पदो म प्रस्तुत किया जिसे उसने फ्रेम का नाम दिया । इस फ्रेम म छात्र का कुछ पढने एव समझने को दिया जाता है तथा उसके अन्तर म एक प्रश्न पूछा जाता है, छात्र इस प्रश्न का उत्तर देने क लिए अनुक्रिया करता है तथा अपने उत्तर का मिलान करता है । प्रारम्भ म स्किनर न यह अनुदेशन मशीन के माध्यम से दिया परन्तु बाद म उसन यह पाया कि बिना मशीन के भी यह कार्य प्रभावी रूप से किया जा सकता ह अत मशीन के स्थान पर उसने पुस्तक का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया । स्किनर द्वारा प्रतिपादित अभिक्रमित अनुदेशन को रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन कहते है । एक उदाहरण अग्रांकित ह

---

1 Lumsdaine A A 'Educational Technology, Programmed Learning and Instructional Science In Hilgard E R (Ed) 63rd NSSE Year Book Chicago University press P 378

2 SKinner B F Why Do We Need Teaching Machines Harvard Educational Review Vol 31 1961 P 377 378

1	आप अमावस्या की रात्रि में जब आकाश साफ हो, चारों तरफ छोटे-छोटे टिमटिमाते कुछ देखते हो, इन्हें आप क्या कहते हैं ?
तारे 2	तारे दूर-दूर तक ब्रह्माण्ड में फैले हुए हैं। ये वास्तव में जलती हुई गैस का एक गोला है। सूर्य भी गैस का एक गोला है। क्या हम सूर्य को कह सकते हैं ?
तारा 3	आप जिस भूमि पर बैठे हैं इसे पृथ्वी कहते हैं पृथ्वी भी आकाश में घूम रही है क्या पृथ्वी भी तारा है ?
नहीं	पृथ्वी तारा नहीं है क्योंकि यह जलती गैस का गोला नहीं है।

उपरोक्त उदाहरण में तीन फ्रेम दिये गये हैं। फ्रेम संख्या 1 में विद्यार्थी को सर्वप्रथम तारे के बारे में कुछ सूचना दी गई है, फिर छात्र से प्रश्न पूछा गया है कि "चारों तरफ (आकाश में) छोटे छोटे टिमटिमाते कुछ देखते हो, इन्हें आप क्या कहते हैं ? छात्र अपने उत्तर को अलग से एक उत्तर-पुस्तिका में लिखता है तथा सही उत्तर जो कि इस फ्रेम के नीचे दिया है (तारे) से मिलान करता है। इस प्रकार प्रत्येक छात्र फ्रेम पढ़ता है, उत्तर लिखता है, उत्तर का मिलान करता है तथा अपने उत्तर के सही-गलत होने की जांच कर अगले फ्रेम को पढ़ता है। जैसी जिसकी पढ़ने की गति है वह उसी रफ्तार से आगे पढ़ता जाता है।

सन् 1960 में नारमन ए क्राउडर (Norman A Crowder) ने शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन (Branching Programmed Instruction) का प्रतिपादन किया है। इसमें प्रत्येक पद के अन्तर में एक प्रश्न पूछा जाता है जिसके बहुविकल्प उत्तर होते हैं। छात्र के गलत विकल्प चुनने पर "वह गलत क्यों है" के बारे में यह अभिक्रमित अनुदेशन बताता है। सही विकल्प चुनने पर वह अगले पद को सीखता है।

अभिक्रमित अनुदेशन की परिभाषा

(Definition of Programmed Instruction)

अभिक्रमित अनुदेशन को अग्रांकितानुसार परिभाषित किया गया है

(1) सुसन माकल (Su an Markle)

'यह स्वशिक्षण अनुदेशन का एक विधि है जिसमें बालक क्रियाशील रह कर स्वयं की सीखने की गति से सीखता है तथा उसके उत्तरों की तत्काल जाँच करता है।

(2) फ्रेड स्टोफेल (Fred Stofel)

ज्ञान के छोटे छोटे भागों को तार्किक क्रम में व्यवस्थित करने का अभिक्रमण तथा इसकी शिक्षण प्रक्रिया -प्रक्रिया को अभिक्रमित-अधिगम कहते हैं।

(3) कोरे[1] (Corey)

अभिक्रमित अनुदेशन एक एसी शिक्षण प्रक्रिया है जिसमें बालक के वातावरण को सुव्यवस्थित कर पूर्व निश्चित व्यवहारों को उसमें विकसित कर लिया जाता है।'

(4) एबिल (Ebel)

'अभिक्रमित अनुदेशन केवल मात्र स्वाध्याय हेतु निर्मित पाठ्यवस्तु ही नहीं है अपितु यह एक शिक्षण प्रविधि भी है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अभिक्रमित अनुदेशन एक प्रविधि है। भ्रमवश इसे शिक्षण सामग्री या पुस्तक के रूप में समझ लिया जाता है। वास्तव में पुस्तक, मशीन अथवा कम्प्यूटर तो साधन है जो कि अभिक्रमित अनुदेशन पर आधारित पाठ्यवस्तु को छात्र के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। ये स्वयं अभिक्रमित अनुदेशन नहीं कहलाये जा सकते हैं। अभिक्रमित अनुदेशन एक तकनीक है जिसकी सहायता से बालक स्वयं की सीखने की रफ्तार से सीखता है तथा उसके द्वारा सीखे गए ज्ञान की प्रतिपुष्टि भी करता जाता है। इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन पुस्तक तथा पाठ-योजना से भिन्न है। एक विशेष बात यह भी है कि पुस्तक बालक को विषय वस्तु से अन्तःक्रिया करने का पूर्ण अवसर प्रदान नहीं करती है जबकि अभिक्रमित अनुदेशन में बालक न केवल अनुक्रिया ही करता है अपितु उसके द्वारा की गई अनुक्रिया के सही अथवा गलत होने का ज्ञान उसे तत्काल दे दिया जाता है।

---

1 Corey S M The Nature of Instruction In P C Lange (Ed) 66th NSSE Year book Chicago The University Press 1967

2 Ebel R Programmed Instruction in Munroe (Ed) Encyclopedia of Educational Research London Mac Millan Co 1969 X 1017

अभिक्रमित अनुदेशन के आधारभूत सिद्धान्त
(Basic Principles Underlying Pogrammed Instruction)

अभिक्रमित अनुदेशन कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। ये नियम अनुदेशन प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं तथा इस प्रविधि के अधिक प्रभावशाली होने का आधार प्रदान करते हैं। पूर्व में हुए शोधकार्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये सिद्धान्त अधिगम को प्रभावित करते हैं जैसे यदि बालक अपनी स्वयं की गति से सीखता है तो उसका अधिगम अधिक प्रभावशाली होगा आदि। ये सीखने के मौलिक सिद्धान्त हैं चूँकि इनका उपयोग अभिक्रमित-अनुदेशन में किया गया है अत इन्हें अभिक्रमित अनुदेशन के आधारभूत सिद्धान्त भी कहा जाता है। ये निम्न प्रकार से हैं

(1) छोटे छोटे पदों का सिद्धान्त (Principle of Small Steps)
(2) क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principle of Activity)
(3) पुनर्बलन का सिद्धान्त (Principle of Reinforcement)
(4) स्वयं की गति से पठन का सिद्धान्त (Principle of Self Pacing)
(5) तार्किक क्रम का सिद्धान्त (Principle of Logical Sequence)।

(1) छोटे छोटे पदों का सिद्धान्त

अभिक्रमित अनुदेशन में विषय वस्तु को छोटे-छोटे पदों में बांट दिया जाता है। इन पदों का आकार इतना होता है कि कक्षा का कमजोर छात्र भी एक बार में प्रस्तुत विषय सामग्री को आसानी से समझ ले। पद में छात्र को प्रारम्भिक सूचनाएं दी जाती हैं ये सूचनाएं इतनी होनी चाहिए कि बालक एक बार पढ़ने में इसे समझ ले। यदि पद बड़े होंगे अर्थात् इनमें सूचनाएं एवं प्रत्यय अधिक होंगे तो छात्र इन्हें आसानी से नहीं समझ पायेगा। पद को कठिन समझ कर वह निरुत्साहित हो उठेगा तथा पढ़ना बन्द कर देगा। यदि पद छोटे होंगे तो उनमें दी गई सूचनाओं को वह आसानी से ग्रहण कर लेगा तथा उसके द्वारा हल किये गये प्रश्नों के उत्तर सही होंगे। इससे वह अधिक पद पढ़ने के लिये प्रेरित होगा। प्रश्न उठता है कि "पद" का आकार कितना हो ? मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि पद इतना ही बड़ा हो कि उसमें प्रस्तुत की गई विषय सामग्री को बालक आसानी से समझ कर ग्रहण कर सके। शोध-कार्यों के निष्कर्ष भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि छात्र छात्राएं विषय-वस्तु को छोटे छोटे पदों में सरलता से अध्ययन कर सीख लेते हैं।

(2) क्रियाशीलता का सिद्धान्त

यह एक सामान्य सी बात है कि जिस अधिगम-प्रक्रिया में छात्र क्रियाशील रहता है अर्थात् स्वयं करके सीखता है, उसे वह शीघ्रता से सीखता है।

अभिक्रमित अनुदेशन में प्रत्येक फ्रेम में बालक को रिक्त स्थान की पूर्ति करनी पड़ती है या प्रश्न का उत्तर लिखना पड़ता है। यदि बालक तत्पर न रहे तथा उसका ध्यान और कहीं हो तो वह इन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे सकेगा। ऐसी स्थिति में उसे अपना ध्यान विषय-वस्तु पर केन्द्रित कर क्रियाशील रहना पड़ता है। चूँकि वह स्वयं कार्य करके सीखता है तथा इससे उसे प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होते हैं अतः उसके द्वारा अर्जित ज्ञान स्थायी प्रकृति का होता है। अभिक्रमित अनुदेशन, इस प्रकार, क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित है।

(3) पुनर्बलन का सिद्धान्त

पुनर्बलन अनुक्रिया की सम्भावना में वृद्धि करता है। अभिक्रमित अनुदेशन में छात्र छात्राओं को प्रत्येक पद में प्रश्न के उत्तर देने पड़ते हैं, ये उत्तर सही हैं अथवा गलत, इसका ज्ञान उन्हें तत्काल प्राप्त हो जाता है। पद इस प्रकार बनाये जाते हैं कि प्रत्येक विद्यार्थी का उत्तर सही हो जाये। यदि कोई विद्यार्थी गलत उत्तर दे देता है तो यह विद्यार्थी की कमी न मानकर पद या फ्रेम की कमी मानी जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पद का उत्तर विद्यार्थी सही प्राप्त करता है। अपने उत्तर को सही पाकर उसका उत्साह बढ़ता है तथा वह और अधिक पढ़ने को प्रेरित होता है। इस प्रकार अभिक्रमित-अनुदेशन पुनर्बलन के सिद्धान्त पर आधारित है।

(4) स्वगति (Self Pacing) से सीखने का सिद्धान्त

एक कक्षा में भिन्न योग्यता के विद्यार्थी होते हैं। कोई शीघ्रता से पाठ्यवस्तु को समझ लेते हैं तो कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें समझने में अधिक समय लगता है। समूह शिक्षण में अध्यापक औसत गति से पढ़ाता है। इस गति के कारण कुशाग्र बुद्धि के छात्र प्रभावित होते हैं क्योंकि वे शीघ्र समझ लेते हैं तथा अगले शिक्षण बिन्दु तक कक्षा में निष्क्रिय बैठे रहते हैं जब कि यह औसत गति धीमी गति से सीखने वालों के लिए अधिक है। वे इस गति से सीखने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। एक आदर्श शिक्षण व्यवस्था वह है जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सीखने की गति से सीखे। समूह शिक्षण में यह सम्भव नहीं है। अभिक्रमित-अनुदेशन प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी गति से सीखने का अवसर प्रदान करता है। सभी विद्यार्थियों के पास अपनी-अपनी अभिक्रमित अनुदेशन-पुस्तिका होती है। शीघ्रता से समझने वाले इसे जल्दी समाप्त कर अन्य कार्य जैसे कक्षा कार्य, पुस्तकालय में पढ़ना आदि करने को स्वतन्त्र होते हैं जबकि धीमी गति से पढ़ने वाले विद्यार्थी अपनी रफ्तार से पढ़ सकते हैं।

इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन में स्वयं की गति से सीखने की व्यवस्था है। शिक्षण के समय अध्यापक उपस्थित रहता है तथा वह आवश्यकता पड़ने पर ही विद्यार्थियों की व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करता है। इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षक के भार को कम करता है।

(5) तार्किक क्रम का सिद्धांत

अभिक्रमित अनुदेशन स्वाध्याय पर आधारित है अत विषयवस्तु को शिक्षार्थी के सम्मुख किस क्रम म प्रस्तुत किया जावे इस सम्बन्ध म पूर्व म निर्णय ले लिया जाता ह तथा विषय-वस्तु का एक तार्किक क्रम म इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता ह जिसमे कि यह छात्र का आसानी से समझ म आ जाय। इसम शिक्षण सूत्र ज्ञात से अज्ञात की ओर, विशिष्ट से सामान्य की ओर आदि का उपयोग किया जाता है। यदि विषय-वस्तु तार्किक क्रम म नही प्रस्तुत की जायेगी तो छात्र अभिक्रमित-अनुदान के द्वारा उसे स्वय समझने म असमर्थ होगा तथा यह प्रविधि असफल हो जायगी।

अभिक्रमित अनुदेशन के प्रयुक्त प्रत्यय

अभिक्रमित-अनुदेशन म कुछ प्रत्यय एव शब्दों का प्रयोग बार बार होता ह अत इनका समझना भी नितान्त आवश्यक ह। य निम्न प्रकार म है

(1) पद या फ्रेम

यह अभिक्रमित अनुदेशन मे सर्वाधिक प्रचलित शब्द ह। इसके सामान्यत तीन भाग अर्थात् सूचना प्रदान करन वाला भाग जिस विद्यार्थी पढकर सूचनाए ग्रहण करता ह इस उद्दीपन वाला भाग भी कहते है। दूसरा भाग प्रश्न के पूछे जान अथवा रिक्त स्थान की पूर्ति करने स सम्बन्धित ह इसे अनुक्रिया वाला भाग कहते है। तीसरा भाग सही उत्तर वाला भाग है जिससे बालक को अपने उत्तर के सही अथवा गलत होने का ज्ञान होता ह। फ्रेम तथा एक साधारण गद्याश मे अन्तर ह। गद्याश म बहुत सी सूचनाए एक साथ दी जाती ह, जबकि फ्रेम म एक सूचना एक बार म दी जाती ह। गद्याश म छात्र अनुक्रिया हेतु प्रश्न नही पूछे जाते जबकि फ्रेम म अधिगम का क्रियाशील बनाये रखने के लिए प्रश्न पूछे जाते है तथा छात्र के उत्तरो की जाच भी तत्काल की जाती है। फ्रेम का एक उदाहरण प्रस्तुत ह।

	1	आपन स्पज देखा होगा। इसम सैकडो छिद्र होते है यदि यह सूखा हो तो ऐसी स्थिति म इन छोटे छोटे छिद्रों म क्या भरा होगा ?
हवा	2	यदि इस स्पज के टुकडे को आप हाथ स दबा दें तो दबाने पर " (क) वह आकार म बढ जायगा। (ख) आकार म कोई परिवर्तन नही होगा। (ग) आकार मे छोटा हो जायगा।
(ग)		

उपरोक्त दो उदाहरण फ्रेम को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। यहां फ्रेम संख्या 1 में सर्वप्रथम स्पंज के गुण के बारे में सूचना दी गई है। उसके बाद "छोटे-छोटे छिद्रों में क्या भरा होगा ?" प्रश्न पूछा गया है। छात्र अपनी कापी में इसका उत्तर लिख कर सही उत्तर जो कि फ्रेम संख्या-1 के नीचे "हवा" लिखा से मिलान करता है। इस प्रकार फ्रेम के तीनों भाग अपने आप में स्पष्ट हैं। एक विशेष बात यह कि अगला फ्रेम संख्या-2 अलग से न होकर पिछले फ्रेम संख्या-1 में दिये ज्ञान से सम्बन्धित है।

फ्रेम के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से विचार व्यक्त किये हैं—

(1) टेबर[1] (Taber)

"फ्रेम विषय वस्तु का वह लघु अंश है जो कि विद्यार्थी में किसी विशिष्ट उत्तर प्राप्त करने के प्रयोजन से निर्मित किया जाता है।"

(2) क्लास[2] (Klaus)

"फ्रेम में उद्दीपन, अनुबोधक, अनुक्रिया तथा ज्ञान वृद्धि हेतु विषय वस्तु होती है।"

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि फ्रेम के तीन भाग निम्नानुसार होते हैं—

(1) उद्दीपक भाग या सूचना प्रदान करने वाला भाग।

(2) अनुक्रिया भाग जिसमें सूचना के आधार पर उत्तर देना है।

(3) प्रति-पुष्टि भाग उत्तर के सही या गलत होने का आभास कराता है।

ये सब भाग मिलकर एक फ्रेम या पद का निर्माण करते हैं।

(2) अनुबोधन

कई बार ऐसी स्थिति आती है कि बालक किसी पद को पढ़कर सही उत्तर देने में अपने आपको असमर्थ पाता है। उससे सही उत्तर निकलवाने के लिए कई बार उसे अन्य उद्दीपकों से मदद दी जाती है। इसे अनुबोधक कहते हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी नाटक में कोई पात्र यदि अपने संवाद भूल जाता है तो पर्दे के पीछे बैठा व्यक्ति संवाद का एक शब्द बोलता है और पात्र को पूरा संवाद याद आ जाता है। उदाहरण के लिए—

---

1 Taber Julian I Robert Glaser and Halmuth H Schaeffer Learning and Programmed Instruction" Reading Mass Addison Wesley Publishing Corporation, 1965

2 Klaus David J 'An Analysis of Programing Technique, Teaching Machines and Programmed Learning II Data and Directions Ed R Glaser Washington D C Dep of Audio Visual Instruction NEA 1961, P 118

1	मिश्रित शब्द दो अक्षरों से बना होता है । विद्यालय शब्द दो अक्षर अर्थात् विद्या+आलय से बना है यह कैसा शब्द है ?
मिश्रित शब्द है 2	विद्यालय शब्द शब्द है ।
मिश्रित	

ऊपर दो फ्रेम क्रम संख्या 1 व 2 दर्शाये गये हैं । फ्रेम संख्या-2 में विद्यार्थी उत्तर देने में असमर्थ है । फ्रेम संख्या-1 में मिश्रित शब्द के अर्थ को रेखांकित किया गया है जो कि अनुबोधक का कार्य कर रहा है । इस रेखांकित भाग को ध्यान से पढ़ने पर उत्तर प्राप्त करने में मदद मिल रही है ।

(3) उद्दीपक

उद्दीपक से यहां अर्थ है वातावरण या परिस्थितिजन्य घटना जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित कर उसका मार्ग-दर्शन प्रदान करती है । फ्रेम में दी गई सूचनाएं तथा पूछे गये प्रश्न उद्दीपन का कार्य करते हैं अर्थात् बालक क्या व्यवहार करे, इस सन्दर्भ में मार्ग-दर्शन देते हैं ।

(4) अनुक्रिया (Response)

बालक प्रश्न को समझ कर जो उत्तर अपनी उत्तर-पुस्तिका में लिखता है उसे अनुक्रिया कहते हैं । अभिक्रमित अनुदेशन में केवल वे ही अनुक्रियाएं कराई जाती हैं जो कि बालक के व्यवहारगत परिवर्तन से सम्बन्धित हैं ।

अभिक्रमित अनुदेशन के प्रकार
(Types of Programmed Instruction)

मुख्य रूप से अभिक्रमित अनुदेशन दो प्रकार के होते हैं—

(क) रेखीय अभिक्रमित-अनुदेशन (Linear Programmed Instruction)

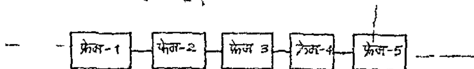
(ख) शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन (Branching Programmed Instruction) ।

(क) रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के रचयिता हावर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बी एफ स्किनर हैं । इन्होंने सर्वप्रथम हॉलैण्ड की सहायता से पहिला अभिक्रमित अनुदेशन तैयार किया ।

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में विद्यार्थी को प्रत्येक पद को पढ़ना पड़ता

है और इस प्रकार वह धीरे-धीरे अपेक्षित व्यवहार अर्जित कर लेता है। उदाहरण चित्र में दिया गया है—



उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि यहाँ विद्यार्थी सर्वप्रथम पहले, फिर दूसरे, बाद में तीसरे तथा इसी क्रम में एक के बाद एक फ्रेम को पढ़ता जाता है तथा अन्त तक सभी फ्रेमों को एक के बाद एक पढ़ता है। चूँकि यह प्रक्रिया एक सीधी रेखा द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है। अतः इस अभिक्रम का नाम रेखीय अभिक्रमित-अनुदेशन रखा गया है। यहाँ पर बालक के पढ़ने का मार्ग बाह्य रूप से अभिक्रमित अनुदेशन लिखने वाले द्वारा निर्धारित किया जाता है इसलिए इसे "बाह्यनिर्दिष्ट अभिक्रम" भी कह देते हैं। परन्तु सामान्यतः यह रेखीय-अभिक्रमित-अनुदेशन के नाम से ही पुकारा जाता है।

रेखीय-अनुदेशन में विषय-वस्तु को छोटे छोटे फ्रेमों में प्रस्तुत किया जाता है। छात्र प्रत्येक पद को पढ़ता है, पद में लिखे अनुसार वह अनुक्रिया करता है, फिर अपनी अनुक्रिया के उत्तर का मिलान सही उत्तर से कर सही या गलत होने की जाँच करता है। अनुक्रिया के सही होने पर ही वह अगले पद को पढ़ता है। इस प्रकार वह प्रत्येक पद में सही अनुक्रिया करता हुआ अन्तिम पद तक पहुँच जाता है।

रेखीय-अभिक्रमित-अनुदेशन का उदाहरण निम्नानुसार है—

अनुकूलन

	(1) वातावरण के विभिन्न पहलू जैसे—नमी, जल, वायु, आवास इत्यादि हैं, ये जीवों को प्रभावित करते हैं। जीवों को प्रभावित करने वाले वातावरण के पहलुओं में से कोई भी पहलू बताइये।
जल, वायु	(2) निम्नलिखित में से जिन स्थानों पर जीव (पानी [illegible]) रहते हैं, उन स्थानों [illegible] लाना। (आकाश/स्थान/घर)

आवास	(3) भिन्न भिन्न जीवो के विभिन्न आवास होते है। जैसे—शेर का आवास घने जगल म गुफा होती है। चूहे का आवास बताइये।
बिल	(4) इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आवासो के पौधे भी भिन्न भिन्न होते है। शैवाल का आवास होता है।
जल	(5) जल के पादप तथा ज तु जल म ही रह सकते है वे दूसरे आवास म जीवित नही रह सकते है। मछली तथा शैवाल जल के बाहर नही रह सकते है। जल म रहने वाले पादप तथा जन्तु का एक-एक उदाहरण दीजिए—
मछली, शैवाल	(6) मछली जलीय आवास म रहने वाला जन्तु है यदि उसे जल से बाहर स्थल पर रखा जाय तो क्या होगा ?
मर जायगी	(7) कमल, सिघाडा इत्यादि पादप जल म रहते ह अत इन्हे जलीय पादप कहते है यदि इन पादपो को स्थल पर लगाया जाये तो क्या होगा ?
वे नही लगेंगे	(8) ऊट रेगिस्तान म रहता है। उस रेगिस्तान का कहते है।
जहाज	(9) ऊट के शरीर म जल को सग्रहित करने की क्षमता होती है। वह कई दिन तक बिना पानी के रह सकता है क्योकि उसके शरीर म जल करने की क्षमता होती है।

संग्रहित	(10) ऊंट के पैर गद्दीदार होते हैं जिसके कारण वह रेत पर आसानी से चल सकता है इसलिए उसे रेगिस्तान का ——— कहते हैं।
जहाज	(11) पादपों तथा जन्तुओं में उनके आवास में रहने के अनुकूल शारीरिक रचना होती है। मछली के शरीर का आकार नावाकार होता है जो कि पानी में तैरने के लिए शारीरिक ——— है।
अनुकूलन	(12) विभिन्न आवासों में जीवों को विशिष्ट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए जीवों में ——— परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए अनुकूलन पाये जाते हैं। चित्र में दिखाये अनुसार मछली में तैरने के लिए पंख पाये जाते हैं जो कि जलीय आवास के जीवों के लिए तैरने में ——— है। (सहायक/सहायक नहीं)
सहायक	(13) चिड़िया के अग्रपाद पंखों में परिवर्तित हो जाते हैं, जिनकी सहायता से वह आसानी से वायु में ——— सकती है।
उड़	(14) पादपों में जल अवशोषण का कार्य मूलतन्त्र करता है। पादपों में जल अवशोषण किसके द्वारा होता है? ———

मूलतन्त्र	(15) मरुस्थल म जल भूमि म बहुत गहराई म पाया जाता ह । मरुस्थली पादपो म मूल अधिक गहराई तक क्या चली जाती है ?
भूमि की गहराई से जल अवशोषित करन क लिए	(16) चित्र म दिखाये पौधे म 'अ' क्या है (अ) प्ररोह तन्त्र (ब) मूलतन्त्र
प्ररोह तन्त्र	(17) चित्र म दिखाये गये पौधे म 'ब' क्या है ?
मूल तन्त्र	(18) जलीय-पादप म कौनसा तन्त्र कम विकसित होता ह ? (मूल तन्त्र/प्ररोह तन्त्र)
मूल तन्त्र	(19) आवास क अनुसार ही जन्तुओं व पौधों म अंगों क आकार म परिवर्तन पाये जाते है । इस प्रक्रम को क्या कहते है ? (वृद्धि/अनुकूलन)
अनुकूलन	

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की अवधारणाएं

यह अभिक्रमित अनुदेशन निम्न धारणाओं पर आधारित है—

(1) यह त्रुटियों को महत्व नहीं देता है, इसकी यह मान्यता है कि बालक कम त्रुटियां करने से अधिक सीखता है।

(2) पाठ्य वस्तु को बोधगम्य बनाने के लिए इसे विद्यार्थी के सम्मुख छोटे छोटे पदों में प्रस्तुत किया जाता है।

(3) छात्र सीखने की स्वगति से अधिक सीखता है।

(4) बालक यदि सक्रिय रहे तो उसका अधिगम प्रभावी रूप से होता है।

(5) अनुक्रिया उत्पन्न होते ही यदि उसको सही बताकर उसकी प्रतिपुष्टि की जाय तो अधिगम अधिक स्थायी बनेगा।

रेखीय-अभिक्रमित अनुदेशन का रूप

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में पद या फ्रेम का आकार छोटा होता है। वह इतना ही होता है कि एक बार में छात्र उसे पढ़कर आसानी से समझ लें। प्रत्येक पद में उद्दीपन, अनुक्रिया तथा पुनर्बलन की व्यवस्था होना आवश्यक है। फ्रेम या पद की प्रकृति के आधार पर इन्हें निम्न भागों में बांटा जा सकता है—

(1) प्रस्तावना पद (Introductory Frame)

इस प्रकार के पद अभिक्रमित अनुदेशन के प्रारम्भ में होते हैं तथा ये बालक के पूर्व ज्ञान तथा सीखे जाने वाले पाठ के बीच एक कड़ी का कार्य करते हैं। ये प्रमुख रूप से पाठ की प्रस्तावना से सम्बन्धित होते हैं।

(2) शिक्षण पद (Teaching Frames)

ये पद विषय-वस्तु जो कि पढ़ाई जानी है उनसे सम्बन्धित होते हैं। इनसे छात्रों को नया ज्ञान दिया जाता है जो कि इस क्रम में व्यवस्थित होता है कि धीरे धीरे वह पूरा पाठ समझ लेता है। इस प्रकार के पदों की संख्या अधिक होती है।

(3) परीक्षण पद (Testing Frame)

किसी एक उप इकाई को अभिक्रमित अनुदेशन के द्वारा पढ़ाने के पश्चात यह आवश्यक है कि बालक इसे किस सीमा तक सीख पाये हैं, इसकी जानकारी ली जावे, इस हेतु शिक्षण पद के बाद अभिक्रमित अनुदेशन में परीक्षण पद या फ्रेम रखे जाते हैं। इस प्रकार के पदों में अनुबोधक का [illegible] किया जाता तथा इन पदों का सही उत्तर [illegible] यह माना [illegible] कि विद्यार्थी सम्बन्धित उप इकाई को पूर्ण [illegible]।

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन [illegible]

(Characteristics of Linear

रेखीय अ[illegible] त अनुदेशन [illegible]

इसमें अग्रलि[illegible] है—

(1) इस प्रकार के अभिक्रमित-अनुदेशन का निर्माण करना सरल है।
(2) यह मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित है।
(3) पाठ्यवस्तु को छोटे छोटे फ्रेमों में प्रस्तुत किया जाता है अतः इसको समझना बालक के लिए आसान है।
(4) इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप शिक्षण सम्भव है।
(5) रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में विद्यार्थी क्रियाशील होकर सीखता है।
(6) यह इस मान्यता पर आधारित है कि बालक कम त्रुटियों में सीखता है। यदि वह त्रुटि करेगा तो उसका पुनर्बलन नहीं हो सकेगा। एक आदर्श रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में बालक कोई त्रुटि नहीं करेगा, ऐसी उनकी मान्यता है। फिर भी दस प्रतिशत तक की सीमा तक त्रुटियों को रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में स्वीकार किया जा सकता है।

रेखीय अभिक्रमित-अनुदेशन की सीमाएं

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन अपने आप में एक आदर्श अनुदेशन नहीं कहा जा सकता है। इसकी निम्नांकित सीमाएं हैं

(1) इस प्रकार के अनुदेशन में सबसे बड़ी कमी यह है कि यह छात्र द्वारा त्रुटि करने पर यह बताने में समर्थ नहीं है कि वह गलत क्यों है। त्रुटि करने पर उसे वह फ्रेम पुनः पढ़ना पड़ता है।
(2) प्रत्येक विद्यार्थी को, चाहे उस बीच की बातें आती ही हों, प्रत्येक फ्रेम को पढ़ना पड़ता है। इस प्रकार एक ही क्रम में पढ़ने से बालकों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा गया है।
(3) रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन से सृजनात्मक तथा उच्च तार्किक चिंतन की क्षमता विकसित किया जाना सम्भव नहीं है।
(4) प्रतिभाशाली विद्यार्थी छोटे-छोटे पदों का पढ़ने में रुचि नहीं दिखाते हैं क्योंकि ये पद उनके लिए बहुत ही सरल सिद्ध होते हैं।
(5) सभी विषयों में इसका निर्माण किया जाना सम्भव नहीं है।

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में उपरोक्त सीमाओं के होने के बावजूद भी इसका उपयोग बहुत अधिक किया गया है। शोध कार्यों ने भी इसकी प्रभावशीलता को प्रमाणित किया है। स्टालुरो[1] लिखते हैं कि '*अभिक्रमित अनुदेशन पर हुए शोध कार्य इस सम्बन्ध में कोई भ्रम पैदा नहीं करते कि विद्यार्थी जो इसकी सहायता से पढ़ता है*

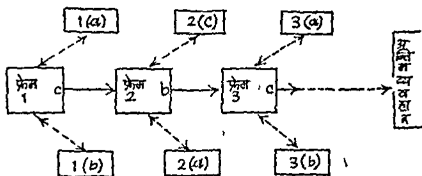
1 Stolurow M Programmed Instruction, In Munro's Encyclopedia of Educational Research Toronto Macmillan and Co 1969 P 1020

प्रभावी रूप से सीखता है।" रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का प्रयोग पत्राचार पाठ्यक्रम में किया जाता है।

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन

(Branching Programmed Instruction)

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन में विद्यार्थी को प्रत्येक फ्रेम को पढ़ना पड़ता था, यदि यह आवश्यक न हो तो इसे रेखीय न कह कर शाखीय अभिक्रमित-अनुदेशन कहते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था में विद्यार्थी को एक फ्रेम पढ़ने को कहा जाता है। फिर प्रश्न का उत्तर तीन या चार विकल्पों में से एक को चुनना होता है, चूँकि केवल एक उत्तर ही सही उत्तर होता है, विद्यार्थी को गलत उत्तर चुनने पर उसका निदान करने के लिए शाखाओं में होकर पढ़ना पड़ता है। सही उत्तर चुनने पर वह अगले फ्रेम पर पहुँच जाता है। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगा—



उक्त चित्र से यह स्पष्ट है कि फ्रेम संख्या-1 में पूछे गये प्रश्न के तीन उत्तर क्रमशः ए, बी व सी हैं। इनमें ए और बी विकल्प गलत हैं। यदि छात्र इनमें से कोई एक चुनता है तो वह ए के लिए 1(ए) फ्रेम तथा बी के लिए 1(बी) फ्रेम को पढ़ेगा तथा वहाँ यह समझेगा कि उसका यह उत्तर ठीक क्यों नहीं है। वह पुनः फ्रेम-1 को पढ़ सही उत्तर ढूँढेगा। यदि वह सी अर्थात सही उत्तर को चुनता है तो उसे शाखाओं में जाने की आवश्यकता नहीं है वह सीधे ही फ्रेम संख्या-2 पर आ जाता है। इस प्रकार वह त्रुटि करने पर बार बार उपचारात्मक शिक्षण के लिए शाखाओं के फ्रेम पढ़ सकता है। चूँकि इसमें शाखाओं (Branching) की व्यवस्था है इसलिए इसे शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन कहते हैं।

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन के प्रतिपादक नार्मन ए क्राउडर (Norman A Crowder) हैं। इस कारण इसे [illegible] क्राउडेरियन प्रोग्रामिंग भी [illegible] [illegible] पर विद्यार्थी अपने पढ़ने की दिशा स्वयं निर्धारित करता [illegible]। त्रुटि

करने पर शाखाओ म तथा न करने पर अगले फ्रेम का अध्ययन करता हे चूँकि यह निणय आन्तरिक (Intrinsic) है अत इस आ तरिक अनुन्शन (Intrinsic Instruction) भी कहत है । शाखीय अनुदेशन का एक उदाहरण निम्न प्रकार स है—

पृष्ठ सख्या–1

फ्रेम–1

बीजगणित मे जब दो चीजा का गुणा करते है ता उनक घाटा म योग क्रिया की जाती है । इसके लिए यह आवश्यक हे कि आधार बराबर हा ।

इसे निम्न उदाहरण स समझा जा सकता है

$a \times a = a^{1+1} = a^2$

$a^2 \times a = a^{2+1} = a^3$ का परिणाम है ।

अब आप $c^4 \times c^{-2}$ का मान बतायें

(अ) c^6 देखें पृष्ठ सख्या 8

(ब) c^{-8} देखे पृष्ठ सख्या 9

(स) c^2 दखे पृष्ठ सख्या 4

पृष्ठ सख्या–8

फ्रेम–1 (अ)

आपका उत्तर c^6 आया, यह गलत है आपन $c^4 \times c^{-2}$ की गुणन क्रिया करते समय घाटो को जोडा परन्तु आपने यह ध्यान नही दिया कि घात +4 तथा –2 का योग कभी भी 6 नही हो सकता ह । आपन घाटा के योग म त्रुटि की है । अब आप पुन इन घाटा को जोडें तथा फ्रेम सख्या–1 के प्रश्न को दुबारा हल करें ।

पृष्ठ सख्या–9

फ्रेम–1 (ब)

आपका उत्तर c^{-8} है। गुणन क्रिया म जब आधार एक हो तो घाता का योग किया जाता ह । आपने $c^4 \times c^{-2}$ का गुणा करते समय इनके घाटा को जाडने के बजाय गुणा कर दिया । यह आपने त्रुटि की है । घाटा म गुणा नहीं करना चाहिए । अब आप पुन पृष्ठ सख्या–1 पर फ्रेम–1 का पढें तथा सही उत्तर चुनें ।

पृष्ठ संख्या–4

फ्रेम–1 (स)

शाबास, आपका उत्तर c^2 सही है। अब आप समझ गये कि जब आधार एकसे हों तो गुणन क्रिया में घात जुड़ते हैं।

$ab \times a^2b^3$ का गुणन होगा—

(अ) a^3b^3 देखें पृष्ठ संख्या–15

(ब) a^3b^4 देखें पृष्ठ संख्या–7

(स) $ab\,a\,b^3$ देखें पृष्ठ संख्या–10

उपरोक्त उदाहरण में यह स्पष्ट है कि शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन में विद्यार्थी का उपचारात्मक शिक्षण भी होता रहता है।

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएं
(Characteristics of Branching Programmed Instruction)

(1) इसमें लिया गया फ्रेम का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है।

(2) शाखीय अभिक्रमित-अनुदेशन में विद्यार्थी को प्रश्न का उत्तर स्वयं निर्मित नहीं करना पड़ता अपितु उसे दिये गये विकल्पों में से चुनना पड़ता है। चुनने में उसे सरलता रहती है।

(3) इसमें कई विकल्पों में से उसे सही विकल्प को चुनना होता है, इससे विद्यार्थी की तार्किक शक्ति का विकास होता है।

(4) शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन में यह बताया जाता है कि विद्यार्थी गलत क्यों है? उसका स्पष्टीकरण प्राप्त होने से उसकी भूल का उसे आभास भी होता है।

(5) प्रतिभावान छात्रों के लिए यह समय की बचत कराता है।

(6) शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन में विद्यार्थी की क्षमताओं को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की मान्यताएं
(Assumptions Underlying Branching Programmed Instruction)

यह चार मान्यताओं पर आधारित है

(1) जो फ्रेम बालकों को पढ़ने के लिए प्रस्तुत किया जाता है उसको पढ़ने से छात्र उसे समझ लेगा।

(2) त्रुटियां सीखने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बालक द्वारा की जाने वाली त्रुटियों को ढूंढना तथा उनका निवारण करने से अधिगम अधिक प्रभावी रूप से होगा।

(3) शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन पद्धति लचीली होने के कारण सभी स्तर के छात्र इससे लाभान्वित हो सकते हैं।
(4) शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन में बालक तुलना करना व भेद करना सीखता है।

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की सीमाएँ

(Limitation of Branching Programmed Instruction)

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएं होते हुए भी इसमें निम्न दोष हैं

(1) बालक कभी कभी बिना पढ़े ही सही उत्तर को छाँट सकता है।
(2) इस प्रकार के अनुदेशन का निर्माण किया जाना बहुत कठिन कार्य है।
(3) इसमें पृष्ठ की संख्या अधिक होने से यह महँगा हो जाता है।
(4) यह बड़ी कक्षाओं के लिए ही उपयोगी है।
(5) इस प्रकार के अभिक्रम से पूरी पुस्तक पढ़ाया जाना सम्भव नहीं है।
(6) यह मन्द बुद्धि छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है।
(7) इसमें बार बार पन्ने पलटने से विद्यार्थी शीघ्र ऊब सकता है।

रेखीय और शाखीय अनुदेशन की तुलना

(Comparison of Linear and Branching Programmed Instruction)

रेखीय और शाखीय दोनों प्रकार के अनुदेशनों में विशेषताएं एवं सीमाएं हैं, इनकी तुलना निम्न प्रकार से की जा सकती है

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन	शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन
1 इस अनुदेशन में पदों का आकार छोटा होता है। ये एक या दो वाक्य के आकार के होते हैं।	1 शाखीय अनुदेशन में पदों का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है। इसमें विषयवस्तु को एक या दो पैरा में दिया जाता है।
2 रेखीय अनुदेशन में विद्यार्थी को प्रश्न का उत्तर स्वयं बनाना होता है या वह प्रत्यास्मरण करता है।	2 शाखीय अनुदेशन में विद्यार्थी अनुक्रिया के रूप में सही विकल्प का चुनाव करता है। इसमें प्रश्न प्रत्यभिज्ञान रूप में होता है।
3 इसमें फ्रेम का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि विद्यार्थी उत्तर देने में या अनुक्रिया करने में त्रुटि न करे अथवा त्रुटिहीन अनुक्रिया को महत्त्व दिया गया है।	3 इसमें त्रुटियों के स्पष्टीकरण देकर अधिगम को स्पष्ट और प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया है।

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन	शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन
4 रेखीय अभिक्रम म पढ कर अन्त म सही उत्तर दिखाकर तत्काल प्रतिपुष्टि की व्यवस्था है।	4 इसम प्रतिपुष्टि के लिए बालक को का स्पष्टीकरण दिया जाता है इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिपुष्टि जाती ह।
5 रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन म सभी पदा को पढना होता है।	5 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन म सभी पद पढना आवश्यक नही है।
6 इसम विविधता एव नव्यता कम है।	6 इसम विविधता एव नव्यता अधिक है।
7 अनुबाधका का प्रयाग रेखीय अभिक्रम म अधिक किया जाता है।	7 इसम अनुबाध का उपयाग बहुत सीमित है।
8 इसम त्रुटिया को महत्त्व नहा दिया जाता ह।	8 इसम त्रुटिया को महत्त्व दिया जाता है।
9 विद्यार्थी का उत्तर दन की स्वतन्त्रता नही ह अर्थात् उस निश्चित उत्तर ही देना ह।	9 विद्यार्थी उत्तर दने को स्वतत्र ह) वह एक स अधिक उत्तर भी दे सकता है।
10 यह छोटी कक्षाओ के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।	10 यह बडी कक्षा के लिए अधिक उपयोगी ह।
11 यह एक ही दिशा म विद्यार्थी को आगे बढाता है।	11 इसम विद्यार्थी विभिन्न शाखाओ म से होकर गुजरता है।
12 इसके प्रवतक बी एफ स्किनर थे।	12 इसका सूत्रपात नामन ए क्राउडर ने किया।

अभिक्रम प्रोग्राम की रचना
(Development of a Programme)

अभिक्रमित अनुदेशन की रचना के निम्नाकित पद है

(1) प्रकरण का चुनाव

अभिक्रमित अनुदेशन का प्रकरण छोटा होना चाहिए। प्रकरण म लिए गए प्रत्यय अपने आप म स्पष्ट हो तथा उन पर क्रम बनाया जाना सभव हो। प्रकरण इस प्रकार का हो कि वह 40 से 45 मिनट की अवधि म पूरा किया जा सके। जिन छात्रो के लिए यह प्रकरण चुना जा रहा है वे इसमें रुचि रखते हो। इन सब बातो को ध्यान म रखकर प्रकरण का चुनाव किया जाना चाहिए।

विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis)

विषय वस्तु के विश्लेषण म भाग उन तार्पूण क्रम म व्यवस्थित रखना है। इसके लिए विषय वस्तु का सार, अवबोध, अनुप्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण आदि की दृष्टि से व्यवस्थित किया जाता है। इन सब म एक तार्किक क्रम होता है।

उद्देश्यो को व्यवहार-परक रूप में परिभाषित करना (Defining Objectives in Behavioural Terms)

इस सम्बन्ध म पूर्व के अध्याय म विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।

पदो की रचना (Construction of Frames)

पद या फ्रेम अभिक्रमित अनुदेशन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसकी रचनाएँ ... तथा विषय वस्तु का मान्यता है। ये पद जितने अच्छे होंगे, अभिक्रमित अनुदेशन उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। पदो का निर्माण समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे आपस म एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हो तथा वे अधिगम उद्देश्यो से भी जुड़े हो। इनका लिखते समय इनम निम्न अवयवो को अवश्य समाविष्ट किया जाना चाहिए

(1) तथ्य या सूचनाएँ जो कि एक बार पढ़ने म समझ म आ सकें, की मात्रा नव प्रत्येक पद के प्रारम्भ म रखनी चाहिए।

(2) सूचना एव तथ्य देन के बाद अनुक्रिया कराने के लिए प्रश्न पूछना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर छोटा एव वस्तुनिष्ठ हो।

(3) सही उत्तर अथवा त्रुटिया के सम्बन्ध म उचित व्याख्या (शाखीय-अनुदेशन म) दी जानी चाहिए।

उक्त तीन तत्त्वो को शामिल करने से फ्रेम अच्छे स्तर का बनेगा।

पदों के प्रकार

पदो के प्रकार निम्न प्रकार म लिए जा सकते है

प्रस्तावना पद–	10 से 15 प्रतिशत
शिक्षण पद–	50 से 80 प्रतिशत
मूल्यांकन पद–	10 से 15 प्रतिशत

यह एक प्रस्तावित रूप-रेखा है विषय-वस्तु की प्रकृति एव कठिनता स्तर के अनुसार उक्त प्रतिशतता म परिवर्तन किया जा सकता है।

अनुबोधन का उपयोग

अनुबोधक एक ऐसा परिपूरक उद्दीपक है जिसकी सहायता से बालक सही उत्तर को आसानी से दे देता है। ये अग्रांकित प्रकार के होते है

(1) आंशिक अनुक्रिया अनुबोधक

इसमें अनुक्रिया या सही उत्तर जब विद्यार्थी देने की स्थिति में न हो तो उस अनुक्रिया का एक भाग या अंश उसके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जाता है। इस प्रकार का अनुबोधक आंशिक अनुक्रिया अनुबोधक कहलाता है। उदाहरण निम्नांकित पद में है

फ्रेम–1	जब कुत्ते के सामने रोटी का टुकड़ा रखते हैं तो उसके मुँह में लार टपकती है। रोटी का टुकड़ा उ का कार्य करता है।
उद्दीपक	

यहाँ उद्दीपक उत्तर का उ पद में देने से उत्तर देने में सहायता मिलती है।

(2) तुका तुक अनुबोधक

कुछ ऐसे वाक्य होते हैं जिनमें तुकबन्दी के आधार पर उत्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे —

फ्रेम–2	मोमबत्ती का जलाने पर प्रकाश होगा तो उसे बुझाने पर प्राप्त होगा।
अंधेरा	

(3) पद संरचना अनुबोधक

इसमें पद की संरचना इस प्रकार से बनाई जाती है कि उससे विद्यार्थी को सही उत्तर ज्ञात करने में सहायता मिलती है।

–	पाँच सेंटीमीटर को संक्षेप में 5 से मी लिखेंगे। सात मिली मीटर को संक्षेप में – लिखेंगे।
7 मि मी	

अनुबोधक का प्रयोग उस परिस्थिति में ही किया जाना चाहिए जबकि कोई नवीन प्रत्यय को छात्र को पढ़ाना हो। धीरे धीरे इसका प्रयोग कम करते जाना चाहिए। इसके उपयोग की तुलना छोटे बच्चों को चलना सिखाने के लिए प्रयुक्त सहारे से दी जा सकती है। इसका अधिक उपयोग हानिकारक भी हो सकता है।

अभिक्रमित अनुदेशन के पदों की रचना के उपरान्त इसका सम्पादन किसी विशेषज्ञ के द्वारा किया जाता है, जो कि इसमें आवश्यक संशोधन करता है।

पदों का सम्पादन

सम्पादन-कार्य करते समय अग्रांकित बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है

(1) भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर करना।
(2) वाक्यों को अर्थपूर्ण बनाना।
(3) पाठ्यक्रम की दृष्टि से फ्रेम का आकार कम या ज्यादा करना जिससे कि यह सुग्राह्य बन सके।
(4) विचारों में स्पष्टता लाना।
(5) पदों में दी गई विषय वस्तु को रोचक एवं क्रियाशील बनाना।

व्यक्तिगत परीक्षण

विशेषज्ञ द्वारा सम्पादन का कार्य समाप्त होने के पश्चात् इसका परीक्षण व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। इस हेतु प्रत्येक फ्रेम को एक कार्ड पर लिखा जाता है। जितने फ्रेम होते हैं उतने ही कार्ड तैयार किए जाते हैं। यह परीक्षण सामान्य तथा कमजोर स्तर के 4 से 5 छात्रों के साथ किया जाता है। छात्र एक कार्ड उठाकर पढ़ता है तथा उसका उत्तर देता है। उत्तर गलत देने पर वह अपनी कठिनाई को बताता है। इससे फ्रेम में संशोधन किया जाता है। प्रत्येक फ्रेम का पढ़ने तथा अनुक्रिया करने का समय नोट किया जाता है।

परीक्षण के लिए चुने गये छात्रों द्वारा बताये अनुसार अभिक्रमित अनुदेशन में परिवर्तन किए जाते हैं।

समूह परीक्षण

व्यक्तिगत परीक्षण के बाद अभिक्रमित अनुदेशन को चक्रांकित करा कर एक समूह पर उसका परीक्षण किया जाता है। छात्रों द्वारा की गई त्रुटियों का लेखा फ्रेम के हिसाब से रखा जाता है। त्रुटि दर निकालने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग करते हैं

$$\text{एक पद की त्रुटि दर} = \frac{\text{गलत अनुक्रिया का योग} \times 100}{\text{विद्यार्थियों की संख्या}}$$

माना कि पद संख्या 3 में 50 विद्यार्थियों में से 5 उसे गलत करते हैं तो उस फ्रेम की त्रुटि दर होगी

$$= \frac{5 \times 100}{50} = 10 \text{ प्रतिशत}$$

यदि सम्पूर्ण अभिक्रमित-अनुदेशन की त्रुटि दर निकालनी हो तो निम्न सूत्र का उपयोग करते हैं

$$\text{त्रुटि दर} = \frac{\text{गलत अनुक्रियाओं का योग} \times 100}{\text{विद्यार्थियों की संख्या} \times \text{फ्रेम संख्या}}$$

यदि एक अभिक्रमित अनुदेशन में 50 पद हों तथा उसे 10 विद्यार्थियों

के समूह को पढ़ने को दिया गया। यदि उन्होंने कुल 20 अनुक्रियाएं गलत की तो इस अभिक्रमित अनुदेशन की त्रुटि दर होगी

$$= \frac{20 \times 100}{10 \times 50} = 4 \text{ प्रतिशत}$$

ऐसा माना जाता है कि एक अच्छे अभिक्रमित अनुदेशन की त्रुटि दर 5 से 10 प्रतिशत की सीमा में अधिक नहीं होनी चाहिए। जिन फ्रेम की त्रुटि दर 10 प्रतिशत से अधिक पाई जाती है उनमें सुधार किया जाता है। इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन का अन्तिम रूप तैयार हो जाता है।

सारांश

अभिक्रमित अनुदेशन के जन्मदाता बी० एफ० स्किनर को माना जाता है परन्तु इस प्रयत्न के विकास में अनेक शिक्षाविदों एवं मनोवैज्ञानिकों का योगदान है। थार्नडाइक, प्रेसी, टवर आदि के नाम इस क्रम में उल्लेखनीय हैं। अभिक्रमित अनुदेशन व्यक्तिगत अनुदेशन की एक प्रभावशाली विधि है जिसमें पाठ्यवस्तु को छोटे छोटे पदों में इस प्रकार विभक्त किया जाता है कि प्रत्येक पद से वह अनुक्रिया कर पाठ्यवस्तु को स्वयं सीख लेता है। यह एक शिक्षण प्रविधि है। यह अनुदेशन कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों अर्थात् छोटे छोटे पदों का सिद्धान्त, क्रियाशीलता का सिद्धान्त, पुनर्बलन का सिद्धान्त, स्वयं की गति से पढ़ने का सिद्धान्त तथा तार्किक क्रम के सिद्धान्त पर आधारित है। इन सिद्धान्तों से यह अनुदेशन प्रभावशाली बन जाता है।

अभिक्रमित-अनुदेशन की आधारभूत इकाई फ्रेम या पद है जितने अच्छे स्तर का यह होगा, अनुदेशन उतना ही प्रभावशाली होगा। अतः इसका समझना एवं बनाने का ज्ञान शिक्षक को होना आवश्यक है। फ्रेम के तीन भाग क्रमशः सूचना प्रदान करने वाला भाग या उद्दीपक वाला भाग, अनुक्रिया वाला भाग तथा सही उत्तर वाला भाग है। यदि फ्रेम में उत्तर देने में छात्र को कठिनाई आ रही हो तो अनुबोधकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

अभिक्रमित अनुदेशन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं अर्थात् रेखीय अनुदेशन तथा शाखीय अनुदेशन। रेखीय अनुदेशन में विद्यार्थी को प्रत्येक पद को पढ़ना पड़ता है व पद छोटे होते हैं। विद्यार्थी को "वह गलत क्यों है" इसका स्पष्टीकरण रेखीय अनुदेशन नहीं दे पाता। शाखीय अनुदेशन में इसका स्पष्टीकरण दिया जाता है तथा उसकी त्रुटि का सुधार किया जाता है। इसमें पद बड़े होते हैं तथा विद्यार्थी यदि त्रुटि नहीं करता है तो उसे सभी पद नहीं पढ़ने पड़ते हैं।

अभिक्रमित अनुदेशन की रचना करते समय विषय-वस्तु का विश्लेषण कर उसे तार्किक क्रम में जमाना आवश्यक है। पदों की रचना के बाद इनका व्यक्तिगत परीक्षण किया जाता है उसके बाद समूह परीक्षण कर फ्रेम त्रुटि दर ज्ञात की जाती है। यदि त्रुटि दर दस प्रतिशत से अधिक है तो फ्रेम को पुनः लिखा जाता है। अभिक्रमित अनुदेशन एक उपयोगी एवं प्रभावी शिक्षण प्रविधि है। ☐

अध्याय 16

दल-शिक्षण

(Team Teaching)

कक्षा-शिक्षण प्राचीन काल से चलता आ रहा है। इसमें जब कभी भी किसी कठिनाई का अनुभव किया गया, शिक्षाविदों ने शोध और अनुभव के आधार पर नवीन शिक्षण-विधियों की रचना की। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमरिका ने भी एक संकट आया। युद्ध के कारण तीन लाख शिक्षकों ने शिक्षण कार्य छोड़कर अन्य राष्ट्रीय हित के कार्य को संभाल लिया था तथा उनके स्थान पर सामान्य जानकारी वाले शिक्षकों ने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। इधर जनसंख्या में वृद्धि के कारण शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों की भी संख्या विद्यालयों में बढ़ी। इन दोनों कारणों से शिक्षा पर प्रभाव पड़ा। शिक्षण-कार्य में सुधार लाने की दृष्टि से 1954 में अमरिका के राष्ट्रीय स्तर की शिक्षण संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में एक नवीन प्रयोग प्रारम्भ हुआ जिसमें कक्षा शिक्षण में एक से अधिक अध्यापक एक ही प्रकरण को कक्षा में 'दल' के रूप में पढ़ाने लगे। यह प्रयोग सफल रहा। इंग्लैण्ड ने इस प्रकार के शिक्षण का प्रयोग 1960 में विद्यालयों में प्रारम्भ किया।

दल शिक्षण का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and definition of Team Teaching)

दल शिक्षण अंग्रेजी के शब्द 'टीम-टीचिंग' से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ किसी दल द्वारा शिक्षण कार्य किया जाना है। परम्परागत शिक्षण-व्यवस्था में कक्षा शिक्षण के लिए एक अध्यापक होता है जो कि उपयुक्त शिक्षण-विधियों से विद्यार्थियों को पढ़ाता है। जबकि दल-शिक्षण में कक्षा में एक अध्यापक के स्थान पर विभिन्न क्षेत्रों में दक्ष अध्यापक एवं उनके सहायक होते हैं। यह दल विषय-वस्तु एवं विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार उनके शिक्षण-कार्य को प्रभावी रूप से सम्पादित करता है।

"दल शिक्षण से तात्पर्य कक्षा में अध्यापकों के एक दल द्वारा शिक्षण कार्य करने से है। इस शिक्षण प्रक्रिया में एक प्रमुख शिक्षक होता है जो कि अन्य सहयोगी शिक्षकों की उपस्थिति में कक्षा के छात्र-छात्राओं के सम्मुख विषय वस्तु प्रस्तुत करता है। अन्य अध्यापक विद्यार्थियों के उपसमूह में इस विषयवस्तु पर चर्चा करते हैं अथवा सम्बन्धित क्रियाएँ आयोजित करते हैं। कभी-कभी प्रमुख शिक्षक छात्र-छात्राओं को टेलीविजन के द्वारा भी पढ़ाता है।"

यह बात स्पष्ट करना उचित होगा कि दल-शिक्षण कोई नवीन शिक्षण विधि नहीं है अपितु यह कुछ अध्यापकों द्वारा एक कक्षा को पढ़ाने का संगठित प्रयास है। दल शिक्षण में यह भी आवश्यक नहीं है कि पूरा शिक्षक दल पूरे समय तक पूरी कक्षा के सामने रह कर शिक्षण कार्य करे।

इस शिक्षण में दो या दो से अधिक अध्यापक मिलकर नियमित रूप से किसी कक्षा का अनुदेशन सम्बन्धी योजना बनाते हैं, उसे क्रियान्वित करते हैं तथा उसका मूल्यांकन करते हैं। यह मूलतः इस धारणा पर आधारित है कि एक अध्यापक की तुलना में कुछ अध्यापक मिलकर अपना कार्य करें तो उसके परिणाम अधिक अच्छे होंगे।

बड़े विद्यालयों में प्रायः एक ही विषय के एक से अधिक अध्यापक होते हैं। अनुभव एवं योग्यता की दृष्टियों से उनमें भिन्नता होनी भी स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में टीम टीचिंग विधि का प्रयोग करके प्रत्येक अध्यापक के अनुभव एवं योग्यता का लाभ समस्त छात्रों को दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी विद्यालय में कक्षा 6 से 10 तक प्रत्येक कक्षा में दो विभाग हैं तथा भूगोल के दो अध्यापक हैं, पहले अध्यापक का कथन प्रभावशाली है। उसके प्रश्न पूछने तथा उत्तर प्राप्त करने का ढंग भी संतोषप्रद है। दूसरा अध्यापक रेखा-चित्र बनाने तथा श्रव्य दृश्य उपकरणों का प्रयोग करने की कुशलता पहले की तुलना में अधिक रखता है। यदि दोनों अध्यापक अलग-अलग कक्षाओं को पढ़ाते हों तो यह स्पष्ट है कि एक अध्यापक की योग्यता का लाभ दूसरी कक्षा को तथा दूसरे अध्यापक का लाभ पहली कक्षा को नहीं मिल सकता। टीम-टीचिंग इस दृष्टि से ऐसी विधि है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक अध्यापकों की योग्यता एवं अनुभवों का सम्मिलित रूप से लाभ सभी छात्रों को दिया जा सकता है।

इस शिक्षण पद्धति के अन्तर्गत किसी एक कक्षा में एक ही समय में दो या दो से अधिक अध्यापक उपस्थित रहते हैं तथा आवश्यकतानुसार कक्षा में बारी-बारी से शिक्षण कार्य करते हैं। इनमें से एक शिक्षक संयोजक का काम करता है और अन्य शिक्षकों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। यदि आवश्यकता होती है तो इन अध्यापकों के सहयोग के लिए अन्य कर्मचारी भी नियुक्त किये जाते हैं जो उपकरणों के रख-रखाव या प्रदर्शन हेतु उपस्थित रहते हैं।

कभी-कभी एसी भी स्थिति आ जाती है जब एक प्रकरण में एक से अधिक विषयाध्यापकों की आवश्यकता पड़ जाय। जैसे विज्ञान में परमाणु भट्टी को पढ़ाने के लिए भौतिक-विज्ञान तथा रसायन विज्ञान दोनों विषयों के अध्यापक दल मिलकर अच्छी प्रकार से पढ़ा सकते है। इस प्रकार विशिष्ट प्रकार के प्रकरणों के शिक्षण के लिए भी टीम टीचिंग का उपयोग किया जाता है।

दल शिक्षण की परिभाषाएं निम्न प्रकार से है—

(1) काल आलसन

'दल शिक्षण शिक्षण-परिस्थितियों का जन्म देने वाली एसी प्रविधि है जिसमें दो या दो से अधिक अध्यापक अपने कौशल तथा शिक्षण योग्यता का एक कक्षा में एक साथ परन्तु विशिष्ट क्रम में प्रदर्शन कर सहयोग प्रदान करते हैं। शिक्षण की यह योजना लचीली होती है जिसमें शिक्षार्थियों की शिक्षण सम्बन्धित आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाता है।

(2) डेविस वारविक

'दल शिक्षण एक एसी व्यवस्था है जिसमें कई शिक्षक अपने स्रोतों, अभिरुचियों एवं दक्षताओं के अनुरूप एक ही कक्षा में शिक्षण कार्य करते है।"

(3) शपलिन एवं ओल्ड्स,

"दल शिक्षण कक्षागत अनुदेशन का वह रूप है जिसमें शिक्षण देने वालों की संख्या दो या उससे अधिक होती है, तथा इन्हें कक्षा में शिक्षण कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। ये शिक्षक एक ही छात्र समूह को किसी पाठ्यक्रम के अंश का एक साथ शिक्षण करते हैं।'

(4) लाकासी और रिचर

"दल शिक्षण-पद्धति एक संगठनात्मक शिक्षण युक्ति है जिसके अन्तर्गत कई व्यक्ति मिलकर सम्बन्धित अनुदेशनात्मक क्रियाओं के निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्मिलित प्रयास करते है।

(5) देसाई[1]

'दल शिक्षण एक प्रकार का शिक्षण व्यवस्था है जिसमें दो या दो से अधिक शिक्षकों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से पाठ्यवस्तु के शिक्षण का दायित्व सौंपा जाता है। ये शिक्षक एक ही कक्षा को एक साथ पढाते है।'

1 Desai H G 'Team Teaching' NAYA SHIKSHAK Apr/June 1969 P—16

दल-शिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Prospective of Team Teaching)

दल शिक्षण का प्रारम्भ सामान्यतः द्वितीय महायुद्ध के पश्चात माना जाता है परन्तु कुछ शिक्षाविदों ने इस पद्धति से मिलता-जुलता कार्य बहुत पहिले प्रारम्भ कर दिया था। लगभग एक शताब्दी पूर्व इंगलैण्ड में लेंकास्टर एवं बेल ने शिक्षण में मानीटर पद्धति प्रारम्भ की जिसके अन्तर्गत योग्य एवं प्रतिभावान छात्रों की सहायता से शिक्षण कार्य कराया जाता था। इससे भी पूर्व प्राचीन भारत में शिक्षण कार्य मानीटर पद्धति से सम्पन्न कराया जाता था। यह सब कार्य गुरु की देखरेख में सम्पन्न होता था।

दल शिक्षण पर विधिवत कार्य पचास के दशक में इस शताब्दी में प्रारम्भ हुआ जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है—

(1) सन् 19^5 में हारवर्ड विश्वविद्यालय में दल शिक्षण से मिलती जुलती एक योजना प्रारम्भ की जिसका नाम लेक्सिंगटन योजना था।

(2) सन 1955 में हार्वे ने एक योजना प्रारम्भ की जिसके अन्तर्गत एक सहायक शिक्षक की सहायता से दल-शिक्षण किया गया।

(3) सन् 19^6 में फोर्ड फाउण्डेशन की आर्थिक सहायता से एक आयोग की स्थापना की गई जिसने शिक्षक मंडलों का अधिक प्रभावी उपयोग किये जाने का अध्ययन किया। दल शिक्षण का प्रत्यय सर्वाधिक सम्भावनाओं से प्रेरित पाया गया।

(4) सन 1956 में हावर्ड विश्वविद्यालय के फ्रांसिस केपल ने दल-शिक्षण का सुझाव दिया जिसका प्रायोगिक रूप 1957 में लेक्सिंगटन ने दिया।

(5) सन् 1961 से दल शिक्षण ग्रीन विच विद्यालय में सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा रहा है।

दल-शिक्षण की कार्य-प्रणाली
(Essential Steps of Team Teaching)

(अ) शिक्षक दल का गठन—जैसा कि इस पद्धति के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें शिक्षण कार्य एक दल करता है अतः सर्वप्रथम शिक्षक दल के गठन किये जाने की आवश्यकता इस शिक्षण प्रणाली के उपयोग हेतु आवश्यक होगी। उदाहरण के लिए कक्षा 11 में इतिहास विषय में—"सम्राट अशोक का धर्म" पाठ पढाया जाना है। इस पाठ में निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालना होगा—

(1) अशोक का जन्म स्थान एवं जीवन का परिचय।

(2) कलिंग का युद्ध एवं हृदय-परिवर्तन।

(3) अशोक के समय की राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियां।

(4) अशोक द्वारा बौद्ध धर्म का स्वीकार क्या किया गया ?
(5) उस समय के भारत का नगाल।
(6) तत्कालीन भारत में आवागमन के साधन।
(7) अशोक द्वारा धर्म प्रचार के तरीके।
(8) अशोक की धार्मिक सहिष्णुता।

उपरोक्त बिन्दुओं पर प्रकाश डालने के लिए यदि एक दल गठित किया जाय तो उसमें निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित अध्यापकों को लेना आवश्यक होगा

(1) इतिहास का अध्यापक—इतिहास सम्बन्धित जानकारी देने के लिए।
(2) भूगोल का अध्यापक—भौगोलिक पृष्ठभूमि, मानचित्र आदि हेतु।
(3) धर्म विशेषज्ञ—बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने के लिए।
(4) चित्र कला विशेषज्ञ—दृश्य श्रव्य सामग्री बनाने हेतु।
(5) तकनीकी सहायक—फिल्म आदि दिखाने के लिए।

उपरोक्त अध्यापकों एवं सहायकों का यदि एक दल गठित कर दिया जाये तो 'दल शिक्षण' किया जा सकता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इतिहास शिक्षण में प्रमुख भूमिका इतिहास के अध्यापक को निभानी है अतः वह प्रमुख शिक्षक होगा। अन्य सभी उसके सहायक शिक्षक होंगे जो कि अवसर मिलने पर अपने क्षेत्र से सम्बन्धित ज्ञान को छात्रों को देंगे।

दल शिक्षण के लिए अध्यापकों के दल का गठन दो प्रकार से किया जा सकता है

(1) स्तर के अनुसार
(2) सह-क्रियात्मकता के आधार पर।

स्तर के अनुसार गठन करते समय उस विषय का वरिष्ठ अध्यापक दल का नेता होता है साथ में सहायक अध्यापक लगाये जाते हैं। वरिष्ठ शिक्षक शिक्षण में प्रमुख भूमिका निभाता है तथा अन्य उसे सहयोग प्रदान करते हैं।

सह-क्रियात्मकता के आधार पर गठित दल में दो या दो से अधिक शिक्षक हो सकते हैं परन्तु इसका कोई मास्टर टीचर (प्रमुख शिक्षक) नहीं होता। दल का नेतृत्व ये शिक्षक बारी बारी से शिक्षण की आवश्यकतानुसार करते हैं। उपरोक्त उदाहरण में जब इतिहास की बात कक्षा में चल रही होगी उस समय इतिहास अध्यापक नेतृत्व करेगा। जब भूगोल का ज्ञान दिया जायेगा तो इतिहास शिक्षक हट जायेगा तथा भूगोल शिक्षक दल का नेतृत्व अपने हाथ में ले लेगा।

करता है। इसके लिए तीन से पाँच कालांश तक दिये जा सकते हैं जिनमें छात्र अपनी विचार विमर्श करते हैं समस्या समाधान करते हैं तथा पुस्तकालय आदि में स्वतन्त्र अध्ययन करते हैं।

मूल्यांकन कार्य

दल शिक्षण द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की किस सीमा तक पूर्ति हुई है इसके लिए मूल्यांकन कार्य किया जाता है। इस हेतु मौखिक या लिखित प्रश्न दिये जाते हैं। प्रश्नों को शिक्षण बिन्दुओं में सम्बन्धित करके पूछा जाता है तथा इससे विद्यार्थियों की कमजोरियों का पता लगाकर उनका उपचार भी किया जाता है। मूल्यांकन शिक्षण की सफलता असफलता को भी प्रदर्शित करता है अतः इससे प्राप्त परिणामों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण योजना एवं व्यवस्था में सुधार किया जाता है।

दल-शिक्षण का प्रारूप (Forms of Team Teaching)

दल शिक्षण का प्रमुख पाठ पूर्व नियोजन के अनेक रूप हो सकते हैं। इनका एक प्रारूप निम्न प्रकार से है

(1) आम सभा सत्र (General Session)

एक कक्षा के सभी छात्रों को एक बड़े भाग में एकत्रित कर लिया जाता है। यदि किसी विद्यालय में एक कक्षा के तीन वर्ग हैं तो ये तीनों वर्ग के विद्यार्थी आम सभा के लिए एक जगह बिठाये जायेंगे। बाद एक विशिष्ट अध्यापक पूरे समूह के शिक्षण का नेतृत्व करता है। अन्य अध्यापक समय समय पर सहयोग देते रहते हैं। उदाहरण के लिए एक अध्यापक "प्रदूषण" पर चर्चा कर रहा है तो सहयोगी अध्यापक आम सभा में बालकों की अनुक्रियाओं पर ध्यान दे रहा है जिससे कि अनुशासन बना रहे। तीसरा अध्यापक किसी प्रयोग की तैयारी में लगा है जो कि शिक्षण के दौरान प्रदर्शित किया जाना है। अन्य विषयाध्यापक अपने अवसर की प्रतीक्षा में हैं तथा अवसर आने पर अपने विषय में सम्बन्धित ज्ञान की जानकारी आम सभा में देंगे। तकनीशियन फिल्म आदि प्रोजेक्टर में रखकर उसे दिखाने की तैयारी में है। इस प्रकार आम सभा सत्र में प्रमुख पाठ सभी अध्यापकों के सहयोग से पूरा किया जाता है।

आम सभा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात विद्यार्थियों को चर्चा करने का अवसर प्रदान करना है। कोई भी विद्यार्थी शंका समाधान हेतु प्रश्न पूछ सकता है तथा सब अध्यापक मिलकर उसकी समस्या सुलझाते हैं। इस प्रकार आम सभा सत्र शिक्षण के संगठित प्रयास से सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है।

(ब) छात्र दल का गठन—दल शिक्षण के अन्तर्गत यदि आवश्यकता होती है तो छात्र दलों का गठन भी किया जाता है। यह गठन छात्रों के स्तर एवं उपलब्ध शिक्षण सामग्री के आधार पर किया जाता है। जब छात्रों को दल शिक्षण द्वारा विषय वस्तु का ज्ञान मिल जाता है उसके बाद उनकी योग्यता के आधार पर दल गठित कर दिये जाते है। दल शिक्षण के दौरान दिया गया पाठ "मुख्य पाठ" कहलाता है। बड़े दल को मुख्य पाठ देने के पश्चात उस पर अनुवर्ती कार्य कराए जाने की दृष्टि से पूरे छात्र दल के छोटे छोटे दल बना दिये जाते हैं। इन छोटे दलों में छात्र संख्या 30 से अधिक नहीं होनी चाहिए। यह दल एक शिक्षक के मार्गदर्शन में कार्य करता है तथा इसको दिये जाने वाले कार्य जैसे मानचित्र बनाना, मॉडल बनाना आदि के लिए यह अध्यापक और अधिक छोटे समूह बना सकता है।

दल शिक्षण की प्रारम्भिक तैयारी

दल शिक्षण से पूर्व निम्न तैयारी की जानी आवश्यक है
सभागी अध्यापकों की बैठकें तथा कार्य का बटवारा जिसमें कि—

(1) शिक्षण कार्य पूर्व नियोजित ढंग से किया जा सके।

(2) शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण।

(3) साधन सामग्री पर विस्तृत विचार।

(4) दल शिक्षण हेतु समय विभाजन-चक्र, स्थान आदि पर विचार।

(5) शिक्षण विधियां जिनका उपयोग दल शिक्षण में किया जाना है।

(6) अनुवर्ती कार्य जो कि मुख्य पाठ के बाद कराया जाना है।

(7) पढ़ाये जाने वाली पाठ्य वस्तु का विश्लेषण कर परस्पर विषय क्षेत्रों में सम्बन्ध योजना।

प्रमुख पाठ

यह दल शिक्षण का प्रमुख पाठ है अतः इसका प्रस्तुतिकरण प्रभावशाली ढंग से किया जाना चाहिए। इस पाठ के आयोजन में दृश्य श्रव्य सामग्री का उपयोग भी किया जाना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी इस अच्छी प्रकार से समझ लें। इस पाठ में दो या इससे अधिक शिक्षक भाग लेते हैं तथा प्रश्न उत्तर के माध्यम से छात्रों को सक्रिय योगदान भी इसमें ले सकते है। इस पाठ की अवधि कम से कम दो कालांश की होना चाहिए तथा पाठ को रुचिकर बनाने का पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि बालक मानसिक थकान का अनुभव न करें।

अनुवर्ती कार्य

प्रमुख पाठ के समाप्त होने के पश्चात छात्र छोटे छोटे समूह में बट जाते हैं तथा प्रत्येक दल एक शिक्षक के मार्गदर्शन में पढ़ाये गये पाठ पर अनुवर्ती कार्य

करता है। इसके लिए तीन से पांच कालांश तक दिये जा सकते हैं जिनमें छात्र आपसी विचार विमर्श करते हैं, समस्या समाधान करते हैं तथा पुस्तकालय आदि में स्वतन्त्र अध्ययन करते हैं।

मूल्यांकन कार्य

दल शिक्षण द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की किस सीमा तक पूर्ति हुई है इसके लिए मूल्यांकन कार्य किया जाता है। इस हेतु मौखिक या लिखित प्रश्न दिये जाते हैं। प्रश्नों को शिक्षण बिन्दुओं से सम्बंधित करके पूछा जाता है तथा इससे विद्यार्थियों की कमजोरियों का पता लगाकर उनका उपचार भी किया जाता है। मूल्यांकन शिक्षण की सफलता असफलता को भी प्रदर्शित करता है अतः इससे प्राप्त परिणामों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण योजना एवं व्यवस्था में सुधार किया जाता है।

दल-शिक्षण का प्रारूप (Forms of Team Teaching)

दल शिक्षण को प्रमुख पाठ पूरे किये जाने के अनेक रूप हो सकते हैं। इसका एक प्रारूप निम्न प्रकार से है

(1) आम सभा सत्र (General Session)

एक कक्षा के सभी छात्रों को एक बड़े हाल में एकत्रित कर लिया जाता है। यदि किसी विद्यालय में एक कक्षा के तीन वर्ग हैं तो ये तीनों वर्ग के विद्यार्थी आम सभा के लिए एक जगह बिठाये जायेंगे। कोई एक विशिष्ट अध्यापक पूरे समूह के शिक्षण का नेतृत्व करता है। अन्य अध्यापक समय समय पर सहयोग देते रहते हैं। उदाहरण के लिए एक अध्यापक "प्रदूषण" पर चर्चा कर रहा है तो सहयोगी अध्यापक आम सभा में बालकों की अनुक्रियाओं पर ध्यान दे रहा है जिससे कि अनुशासन बना रहे। तीसरा अध्यापक किसी प्रयोग की तैयारी में लगा है जो कि शिक्षण के दौरान प्रदर्शित किया जाना है। अन्य विषयाध्यापक अपने अवसर की प्रतीक्षा में हैं तथा अवसर आने पर अपने विषय से सम्बंधित ज्ञान की जानकारी आम सभा में देंगे। तकनीशियन फिल्म आदि प्रोजेक्टर में रखकर उसे दिखाने की तैयारी में है। इस प्रकार आम सभा सत्र में प्रमुख पाठ सभी अध्यापकों के सहयोग से पूरा किया जाता है।

आम सभा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान विद्यार्थियों को चर्चा करने का अवसर प्रदान करना है। कोई भी विद्यार्थी शंका समाधान हेतु प्रश्न पूछ सकता है तथा सब अध्यापक मिलकर उसकी समस्या सुलझाते हैं। इस प्रकार आम सभा सत्र शिक्षकों के सगठित प्रयास से सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है।

(2) लघु सभा सत्र (Small Assembly Session)

छात्रा की कमजोरियां को दूर करन की दृष्टि स तथा अनुवर्ती काय क लिए इन्ह छोट छोट समूहा म बाट दिया जाता ह। यहा इन्ह अध्यापक का मागदशन भी प्राप्त हाता ह। आवश्यकतानुसार इन्ह शिक्षण सहायक सामग्री भी उपलब्ध कराई जाती ह।

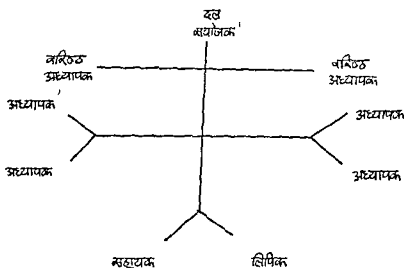
(3) स्व शिक्षण प्रयोगशाला-सत्र (Laboratory Session)

इस सत्र को यदि आवश्यक हा ता व्यवस्थित किया जाता ह। कुछ विषय जैस विज्ञान, भूगोल, गणित आदि एस ह जिनम छात्रा का प्रयाग भी करन पडत ह। एसी स्थिति म अध्यापक की उपस्थिति म छात्र प्रयोग करत है तथा शिक्षक मे विचार-विमश कर प्रयाग म निष्कष निकालत हैं।

समीक्षा-सत्र

छात्रा की दल शिक्षण के प्रभावस्वरूप हुई प्रगति एव शिक्षण की प्रभाव-शीलता ज्ञात करन के लिए इस सत्र का आयाजन किया जाता है। इसम विद्या थिया स अनक प्रश्न पूछे जाते है। य प्रश्न मौखिक या लिखित हा सकत है। छात्रा के उत्तरा के आधार पर उनकी प्रगति की समीक्षा की जाती ह।

लविंगस्टन ने दल शिक्षण के प्रारूप का चित्रमय प्रदर्शन निम्न प्रकार स किया ह



दल शिक्षण की सफलता हेतु सुझाव

दल शिक्षण का सफल बनान के लिए निम्नांकित बाता का ध्यान रखना चाहिए

(1) दल शिक्षण के लिए अनुभवी एव कुशल अध्यापका का चुनाव

किया जाना आवश्यक है जैसाकि उपरोक्त विवरण में स्पष्ट है कि इसमें अध्यापक की भूमिका प्रमुख है। यदि अध्यापक कुशल नहीं होगा तो बालक विषय वस्तु को ठीक प्रकार से नहीं समझ सकेंगे।

(2) शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षणार्थियों को दल-शिक्षण का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे इसका उपयोग विद्यालयों में ठीक प्रकार से कर सकें।

(3) दल शिक्षण के लिए चयनित अध्यापकों की टीम में उस प्रकरण से सम्बन्धित अध्यापकों को लिया जाना चाहिए।

(4) दल शिक्षण में बैठक-व्यवस्था उत्तम प्रकार की होनी चाहिए इसके लिए सभा भवन आकार में बड़ा तथा हवा व रोशनी युक्त होना चाहिए।

(5) दल शिक्षण के लिए शिक्षण सहायक सामग्री पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए।

(6) पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण-सहायक सामग्री आदि की पूर्व में व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

दल शिक्षण की विशेषताएं

इस विधि की निम्नांकित विशेषताएं हैं

(1) सह क्रियात्मक

यह विधि सह क्रियात्मकता के सिद्धान्त पर आधारित है। टीम टीचिंग में भाग लेने वाले शिक्षक परस्पर सहयोग द्वारा पाठ का विकास करते हैं एक दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाते हैं तथा प्रत्येक में जो अच्छाई है उसका लाभ समस्त छात्रों को देने का प्रयास करते हैं। अध्यापकों के ऐसा करने से छात्रों में भी परस्पर सहयोग करने की भावना का विकास होता है।

(2) व्यावसायिक विकास

इस विधि का प्रयोग करने से अध्यापकों का निरन्तर व्यावसायिक विकास होता है। जब एक अध्यापक अध्यापन करता है तब दूसरे अध्यापक उसके कार्य की प्रभावोत्पादकता का पर्यवेक्षण करते हैं। वे अपनी ओर से भी शिक्षण परिस्थिति का निर्माण करने में समुचित योगदान देते हैं। इस प्रकार टीम टीचिंग में भाग लेने वाले सभी शिक्षक एक दूसरे की योग्यता से लाभान्वित होते हैं।

(3) रुचियों का ज्ञान

प्रत्येक अध्यापक की अपने विषय के किसी उप-विषय में भी विशेष रुचि हो सकती है। भौतिकशास्त्र का ही उदाहरण लें, हो सकता है किसी अध्यापक की ध्वनि में विशेष रुचि हो तथा किसी अन्य अध्यापक की विद्युत एवं चुम्बक

म। यह भी जाना माना सत्य है कि अध्यापक को अपनी रुचि का उप विषय पढ़ाने में अन्य उप विषयों की तुलना में विशेष प्रसन्नता होती है। टीम टीचिंग के माध्यम से प्रत्येक अध्यापक को अपनी विशेष रुचि वाला उप विषय पढ़ाने का अवसर मिल जाता है।

(4) कक्षा पर नियंत्रण

यदि छात्रों की संख्या अधिक हो तो एक ही अध्यापक के लिए सभी छात्रों पर समान रूप से नियंत्रण सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में कक्षा में दो या दो से अधिक अध्यापक होने से सभी छात्रों पर समुचित नियंत्रण रखने में सुविधा हो जाती है।

(5) विचार-विमर्श विधियों के आयोजन में सुविधा

विचार विमर्श के आयोजन में सामान्यतः कक्षा को एक छोटे छोटे समूहों में विभाजित करना होता है कि विचार विमर्श भली भांति हो सके। यदि एक ही अध्यापक हो तो वह एक समय में एक ही समूह के विचार विमर्श में भाग ले सकता है।

टीम टीचिंग में दो या दो से अधिक शिक्षक भाग लेते हैं इस कारण अधिक समूहों को अध्यापक के मार्ग दर्शन का लाभ मिल सकता है।

सीमाएं

इस विधि की कुछ सीमाएँ भी हैं

(1) इस विधि का प्रयोग ऐसे विद्यालयों में नहीं किया जा सकता जहाँ एक विषय का एक ही अध्यापक हो। केवल ऐसे विद्यालयों में ही जहां एक विषय के दो या दो से अधिक अध्यापक हों, इस विधि का उपयोग किया जा सकता है।

(2) इस विधि की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापकों में टीम भावना हो। ऐसे अध्यापक जिनमें टीम भावना से काम करने की आदत न हो, इस विधि का प्रयोग नहीं कर सकते।

उक्त सीमाओं के होते हुए भी, जहां कहीं भी सम्भव हो, इस विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी इस विधि द्वारा पढ़ाने का प्रदर्शन आयोजित किया जाना चाहिए।

सारांश

दल शिक्षण का अभिप्राय अध्यापकों के एक दल द्वारा कक्षा के छात्रों को पढ़ाने से इसमें एक प्रमुख शिक्षक होता है। यह शिक्षक विषय वस्तु का प्रस्तुतिकरण करता है। अन्य अध्यापक आवश्यकतानुसार कक्षा में एक विशिष्ट क्रम में अध्यापन करते है। इस प्रकार यह एक संगठनात्मक शिक्षण युक्ति है जिसके अंतर्गत कई व्यक्ति मिलकर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्मिलित प्रयास करते है।

दल शिक्षण में शिक्षक-दल का गठन किया जाता है। इस दल में प्रकरण से सम्बन्ध रखने वाले अध्यापक लिए जाते हैं। एक वरिष्ठ अध्यापक दल का नेता होता है। अन्य अध्यापक इसे अपना सहयोग प्रदान करते हैं। छात्रों की संख्या यदि अधिक हो तो 'प्रमुख पाठ' जो कि दल-नेता द्वारा दिया जाता है के पश्चात दल छोटे छोटे उप समूह में बट जाता है जहाँ कि बालक सहयोगी अध्यापकों की देख रेख में कार्य करते हैं।

सर्वप्रथम ग्राम सभा-सत्र या प्रमुख पाठ आयोजित किया जाता है जिसमें दल नेता पूरे समूह के शिक्षण का नेतृत्व करता है तथा अन्य अध्यापक उसे सहयोग देते हैं। इसमें विद्यार्थियों को चर्चा करने या शंका समाधान का पूर्ण अवसर दिया जाता है। छात्रों की व्यक्तिगत कमजोरियों को दूर करने के लिए लघु सभा-सत्र ग्राम सभा सत्र के तुरन्त बाद आयोजित करते हैं। इसके उपरान्त समीक्षा सत्र होता है जिसमें शिक्षण की प्रभावशीलता के बारे में अनुमान लगाया जाता है।

दल शिक्षण की अनेक विशेषताएँ हैं। यह सह क्रियात्मक सिद्धान्त पर आधारित है तथा इसमें विशिष्ट अध्यापकों के शिक्षण का लाभ छात्रों को मिलता है। परन्तु इस विधि की कुछ सीमाएँ भी हैं। इस विधि का सफल प्रयोग उन बड़े विद्यालयों में किया जाना सम्भव है जहाँ एक विषय के कई अध्यापक हों तथा अध्यापकों में टीम भावना हो। इन सीमाओं के होते हुए भी यह विधि अधिक लोकप्रिय बन रही है।



अध्याय 17

पैनल-चर्चा-विधि

(Panel Discussion Method)

पैनल चर्चा विधि अंग्रेजी के शब्द "पैनल" म न्मी ह जिमका अथ ~ "लघ विशिष्ट समूह" । इस रूप म पैनल चचा विधि म किसी विषय वस्तु या प्रकरण पर प्रस्तुतिकरण एक अध्यापक के स्थान पर अध्यापको या व्यक्तियों क एक समूह द्वारा किया जाता ह । विश्व म ज्ञान का विस्तार गुणात्मक रूप म तजी से होता जा रहा ह ऐसी स्थिति म एक ही व्यक्ति को एक प्रकरण पर पूण ज्ञान हो, यह असम्भव नहीं तो भी सदिग्ध अवश्य ह । यदि विषय को विशेषज्ञो के समूह द्वारा पढाया जाये तो यह निश्चित ह कि य एक अध्यापक क पढाने की तुलना म अधिक प्रभावी सिद्ध होगे ।

पैनल चर्चा का प्रारम्भ वष 1929 म हैरी ए ओवरस्ट्रीट द्वारा कक्षा शिक्षण के रूप म किया गया । उ होने इस विधि पर प्रयोग भी किए परन्तु इस *विधि का पैनल के नाम स नहीं पुकारा ज ता था । इस विधि को 'पैनल चर्चा* विधि (Panel Discussion Method) का नाम वष 1932 म अमरिका के एक राष्ट्रीय स्तर के प्रौढ शिक्षा सम्मलन म 'प्रौढ शिक्षा सघ (Association for *Adult Education) द्वारा दिया गया । कार्ट राइट*[1] *(Cart Wright)* का यह मत है कि "अमेरिका म प्रौढ शिक्षा सघ के वार्षिक सम्मेलन म इस विधि का नाम पैनल चचा रखा गया ।"

प्रजातान्त्रिक युग म विचार विमश तथा वाद विवाद के कौशल का विकास इसकी सफलता के लिए किया जाना आवश्यक है जिसस कि प्रत्येक नागरिक प्रजातन्त्र म महत्त्वपूण भूमिका निभा सके । इसम अधिगम उच्च स्तर का होता है । पनल चर्चा विधि अ य विधियो की तुलना म अधिक प्रभावी मानी

---

1 Morse A Cart Wright Panel Discus son Adult Education in Action P 290 92

गई है कारण कि इस विधि में समूह को मार्ग-दर्शन देने के लिए एक से अधिक व्यक्ति होते हैं जबकि अन्य विधि में यह कार्य एक व्यक्ति अर्थात् अध्यक्ष को सौंपा जाता है। यह आधुनिक शिक्षण विधि मानी जाती है तथा आज भी इसका उपयोग कक्षा शिक्षण, रेडियो व टलीविजन आदि पर महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा करने के लिए किया जाता है।

पैनल चर्चा विधि का व्यापक उपयोग इस दृष्टि से किया जाता है कि इसमें एक समस्या पर व्यक्ति अलग अलग दृष्टिकोण से अपना मत व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए "राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्त्व" पर पैनल चर्चा करते समय यदि समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ व शिक्षाशास्त्री आदि के एक समूह को एक साथ बैठाया जाता है तो वे समस्या के अपने अपने पक्ष से सम्बन्धित बातों का विश्लेषण एक साधारण व्यक्ति की तुलना में अच्छी प्रकार से कर सकेंगे। इस प्रकार पैनल चर्चा विधि आधुनिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

पैनल चर्चा का अर्थ (Meaning of Panel Discussion)

पैनल-चर्चा विधि में शिक्षण का कार्य विशेषज्ञों के एक समूह द्वारा आपसी चर्चा के माध्यम से किया जाता है। यह चर्चा "गोल मेज चर्चा" (Round Table Discussion) तथा समूह-चर्चा (Group Discussion) से भिन्न इस रूप में है कि इसमें चर्चा कराये जाने का नेतृत्व एक लघु समूह के हाथ में होता है। इस विधि में प्रकरण या समस्या से सम्बन्धित अलग अलग क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं जो कि बारी-बारी से उस समस्या पर विचार व्यक्त करते हैं। इस प्रकार विद्यार्थियों को विशेषज्ञों के विचार सुनने व समझने का अवसर मिलता है।

(1) कार्ट राइट[1] (Cart Wright)

"पैनल-चर्चा विचार विमर्श की आधुनिक विधि है जिसमें चर्चा का नियन्त्रण समूह द्वारा किया जाता है।"

(2) स्ट्रक[2] (Struck)

"पैनल चर्चा में चार से आठ व्यक्तियों का एक समूह किसी समस्या पर आपसी विचार विमर्श करता है। यह चर्चा जन-समूह या कक्षा अथवा विद्यार्थियों के समक्ष की जाती है।"

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पैनल चर्चा विधि एक ऐसी विधि है जिसमें विशेषज्ञों तथा विषयाध्यापकों के समूह द्वारा किसी समस्या पर चर्चा

---

1 Ibid P 392

2 Struck F T, Creative Teaching New York John Wiley and Sons Inc P 269

विद्यार्थियों के समक्ष की जाती है। प्रत्येक विशेषज्ञ अपना मत रखने के लिए स्वतन्त्र होता है। इस विधि से समस्या को अधिक गहराई से विश्लेषण कर समझने का पूर्ण अवसर विद्यार्थी को मिलता है।

पैनल-चर्चा विधि के उद्देश्य (Purpose of Panel Discussion)

पैनल चर्चा विधि का आयोजन इस प्रकार किया जाता है कि निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति कर सकें—

(1) विद्यार्थियों को समस्या का पूर्ण विश्लेषण करने में सहायता एवं मार्ग दर्शन देना।
(2) समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं एवं तथ्यों को विशेषज्ञों की सहायता से प्राप्त करना।
(3) प्रजातान्त्रिक मूल्यों को विद्यार्थियों में विकसित करना।
(4) विद्यार्थियों को तार्किक चिन्तन के लिए प्रेरित करना।
(5) शिक्षण को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करना।
(6) मनोरंजन के माध्यम से शिक्षण का अवसर प्रदान करना।

पैनल-चर्चा के प्रकार
(Types of Panel Discussion)

पैनल-चर्चा का केन्द्र बिन्दु कोई एक समस्या होती है। यह समस्या यदि सामाजिक हो तो इसका विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से किया जाना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि समस्या शैक्षिक हो तो उस पर चर्चा शैक्षिक दृष्टि से करनी होगी। इस रूप में पैनल चर्चा को दो प्रकरणों में अर्थात् सार्वजनिक पैनल चर्चा तथा शैक्षिक पैनल-चर्चा के रूप में बांटा जा सकता है।

सामाजिक पैनल चर्चा का उद्देश्य सामाजिक मूल्यों को आधार बनाकर किसी विषय पर चर्चा की जाती है। इसे सार्वजनिक रूप से किया जाता है। ये प्रकरण सामान्य रुचि के जैसे महंगाई की समस्या, प्रदूषण की समस्या, जनसंख्या समस्या, बेरोजगारी की समस्या आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। इनका आम व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता है अतः इनको सभी लोगों के समक्ष विभिन्न दृष्टिकोणों से रखने के लिए सार्वजनिक पैनल चर्चा की जाती है।

आजकल कुछ ऐसे माध्यम हैं जिनसे जन साधारण तक आसानी से विचारों को पहुँचाया जा सकता है जैसे रेडियो, टेलीविजन आदि। इसलिए सार्वजनिक पैनल चर्चा अक्सर इनके माध्यम से आयोजित की जाती है। हम प्रति वर्ष बजट प्रस्तुतिकरण के बाद ऐसी सार्वजनिक चर्चाएं रेडियो तथा टेली

विज्ञन पर सुनत है । इन चर्चाओं का उद्देश्य जन साधारण तक सूचनाओं एवं तथ्यों को रोचक ढंग से पहुँचाना तथा सामाजिक मूल्यों का निर्धारण करना है ।

शक्षिक पैनल-चर्चा म केन्द्र बिन्दु बालक है जिसे उस समस्या म सम्बंधित तथ्यों, सूचनाओं आदि का सरल एवं स्पष्ट रूप से अवगत कराना है । इसम विचार विमर्श कक्षा-कक्ष अथवा विद्यालय के किसी बड़े कमरे म किया जाता है तथा निम्न जान वाले प्रकरण बालकों की रुचि एवं स्तर के होने हैं।

पैनल-चर्चा के क्रियान्विति के चरण
(Steps for Implementing Panel Discussion)

जैसा कि प्रारम्भ म स्पष्ट किया जा चुका है, पैनल चर्चा एक लघु समूह द्वारा की जाती है । इस चर्चा का पूर्व आयोजन, चर्चा म भाग लेने वाले सदस्यों का चुनाव आदि की व्यवस्था करने की दृष्टि स एक अनुदेशक होता है । चर्चा म यदि समूह भिन्न दृष्टिकोण रखें तो उनको सार संक्षेप म प्रस्तुत कर किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचने के लिए एक अध्यक्ष की भी आवश्यकता होती है । यदि हम इस दृष्टि से विचार करें तो पैनल-चर्चा को भली-भांति सम्पन्न कराने के लिए निम्न व्यक्तियों की आवश्यकता होती है—

(1) अनुदेशक (Instructor)
(2) अध्यक्ष (Chairman)
(3) विशेषज्ञ (Specialists)
(4) विद्यार्थी अथवा श्रोतागण
(Students or Audience) ।

अनुदेशक (Instructor)

अनुदेशक एक कुशल एवं योग्य अध्यापक होना चाहिए । इस व्यक्ति का चुनाव विद्यालय के विषयाध्यापकों म से ही किया जाना चाहिए । उदाहरण के लिए यदि पैनल-चर्चा रसायनशास्त्र के किसी प्रकरण पर होनी है तो इस कार्य को रसायनशास्त्र का अध्यापक ही ठीक प्रकार से सम्पन्न कर सकेगा । भाषा या समाजशास्त्र का अध्यापक पैनल-चर्चा की व्यवस्था ठीक प्रकार से; विषय-वस्तु के विचार विमर्श के समय आवश्यक उपकरण, मॉडल, चार्ट आदि की जानकारी के अभाव म न कर सकेगा । विषयाध्यापक को पैनल-चर्चा की पूर्ण व्यवस्था जैसे चर्चा के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव, बैठक व्यवस्था, पैनल के सदस्यों को आमंत्रित करना, अध्यक्ष का चुनाव आदि की व्यवस्था करनी होगी । यह कार्य ठीक प्रकार से समयानुसार हो सके, इसके लिए योग्य, कुशल एवं मिलनसार

विषयाध्यापक ना होना चाहिए। इस प्रकार अनुदेशक पैनल-चर्चा के आयोजन कराने की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। आयोजन की सफलता अनुदेशक की सूझबूझ तथा पूर्व नियोजन पर निर्भर है जितनी कुशलता से वह इस कार्य को करेगा, पैनल चर्चा उतनी ही सुव्यवस्थित होगी।

विशेषज्ञ (Specialist)

समूह के समक्ष समस्या पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विशेषज्ञों द्वारा विचार रखे जाते है। इनकी संख्या के बारे में शिक्षाविदों की राय यह है कि यह पैनल न अधिक छोटा और न हो अधिक बड़ा होना चाहिए। यदि पैनल छोटा होगा तो विद्यार्थियों को सीमित विचार सुनने को मिलेंगे। अधिक बड़ा समूह होने पर पैनल में वार्ता देने वालों की संख्या अधिक होगी जो कि ...कार उत्पन्न करने वाली होगी।

स्ट्रक[1] (Struck) का मत है कि "पैनल चर्चा का समूह छोटा तथा सदस्यों की संख्या 4 से 8 के मध्य होनी चाहिए।" सामान्यतः पैनल में सदस्यों की संख्या चार या पांच ही रखी जाती है। इसकी पृष्ठभूमि में यह सिद्धान्त है कि यदि एक व्यक्ति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए 10 मिनट भी ले तो यह चर्चा लगभग 1 घंटे की हो जाती है जो कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के लिए पर्याप्त है। इससे अधिक समय की चर्चा से वे ऊब जायेंगे। अतः विशेषज्ञों की संख्या 4 या 5 ही पर्याप्त है। उच्च-स्तर पर यह संख्या चार से दस तक हो सकती है।

पैनल चर्चा के लिए आमन्त्रित व्यक्ति यदि विद्यालय से बाहर के व्यक्ति हो तो, यह सर्वोत्तम है। परन्तु व्यक्ति उस विषय के पूर्ण ज्ञाता तथा पर्याप्त अनुभव रखने वाले होने चाहिए। इससे विद्यार्थियों को विभिन्न अनुभवों को सुनने एवं समझने का सुअवसर मिलेगा। यदि विद्यालय से बाहर के व्यक्ति उपलब्ध न हो तो विद्यालय के विषयाध्यापकों से भी पैनल-चर्चा कराई जा सकती है।

पैनल चर्चा में भाग लेने वाले सदस्य शांत एवं गंभीर प्रकृति के होने आवश्यक है। यदि ये शीघ्र उत्तेजित होने वाले होंगे तो इससे पैनल-चर्चा में प्रजातान्त्रिक वातावरण का निर्माण न हो सकेगा। प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। इन व्यक्तियों में विचार व्यक्त करने की कला, दूसरों के विचारों को शान्तिपूर्वक सुनने का गुण आदि होना आवश्यक है।

अध्यक्ष

अध्यक्ष का पद पैनल चर्चा के क्रिया चयन में सबसे महत्त्वपूर्ण है। अध्यक्ष को चर्चा के प्रारम्भ से लेकर अंत तक सक्रिय रहना पड़ता है। चर्चा को एक तरह से विचारों में स्पष्टीकरण लाने का तरीका माना गया है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रकरण से संबंधित विभिन्न भ्रांतियों पर खुल कर चर्चा हो। यह सब कार्य अध्यक्ष की कुशलता पर निर्भर करता है।

1. Ibid P 269

अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो न केवल पद मे ही पैनल के सदस्या से वरिष्ठ हो अपितु विषय का पूर्ण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति होना चाहिए। उसम नेतृत्व करने के सभी गुण होने चाहिए। सभाम्रा का नेतृत्व एव विभिन्न अवसरो पर उठने वाले बिन्दुओ को उभारने की कला से युक्त व्यक्ति एक सफल अध्यक्ष की भूमिका निभा सकता है।

अध्यक्ष सभा के सभी सदस्या का ध्यान रखने वाला व्यक्ति होता है। उसे सभा-भवन म बैठे समस्त विद्यार्थिया की अधिगम परिस्थितिया का ज्ञान भी होना चाहिए अर्थात् बालक सहज एव रोचक ढग से अधिक समझते है।

अत अध्यक्ष को बीच बीच म चर्चा को रोचक बनाने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

विद्यार्थी अथवा श्रोतागण

इस विधि म विद्यार्थिया का समूह अन्य विधिया की तुलना मे बडा होता है। पैनल चर्चा का उद्देश्य विद्यार्थिया को तथ्या एव सूचनाओ से अवगत कराना है। अत पैनल-चर्चा म विद्यार्थिया की उपस्थिति भी अनिवार्य है। चर्चा को इस रूप म आयोजित किया जाता है कि बालक उसे भली भाति समझ सके। यदि उनको कोई शका रह जाती है तो वे चर्चा के अन्त म प्रश्न भी पूछते है।

विद्यार्थियो की बैठक व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि उन्हे पर्याप्त हवा एव रोशनी मिले जिससे कि उन्हे थकान का अनुभव शीघ्रता से न हो सके। चर्चा म भाग लेने वाले व्यक्तिया को वे अपने स्थान से ठीक प्रकार से देख सके तथा सुन सकें।

पैनल चर्चा का आयोजन

पैनल चर्चा प्रारम्भ करने से पूर्व विद्यार्थिया को अपने स्थान पर पूर्व मे ही बैठा दिया जाता है। यदि विद्यार्थिया की सख्या अधिक है तो ध्वनि-विस्तार यन्त्रो की व्यवस्था कर दी जाती है। पैनल-चर्चा म भाग लेने वाले विशेषज्ञ तथा अध्यक्ष को एक ऊँचे स्थान पर इस प्रकार से बैठाया जाता है कि सभी बालक उनको अपने स्थान पर बैठे बैठे ठीक प्रकार से देख सकें।

पैनल-चर्चा का प्रारम्भ अध्यक्ष द्वारा प्रकरण की ओर ध्यान आकर्षित करने वाले बिन्दुओ पर प्रकाश डालते हुए किया जाता है। इससे यह प्रकट होना चाहिए कि प्रकरण पर चर्चा किया जाना महत्त्वपूर्ण है। अध्यक्ष द्वारा उद्बोधन सक्षिप्त, वस्तुनिष्ठ, सद्भावना लिए हुए सौहार्द्रपूर्ण वातावरण के निर्माण करने वाला होता है। अध्यक्ष पैनल के विभिन्न सदस्या का सक्षिप्त परिचय भी कराता है।

अध्यक्षीय उद्बोधन के उपरान्त विशेषज्ञ प्रकरण पर अपना-अपना विचार प्रस्तुत करते है। इस प्रस्तुतिकरण म वे अपने पक्ष को मजबूत बनाने के लिए

तक देते हैं तथा विद्यार्थियों को अपने अनुभवों से लाभान्वित कराते हैं। विशेषज्ञों को विचार व्यक्त करने के लिए 10 से 15 मिनट का समय दिया जाता है। इस प्रविधि में उन्हें अपनी बात को प्रभावी रूप से रखना होता है। विद्यार्थी वार्ता के बीच में प्रश्न नहीं पूछते। यदि वे ऐसा करेंगे तो वार्ता का क्रम टूट जायगा।

जब वार्ताएँ एवं चर्चा समाप्त हो जाती है तब छात्र उन बिन्दुओं पर प्रश्न पूछ सकते हैं जो कि उन्हें स्पष्ट नहीं हो सके हों। विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान करने का प्रयास पहिले विशेषज्ञ करते हैं। यदि वे उत्तर देने में असमर्थ रहे हों तो अध्यक्ष उनका समाधान प्रस्तुत करता है। अन्त में अध्यक्ष पैनल-चर्चा का सार संक्षेप अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है।

कार्ट राइट[1] (Cart Wright) ने समय की दृष्टि से पैनल-चर्चा-कार्यक्रम का विभाजन-चक्र बताते हुए लिखा है—

"पैनल-चर्चा में लिया गया समय यद्यपि प्रकरण की प्रकृति तथा विद्यार्थियों के स्तरानुसार भिन्न हो सकता है। फिर भी सामान्यतः प्रथम 10 मिनट अध्यक्षीय भाषण के लिए दिये जाते हैं जिसमें वह चर्चा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालता है। इसके बाद 40 मिनट तक विशेषज्ञों द्वारा चर्चा की जाती है जिसमें यथासंभव सबको बराबर समय दिया जाता है। अगले 40 मिनट में शंका समाधान किया जाकर अध्यक्ष द्वारा पैनल-चर्चा का सार संक्षेप प्रस्तुत कर दिया जाता है। इस प्रकार पैनल चर्चा लगभग 90 मिनट तक चलती है।"

पैनल-चर्चा का समय एक घण्टे से डेढ़ घंटे के मध्य रखा जाना चाहिए। छोटे विद्यार्थी अधिक समय तक एकाग्रचित्त होकर नहीं बैठ सकते इसलिए इनके लिए पैनल-चर्चा एक घंटे से अधिक की नहीं होनी चाहिए। उच्च कक्षा में यह चर्चा डेढ़ घंटे तक की सीमा तक आयोजित की जा सकती है।

पैनल-चर्चा के सैद्धान्तिक आधार

पैनल-चर्चा-विधि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है

(1) यह बालक को मौलिक चिन्तन का अवसर प्रदान करता है।

(2) इससे उच्च स्तरीय मानसिक विकास होता है क्योंकि यह चिन्तन, मनन एवं तर्क पर आधारित है।

(3) अधिगम के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

(4) यह प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

पैनल चर्चा विधि की विशेषताएँ

इस विधि में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

(1) प्रकरण या समस्या को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने के लिए यह विधि विद्यार्थी को पर्याप्त अवसर देती है।

---

1 Ibid P 392

(2) इस विधि से बालकों में तर्क करने की शक्ति का विकास किया जाना सम्भव है।
(3) बालक में समस्या-समाधान की प्रवृत्ति जन्म लेती है।
(4) सृजनात्मक चिन्तन के विकास के लिए यह एक उत्तम विधि है।
(5) उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए यह एक लोकप्रिय विधि है जिसमें व कम समय में अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।
(6) विद्यार्थियों में प्रजातान्त्रिक मूल्यों का विकास इस विधि से किया जाना सम्भव है।
(7) इसको "विचारों को स्पष्ट करने वाली" विधि कहा गया है। शंका-समाधान करने की यह एक उत्तम विधि है।

उपरोक्त बिन्दुओं से यह स्पष्ट है कि यह एक उत्तम विधि है। इसका उपयोग उच्च कक्षाओं में महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर पर किया जाता है। दूरदर्शन तथा रेडियो पर भी पैनल-चर्चा देखने एवं सुनने को मिलती है।

पैनल चर्चा विधि की सीमाएँ

(1) पैनल चर्चा से कभी-कभी विचारों में भेद हो सकता है।
(2) पैनल के सभी सदस्यों को समान समय व अवसर दिया जाना सम्भव नहीं है।
(3) कभी-कभी आलोचना, केवल आलोचना के लिए की जाती है, इससे भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है।
(4) छोटी कक्षाओं के छात्रों के लिए यह उपयोगी विधि नहीं है।
(5) पाठ्यक्रम के सभी प्रकरणों पर चर्चा किया जाना सम्भव नहीं है।
(6) इससे महाविद्यालय के समय-विभाग चक्र में परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि कोई भी एक कालांश समय विभाग चक्र में डेढ़ घंटे का नहीं होता है।
(7) समूह के सदस्यों के दो भागों में बटने की सम्भावना पैनल चर्चा से बनती है।
(8) अधिकांश समय तक विद्यार्थी चर्चा को सुनने में लगे रहते हैं अर्थात् क्रियाशीलता का स्तर कम रहता है।
(9) विद्यार्थियों का समूह बड़ा होता है अतः नियन्त्रण की समस्या अक्सर उत्पन्न होती है।

उपरोक्त सीमाओं के होते हुए भी यह एक अच्छी शिक्षण विधि है इसमें विद्यार्थी को एक से अधिक शिक्षकों या विशेषज्ञों के विचार सुनने का सुनहरा

अवसर मिलता है तथा वह शंकाओं का समाधान भी कर सकता है। यह विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करती है।

सारांश

पैनल-चर्चा का उपयोग शिक्षण विधि के रूप में ए. ओवरस्ट्रीट ने किया तथा इसका नामकरण अमेरिका में एक प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन के बाद में किया गया। यह एक आधुनिक विधि है जिसमें समूह-चर्चा नियंत्रित रूप में की जाती है। इस चर्चा में विषय के विशेषज्ञ, जिनकी संख्या चार से आठ तक हो सकती है, भाग लेते हैं तथा अध्यक्ष इन सबके विचारों को समन्वित कर समूह के समक्ष प्रस्तुत करता है। पैनल-चर्चा का केन्द्र बिन्दु कोई शैक्षिक समस्या होती है जो कि विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम से जुड़ी होती है।

पैनल-चर्चा के आयोजन में विषयाध्यापक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसमें आवश्यकतानुसार अनुदेशक, विशेषज्ञ तथा श्रोतागण होते हैं तथा चर्चा का नियंत्रण अध्यक्ष, जो कि एक वरिष्ठ एवं अनुभवी व्यक्ति होता है, के द्वारा किया जाता है। अध्यापक को आयोजन के समय स्थान, आवश्यक सामग्री, बैठक व्यवस्था आदि का ध्यान रखना चाहिए तथा इसकी पूर्व योजना तैयार कर लेनी चाहिए। पैनल चर्चा की अवधि प्रकरण की प्रकृति तथा विद्यार्थियों के स्तर पर निर्भर करती है। सामान्यतः एक वक्ता को दस मिनट से अधिक समय नहीं दिया जाना चाहिए।

यह एक उत्तम शिक्षण-विधि है। जिसमें विद्यार्थी को प्रकरण से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोण सुनने को मिलते हैं। इनका वह विश्लेषण तथा संश्लेषण करता है। इससे उसमें सृजनात्मकता तथा उच्च मानसिक क्रियाओं का विकास होता है।

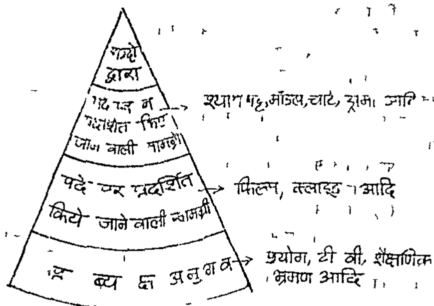
अध्याय 18

क्षेत्र अथवा शैक्षिक पर्यटन

(Field Trips)

बालक ज्ञानार्जन करते समय वस्तुओं को देखता व छूता है तथा उसका प्रत्यक्ष अनुभव करता है। यदि प्रत्यक्ष रूप में किसी वस्तु का अनुभव करने की अपेक्षा वह केवल उसका चित्र देखे तो इस विधि से प्राप्त ज्ञान इतना अधिक व्यावहारिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए यदि बालक को सीमेन्ट बनने की प्रक्रिया को चित्रों में समझाया जाय तथा इन्हीं को प्रत्यक्ष रूप में सीमेन्ट का बनाना किसी कारखाने में दिखाया जाय तो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त अनुभव अधिक स्थायी एवं प्रभावी होंगे। इस सम्बन्ध में एक पुरानी कहावत है 'एक औंस प्रत्यक्ष अनुभव टनों सैद्धान्तिक ज्ञान से अधिक अच्छे होते हैं।"

एडगर डेल[1] ने कक्षा शिक्षण में प्रयोग किये जा सकने वाले अधिगम-अनुभवों को एक शंकु के माध्यम से अग्रांकितानुसार प्रदर्शित किया है



1 Dale Edgar Audio Visual Method in Teaching Holt Rinehart and Winston

डेल प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दृश्य-श्रव्य सामग्री का उनकी प्रभावशीलता के आधार पर वर्गीकरण किया । उनका यह मानना है कि प्रत्य ा अनुभव ज्ञान को आधार प्रदान करते है । किसी वस्तु या प्रक्रिया से सीधा सम्पर्क कर बालक उपयोगी अनुभवों को स्वयं अर्जित करता है जबकि अन्य प्रकार की शिक्षण-सहायक सामग्री उस वस्तु की कल्पना करने के लिए मात्र आधार प्रदान करती है । यहां प्रमुख कारण है कि प्रत्यक्ष ज्ञान बालक के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालता है । अत यह स्पष्ट है कि बालकों को पढ़ाते समय उनको प्रत्यक्ष अनुभव भी कराये जाने चाहिए । ये प्रत्यक्ष अनुभव, जैसा कि डेल के चित्र से स्पष्ट है, शैक्षिक भ्रमण आदि के माध्यम से कराये जा सकते हैं । इस सम्बन्ध में ट्रो[1] लिखते हैं कि "दृश्य-सामग्रियों में सर्वाधिक प्रभावशाली प्रभाव वास्तविक वस्तुएँ डालती हैं । उनको देखने के लिए विद्यालय से बाहर जाना हो तो शैक्षिक भ्रमण आयोजित किये जाते है ।" उनका यह मानना है कि जो ज्ञान बालक मात्र शब्दों के माध्यम से कक्षा में प्राप्त करते हैं उसमें बालक की केवल कल्पना शक्ति एवं स्मरण शक्ति ही क्रियाशील रहती है । इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान को ये बालक शीघ्र भूल जाते हे जबकि शैक्षिक भ्रमण आदि में बालक प्रत्यक्ष सूचनाएँ प्राप्त कर ज्ञान को प्रभावशाली रूप से ग्रहण करते है । अत शैक्षिक-भ्रमण शैक्षिक-दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है ।

क्षेत्र-भ्रमण का प्रचलन प्राचीन समय से ही चलता आ रहा है । शिक्षा-क्षेत्र के विचारक अरस्तू, सुकरात, कमेनियस आदि ने शैक्षिक भ्रमण के महत्त्व को स्वीकार किया है । परन्तु इसका विधिवत् रूप से प्रयोग रैन ने भूगोल व इतिहास शिक्षण में किया । इन्होंने शैक्षिक भ्रमण विधि का विकास किया तथा इसके द्वारा खुले, प्राकृतिक एवं स्वतन्त्र वातावरण में बालकों को भ्रमण करा कर उक्त विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव कराया । यह ज्ञान स्थायी तथा कल्पना के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देता है । अत भ्रमण विधि का विज्ञान, सामाजिक ज्ञान इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि विषयों के शिक्षण में अत्यधिक महत्त्व है ।

पर्यावरण के मुख्यत दो भाग निम्नानुसार है—

(1) सांस्कृतिक पर्यावरण ।

(2) भौतिक पर्यावरण ।

सांस्कृतिक पर्यावरण मनुष्य की सूझ-बूझ, योग्यता, परिश्रम तथा उसकी बुद्धिमत्ता का परिणाम है । यह कृत्रिम है और मनुष्य ही इसका जन्मदाता है । इसके अन्तर्गत नगर, कस्बे, आवागमन के मार्ग तथा साधन, मकान, नहरें,

1 Trow William Clark Psychology in Teaching and Learning Eurasia Publishing House New Delhi P 70

सस्थाएँ कल कारखाने आदि सम्मिलित है। भौतिक पर्यावरण म धरातल की बनावट जल राशिया, जलवायु खनिज नदिया प्राकृतिक वनस्पति पशु इत्यादि सम्मिलित हैं। विज्ञान तथा सामाजिक ज्ञान विषयो म अधिकतर इन्ही का अध्ययन सम्मिलित होता है। अत भ्रमण आयोजित कर इन विषया का बहुत सा ज्ञान इस विधि द्वारा सरलतापूवक दिया जा सकता है।

शैक्षिक पर्यटन का अर्थ

भ्रमण का अथ ह यात्रा जो कि कुछ व्यक्तिया के साथ आमोद प्रमोद की दृष्टि म लघु अवधि के लिए की गई हो। इस प्रकार के भ्रमण सुखद परिवतन की दृष्टि म अवसर किये जात है। शैक्षिक भ्रमण म यह सुखद परिवतन शिक्षा स जुडा रहता है। इस प्रकार शैक्षिक भ्रमण म विद्यार्थी को विद्यालय की चार-दीवारी स बाहर ले जाकर वस्तुओ अथवा प्रक्रियाओ का प्रत्यक्ष एव वास्तविक ज्ञान कराया जाता ह।

शैक्षिक पयटन से तात्पय उस शैक्षिक प्रवृत्ति के आयोजन स ह जिसम शिक्षार्थी अपन विद्यालय कक्ष के बाहर जाकर सास्कृतिक अथवा प्राकृतिक पर्यावरण का प्रत्यक्ष अवलोकन एव निरीक्षण करके पाठयक्रम क किसी महत्वपूण अश का अध्ययन करत है। इस दृष्टि स सैर सपाटा वन विहार उत्सव-यात्राए शैक्षिक पयटन की श्रेणी म नही आत है। पयटन का उद्देश्य मूलत शैक्षणिक होता है। यदि पयटन स शैक्षिक उद्देश्या की पूर्ति नही होती तो वह शैक्षिक पयटन नही कहा जा सकता ह।

शैक्षिक पयटन क अथ का शिक्षाविदा न निम्न प्रकार से स्पष्ट किया ह

(1) पियस एव लोरबर (Pierce and Lorber)

'शैक्षिक पयटन का उद्देश्य बालक को कक्षा स बाहर वास्तविक विश्व का ज्ञान कराना ह।

(2) हेनरी जानसन (Honery Johnson)

शैक्षिक पयटन प्रविधि जो कि प्राफेसर रन द्वारा विकसित की गई, क द्वारा खुल स्वतन्त्र एव प्राकृतिक वातावरण म प्राकृतिक अध्ययन भूगाल इतिहास आदि विषया का वास्तविक शिक्षण ह। इसम बालक का सामाजिक प्रशिक्षण का अवसर भी मिलता ह।

(3) के एस याजनिक (K S Yaznick)

यह वास्तव म सत्य है कि कोई भी शिक्षण सहायक सामग्री शैक्षिक पयटन का स्थान नहीं ले सकती क्योकि यह बालक को वास्तविक एव प्रत्यक्ष ज्ञान कराते है। जब कभी भी सभव हो बालको को शैक्षिक पयटन

के लिए विद्यालय से बाहर ले जाया जाना चाहिए ताकि स्वयं के अनुभवों से ज्ञान प्राप्त कर सकें। स्वयं का अनुभव बालक का एक प्रभावशाली शिक्षक है।"

(4) स्ट्रक (Struck)

'शैक्षिक पर्यटन विद्यालय की चारदीवारी से बाहर शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक सुनियोजित भ्रमण है जिसमें बालक मनोरंजन के साथ वास्तविक शैक्षिक अनुभव प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शैक्षिक पर्यटन विद्यालय से बाहर अल्पावधि का एक शैक्षिक भ्रमण है इसे शैक्षिक यात्रा (Educational Tour) नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये यात्राएँ लम्बी अवधि की होती हैं। शैक्षिक पर्यटन एक शिक्षण प्रविधि है जिसमें शिक्षार्थी को एक सुनियोजित विधि से वस्तु, संस्था या किसी प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाता है। यह एक प्रभावी प्रविधि है क्योंकि इसके द्वारा शिक्षार्थी स्वयं ज्ञानार्जन करता है।

शैक्षिक पर्यटन का महत्त्व (Significance of Field Trips)

शैक्षिक पर्यटन का आयोजन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, इनमें से मुख्य मुख्य निम्न हैं—

(1) निरीक्षण करने की योग्यता का विकास

हमारे पर्यावरण में असीमित ज्ञान भरा हुआ है परन्तु इस ज्ञान का लाभ वह व्यक्ति ही उठा सकता है जिसमें निरीक्षण करने की योग्यता विकसित हो। शैक्षिक पर्यटन द्वारा शिक्षार्थी की निरीक्षण करने की योग्यता को विकसित किया जा सकता है। वह जब प्रकृति के इस अनन्त भण्डार को देखता है तो अपने विषय या शैक्षिक समस्या से सम्बन्धित ज्ञान अलग से पहिचानता है तथा उसका सूक्ष्म निरीक्षण करता है।

(2) कल्पना करने की योग्यता का विकास

कल्पना का आधार प्रत्यक्ष ज्ञान है। जिस बालक ने नदी को कभी नहीं देखा हो उसे गंगा, यमुना या अमेजन नदी का वर्णन सुनाना हास्यास्पद है। वास्तव में हम कल्पना के आधार पर ही विभिन्न देशवासियों के भोजन, रहन-सहन, पशु-पक्षी, वनस्पति, उद्योग और व्यापार, कल-कारखाना आदि का अनुमान लगाते हैं क्योंकि न तो यह सम्भव हो है और न वांछनीय कि हम प्रत्येक स्थान या देश का भ्रमण कर वहाँ का प्रत्यक्ष ज्ञान अर्जित करें। परंतु इस कल्पना को जागृत करने के लिए शिक्षार्थी को स्थानीय पर्यावरण का अधिक से अधिक प्रत्यक्ष ज्ञान करा देना चाहिए। इससे उसकी कल्पना

करने की योग्यता का विकास होगा यह तर्क शैक्षिक पर्यटन में लगाया जा सकता है।

(3) कक्षा-कार्य का पूरक

पर्यटन कक्षान्तर्गत शिक्षण की पूरक प्रवृत्ति के रूप में भी आयोजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये नागरिकशास्त्र में विधान सभा का प्रकरण कक्षा में पढ़ाया गया हो तो विधान सभा के ज्ञान को स्पष्ट एवं अधिक स्थायी बनाया जा सकता है। इस रूप में पर्यटन की प्रवृत्ति कक्षा-कार्य की पूरक प्रवृत्ति बन जाती है।

(4) अनौपचारिक शिक्षण विधि

शिक्षाशास्त्रियों का यह मत है कि शिक्षण की विधियां जितनी अनौपचारिक होंगी शिक्षार्थी अधिगम अर्जित करने की दृष्टि से उतने ही अधिक स्वाभाविक रूप में प्रयत्न करेंगे। भ्रमण विधि में कक्षा की औपचारिकता समाप्त हो जाती है और शिक्षार्थी अपने शिक्षक के अधिक सम्पर्क में आते हैं। वे स्वाभाविक ढंग से वार्तालाप कर अपनी कठिनाइयों का समाधान प्राप्त करते हैं।

(5) शिक्षण में नवीनता

पर्यटन प्रविधि के अपनाने से कक्षा के प्रतिदिन के कार्य में नवीनता का तत्त्व आता है। विद्यार्थी प्रतिदिन विद्यालय में कक्षा-कक्ष में बैठकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। जब उन्हें पर्यटन के लिए ले जाया जाता है तो उनकी शिक्षण-परिस्थिति बदल जाती है यह नवीनता शिक्षार्थी को उत्साहित करने में समर्थ होती है तथा जो शिक्षार्थी कक्षा में चुपचाप और निष्क्रिय बैठे रहते हैं वे भी भ्रमण विधि के द्वारा शिक्षण आयोजित करने पर अपना योगदान देने के लिए प्रेरित हो जाते हैं।

(6) वैयक्तिक गुणों का विकास

इस विधि में बालक स्वयं अनुभव अर्जित करता है। पर्यटन विधि तो उसे एक अवसर प्रदान करती है। इस प्रक्रिया में बालकों में परस्पर सद्भाव, सहयोग की भावना, सहनशीलता की भावना, मेल-जोल से कार्य करने की प्रवृत्ति आदि सद्गुणों का विकास होता है क्योंकि भ्रमण के समय अनेक ऐसी परिस्थिति पैदा होती है जहां परस्पर सहयोग करना तथा मेलजोल करना आवश्यक हो जाता है।

(7) अभिरुचियों का विकास

इस विधि के आयोजन से शिक्षार्थी विषय के शिक्षण में और अधिक रुचि लेने लगते हैं क्योंकि वे यह समझने लगते हैं कि उनका विषय ज्ञान पर्यावरण को

समझने में सहायक होता है और इस प्रकार शिक्षण की प्रयोजनशीलता स्पष्ट होती है।

शैक्षिक पर्यटन के महत्त्व के सम्बन्ध में माफत[1] (Maffat) लिखते हैं "पर्यटन बालक को प्राकृतिक प्रयोगशाला में विचरण करने का अवसर प्रदान करता है। प्राकृतिक-सम्पदा एवं साधना के निरीक्षण अथवा अवलोकन से उस आधारभूत ज्ञान प्राप्त होता है जो कि एक सभ्य नागरिक बनने में उसकी सहायता प्रदान करता है।

शैक्षिक पर्यटन के उद्देश्य (Objectives of Field Trips)

शैक्षिक पर्यटन शिक्षार्थियों के अनुभवों में वृद्धि करने के लिए विद्यालय की चारदीवारी से उन्हें बाहर ले जाना तथा शिक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण किसी स्थान, संस्था या प्रक्रिया का प्रत्यक्ष ज्ञान कराना है। शैक्षिक पर्यटन आयोजित करने के निम्न उद्देश्य होते हैं—

(1) शिक्षार्थी को प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए अवसर प्रदान करना।
(2) समाज या समुदाय का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।
(3) पर्यटन के माध्यम से व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुणों का शिक्षार्थी में विकास करना।
(4) बालक में अपने पर्यावरण को जानने की उत्सुकता जागृत करना।
(5) शिक्षार्थियों में अपने पर्यावरण के प्रति सकारात्मक रुचि जागृत करना ताकि वे इसमें सन्तुलन बनाये रखें।
(6) पर्यटन के माध्यम से बालक में स्वच्छ आदतों का विकास करना।
(7) कक्षागत शिक्षण से प्राप्त ज्ञान की सहायता से प्रकृति के रहस्य एवं सामाजिक वातावरण आदि को समझना।

शैक्षिक पर्यटन के प्रकार

शैक्षिक पर्यटन के आयोजन की दृष्टि से इन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) स्थानीय पर्यटन

इस प्रकार का शैक्षिक पर्यटन विद्यालय के एक विभाग से दूसरे विभाग में, विद्यालय वाटिका आदि का भ्रमण कराया जाता है। इसमें पेड़-पौधों का अध्ययन, खेल के मैदान की माप कर उसका क्षेत्रफल निकालना, सुरक्षा एवं स्वास्थ्य हेतु व्यवस्था का अवलोकन आदि किया जा सकता है। यह कार्य विद्यालय के नियमित कालांश में ही पूरा किया जा सकता है।

---

1 Moffat Social Studies Instruction

(2) सामुदायिक भ्रमण

विद्यालय के आसपास स्थित शैक्षिक महत्त्व के स्थानों को शिक्षार्थियों को दिखाने के लिए इस प्रकार के भ्रमण आयोजित किये जाते हैं जैसे विद्यार्थियों को चिड़ियाघर या जन्तुशाला ले जाकर उन्हें जानकारी प्रदान करना। इन प्रकार के सामुदायिक भ्रमण में स्थानीय पयटन की अपेक्षा अधिक समय लगता है। सामुदायिक भ्रमण चूँकि समुदाय या समाज जिसमें विद्यार्थी रहता है तक ही सीमित है अतः इसमें अधिक व्यय नियोजन आदि की आवश्यकता नहीं होती है।

(3) अन्तः विद्यालय पयटन

एक विद्यालय के बालक किसी विशेष प्रयोजन से दूसरे विद्यालय जावें तो इस प्रकार का भ्रमण अन्तः विद्यालय पयटन कहलाता है। उदाहरण के लिए उच्च माध्यमिक विद्यालय में लगी विज्ञान प्रदर्शनी को देखने अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेने अथवा देखने के लिए यदि किसी अन्य विद्यालय के बालकों को ले जाया जावे तो यह भ्रमण उनके लिए लाभप्रद होगा।

(4) विशिष्ट पयटन

इस प्रकार के पयटन किसी स्थान विशेष जो कि शैक्षिक महत्त्व का हो तथा विद्यालय से दूर हो को देखने के लिए आयोजित किये जाते हैं। इसका आयोजन योजना बनाकर किया जाता है तथा बस आदि की व्यवस्था कर विद्यार्थियों को वहाँ ले जाया जाता है। इन विशिष्ट पयटनों में पूरे दिन का समय लगता है।

शैक्षिक पयटन के अन्तर्निहित सिद्धान्त

शैक्षिक पयटन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यह निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है—

(1) क्रियाशीलता का सिद्धान्त

शैक्षिक पयटन क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित है इसमें बालक विद्यालय से बाहर जाता है तथा ज्ञानार्जन के लिए प्रयत्न करता है। यह सब वह सक्रिय रूप में रह कर ही प्राप्त कर सकता है। उसके क्रियाशील रहने से अधिगम प्रक्रिया तीव्र गति से होती है।

(2) वास्तविक अनुभव

यहाँ बालक को वस्तु संस्था या किसी प्रक्रिया के वास्तविक दर्शन होते हैं तथा मात्र कल्पना के आधार पर ही ज्ञान प्राप्त नहीं करना पड़ता। इस प्रकार की अधिगम परिस्थिति ज्ञानार्जन के लिए श्रेष्ठ मानी जाती है। वास्तविक अनुभव उसके ज्ञान को चिरस्थायी बनाते हैं।

(3) अवेक्षण आधारित अधिगम

शैक्षिक पर्यटन म विशेषता यह है कि बालक को ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा स्वय अर्जित करने होते हैं। वह इसे प्राप्त करने के लिए एक अन्वेषक की स्थिति मे होता है। जहा उसे पर्यटन के लिए ले जाया जाता है वहा से वह अपने विषय से सम्बधित तथ्यो एव सूचनाओ को स्वय एकत्रित करता है।

(4) व्यक्तिगत विभिन्नताओ के अनुरूप

व्यक्तियो की रुचियो, आदतो एव अन्य व्यक्तिगत गुणो म भिन्नता पाई जाती है। कक्षा शिक्षण म इन भिन्नताओ के अनुरूप शिक्षण किया जाना सम्भव नही है। पर्यटन म बालक को अपनी अपनी रुचियो आदि के अनुरूप काय करने का अवसर मिलता है।

(5) सामाजीकरण का सिद्धान्त

शैक्षिक पर्यटन से बालक का सामाजीकरण शीघ्रता से सम्भव है। इसम कुछ सामाजिक गुण जैसे सहकारिता, सहयोग, परस्पर सद्भाव आदि गुणो का विकास बालको मे सुगमता से किया जा सकता है। अच्छे सामाजिक गुणो के विकास से वे एक आदर्श-नागरिक बन सकते है।

शैक्षिक पर्यटन का आयोजन

पूर्व म यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पर्यटन कोई उल्लास यात्रा अथवा सैर सपाटा नही है अपितु यह तो शिक्षण की एक प्रभावशाली विधि है अत शैक्षिक पर्यटन अग्राकित चार मुख्य पदो के अनुसार आयोजित किया जाना चाहिए

(अ) भ्रमण योजना का निर्माण

(ब) योजना का क्रियान्वयन

(स) अनुवर्ती कार्यक्रम

(द) मूल्याकन।

(अ) योजना का निर्माण—भ्रमण योजना बनाते समय निम्नाकित प्रश्नो पर विचार किया जाना चाहिए

(1) भ्रमण आयोजित करने के क्या उद्देश्य थे ?

(2) उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर भ्रमण हेतु कौनसा स्थान चुना जाना चाहिए ?

(3) चुना गया स्थान विद्यालय से कितनी दूर है तथा वहा पहुँचने का क्या साधन है ?

(4) भ्रमण म कितना समय लगेगा ?

(5) भ्रमण म, कितना व्यय होगा, और प्रत्येक शिक्षार्थी को कितना रुपया जमा कराना होगा ?

(6) भ्रमण के समय प्रत्येक बालक का अलग अलग और सामूहिक रूप से क्या करना है ?

(7) भ्रमण के समय कितनी टोलिया होगी और प्रत्येक टोली का कौन नेतृत्व करेगा ?

(8) भ्रमण के समय प्रत्येक शिक्षार्थी की क्या वेशभूषा होगी और उसे अपने साथ क्या-क्या वस्तुए लेनी है ?

(9) क्या भ्रमण हेतु जाने वाले शिक्षार्थियों के अभिभावकों की स्वीकृति मिल गई है ?

(10) क्या भ्रमण के लिए निर्धारित स्थान पर जाने के लिए सम्बन्धित अधिकारी की स्वीकृति ले ली गई है ?

(11) क्या शिक्षक का गन्तव्य स्थान का पूर्व अनुभव है ?

(12) यदि शिक्षक को अनुभव नही है तो किसके मार्गदर्शन की अपेक्षा है ?

उपर्युक्त सभी प्रश्नों पर विचार करके भ्रमण की व्यवस्थित रूप से योजना बना लेनी चाहिए। योजना किसी भी कार्य की बुद्धिमतापूर्वक की गई पूर्व तैयारी को कहते हैं ताकि आने वाली समस्याओं को सुविधापूर्वक हल किया जा सके। इस दृष्टि से भ्रमण की विस्तृत योजना बना लेना बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है।

(ब) योजना का क्रियान्वयन—भ्रमण के लिए विद्यालय से प्रस्थान करने से पूर्व अग्रांकित बिन्दुओं की दृष्टि से पुन जाच कर लेनी चाहिए

(1) क्या भ्रमण में जाने वाले सभी विद्यार्थी शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हैं ?

(2) क्या शिक्षार्थी ने अपने अभिभावकों से भ्रमण हेतु लिखित स्वीकृति प्राप्त कर ली है ?

(3) क्या शिक्षार्थी के पास भ्रमण हेतु निर्धारित आवश्यक साधन है ?

(4) क्या उनको अपने उत्तरदायित्वों का ज्ञान है ?

(5) क्या उन्हें भ्रमण में विशेष ध्यान रखने योग्य निर्देशक-बिन्दु भली भांति स्मरण है ?

उपर्युक्त जाच के पश्चात् शिक्षार्थियों की उपस्थिति अंकित की जानी चाहिए और उनको निर्धारित टोलियों में प्रस्थान करने देना चाहिए।

भ्रमण के स्थान पर पहुचते ही निर्धारित कार्य में लगने से पूर्व शिक्षार्थियों की पुन उपस्थिति ले लेनी चाहिए और यह क्रम भ्रमण की अवधि में दो तीन बार दोहराना चाहिए। इसके बाद शिक्षार्थी को अपनी अपनी टोलियों में निरीक्षण, सकलन, चित्र खीचने आदि का कार्य पूरा करने का अवसर प्रदान करना

चाहिए। शिक्षका का यह निरंतर देखते रहना चाहिए कि टोलिया अपने निर्धारित कार्यक्रमानुसार काय कर रही हैं या नहीं। आवश्यकतानुसार शिक्षक को घटनाओं का यथास्थान स्पष्टीकरण भी करते रहना चाहिए ताकि शिक्षार्थी घटनाओं का बुद्धिमतापूवक अवलोकन करते रहे। भ्रमण के समय पर उचित विश्राम, मनोरजन कायक्रम तथा यथा समय भोजन आदि का विशेष महत्त्व है। अध्यापक को इन सबका भी पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए। यह भ्रमण को अधिक प्रभावशाली बनायगा।

भ्रमण के पश्चात् विद्यार्थियों को विद्यालय लौटा कर ही उन्हें घर जाने के लिए अनुमति प्रदान करनी चाहिए।

(स) अनुवर्ती कायक्रम—भ्रमण आयोजित कर लेने से ही भ्रमण के उद्देश्य प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। भ्रमण के अनुवर्ती कायक्रम का भी उतना ही महत्त्व है। अनुवर्ती कायक्रम में निम्नलिखित प्रवृत्तिया आयोजित की जा सकती है

(1) प्रत्येक शिक्षार्थी को अपने अपने अनुभवों को पूरे समूह में सुनाने का अवसर प्रदान करना।

(2) टोलियों द्वारा अपने-अपने प्रतिवेदन तैयार करना तथा उन्हें बुलेटिन बोर्ड पर प्रदर्शित करना।

(3) भ्रमण के समय उत्पन्न समस्याओं पर विचार विमर्श करना।

उपयु क्त प्रवृत्तियों के आयोजन से पयटन विधि शिक्षण काय का अभिन्न अंग बन जाती है।

(द) मूल्यांकन—शैक्षिक पयटन का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। इससे यह ज्ञात हो सकेगा कि शिक्षार्थियों ने उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया। मूल्यांकन पयटन में आई कठिनाइयों को भी इंगित करता है, जिससे कि भविष्य में इसमें सुधार लाया जा सके।

पयटन के मूल्यांकन किये जाने का आधार भ्रमण की योजना है। यह ज्ञात किया जाता है कि भ्रमण योजनानुसार पूरा हुआ या नहीं। शिक्षार्थियों से भविष्य में पयटन को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव मांगे जाते हैं। उनके द्वारा अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन कर पयटन के शैक्षिक प्रभाव को परखा जाता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर विद्यालय द्वारा एक प्रभावी शैक्षिक-पयटन आयोजित किया जा सकता है।

सारांश

मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि प्रत्यक्ष अनुभव बालक के ज्ञान को ठोस आधार प्रदान करता है। शैक्षिक पयटन से तात्पय सबंधित प्रकरण के लिए

शिक्षार्थियों को भ्रमण पर ले जाकर वस्तु अथवा प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अवलोकन कराने से है। इसमें शिक्षार्थी कक्षा से बाहर वास्तविक वातावरण में पाठ्यक्रम के महत्त्वपूर्ण अंशों का अध्ययन करते हैं।

शैक्षिक पर्यटन बालकों में अनेक सद्‌गुणों का विकास करता है जैसे निरीक्षण करने की योग्यता, कल्पना शक्ति, सहयोग, सहकारिता आदि। इससे शिक्षण में नवीनता आती है तथा विषय के प्रति रुचि जागृत होती है। शैक्षिक पर्यटन कई प्रकार के होते हैं जैसे स्थानीय पर्यटन, सामुदायिक भ्रमण, अन्त विद्यालय पर्यटन, विशिष्ट पर्यटन आदि। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण स्थायी अनुभव प्रदान करता है।

शैक्षिक पर्यटन को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि इनका नियोजन पूर्व में किया जाय। इसके लिए अध्यापक को इसका पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। योजना निर्माण करते समय धन, विद्यार्थियों का स्तर आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। नई शिक्षा नीति में भी इसे महत्त्व दिया गया है।

□

अध्याय 19

संगोष्ठी
(Conference)

संगोष्ठी का प्रत्यय कोई नया प्रत्यय नही है। यह बहुत ही प्राचीन समय से चला आ रहा है। आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व सुकरात (Socrates) अपने अनुयायियों के शिक्षण में इसका पूरा-पूरा उपयोग करते थे। राजाओं ने भी संगोष्ठियों को विचार विमर्श का एक साधन बना रखा था। ब्रिटेन के राजा आर्थर (King Arthur) अपने "नाइट्स" (Knights) को भोजन पर आमन्त्रित कर उनसे राज्य के विभिन्न विषयों पर चर्चा करता था।

शिक्षा के क्षेत्र में इसका उपयोग किसी विशेष शैक्षिक समस्या को सुलझाने के रूप में किया जाता रहा है परन्तु शिक्षण प्रविधि के रूप में यह एक नया प्रयोग है। बालक, जो कि जन्म से ही क्रियाशील है, को अधिगम क्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। रायबर्न (W M Ryburn) इस संदर्भ में लिखते हैं कि 'प्रत्येक बालक में क्रियाशील होने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। शिक्षण के अधिकांश भाग का कार्य है—क्रियाशीलता की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए अवसर प्रदान करना।'[1] यह अवसर अनेक शिक्षण प्रविधियों में दिये जा सकते हैं जिसमें संगोष्ठी भी एक है।

संगोष्ठी का अर्थ (Meaning of Conference)

संगोष्ठी, एक समूह के सदस्यों के मध्य तार्किक एवं ज्ञानवर्धक वातावरण में आपसी विचार विमर्श है। इसमें समूह के सभी सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का समान अवसर मिलता है। इस विधि के द्वारा समूह के सदस्य किसी ज्वलन्त समस्या पर विचार कर किसी समुचित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। संगोष्ठी को व्याख्यान विधि का विलोम इस रूप में माना गया है कि व्याख्यान विधि में जो व्याख्याता जानता है उसे शिक्षार्थी को देता है जबकि संगोष्ठी में शिक्षार्थी जो कुछ जानते हैं उसे अध्यापक जानने का प्रयास करता है। स्ट्रक (Struck) इस संदर्भ में कहते हैं कि 'सिद्धान्त संगोष्ठी प्रविधि व्याख्यान-विधि की प्रक्रिया को

1 Ryburn W M The Principles of Teaching P 6.

उत्तर देते है। यहां दल के नेता का उद्देश्य संगोष्ठी के प्रतियोगियों की जानकारी प्राप्त करना है न कि उन्हें जानकारी देना।'

संगोष्ठी शब्द को अंग्रेजी में कॉफ्रेंस (Conference) शब्द कहते हैं। "कान्फ्रेन्स पर्यवेक्षक तथा अध्यापकों की एक बैठक है जिसमें कक्षागत अथवा शैक्षिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं।"

संगोष्ठी प्रविधि में शिक्षार्थियों को विचार-विमर्श करने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है। यह विचार-विमर्श किसी एक विशिष्ट समस्या पर केन्द्रित रहता है। शिक्षक को यहां विचारों के प्रवाह का एक मार्ग-दर्शक माना जाता है। वह शिक्षार्थियों को विभिन्न विचार प्रदान कर उनसे भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से समस्या पर चर्चा कराता है। यह इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है कि एक व्यक्ति के निर्णय से कई व्यक्तियों का सामूहिक निर्णय अधिक अच्छे स्तर का होगा। संगोष्ठी में, चूँकि विद्यार्थियों को अधिक सोचने और समझने का अवसर मिलता है, अतः इससे प्राप्त ज्ञान अधिक स्पष्ट एवं बोधगम्य होता है।

संगोष्ठी की संकल्पना में निम्नलिखित बिन्दुओं को सम्मिलित किया जा सकता है

(1) यह शैक्षिक समस्याओं पर विचार विमर्श करने की एक सुनियोजित प्रक्रिया है।

(2) यह बालक के समाजीकरण की एक प्रक्रिया है।

(3) संगोष्ठी द्वारा बालक की विचार व्यक्त करने की क्षमता विकसित होती है।

(4) यह प्रजातान्त्रिक पद्धति पर आधारित है क्योंकि इसमें प्रत्येक सदस्य को अपने विचार रखने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है।

(5) इसमें विद्यार्थियों का समूह गोल मेज सम्मेलन से बड़ा होता है।

(6) यह सृजनात्मक चिन्तन के विकास को बल प्रदान करती है।

(7) संगोष्ठी में समस्या के विभिन्न पक्षों पर विचार कर निष्कर्ष निकाला जाता है।

(8) संगोष्ठी की दिशा अध्यापक द्वारा नियन्त्रित होती है।

(9) इसमें सही तथ्यों को चुनने एवं समझने का अवसर मिलता है तथा बालक की निर्णय शक्ति का विकास होता है।

संगोष्ठी के मनोवैज्ञानिक आधार
(Psychological Bases of Conference)

संगोष्ठी प्रविधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। ये सिद्धान्त अग्रांकित हैं

(1) सक्रियता का सिद्धान्त (Principle of Activity)

अधिगम-प्रक्रिया में यदि शिक्षार्थी सक्रिय रूप से भाग लेता है तो उसका ज्ञानार्जन प्रभावी रूप से होता है। प्रायः यह देखा गया है कि जब अध्यापक कक्षा में व्याख्यान देता है तो बालक मौन एवं निष्क्रिय बैठे रहते हैं। सगोष्ठी में बालक निष्क्रिय नहीं रहता है। वह अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए सक्रिय रहता है। इससे कक्षा का वातावरण अधिक क्रियाशील एवं रोचक बना रहता है।

(2) बाह्य अनुक्रियात्मक का सिद्धान्त
(Principle of Overt Respondincy)

इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई समस्या बालकों के सामने विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत की जाती है तो वे अपने विचारों को स्वतः सामने रखते हैं। इसकी इस अनुक्रिया को समझ कर अध्यापक उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन के लिए उसे सुझाव देता है।

(3) व्यक्तिगत विभिन्नताओं का सिद्धान्त
(Principle of Individual Differences)

बालकों में व्यक्तिगत विभिन्नताएं पायी जाती हैं। यह शिक्षण प्रविधि बालकों को अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार विचार-विमर्श करने का पूर्ण अवसर प्रदान करती है।

(4) प्रेरणा का सिद्धान्त (Principle of Motivation)

बालक प्रेरित होकर अधिक सीखते हैं। सगोष्ठी में चूंकि बालकों को विचार-विमर्श करना होता है तथा यह वे सक्रिय रूप से भाग लेकर करते हैं अतः वे अधिगम हेतु प्रेरित रहते हैं।

सगोष्ठी के आवश्यक सोपान (Essential Steps of Conference)

सगोष्ठी की प्रविधि निम्न सोपानों में पूरी की जाती है—

(1) प्रकरण का चुनाव (Selection of Topic)

सगोष्ठी-प्रविधि को भली भांति सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि ऐसे प्रकरण का चुनाव किया जाय जो कि बालकों के रुचि का हो तथा उस पर विभिन्न दृष्टिकोण से चिन्तन किया जाना सम्भव हो। इसके लिए अध्यापक बालकों को विभिन्न प्रकरणों को सुझाता है तथा उनसे विचार करता है कि किस प्रकरण पर वे चर्चा करने को तैयार हैं।

प्रकरण का चुनाव करते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसका स्तर बालकों के मानसिक स्तर के अनुरूप हो। इसके अतिरिक्त उस पर विषय सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध भी हो। उदाहरण के लिए नागरिकशास्त्र को पढ़ाते समय "प्रजातन्त्र भारत में कहाँ तक सफल है ?" विषय पर सगोष्ठी

प्रयोग की जा सकती है। यह एक ऐसा विषय है जिस पर विद्यार्थी विभिन्न दृष्टिकोण से तर्क एवं चिन्तन कर सकते है।

(2) नेता का चुनाव (Selection of the Conference Leader)

विद्यार्थियों के मध्य चर्चा ठीक प्रकार से हो तथा समय समय पर उनको मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। इसके लिए एक नेता की आवश्यकता होती है। इसे अध्यक्ष भी कहते है। अध्यक्ष संस्था से ही अथवा संस्था से बाहर का भी व्यक्ति हो सकता है। यदि संस्था का ही व्यक्ति लिया जावे तो वह उस विषय का पूर्ण ज्ञाता या अध्यापक होना चाहिए। संस्था से बाहर का व्यक्ति यदि सगोष्ठी में अध्यक्ष पद के लिए आमंत्रित किया जाता है तो वह उस क्षेत्र में पूर्ण अनुभव रखने वाला होना चाहिए। संस्था से बाहर का व्यक्ति एक दृष्टि से अध्यक्ष पद के लिए उत्तम रहेगा क्योंकि वह विद्यार्थियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं रखता तथा संस्था के बाहरी अनुभवों के ज्ञान को विद्यार्थियों को देकर उन्हें अधिक लाभान्वित कर सकेगा।

सगोष्ठी का अध्यक्ष एक योग्य एवं कुशल व्यक्ति होना चाहिये। विचार विमर्श के दौरान कई बार ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती है जब विद्यार्थी प्रकरण से हट कर विचार करने लगते हैं। अध्यक्ष, ऐसी परिस्थितियों से कुशलता से निपटने वाला तथा समूह को प्रकरण की दिशा में ले जाने वाला होना चाहिये। जैसा कि प्रारम्भ में स्पष्ट किया गया, सगोष्ठी में छात्रों को ज्ञान न देकर जो कुछ वे जानते है उसे उनसे ही निकलवाना होता है, इसके लिए अध्यक्ष को बड़ी सावधानी एवं युक्तियों से कार्य करना होता है।

(3) सगोष्ठी की बैठक व्यवस्था

सगोष्ठी का भौतिक वातावरण भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। सगोष्ठी स्थल का चुनाव इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उसमें कक्षा के बालक आराम से बैठ सकें। सगोष्ठी स्थल हवादार एवं रोशनीयुक्त होना चाहिये जिससे कि बालकों को थकान शीघ्र न हो। बैठक व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिये कि बालक एक दूसरे के चेहरों को भली प्रकार से देख सकें इसके लिए सर्वोत्तम बैठक व्यवस्था अंग्रेजी के यू के आकार की मानी गई है।

सगोष्ठी कक्ष में एक श्यामपट्ट का भी होना आवश्यक है। श्यामपट्ट इस प्रकार से रखा हुआ होना चाहिये कि वह सभी विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से दिखाई दे। इस पर सगोष्ठी का प्रकरण साफ और बड़े अक्षरों में लिख दिया जाना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग भी किया जा सके ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

सगोष्ठी की कार्यवाही को ठीक प्रकार से सचालित करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके पदाधिकारियों का भी चुनाव किया जावे। विद्यार्थियों में

स हो सचिव तथा अन्य पदाधिकारी बनाने चाहिये जो कि इसके आयोजन म पूर्ण रुचि रखते ह । सगोष्ठी की कार्यवाही का लिखन के लिए एक विद्यार्थी को नियुक्त किया जाना चाहिये ।

(4) सगोष्ठी प्रारम्भ करना

सगोष्ठी का प्रारम्भ सगोष्ठी के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है । वह सर्वप्रथम प्रकरण का सक्षिप्त परिचय एव उसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए यह बतायेगा कि प्रकरण के बारे म चर्चा किया जाना क्या आवश्यक है । वह, यदि सम्भव हो तो, प्रकरण म सम्बन्धित कुछ रोचक समस्याओं को भी विचारार्थ रख सकता है ।

अध्यक्ष को सगोष्ठी कक्ष म किसी ऊँचे स्थान पर इसलिए बिठाया जाता ह कि वह इसका सचालन भलीभाँति कर सके । वह बारी-बारी स विद्यार्थियों को प्रकरण पर बोलने का अवसर प्रदान करता ह उनके विचारों की दिशा तथा समयावधि का भी नियन्त्रण करता है । सगोष्ठी का अभिलेखक समस्त कार्यवाही के मुख्य-मुख्य बिन्दुओं को लिखता है ।

कभी-कभी, सगोष्ठी म जब प्रकरण बहुत बडा हो तब, कक्षा के कुछ वर्ग बना कर उन्हे प्रकरण के अलग अलग पक्ष द दिये जाते ह । ये वर्ग अलग-अलग बैठकर विचार करते है, अपनी रिपोर्ट तैयार करते है तथा फिर पूरी कक्षा एक स्थान पर एकत्रित होती है तथा प्रत्येक वर्ग अपनी रिपोर्ट विचारार्थ पूरे समूह के समक्ष रखता ह । इसके उपरान्त समकित प्रतिवेदन तैयार कर उसे प्रकाशित कराया जाता है ।

(5) मूल्यांकन

शिक्षण प्रविधि कहा तक सफल रही ह, इसके लिए आवश्यक है कि उसका मूल्याकन भी किया जावे । यहा पर मूल्याकन करने के लिए कोई निश्चित प्रश्नावली नही ह । मूल्याकन का कार्य शिक्षक द्वारा प्रकरण स सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों को पूछकर चर्चा के अन्त म किया जा सकता है । मूल्याकन करने के लिए एक दूसरी विधि अभिवृत्ति मापनी ह । अभिवृत्ति मापन मे सगोष्ठी स सम्बन्धित कथन होते है जिन पर बालकों को अपनी सहमति या असहमति प्रदान करने को कहा जाता ह । इसस विद्यार्थियों की इस प्रविधि के प्रति अभिवृत्ति ज्ञात हो जाती ह । यदि अभिवृत्ति सकारात्मक ह तो यह इस प्रविधि की सफलता को दर्शाती है ।

सगोष्ठी प्रविधि पर आधारित पाठ योजना

दिनांक कक्षा नवम्

विद्यालय

इकाई

प्रकरण मूल्य वृद्धि

(क) ज्ञानात्मक उद्देश्य

(1) छात्राएँ मल्य-वृद्धि के अर्थ का प्रत्यास्मरण कर सकेंगी।

(2) भारत म समय-समय पर हुई मूल्य वृद्धि की छात्राए पुनपहिचान कर सकेंगी।

(ख) अवबोधात्मक उद्देश्य

(1) छात्राएँ भारत म विभिन्न वर्षों म हुई मूल्य वृद्धि का तुलनात्मक विवरण दे सकेंगी।

(2) मूल्य वृद्धि के कारण उत्पन्न विभिन्न आर्थिक प्रभावा म भेद स्थापित कर सकेंगी।

(3) छात्राएँ मूल्य वृद्धि क कारण समाज की आर्थिक स्थिति पर पडन वाले प्रभावा का विश्लेषण कर सकेंगी।

(ग) उपयोजन

(1) छात्राएँ भारत म 1960 के पश्चात बढे हुए मूल्या का वतमान सदभ म आर्थिक महत्त्व को स्पष्ट कर सकेंगी।

(2) मूल्य वृद्धि से भविष्य म होन वाले दुष्परिणामा का अनुमान, छात्राएँ कर सकेंगी।

(घ) कौशल

(1) 1960 क पश्चात् विभिन्न वर्षा में हुई मूल्य वृद्धि के आकडा को रखाचित्र म दर्शाने का कौशल प्राप्त कर सकेंगी।

(2) रुपये के घटते हुए मूल्य के लेखाचित्र का पढकर अर्थ निकाल सकेंगी।

स्थान सगोष्ठी कक्ष

कक्षा क विद्यार्थी अपन अपने स्थान पर बैठे ह। सवप्रथम अध्यापक, जो कि सगोष्ठी का अध्यक्ष ह, मुद्रा स्फीति क प्रकरण पर विचार-विमश करन के लिए छात्रा का प्रेरित करेगा। वह छात्रा को इसके भिन्न पक्ष जिन पर कि विचार किया जाना है, की जानकारी दगा। उसके बाद वह पूरे समूह का दो भागा म विभक्त करगा—

वग-1 मुद्रा-स्फीति का अर्थ एव कारण पर विचार करगा।

वग-2 मुद्रा स्फीति म पडन वाले प्रभावा पर चर्चा करगा।

अध्यापक दोना समूहा का अलग बैठकर अपन अपन प्रकरण पर विचार करन का कहेगा। दोना समूहा की रिपोट अलग-अलग तैयार होगी। उसके उपरान्त उन्ह एक स्थान पर एकत्रित किया जायगा।

सभा न वर्गों द्वारा तयार की गई रिपोर्ट के आधार पर आपस म विचार होगा। किसी भी सदस्य को तर्क करन तथा नए विचार रखन का पूर्ण अवसर

दिया जायगा। अध्यापक समय समय पर इन्हें मार्गदर्शन भी देगा। अन्त में एक समेकित प्रतिवेदन तैयार कर लिया जायगा।

अध्यापक इस प्रविधि का मूल्यांकन शिक्षण उद्देश्यों से सम्बन्धित प्रश्न पूछकर कर लेगा।

संगोष्ठी प्रविधि की विशेषताएं

यह शिक्षण की एक अच्छी प्रविधि है, इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(1) विद्यार्थी केन्द्रित विधि (Student Central Technique)

इस प्रविधि में विद्यार्थी अध्यापक से ज्ञान प्राप्त करने के बजाय वे जो कुछ जानते हैं उसको सबके समक्ष व्यक्त करते हैं। वे आपसी विचार-विमर्श करने के लिए सभी आवश्यक व्यवस्था को करते हैं तथा लोकतान्त्रिक विधि से चर्चा करते हैं। अध्यापक का कार्य केवल मात्र मार्गदर्शक का है। अन्य सभी कार्यों को विद्यार्थियों को करना पड़ता है। इस प्रकार यह एक ऐसी प्रविधि है जो कि छात्रों द्वारा संचालित तथा उनके विकास की दृष्टि से केन्द्रित है।

(2) तर्क करने का अवसर (Opportunity to Reason)

इस प्रविधि में विद्यार्थी तथ्यों सूचनाओं एवं सिद्धान्तों को एकदम स्वीकार नहीं करते हैं। वे तथ्यों आदि को ध्यानपूर्वक सुनते हैं व गहराई से समझने का प्रयास करते हैं इसके उपरान्त वह इसे तर्क की कसौटी पर कसता है। इससे सम्बन्धित शंकाओं के निवारण के लिए प्रश्न पूछता है अथवा अपना तर्क प्रस्तुत करता है। इन सब प्रक्रियाओं से उसकी तर्क-शक्ति का विकास होता है।

(3) उच्च मानसिक योग्यता का विकास
(Development of Higher Mental Ability)

संगोष्ठी-प्रविधि में विद्यार्थी को ऐसा स्वतन्त्र वातावरण मिलता है जिसमें उसे मानसिक क्रियाएँ जैसे चिन्तन एवं मनन करना, समस्या का विश्लेषण एवं संश्लेषण आदि करने का अवसर मिलता है। इससे उसका उच्च स्तरीय मानसिक विकास होना संभव है।

(4) प्रजातान्त्रिक मूल्यों का विकास
(Development of Democratic Values)

लोकतान्त्रिक जीवन में प्रजातान्त्रिक मूल्यों का विशेष महत्त्व है। एक अच्छे लोकतन्त्र के लिए उसके नागरिकों में समूह भावना, सहयोग, सद्भावना, सहकारिता शान्ति, सहिष्णुता आदि सद्गुणों का होना आवश्यक है। संगोष्ठी-प्रविधि में इन गुणों का विकास किया जाना संभव है क्योंकि यहां पर सब कार्य बालकों द्वारा ही किया जाता है और इस विधि के सफल क्रियान्वयन हेतु

सहयोग की भावना, सद्भावना, सहकारिता आदि अपने आप विकसित होती है। इनके अभाव में यह विधि सफल नहीं हो सकती।

(5) क्रियाशीलता द्वारा अधिगम (Learning Through Activity)

सगोष्ठी प्रविधि की सफलता विद्यार्थियों की क्रियाशीलता पर निर्भर है। यदि छात्र केवल मूक दर्शक रहेंगे तो सगोष्ठी में होने वाली चर्चाएँ नहीं हो पायेंगी। अतः इस प्रविधि में छात्रों का क्रियाशील होना आवश्यक है। छात्र प्रकरण के प्रति जागरूक रह कर क्रियात्मक रूप से उनके विचार-विमर्श में भाग लेते हैं इससे विषय रुचिकर बनता है।

(6) विचार व्यक्त करने की क्षमता का विकास
(Development of Power of Expression)

इस प्रविधि में विद्यार्थी को अपने अनुभव सुनाने तथा प्रकरण से सबंधित विचारों को व्यक्त करने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। वह अपने मूल विचारों को अपने शब्दों में व्यक्त करता है इससे उसके विचार व्यक्त करने की क्षमता का विकास होता है। चूँकि यहाँ सभी विद्यार्थी बारी-बारी से बोलते हैं अतः शर्मीली प्रकृति के बालक भी धीरे धीरे विचार व्यक्त करने में संकोच नहीं करते हैं।

(7) निर्णय करने की क्षमता का विकास
(Development of Power of Judgement)

यह प्रविधि बालक को पूर्ण चिंतन का अवसर प्रदान करती है जिसमें वह प्रकरण के पक्ष एवं विपक्ष में अनेक तर्क सुनता है। वह इन सब सूचनाओं का विश्लेषण एवं संश्लेषण कर सही तथ्यों के बारे में निर्णय लेना सीखता है। चूँकि अध्यापक यहाँ चुप रहता है, अतः बालकों में स्वतन्त्र निर्णय लेने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

सगोष्ठी-प्रविधि की सीमाएँ
(Limitations of Conference Technique)

सगोष्ठी प्रविधि की अनेक विशेषताएँ हैं परन्तु इस प्रविधि की कुछ सीमाएँ भी हैं जो कि नीचे लिखे अनुसार हैं—

(1) समय अधिक लगना (Time Consuming Technique)

इस प्रविधि में छात्रों को प्रकरण से सम्बन्धित भिन्न भिन्न क्रियाओं को करना पड़ता है जिसमें उन्हें काफी समय लगता है। उनका अधिकांश समय आपसी वार्तालाप में व्यतीत हो जाता है। इस प्रकार यह विधि समय अधिक लेने वाली विधि है। इससे पाठ्यक्रम को पूरा किया जाना सम्भव नहीं।

(2) कुशल शिक्षकों की कमी (Lack of Skilled Teac

सगोष्ठी प्रविधि म शिक्षक का काय काफी
निश हुग ह । यह अध्यापक के रूप म प्रकरण पर विच
है। जिनम रोचक एव आकषक रूप म भाग लेग
मार्गदर्शन भी देना होता है। इन सब कायो को
श्रेष्ठ अध्यापक ही कर सकता है । ऐसे अध्या
कमी है।

(3) सभी प्रकरणों के लिए उपयुक्त नहीं
(Not Useful for All Types of Topics)

इस प्रविधि म केवल व ही प्रकरण लिये जा
व्यक्तियो से विचार किया जा सकता है। केवल मात्र
प्रकरणो पर विचार विमश किया जाना सम्भव नही है

(4) कमजोर छात्रों के लिए अनुपयुक्त
(Ineffective for Weak Students)

यह एक ऐसी प्रविधि है जिसम उच्च स्तर
चिन्तन, मनन, तक आदि दिय या किय जाते है ।
का करन म स्वय को असमय पाते है अत यह विधि इ
न्ता है।

(5) संसाधनों की कमी (Lack of Resources)

सामान्यत यह देखा गया है कि विद्यालयो
क स्थान पर सुविधाजनक स्थान नही है । वि
- कक्ष तथा पुस्तकालय आदि मे पुस्तको
— है यह प्रविधि प्रभावी रूप स प्रयोग म नही

प्रतिभावान छात्रों का प्रभाव (Dominance of

प्रविधि म प्रतिभावान छात्र ही विचार
कारण कि उनकी स्मृति अच्छी र
है गता है। व उच्च मानसिक कि
रहत है।
सीमाओ के होते हुए भी यह एक अच्

प्रकरण पर गुना स विचार
है लिए इस प्रविधि का उपयो
जिसम शिक्षक और

वरण में किसी भी शैक्षिक समस्या या प्रकरण पर चर्चा करते हैं। इसमें शिक्षार्थी चर्चा के माध्यम में वाछित ज्ञान और सूचनाओं को प्राप्त करते हैं। इसे गोल मेज सम्मेलन का वृहत् रूप माना जाता है।

सगोष्ठी प्रविधि मनोवैज्ञानिक सिद्धात पर आधारित है। इसमे बालक सक्रिय रहते है। बालकों को अपना अपना मत रखने का अवसर मिलता है। पढने के लिए शिक्षार्थी प्रेरित होते हैं तथा उनकी शकाएँ शीघ्र दूर हो जाती है।

सगोष्ठी में एक नेता का चुनाव किया जाता है। यह नेता या अध्यक्ष अधिगम परिस्थितियों को दिशा प्रदान करने वाला तथा उलझनों को सुलझाने वाला व्यक्ति होता है। इसे प्रकरण का पूर्ण ज्ञान एव अनुभव होता है। सगोष्ठी को सचालित करने के लिए सचिव तथा अन्य पदाधिकारी होते है जो कि इसके सफल नियान्वयन मे सहयोग प्रदान करते है।

प्रजातान्त्रिक जीवन मूल्यों के विकास के लिए यह एक उत्तम प्रविधि है। इससे शिक्षार्थी न केवल विचार व्यक्त करने की क्षमता एव तर्क शक्ति को विकसित करता है, अपितु समूह भावना, सहयोग, सद्भावना, सहकारिता, शाति, सहिष्णुता आदि सद्गुणों को विकसित करता है। एक अध्यापक को इस प्रविधि का ज्ञान होना चाहिए।

(2) कुशल शिक्षकों की कमी (Lack of Skilled Teachers)

संगोष्ठी प्रविधि में शिक्षक का कार्य काफी महत्व का तथा कुशलता लिए हुए है। वह अध्यक्ष के रूप में प्रकरण पर विचार-विमर्श प्रारम्भ कराता है। जितने रोचक एवं आकर्षक रूप में भाग लेंगे। समय-समय पर उसे मार्गदर्शन भी देना होता है। इन सब कार्यों को एक कुशल एवं परिश्रमी अध्यापक ही कर सकता है। ऐसे अध्यापकों की हमारे देश में कमी है।

(3) सभी प्रकरणों के लिए उपयुक्त नहीं

(Not Useful for All Types of Topics)

इस प्रविधि में केवल वे ही प्रकरण लिये जा सकते हैं जिन पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। केवल मात्र सूचना प्रदान करने वाले प्रकरणों पर विचार विमर्श किया जाना सम्भव नहीं है।

(4) कमजोर छात्रों के लिए अनुपयुक्त

(Ineffective for Weak Students)

यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें उच्च स्तर की मानसिक क्रियाएँ जैसे चिन्तन, मनन, तर्क आदि दिये या किये जाते हैं। कमजोर छात्र इन क्रियाओं को करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं अतः यह विधि इन छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है।

(5) ससाधनों की कमी (Lack of Resources)

सामान्यतः यह देखा गया है कि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए बैठने का पर्याप्त एवं सुविधाजनक स्थान नहीं है। विद्यालयों में फर्नीचर आदि की कमी है तथा पुस्तकालय आदि में पुस्तकों का अभाव है। ऐसी स्थिति में यह प्रविधि प्रभावी रूप से प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है।

(6) प्रतिभावान छात्रों का प्रभाव (Dominance of Bright Students)

इस प्रविधि में प्रतिभावान छात्र ही विचार विमर्श में अपना प्रभुत्व जमाये रखते हैं कारण कि उनकी स्मृति अच्छे स्तर की तथा शब्द-भण्डार पर्याप्त मात्रा में होता है। वे उच्च मानसिक क्रियाएँ जैसे चिन्तन एवं तर्क आसानी से कर सकते हैं।

उपरोक्त सीमाओं के होते हुए भी यह एक अच्छी विधि है।

सारांश

किसी शैक्षिक प्रकरण पर गूढ़ता से विचार करने के लिए अथवा शैक्षिक समस्या का समाधान के लिए इस प्रविधि का उपयोग किया जाता है। विचार-विमर्श एक सामूहिक क्रिया है जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी सहकारिता से बातें

वरण म किमी भी शैक्षिक समस्या या प्रकरण पर चर्चा करत है। इसम शिक्षार्थी चर्चा के माध्यम से वाछित ज्ञान और सूचनाओ को प्राप्त करत है। इसे गोल मेज सम्मेलन का वृहत् रूप माना जाता ह।

सगोष्ठी प्रविधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित ह। इसम बालक सक्रिय रहते है। बालको को अपना-अपना मत रखन का अवसर मिलता ह। पढन क लिए शिक्षार्थी प्रेरित होते है तथा उनकी शकाएँ शीघ्र दूर हो जाती हैं।

सगोष्ठी म एक नेता का चुनाव किया जाता है। यह नेता या अध्यक्ष अधिगम परिस्थितिया का निर्देशन प्रदान करने वाला तथा उलझना का सुलझान वाला व्यक्ति होना ह। उसे प्रकरण का पूर्ण ज्ञान एव अनुभव होता ह। सगोष्ठी का सचालित करन के लिए सचिव तथा अन्य पदाधिकारी होते है जो कि इसके सफल क्रियान्वयन म सहयोग प्रदान करते है।

लोकतान्त्रिक जीवन मूल्यो के विकास क लिए यह एक उत्तम प्रविधि ह। इसस शिक्षार्थी न कवल विचार व्यक्त करन की क्षमता एव तर्क शक्ति को विकसित करता ह, अपितु समूह भावना, सहयोग, सद्भावना, सहकारिता, शाति, सहिष्णुता आदि सद्गुणा को विकसित करता है। एक अध्यापक को इस प्रविधि का ज्ञान होना चाहिए।

□

अध्याय 20

कार्यशाला-प्रविधि

(Workshop Technique)

कार्यशाला शब्द यान्त्रिकी (Engineering) से लिया गया है। बस, मोटर, रेल इंजन आदि की मरम्मत अथवा इनके निर्माण के लिए कार्यशालाएं (Workshop) होती हैं। जिसमें सैद्धान्तिक ज्ञान को प्रायोगिक रूप में काम में लिया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी सिद्धान्त एवं क्रियात्मक पक्ष को जोड़ने के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है जहां कि सभागी को प्रायोगिक कार्य कर कुशलता अर्जित करनी होती है।

यहां संगोष्ठी और कार्यशाला में अन्तर कर देना उचित होगा। मानलें हम प्रश्न-पत्र निर्माण पर एक कार्यशाला तथा एक संगोष्ठी अलग अलग आयोजित करना चाहें तो संगोष्ठी में प्रश्न-पत्र निर्माण से जुड़े सैद्धान्तिक पक्ष पर चर्चाएं होगी जबकि कार्यशाला में वास्तविक प्रश्न-पत्र का निर्माण करना होगा। इस प्रकार कार्यशाला में विचार विमर्श पर कम तथा प्रायोगिक कार्य पर अधिक बल दिया जाता है।

कार्यशाला का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition of Workshop)

यह एक ऐसी शिक्षण प्रविधि है जिसमें बालक या शिक्षार्थी न केवल विचार विमर्श करते हैं अपितु सामूहिक रूप से रचनात्मक कार्य भी करते हैं। कार्यशाला शैक्षिक समस्याओं के समाधान ज्ञात करने का एक सामूहिक प्रायोगिक प्रयास है। इसमें समस्या के बारे में विचार किया जाता है जिससे कि सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि स्पष्ट हो सके। तदोपरान्त सभागियों द्वारा प्रायोगिक कार्य किया जाता है।

कार्यशाला में सभागीगणों के मध्य विचारों का आदान प्रदान एवं छोटे समूह में होता है जहां कि परस्पर अन्तःक्रिया का पर्याप्त मात्रा में प्रभावी रूप से होना सम्भव है। इससे वे एक दूसरे को अपने अनुभवों से लाभान्वित करते हैं। इनके मध्य उपस्थित विशेषज्ञ भी इन सभागियों द्वारा किये जा रहे प्रायोगिक

काय के बारे म ठोस सुझाव दत है जा कि अन्य प्रविधि म सम्भव नहीं है। इस प्रकार कार्यशाला मुख्य रूप स शिक्षा के क्रियात्मक पक्ष से जुडी हुई है।

कायशाला म व्यक्ति को स्वय काय करने का अवसर प्राप्त होता है। इससे उसम कौशल का विकास होता है। वह काय करते समय आने वाली कठिनाइयो को समझ लेता है तथा उसम क्रियात्मक पक्ष के विकास होने पर उसके द्वारा त्रुटि करने की सभावनाए कम हो जाती है। कायशाला-प्रविधि क प्रयोग स विद्यार्थी म काय करन की रुचि उत्पन्न हो जाती है।

कायशाला के उद्देश्य

(Objectives of Workshop)

शिक्षा के प्रमुख रूप स दो पक्ष अर्थात् सैद्धान्तिक पक्ष एव क्रियात्मक पक्ष है। कायशाला म दोनो पक्षो की पूर्ति हो जाती है। कायशाला आयोजित करने के निम्नांकित उद्देश्य है

(क) ज्ञानात्मक पक्ष

(1) अध्यापक अपन व्यवसाय म काम म आन वाले उपागम जैसे प्रश्न पत्र, पाठ-योजना, शोध-काय आदि के बारे म जानकारी प्राप्त कर सकता है।

(2) किसी प्रकरण पर यदि अध्यापक स्पष्टीकरण चाहे, तो वह इसे कायशाला क माध्यम स प्राप्त कर सकता है।

(3) अपन व्यवसाय से सम्बन्धित ज्ञान को कार्यशाला के माध्यम से अर्जित कर सकता है।

(4) शिक्षा के प्रयोग म किये जान वाले नवीन प्रत्ययो एव विधायियो का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

(ख) क्रियात्मक पक्ष

(1) शैक्षिक उपकरणो के निर्माण म सक्रिय रूप से भाग लेकर इन्हे बनाने के कौशल को अर्जित कर सकता है।

(2) शैक्षिक कार्यो के सम्पादन के विभिन्न चरणो को भली-भांति समझ सकता है।

(3) शिक्षण क नये उपागमो का प्रयोग करना सीख सकता है।

(4) शिक्षण के दौरान, यदि आवश्यकता पडे, तो वह शैक्षिक उपकरणो की मरम्मत आदि भी कर सकता है।

(5) क्रियात्मक काय म व्यक्तिगत रूप से भाग लेने तथा इन कार्यों को भली भांति पूरा करने की योग्यता अर्जित कर सकता है।

(ग) रुचि

(1) शैक्षिक उपकरणो के बनाने म वह रुचि लेगा।

(2) बने हुए शैक्षिक उपकरणा को शिक्षण काय म समय समय पर उपयोग म लायगा।

उपराक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र म कायशाला का उपयोग सेवारत अध्यापका के प्रशिक्षण म किया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र म नए नए प्रयोग हो रहे है जा कि शिक्षण को प्रभावी बनान मे सहायक है। इन नवीन उपकरणा अथवा विधिया का अध्यापक अपन शिक्षण म भली प्रकार स उपयाग कर सक इसके लिए इन्ह कायशालाओ क माध्यम म जानकारी दी जानी है। यह जानकारी प्रायागिक अधिक तथा सैद्धान्तिक कम होती है।

अध्यापक अपन शिक्षण काय म भी कायशाला प्रविधि का प्रयाग कर सकता ह। वह एस प्रकरणा का चुनाव कर सकता ह जिनम छात्रा का प्रायोगिक काय कराया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि काई अध्यापक राष्ट्रीय एकता की समस्या पर एक कायशाला आयाजित करना चाहे तो वह इसम बालका से भारत का राजनैतिक मानचित्र, पारस्परिक निभरता के आकडा पर आधारित रेखाचित्र, विभिन्न राज्या के रहन सहन क चित्रा के एलबम, भारत के भातिक साधनो के वितरण के मानचित्र आदि बनवाये जा सकते है तथा भारत की राजनतिक, आर्थिक और सास्कृतिक एकता को चित्रो, रेखाचित्रो तथा मानचित्रा के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। इसस यह स्पष्ट ह कि कार्यशाला के द्वारा द्वारा विद्यार्थियो को सैद्धान्तिक ज्ञान के अतिरिक्त क्रियात्मक ज्ञान भी दिया जा सकता ह।

कायशाला आयोजित किये जाने के चरण

(Steps for O ganising a Workshop)

कायशाला प्रविधि के तीन प्रमुख चरण निम्नानुसार है

(1) सद्धान्तिक पक्ष का ज्ञान देना।

(2) क्रियात्मक काय कराना।

(3) मूल्याकन।

(1) सद्धान्तिक पक्ष का ज्ञान देना

कायशाला जिस प्रकरण पर आयाजित की जाती है उसका सैद्धान्तिक पक्ष विद्यार्थिया अथवा सभागिया क समक्ष प्रस्तुत किया जाना आवश्यक ह। यदि भाग लन वाल विद्यार्थी है ता यह काय एक अध्यापक तथा यदि सवारत अध्यापक है ता कोई विशषज्ञ इस काय को करता है। सैद्धान्तिक पक्ष का समझान के लिए व्यास्यान नही दिय जाते। इसके स्थान पर सामूहिक विचार विमश किया जाता है।

कायशाला म सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत किय जान का विशष महत्व ह। यदि विद्यार्थी किसी काय म निहित सिद्धान्ता की जानकारी नही रखेगा तो वह यह

नहीं जान पायगा कि "काय" किस सिद्धान्त पर आधारित है। उदाहरण के लिए "समाजोपयोगी उत्पादक काय एव समाज सेवा "कायशाला" म यदि बालक इसकी विचारधारा को भली-भांति नहीं समझ सका है तो वह इस काय म विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं करेगा। अत किसी काय को करन की कुशलता प्राप्त करने से पूव उसके सिद्धान्त आदि का ज्ञान दिया जाना आवश्यक है। इसीलिए कार्यशाला म सवप्रथम सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है।

यहा ध्यान देन योग्य विशेष बात यह है कि सैद्धान्तिक ज्ञान को केवल उस सीमा तक ही दिया जाव जिससे कि बालक क्रियात्मक कार्य को भली प्रकार से कर सके। अधिक विस्तृत ज्ञान दिय जान स उसे प्रायोगिक काय करन का समय नही मिल पायगा। उदाहरण के लिए प्रश्न-पत्र निर्माण कायशाला म सभागिया को अच्छे प्रश्न के गुण, प्रश्नो के प्रकार, वस्तुनिष्ठता तथा विश्वसनीयता शिक्षण उद्देश्य आदि का ज्ञान, उनके काय म उपयोग करने की दृष्टि से दिया जाना चाहिए। यदि यही ज्ञान विस्तृत रूप म दिया जावे तो वह प्रश्न-पत्र-निर्माण के कौशल के विकास पर कोई विशेष प्रभाव नही डालेगा तथा उनके द्वारा किये जाने वाले क्रियात्मक काय क लिए समय म कमी का कारण बनेगा।

(2) क्रियात्मक काय कराना

किसी काय को भली प्रकार स करना सीख सकें इसके लिए आदर्श स्थिति एक अध्यापक तथा एक शिष्य है। ऐसी स्थिति म अध्यापक बालक के द्वारा की जान वाली त्रुटियो को तत्काल ज्ञात कर उसे मार्ग-दशन प्रदान कर सकेगा। आज के युग म ऐसी आदश स्थिति सभव नहीं है। फिर भी क्रियात्मक काय के लिए पूर समूह या कक्षा को छोटे-छोटे समूहा म बाट दिया जाता है। समूह के सदस्या की सख्या किसी भी परिस्थिति मे 10 से अधिक नही होनी चाहिए।

ये लघु-समूह अलग अलग बैठ कर अपना काय प्रारम्भ करते है। चूंकि इन समूहा क सदस्य काय को सीख रहे होते है, अत उनमे त्रुटिया होना स्वाभाविक है। प्रत्येक लघु-समूह मे एक सदभ व्यक्ति होता है जो कि समूह के सदस्या को आवश्यक निर्देश प्रदान करता है, इनके द्वारा किये गये कार्यों को भली भाति देखकर उनके द्वारा की गई त्रुटिया को बताता है तथा इन त्रुटिया से भविष्य म कैसे बचा जा सकता है, इसके बारे म इह वह सुझाव देता है। सदभ व्यक्ति कायशाला के अन्तगत किये जाने वाले काय का पूण जानकार होना चाहिए तथा उनके क्रियात्मक पक्ष की भी उसे पूरी जानकारी होनी चाहिए।

कायशाला म किये जाने वाले काय को विभिन्न चरणा म बाटा जाता है तथा इन पर अभ्यास कराया जाता है। उदाहरण के लिए एक अच्छे प्रश्न-पत्र को बनाने के लिए पाठ्यवस्तु का विश्लेषण, प्रश्नो के प्रकार की दृष्टि से उनकी

संख्या का निर्धारण, ब्लू प्रिंट का निर्माण, प्रश्न-पत्र बनाना तथा उसकी उत्तर तालिका का निर्माण किया जाना आवश्यक है। कार्यशाला में भाग लेने वाले व्यक्तियों को ये सभी बातें जाननी चाहिए ताकि वे इन कार्यों में दक्ष हो सकें।

कार्यशाला में क्रियात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि क्रियात्मक कार्य के लिए सम्भागियों को अधिक से अधिक समय दिया जाय। अधिक समय देने से वे प्रायोगिक कार्य को ठीक प्रकार से समझकर कर सकेंगे। जब सम्भागी प्रायोगिक कार्य कर रहे हों तो उस समय उनकी आवश्यकतानुसार सन्दर्भ-पुस्तकें, उपकरण आदि उनके लिए उपलब्ध होने चाहिए।

कार्यशाला की सफलता सन्दर्भ-व्यक्ति की योग्यता एवं कुशलता पर निर्भर करती है। वे जितने कुशल एवं दक्ष होंगे, उतनी ही अच्छी तरह सम्भागियों को मार्ग-दर्शन प्रदान कर सकेंगे तथा उनको कार्य करने के लिए प्रेरित करेंगे। अतः इस कार्य के लिए सन्दर्भ-व्यक्ति का चुनाव ठीक प्रकार से योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए।

(3) मूल्यांकन

मूल्यांकन शिक्षण एवं प्रशिक्षण का एक अनिवार्य अंग है। कार्यशाला में किये गये कार्यों का मूल्यांकन इसलिये किया जाता है कि इससे सम्भागियों के द्वारा कार्यशाला में अर्जित ज्ञान के स्तर का पता लगाया जा सके तथा कार्यशाला किस सीमा तक प्रभावी रही, के बारे में निर्णय किया जा सके। परन्तु इसके लिए कोई लिखित परीक्षा आयोजित नहीं की जाती है। सम्भागियों द्वारा किए गए कार्यों का ही मूल्यांकन सन्दर्भ व्यक्ति अथवा विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। यह मूल्यांकन ग्रेड प्रणाली पर आधारित होता है तथा इसमें कार्य करने के सभी पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि मूल्यांकन न केवल सम्भागियों का अपितु कार्यशाला का भी किया जाता है। इसके लिए सम्भागियों को कार्यशाला के प्रति अभिवृत्ति से सम्बन्धित एक "मूल्य मापनी" दी जाती है तथा इसको आधार मानकर कार्यशाला की प्रभावशीलता के बारे में निर्णय लिया जाता है।

कार्यशाला को भविष्य में और अधिक प्रभावी बनाया सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि उसके क्रियान्वयन में रही कमियों से बचा जा सके। सम्भागियों से, अन्त में, सुझाव भी आमन्त्रित किये जाते हैं।

कार्यशाला के सफल आयोजन हेतु आवश्यक मानवीय संसाधन

कार्यशाला का सफल आयोजन किये जाने हेतु योग्य एवं कुशल अध्यक्ष, सन्दर्भ व्यक्तियों एवं सम्भागियों की आवश्यकता होती है। यदि ये व्यक्ति कुशल

नही होते तो कायशाला प्रभावी रूप से आयोजित नही की जा सकेगी। काय-शाला म कायरत इन व्यक्तियो मे निम्न विशेषताओ का होना आवश्यक है

(क) अध्यक्ष

कायशाला का नियत्रण इस व्यक्ति के हाथ म होता है। इसका मनोनयन पूण सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। यह ऐसा व्यक्ति हो जो कि शात, गभीर, विषय मे पर्याप्त अनुभव रखन वाला तथा प्रजातान्त्रिक तरीके से नेतृत्व प्रदान करने वाला हो। यदि उसम प्रजातान्त्रिक नेतृत्व के गुण नही होग तो वह समूह का समथन प्राप्त नही कर सकेगा तथा कायशाला म सहकारिता एव सदभाव का अभाव रहेगा। कायशाला का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति है जिससे अन्य सभी मार्गदशन प्राप्त करते है अत जिस विषय पर यह कायशाला आयोजित की जा रही है उसमे पर्याप्त अनुभव एव ज्ञान का होना उसके लिए आवश्यक है।

(ख) सन्दर्भ-व्यक्ति

कार्यशाला म मार्ग-दशन अध्यक्ष द्वारा प्रदान किया जाता है परन्तु उसका सफल क्रियान्वयन सन्दभ-व्यक्तियो द्वारा किया जाता है। ये व्यक्ति योग्य एव कुशल होने चाहिए। इनका चुनाव करते समय निम्न बातो का ध्यान रखा जाना आवश्यक है

(1) सदभ व्यक्ति गभीर प्रकृति वाला तथा शात स्वभाव का होना चाहिए।
(2) वह पद म सम्भागियो से वरिष्ठ होना चाहिए।
(3) कार्यशाला से सम्बन्धित विषय का वह पूण ज्ञाता होना चाहिए।
(4) उसम प्रजातान्त्रिक गुण जैसे सहयोग, सहकारिता आदि होने आवश्यक है।
(5) सदर्भ व्यक्ति इस काय के लिए सहज उपलब्ध होने वाला व्यक्ति होना चाहिए।
(6) अध्यापन मे पर्याप्त अनुभव रखन वाला व्यक्ति होना चाहिए।

(ग) कायशाला के सम्भागीगण

कार्यशाला म जिन व्यक्तियो को भाग लेने हेतु बुलाया जाता है उनका भी एक निश्चित मानदण्ड निम्नानुसार है

(1) सभागी उस कायशाला के विषय से सबधित व्यक्ति होने चाहिए अर्थात् गणित विषय पर आयोजित कायशाला म गणित अध्यापक को ही बुलाया जाना चाहिए।
(2) यदि कार्यशाला म अध्यापको को बुलाया जाना है तो वे ऐसे न हो जिनकी सेवानिवृत्ति के दो-तीन वष ही शेष हो।
(3) सम्भागी सीखन म रुचि रखता हो।

(4) कायशाला विषय के बारे म सामान्य ज्ञान रखते हो।

कायशाला म अन्य व्यक्ति जैसे तकनीशियन, लिपिक, प्रतिवेदन आलेखक आदि भी होते है। ये व्यक्ति भी इस प्रकार से चुने जाने चाहिए कि ये कायशाला म पूर्ण रुचि रखने वाले हो।

कार्यशाला की विशेषताएँ

कायशाला शिक्षण की एक उत्तम प्रविधि है। इसम अधोलिखित विशेषताएँ है

(1) कायशाला म शिक्षा के क्रियात्मक पक्ष पर बल प्रदान किया जाता है।

(2) यह प्रविधि "कर के सीखना" सिद्धान्त पर आधारित है।

(3) कायशाला म व्यक्ति के मनोगत्यात्मक पक्ष का विकास होता है।

(4) इसम सम्भागी सक्रिय रह कर विषय का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता है।

(5) कायशाला म शिक्षक शिक्षार्थी अनुपात कम होने के कारण शिक्षण प्रभावी होता है।

(6) कायशाला म अर्जित ज्ञान जीवनापयोगी होता है।

(7) इस प्रविधि के द्वारा कम समय म अपेक्षित कौशलो का विकास किया जाना सभव है।

(8) कायशाला सम्भागियो मे प्रजातान्त्रिक भावनाओ का विकास करती है।

कार्यशाला की सीमाएँ

कायशाला म विशेषताएँ होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ है जो कि निम्नलिखित है

(1) कायशाला हर विषय म हर प्रकरण पर आयोजित किया जाना सभव नही है।

(2) कायशाला म कभी-कभी एसे प्रायोगिक काय किये जाते हैं जिनका वास्तविक शिक्षण परिस्थितियो म उपयोग किया जाना सभव नही है।

(3) कायशाला के आयोजन करने के लिये योग्य एव प्रशिक्षित व्यक्तियो की कमी है।

(4) इस प्रविधि के द्वारा पाठ्यक्रम पूरा नही किया जा सकता।

(5) इस प्रविधि म समय अधिक लगता है।

कायशाला की उपरोक्त सीमाएँ होते हुए भी यह एक उत्तम प्रविधि मानी गई है। इसम क्रियात्मक पक्ष को अधिक महत्त्व दिये जाने के कारण इसे अधिक

उपयोगी प्रविधि माना गया है। अतः एक शिक्षक को इसकी पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

सारांश

यह एक आधुनिक शिक्षण प्रविधि है जिसमें विद्यार्थी न केवल विचार-विमर्श ही करते हैं अपितु सामूहिक रूप से रचनात्मक कार्य भी करते हैं। इस प्रकार कार्यशाला क्रियात्मक कार्य से जुड़ी हुई है। इसमें व्यक्ति को प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होते हैं क्योंकि वह स्वयं कार्य करता है। इस प्रविधि के उपयोग से बालक में विषय के प्रति रुचि भी जागृत होती है।

कार्यशाला शिक्षा के ज्ञानात्मक पक्ष, क्रियात्मक पक्ष एवं रुचि के विकास से सम्बन्धित उद्देश्यों की पूर्ति करती है। इसका आयोजन करते समय यह आवश्यक है कि अध्यापक विद्यार्थियों को प्रकरण से सम्बन्धित सैद्धान्तिक बातों का ज्ञान दे। यह ज्ञान उस सीमा तक दिया जाना चाहिए जिससे कि बालक क्रियात्मक कार्य को ठीक प्रकार से कर सकें। क्रियात्मक कार्य के लिए लघु-समूहों का निर्माण कर उनसे यह कार्य कराया जाना चाहिए। उन्हें आवश्यक निर्देश तथा कार्य करने के लिए विभिन्न पद समझाये जाने चाहिए। ताकि वे त्रुटियां न कर सकें। कार्य का मूल्यांकन अन्त में किया जाता है।

कार्यशाला का नियन्त्रण अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। यह एक अनुभवी शिक्षक होता है तथा इसकी सहायता के लिए अन्य अध्यापक संदर्भ-व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं। ये सब मिलकर इस विधि को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराते हैं। यह विधि अत्यन्त उपयोगी है इसमें न केवल क्रियात्मक पक्ष का विकास होता है अपितु बालकों में प्रजातान्त्रिक मूल्य विकसित होते हैं।